हिन्दी

रचना-चन्द्रोदय

संशोधित १९५७

आचार्य श्रीरामलोचनशरण

पुस्तक-भण्डार, पटना

कई विश्वविद्यालयों से प्रवेशिका-परीक्षा के लिये मान्य

हिन्दी

रचना-चन्द्रोदय

(विश्वविद्यालयों की प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के अनुसार)

लेखक

आचार्य श्रीरामलोचनशरण

पुस्तक-भण्डार, पटना

संशोधित और परिवर्द्धित

❀ रामः ❀

भूमिका

शिक्षाविभागों और विश्वविद्यालयों के संचालकों ने 'रचना' को विद्यार्थियों की शिक्षा का एक प्रधान भाग समझकर मातृभाषा की बड़ी भलाई की है, परन्तु इस विषय की पुस्तकों की कमी से शिक्षकों और विद्यार्थियों को जो-जो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं, सभी जानते हैं। हाँ, इसकी पूर्त्ति के लिये दो-चार पुस्तकें भले ही दीख पड़ती हैं, परन्तु उनसे, जहाँ तक हम समझते हैं, यह कार्य भली-भाँति सम्पादित नहीं होता या होता भी है तो कुछ अंशों में इधर-उधर की बातें बताकर क्लिष्ट भाषा में लिखे केवल लेखों ही तक, सो भी नियमानुसार नहीं। **हमने यह ग्रन्थ इसी अभाव की पूर्त्ति के लिये लिखा है।** यदि परीक्षा-पत्रों को देखेंगे तो समझ सकेंगे कि इस ग्रन्थ को आप सज्जनों की सेवा में पहुँचने की कितनी आवश्यकता थी।

जनवरी में हमारे **प्रवेशिका व्याकरणबोध** और **हिन्दीव्याकरण-चन्द्रोदय** नामक दो ग्रन्थ निकले। इन्हें गुणग्राही अधिकारियों और शिक्षकों ने ऐसा अपनाया कि वर्ष के भीतर ही इनके तीन-तीन संस्करण हो गये। बीच-बीच में हमारे प्रिय शिक्षक पत्र-पर-पत्र भेजने लगे कि आप रचना की भी एक पुस्तक लिखें। जब हम १९१३ में गया जिला स्कूल में थे उसी समय से इस कार्य के लिये बहुत कुछ करते-धरते आ रहे थे; इधर यह उत्तेजना मिली। विवश हो, कलम उठानी पड़ी और शीघ्रता में जहाँ तक हो सका, आपके सामने यह ग्रन्थ बनकर पहुँच गया।

इस ग्रन्थ में क्या है, 'विषय-सूची' देखने से तो ज्ञात ही होगा, परन्तु संक्षेप में यहाँ भी लिखते हैं। **इसके दो भाग किये हैं—पहले में हिन्दी भाषा, अक्षर, शब्द, वाक्य, विराम, भाषाव्यवहार, अपप्रयोग, अर्थ-प्रकाश और पत्ररचना इत्यादि के पाठ हैं और दूसरे में मुख्य-मुख्य विषयों पर लेख हैं, जिनके पहले खण्ड के सभी लेख विषय-विभागों (Points)**

के अनुसार अलग-अलग विच्छेद (Paragraphs) बाँधकर वैज्ञानिक प्रणाली से लिखे गये हैं और दूसरे खण्ड के, साहित्यिक प्रणाली से लिखे हैं, जिन्हें हमने विद्वानों की पुस्तकों से उचित परिवर्त्तन के साथ ले लिया है। जहाँ तक हो सका है, भाषा ऐसी रक्खी गई है, जिसमें किसी प्रकार की अड़चन उपस्थित न हो।

हिन्दी भाषा की कई बातों में विद्वानों का मतभेद है। जहाँ ऐसा असमंजस आ पहुँचा है वहाँ प्रयोग पर ध्यान रखकर हमने अपना विचार दिया है और अन्य विद्वानों के मत भी उद्धृत कर दिये हैं। इस ग्रन्थ के पहले भाग के उदाहरणों के प्रायः सभी वाक्य और कुछ अनुच्छेद तथा दूसरे के कुछ लेख अविकल या कुछ परिवर्त्तन के साथ, प्रसिद्ध विद्वानों की रचनाओं से लिये गये हैं। ऐसा करने में हमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, राजा लक्ष्मण सिंह, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, बाबू रामचरण सिंह, पण्डित केशवराम भट्ट, पण्डित रामावतार शर्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, लाला भगवानदीन, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय, पण्डित रामजी लाल शर्मा, बाबू श्यामसुन्दर दास और बाबू राजेन्द्र प्रसाद इत्यादि विद्वानों के ग्रन्थों और सामयिक पत्र-पत्रिकाओं से विशेष सहायता मिली है, इसलिये हम उनके बड़े ही ऋणी हैं।

साहित्यसागर में जितने गोते लगाये जायँ उतनी ही 'गूढ़ विषयों की बारीकियाँ' दृष्टिगोचर होने लगती हैं। यदि उन बारीकियों की ओर ध्यान दें तो यह ग्रन्थ विद्वानों की दृष्टि में अयोग्य ठहरेगा। ऐसी अवस्था में समझते हैं कि हमने इसके लिखने में अनधिकार चेष्टा की है, परन्तु साथ-ही यह सोचकर मन को धीरज भी होता है कि मातृभाषा की सेवा करने का अधिकार सभी को है, बने या न बने। यदि बड़े विद्वान् पुष्पों की माला चढ़ाकर उसकी आराधना करते हैं तो हमें भी एक साधारण पुष्प लेकर उसकी शरण में जाना चाहिये।

स्थानीय नौर्थब्रूक स्कूल के हिन्दी शिक्षक बाबू भूषण सिंह ने रचना की थोड़ी-सी बातें लिखी थीं। उन्होंने हमारी धारणा देखकर उदारता से अपनी कापी हमें दे दी, इससे जहाँ-कहीं थोड़ी-बहुत सहायता मिल गई है। साथ ही

उक्त स्कूल के हेड परिडत और हिन्दी के मार्मिक लेखक श्री **जीवनाथ रायजी, व्याकरण-काव्यतीर्थ, बी० ए०** ने इस ग्रन्थ के कतिपय जटिल अंशों में हमें अच्छी सहायता दी है या यों कहिये कि यदि वे हाथ न बँटाते तो कई अंश एक प्रकार से अधूरे ही रहते। अतः, इन हितैषियों के हम हृदय से गुण गाते और कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

कुर्सो-निवासी **परिडत तुलाकृष्ण चौधरी** तथा अपने सहयोगी **परिडत सिद्धिनाथ मिश्र, बाबू सूबालाल और बाबू रघुनाथ प्रसाद** जी की प्रेरणा से हमने यह ग्रन्थ लिखा है। इसलिये इन बन्धुवरों के तथा हिन्दी-प्रचारिणी सभा के मन्त्री श्री **परिडत गिरीन्द्रमोहन मिश्रजी** के, जिन्होंने अपना अमूल्य समय लगाकर इसका संशोधन किया है, हम अत्यन्त ही कृतज्ञ हैं।

बहुत-कुछ होने पर भी यह ग्रन्थ अभी पूर्ण नहीं कहला सकता। इसमें बहुत-से विषय पड़ेंगे। हमने ऐसे विषयों का संग्रह भी किया है, परन्तु कागज और छपाई की महँगी और मूल्य बढ़ जाने के भय के कारण नहीं दे सके। आशा है, अगले संस्करण में यथासम्भव और कुछ सुधार भी किये जायँ।

इस ग्रन्थ के लिखने और छापने इत्यादि में बड़ी शीघ्रता की गई है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे यदि किसी प्रकार की भूल पावें तो कृपा कर अपनी राय सहित लिख भेजें कि पुनरावृत्ति में उसे सुधारने का प्रयत्न किया जाय।

१२-६-१९१५ **—रामलोचनशरण**

नवीन संस्करण

कई साहित्यकारों के सुझावों के अनुसार इस ग्रन्थ का इस बार फिर से समुचित संशोधन किया गया है। आशा है, यह बात ग्रन्थ के अनुशीलन से स्वतः सामने आयगी और इसकी उपयोगिता से पाठक लाभान्वित होंगे।

२७-१-१९५१ **—रामलोचनशरण**

विषय-सूची

रचना

पहला अध्याय

उपक्रमणिका (Introduction)

दूसरा अध्याय

शब्द-प्रकरण (Words)

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

ग्यारहवाँ अध्याय

भाषा-व्यवहार

बारहवाँ अध्याय

भाषा-व्यवहार

तेरहवाँ अध्याय

भाषा-व्यवहार

चौदहवाँ अध्याय

अशुद्धियाँ और भ्रम

पन्द्रहवाँ अध्याय

अर्थ-प्रकाश (Expression of Meaning)

सोलहवाँ अध्याय

पत्र-रचना (Letter-writing)

निबन्ध-रचना

पथ-प्रदर्शन

निबन्ध-माला

पहला खंड—वैज्ञानिक-प्रणाली से लिखे लेख

वर्णनात्मक लेख (Descriptive Essays)

विवरणात्मक लेख (Narrative Essays)

विचारात्मक लेख (Reflective Essays)

गुण, इत्यादि (Abstract subjects)

विभेद और तुलना (Contrast and Comparison)

प्रवाद और सूक्तियाँ (Proverbs and Quotations)

अनुवाद

[१]

……आपका रचना-चन्द्रोदय मुझे पसंद आया। आपने छात्रों को वह ग्रन्थ देकर साहित्य की स्तुत्य सेवा की है।……………………

(हरिऔध)

[२]

…बिहार से भी सुन्दर ग्रन्थ निकलते हैं। आपके व्याकरण-चन्द्रोदय और रचना-चन्द्रोदय छात्रों के लिये विशेष उपादेय हैं।……………

(श्यामसुन्दर दास)

❀ राम ❀

हिन्दी-रचना

—:❀❀:—

पहला अध्याय

उपक्रमणिका

हिन्दी की परिभाषा (Hindi uage)

१. "हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा है ।

२. "हिन्दी उस भाषा का नाम है, जो विशेषतया बिहार, उत्तर-प्रदेश, बुन्देलखंड, बघेलखंड, छत्तीसगढ़ आदि में बोली जाती है और सामान्यतया बंगाल को छोड़ समस्त उत्तरी और मध्यभारत की मातृभाषा है। मोटे प्रकार से इसे भाषा भी कहते हैं।"

—मिश्रबन्धु

हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति (Origin of Hindi)

(१)

"हिन्दी की उत्पत्ति के विषय में दो मत हैं, एक तो यह कि यह संस्कृत की पुत्री है और द्वितीय यह कि इसकी उत्पत्ति प्राकृत से है, अथवा यों कहें कि प्राकृत ही बदलते-बदलते अब हिन्दी हो गई है । अधिकतर लोगों का विचार इसी द्वितीय मत पर जमता है, यद्यपि बहुत-से विज्ञ पुरुष अब भी प्रथम मत को ही ग्राह्य समझते हैं। 'भारतीय लिंगवस्टिक सर्वे' में डा० ग्रियर्सन ने इस विषय पर बहुत श्रम किया है और उन्हींके एवं अन्य लेखों के आधार पर पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति' नामक एक पुस्तक लिखी है। यह निश्चयात्मक समझ पड़ता है कि हिन्दी की बहुत अधिक क्रियाएँ प्राकृत से ही निकली हैं, परन्तु कुछ संस्कृत, फारसी आदि से भी निकली हुई जान पड़ती हैं। अवशिष्ट शब्दों को हिन्दी ने संस्कृत, प्राकृत, फारसी, अरबी, अंगरेजी, चीनी, फ्रैंच आदि भाषाओं से पाया है और अब भी पाती जाती है।

हिन्दी की उत्पत्ति जानने के लिये इसके पूर्ववाली भाषाओं का कुछ वर्णन

आवश्यक है। आदिम आर्य लोग तिब्बत, उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी रूस, मध्य एशिया में से चाहे जहाँ से आये हों, पर पहले-पहल वे खोकन्द और बदख्शा में पहुँचे। वहाँ से कुछ लोग फारस की ओर गये और शेष आर्यावर्त्त को चले आये। फारसवाली आर्यों की भाषा के 'परजिक' और 'मीड़िक' नामक दो भेद हुए। 'परजिक' भाषा बढ़ते-बढ़ते 'पहलवी' होकर समय पर 'फारसी' हो गई। 'मीड़िक' भाषा मीड़िया अर्थात् पश्चिमी फारस में बोली जाती थी। पारसियों का प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'अवस्ता' इसी भाषा में लिखा है। खोकन्द आदि से चलते-चलते सैकड़ों वर्षों में आर्य लोग पंजाब पहुँचे। उस समय तक उनकी भाषा का रूप मीड़िक अर्थात् आसुरी भाषा से बदल कर 'पुरानी संस्कृत' हो गया था। इसीमें ऋग्वेद की पुरानी ऋचाएँ लिखी गईं और इसी कारण ऋग्वेद के प्राचीन-तम भागों की भाषा, अवस्ता की भाषा से कुछ-कुछ मिलती है। पंजाब में आने से आर्यों की *पुरानी संस्कृत* यहाँ के आदिम निवासियों की भाषा से जिसे ***पहली प्राकृत*** कह सकते हैं, मिलने लगी। यह गड़बड़ देखकर आर्यों ने अपनी भाषा का संस्कार करके उसे व्याकरण द्वारा नियमबद्ध कर दिया। इस प्रकार *वर्त्तमान संस्कृत* का जन्म हुआ। यह भाषा पुरानी वेदवाली संस्कृत से कुछ-कुछ पृथक् है। आर्यों ने अपनी भाषा को शुद्ध एवं पृथक् रखने के लिये उसे नियमबद्ध तो कर दिया, पर सांसारिक स्वाभाविक प्रवाह किसी के भी रोके नहीं रुकता। आर्यों ने पुरानी प्राकृत को संस्कृत में नहीं घुसने दिया, पर समय पाकर आर्यों और अनार्यों में सम्पर्क की विशेष वृद्धि से स्वयं संस्कृत पुरानी प्राकृत में घुसने लगी और इस प्रकार पुरानी प्राकृत बढ़ते-बढ़ते *मध्यवर्त्तिनी प्राकृत अर्थात् पाली भाषा* हो गई; जो अशोक के समय प्रचलित थी और जिसमें बौद्धों के अधिकतर धर्मग्रन्थ लिखे गये। संस्कृत कठिन होने के कारण सर्वसाधारण की भाषा न रह सकी और स्वयं आर्य लोग भी प्राकृत बोलने लगे। इस प्रकार संस्कृत केवल पुस्तकों की भाषा रह गई और सर्वसाधारण में उसका व्यवहार न रहा। अतः, बोलचाल की भाषाओं से उसकी गणना उठ गई। जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-हो-वैसे दूसरी प्राकृत अर्थात् पाली का भी विकास होता गया और समय पाकर मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्रीय आदि उसके कई विभाग हो गये। इन्हीं अन्तिम भाषाओं को अब प्राकृत कहते हैं। वास्तव में ये प्राकृत के तृतीय रूप हैं, परन्तु अब द्वितीय

रूप को पाली और प्रथम को पुरानी प्राकृत कहते हैं । प्राकृत के तृतीय रूपों के भी विकास समय के साथ होते गये । व्रजभाषा पश्चिमी विभागों की शौरसेनी प्राकृत का रूपान्तर है और पूर्वी भाषा मागधी का। अवधी भाषा शौरसेनी और मागधी के मिश्रण से बनी है। हिन्दी को पंडितों ने पूर्वी, माध्यमिक और पश्चिमी नामक तीन प्रधान भागों में विभाजित किया है। इनके अतिरिक्त राजपुतानी तथा पंजाबी-भाषाओं का ठेठ 'पश्चिमी' नामक एक और प्रधान विभाग हमारी समझ में होना चाहिये । इनका कुछ-कुछ सम्पर्क गुजराती आदि भाषाओं से भी है। हिन्दी के मुख्य उपविभागों में मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, राजपुतानी, व्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, बाँगरू, दक्षिणी, खड़ी बोली आदि भाषाएँ हैं।

इन उपर्युक्त विकासों में कोई भी एकवारगी नहीं हुआ, वरन् प्रत्येक विकास शताब्दियों में धीरे-धीरे होता रहा। एक देश की भाषा ग्राम-ग्राम प्रति बदलती हुई अधिक दूर चलकर बिलकुल दूसरी भाषा में परिवर्त्तित हो जाती है, परन्तु किन्हीं मिले हुए ग्रामों में भारी हेरफेर नहीं जान पड़ता। अवधी-भाषा बंगाली से नितान्त पृथक् है, पर यह पार्थक्य धीरे-धीरे ग्राम-ग्राम बढ़ते-बढ़ते हुआ है और यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्थान से अवधी भाषा समाप्त होती है और मैथिली का प्रारम्भ होता है, अथवा मैथिली भाषा समाप्त होकर बंगाली चलती है। ठीक यही दशा समयानुसार भाषाओं में हेर-फेर की है। अतः; ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी की उत्पत्ति-काल क्या है? मोटे प्रकार से इसकी उत्पत्ति प्रायः ७०० संवत् के लगभग समझनी चाहिये, क्योंकि भाषा के प्रथम ग्रन्थ का समय संवत् ७७० से है।"

—मिश्रबन्धु।

आरम्भ में आर्य लोगों की भाषा प्राचीन [वैदिक] संस्कृत थी। इसे 'देववाणी' भी कहते हैं। रामायण, महाभारत और कालिदास आदि के काव्य जिस परिमार्जित भाषा में हैं, वह बहुत पीछे की है। अशोक के शिलालेखों और पतंजलि के ग्रन्थों से जान पड़ता है कि ईस्वी सन् के कोई तीन सौ वर्ष पहले उत्तरी भारत में विशेष भाषा प्रचलित थी। स्त्रियों, बालकों और शूद्रों से उपर्युक्त आर्य-भाषा का उच्चारण ठीक-ठीक न बनने के कारण इस नई भाषा का जन्म हुआ था और इसका नाम प्राकृत पड़ा। 'प्राकृत' शब्द 'प्रकृति'

(मूल शब्द) से बना है और उसका अर्थ 'स्वाभाविक' या 'गँवारी' है। वेदों में गाथा नाम से जो छन्द पाये जाते हैं, उनकी भाषा प्राचीन संस्कृत से कुछ भिन्न है, जिससे जान पड़ता है कि वेदों के समय में भी प्राकृत भाषा थी। वैदिक काल की इस प्राकृत को हम *पहली प्राकृत* कहेंगे और ऊपर जिस प्राकृत का उल्लेख हुआ है इसे *दूसरी प्राकृत*। पहली प्राकृत ही ने कई शताब्दियों के पीछे दूसरी प्राकृत का रूप धारण किया।

बौद्ध-धर्म के प्रचार से दूसरी प्राकृत की बड़ी उन्नति हुई। आजकल वह दूसरी प्राकृत पाली-भाषा के नाम से प्रसिद्ध है। पाली में प्राकृत का जो रूप था उसका विकास धीरे-धीरे होता गया और कुछ समय बाद उसकी तीन शाखाएँ हो गईं—मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री। शौरसेनी-भाषा प्रायः उस देश में बोली जाती थी जिसे आजकल उत्तर-प्रदेश कहते हैं। मागधी मगध देश की भाषा थी और महाराष्ट्री का प्रचार बम्बई, बरार आदि प्रान्तों में था। उत्तर प्रदेश के पूर्व में एक और भाषा थी, जिसको अर्द्धमागधी कहते थे। वह शौरसेनी और मागधी के मेल से बनी थी। पुराने जैनग्रन्थ इसी भाषा में हैं। बौद्ध और जैनधर्मों के संस्थापकों ने अपने-अपने धर्मग्रन्थ प्राकृत भाषा में ही रचे थे।

थोड़े दिनों पीछे दूसरी प्राकृत में भी परिवर्तन हो गया। लिखित प्राकृत का विकास रुक गया, परन्तु कथित प्राकृत विकसित अर्थात् परिवर्तित होती गई। लिखित प्राकृत के आचार्यों ने इसी विकासपूर्ण भाषा का उल्लेख *अपभ्रंश* नाम से किया है। अपभ्रंश शब्द का अर्थ है 'बिगड़ी हुई भाषा'। वे अपभ्रंश भाषाएँ भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं। ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश भाषाओं में कविताएँ होती थीं।

अपभ्रंश में संस्कृत और दोनों प्राकृतों से यह भेद हो गया कि कारकों का अर्थ प्रकट करने के लिये शब्दों में विभक्तियों के बदले अन्य शब्द मिलने लगे और क्रिया के रूप से सर्वनामों का बोध होना मिट सा गया।

भारत की प्रचलित आर्य भाषाएँ न संस्कृत से निकली हैं और न प्राकृत से, किन्तु अपभ्रंशों से। लिखित साहित्य में केवल एक ही अपभ्रंश भाषा का नमूना मिलता है जिसे *नागर-अपभ्रंश* कहते हैं। इसका प्रचार अधिकतर पश्चिमी भारत में था। हमारी हिन्दी-भाषा दो अपभ्रंशों के मेल से बनी

है; प्रथम नागर अपभ्रंश, जिससे पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी निकली हैं; द्वितीय अर्द्धमागधी-अपभ्रंश, जिससे पूर्वी हिन्दी निकली है, तथा जो अवध, बघेलखंड और छत्तीसगढ़ में बोली जाती है। आगे लिखे वृत्त से हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति ठीक-ठीक मालूम हो जायगी।
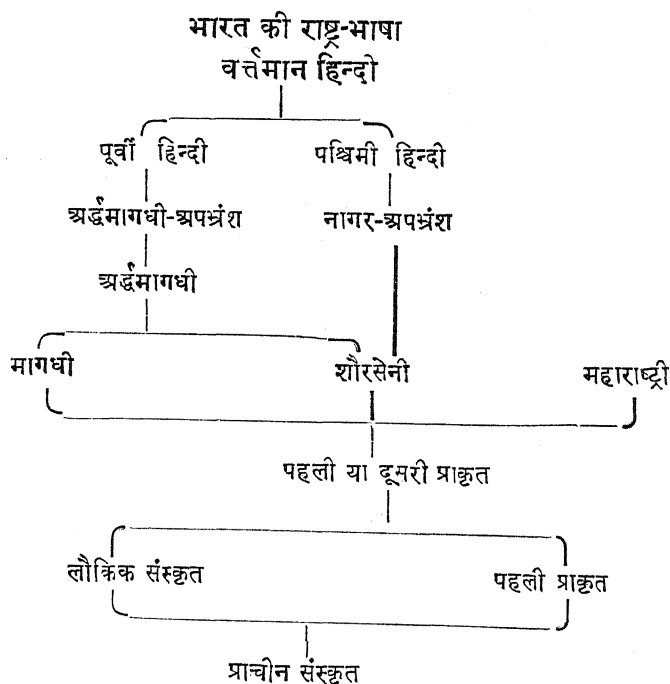
—कामता प्रसाद गुरु।
(परिवर्तित)

हिन्दी-भाषा का विकास

हिन्दी का विकास क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश के अनन्तर हुआ है। यद्यपि अपभ्रंश में कविता बहुत पीछे की बनी हुई मिलती है, तथापि हिन्दी का विकास चंदबरदाई के समय से स्पष्ट देख पड़ने लगता है। इसका समय बारहवीं

शताब्दी का अन्तिम अर्द्ध भाग है, परन्तु उस समय भी इसकी भाषा अपभ्रंश से बहुत भिन्न हो गई थी। अपभ्रंश का उदाहरण लीजिये—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जे जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु॥

यह दोहा हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण से है, जिसका समय संवत् ११४५ से १२२६ तक है। अब चन्दबरदाई से हिन्दी का उदाहरण लीजिये और देखिये कि दोनों में कहाँ तक समता है—

उच्चिष्ठ छंद चंदह बयन सुनत सुजंपिय नारि।
तनु पक्तिपावन कविय, उकति अनूठ उघारि॥

दोनों कविताओं के मिलाने से यह स्पष्ट विदित होता है कि हेमचन्द्र की कविता पुरानी है और चंद की उसकी अपेक्षा कुछ हाल की। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के जितने उदाहरण दिये हैं, उनमें से ऊपर का दोहा लिया गया है। उन उदाहरणों के अधिकांश अवतरण पहले के होंगे, क्योंकि व्याकरण के लिये वैसे ही उदारहण चुने जाते हैं। इस अवस्था में यह माना जा सकता है कि हेमचन्द्र के समय से पूर्व हिन्दी का विकास होने लग गया था और चन्द के समय तक उसका कुछ-कुछ रूप स्थिर हो गया था। अतएव हिन्दी का आदिकाल हम संवत् ११०० के लगभग मान सकते हैं। यद्यपि इस समय के पूर्व के कई हिन्दी कवियों के नाम बताये जाते हैं, तथापि उनमें से किसीकी रचना का कोई उदाहरण कहीं देखने में नहीं आता। इस अवस्था में उन्हें हिन्दी के आदिकाल के कवि मानने में संकोच होता है। अस्तु, चन्द को हिन्दी का आदि कवि मानने में किसीको संकोच नहीं हो सकता। कुछ लोगों का यह कहना है कि चन्द का 'पृथ्वीराज रासो' बहुत पीछे का बना हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि इस रासो में बहुत कुछ प्रक्षिप्त अंश हैं, पर साथ ही इसमें प्राचीनता के चिह्न भी कम नहीं हैं। 'दसम समय' का पूरा अंश प्राचीन जान पड़ता है।

चंद का समकालीन जगनिक कवि हुआ, जो बुन्देलखंड के प्रतापी राजा परमाल के दरबार में था। यद्यपि इस समय उसका बनाया कोई ग्रन्थ नहीं मिलता तथापि यह माना जाता है कि उसके बनाये ग्रन्थ के आधार पर ही आरम्भ में 'आल्हाखंड' की रचना हुई थी। इस ग्रन्थ की कोई प्राचीन प्रति

अभी तक नहीं मिली है, पर उत्तरप्रदेश और बुन्देलखंड में यह बराबर गाया जाता है। लिखित प्रति न होने तथा इसका रूप सर्वथा आल्हा गानेवालों की स्मृति पर निर्भर होने के कारण इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त अंश भी मिल गये हैं।

हिन्दी के जन्म का समय भारतवर्ष में राजनीतिक उलटफेर का था। उसके पहले ही से यहाँ मुसलमानों का आना आरम्भ हो गया था। आक्रमणों के कारण भारतवासियों को अपनी रक्षा की पड़ी थी। ऐसी अवस्था में साहित्य-कला की वृद्धि की किसको चिन्ता हो सकती थी? ऐसे समय में तो वे ही कवि सम्मानित हो सकते थे जो केवल कलम चलाने में ही निपुण न हों, वरन् तलवार चलाने में भी सिद्धहस्त तथा सेना के अग्रभाग में रहकर अपनी वाणी द्वारा सैनिकों का उत्साह बढ़ाने में भी समर्थ हों। चन्द और जगनिक ऐसे ही कवि थे और इसलिये उनकी स्मृति अबतक बनी है। उनके अनन्तर कोई १०० वर्ष तक हिन्दी का सिंहासन सूना देख पड़ता है। अतः, हिन्दी का आदिकाल संवत् ११०० के लगभग प्रारम्भ होकर १३०० तक चलता है। इस काल में विशेषकर वीर काव्य रचे गये थे। आरम्भ काल की हिन्दी में एक विशेषता यह भी थी कि वह प्रायः प्राकृत-प्रधान भाषा थी, अर्थात् उसमें शब्दों के प्राकृत रूपों का अधिक प्रयोग होता था।

इसके अनन्तर हिन्दी के विकास का मध्यकाल आरम्भ होता है, जो ५०० वर्षों तक चलता है। भाषा के विचार से इस काल को हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं—एक सं० १३०० से १५०० तक और दूसरा १५०० से १८०० तक। प्रथम भाग में हिन्दी की पुरानी बोलियाँ बदल कर क्रमशः व्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली का रूप धारण करती हैं और दूसरे भाग में उनमें प्रौढ़ता आती है; तथा अन्त में अवधी और व्रजभाषा का मिश्रण-सा हो जाता है।

कुछ लोगों का यह कहना है कि हिन्दी की खड़ी बोली का रूप प्राचीन नहीं है। उनका मत है कि सन् १८०० ई० के लगभग लल्लूलाल जी* ने इसे पहले-पहल अपने गद्यग्रन्थ प्रेमसागर में यह रूप दिया और तबसे खड़ी बोली का प्रचार हुआ। लल्लूलालजी* के पहले के भी ग्रन्थ मिलते हैं और कविता में तो खड़ी बोली तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग तक में मिलती है। कविता

* सदल मिश्र का नाम क्यों छोड़ते हैं?

में खड़ी बोली का प्रयोग मुसलमान और हिन्दू दोनों ने किया है। यह बात सच है कि खड़ी बोली का मुख्य स्थान मेरठ के आस-पास होने के कारण और भारत में मुसलमानी राजनीति का केन्द्र दिल्ली होने के कारण पहले-पहल मुसलमानों और हिन्दुओं की पारस्परिक बात-चीत अथवा उनमें भावों और विचारों का विनिमय इसी भाषा के द्वारा आरम्भ हुआ और उन्हींकी उत्तेजना से इस भाषा का व्यवहार बढ़ा। इसके अनन्तर मुसलमान लोग देश के अन्य भागों में फैलते हुए इस भाषा को अपने साथ लेते गये और उन्होंने इसे समस्त भारत में फैलाया। पर यह भाषा यहीं की थी और इसीमें मेरठ प्रांत के निवासी अपने भाव प्रकट करते थे। मुसलमानों के इसे अपनाने के कारण यह एक प्रकार से उनकी भाषा मानी जाने लगी और उस समय के हिन्दू-कवियों ने अपनी कविता में मुसलमानों की बातचीत प्रायः इसी भाषा में दी है। अतः; मध्यकाल में हिन्दी-भाषा तीन रूपों में दीख पड़ती है—व्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली। जैसे आरम्भकाल की भाषा प्राकृत प्रधान थी, वैसे ही मध्यकाल की तथा इसके पीछे की भाषा संस्कृत प्रधान हो गई।

ऊपर या वर्त्तमान काल में साहित्य की भाषा में व्रजभाषा और अवधी का प्रचार घटता गया है और खड़ी बोली का प्रचार बढ़ता गया है। इसका प्रचार इतना बढ़ा है कि अब हिन्दी का समस्त गद्य इसी भाषा में लिखा जाता है और पद्य की रचना भी बहुलता से इसीमें हो रही है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका विशेष सम्बन्ध साहित्य की भाषा से है। बोलचाल में तो अब तक अवधी, व्रजभाषा और खड़ी बोली अनेक स्थानिक भेदों और उपभेदों के साथ प्रचलित हैं, परन्तु इस समय साधारण बोलचाल की भाषा खड़ी बोली है। —श्यामसुन्दरदास।

हिन्दी के अक्षर (Hindi Letters)

हिन्दी भाषा जिन अक्षरों में लिखी जाती है, उन्हें देवनागरी (भारत की राष्ट्रलिपि) कहते हैं। देवनागरी में ४६ अक्षर हैं—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न प फ ब भ म

य र ल व श ष स ह

ं (अनुस्वार), ः (विसर्ग)

ऊपर लिखे अक्षरों में ऌ और ॡ * ये दोनों हिन्दी में कभी नहीं आते तथा ॠ का प्रयोग भी कदाचित् † ही मिलता है।

ड ढ क ख ग ज और फ के नीचे बिन्दी लगाकर आगे के अक्षर बनाये गये हैं ‡—ड़ ढ़ क़ ख़ ग़ ज़ फ़। इनमें क़, ख़, ग़, ज़ और फ़ ये पाँच, हिन्दी में प्रयुक्त फारसी, अंगरेजी इत्यादि भाषाओं के शब्दों में मिलते हैं। इन दिनों हिन्दी के कतिपय लेखक अ, आ, इ, उ, आदि अक्षरों के साथ बिन्दी या अर्द्धचन्द्र लगाकर 'मअ़लूम, इ़ल्म, उ़म्र, लॉर्ड, जॉर्ज' इत्यादि शब्द लिखने लगे हैं।

नोट—ड़ ढ़ को छोड़, शेष अक्षरों के साथ बिन्दी आदि का प्रचार अब रुक सा गया है।

हिन्दी के शब्द (Hindi words)

हिन्दी में जितने शब्द बोले जाते हैं, वे व्युत्पत्ति के अनुसार चार प्रकार के होते हैं—तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी।

१. **तत्सम** वे संस्कृत × शब्द हैं जो अपने असली रूप में हिन्दी में आये हैं। जैसे—माता, कवि, वायु, राजा, पिता, आज्ञा, अग्नि, वत्स, अश्रु, कर्पूर, काष्ठ, कोकिल, इत्यादि।

---

* पाणिनीय व्याकरण में ऌ का दीर्घत्व नहीं माना गया है, परन्तु कलाप व्याकरण और सारस्वत ने मान लिया है।

† मातॄण, पितॄण इत्यादि शब्द सन्धि के नियम से शुद्ध हैं, परन्तु ये विकल्प से मातृण, पितृण इत्यादि भी होते हैं।

‡ कुछ लेखक हिन्दी में प्रयुक्त अरबी, फारसी इत्यादि के शब्दों के नीचे बिन्दी देने के पक्षपाती हैं, परन्तु इसका निर्वाह कठिन है। बोल-चाल में बिन्दी का विचार प्रायः नहीं के बराबर है। अन्य भाषाओं के शब्द आवश्यकता की पूर्त्ति के लिये आते हैं, कुछ भाषा का सौन्दर्य बढ़ाने के विचार से नहीं। अतः, ऐसे शब्द समझाने योग्य रूपों में ही लिये जायँ—यही उचित है।

× जिस प्रकार संस्कृत के शब्द तत्सम या तद्भव रूप से हिन्दी में आये हैं, उसी प्रकार अरबी, फारसी, अंगरेजी के शब्द भी हिन्दी में आ रहे हैं। आगे अपभ्रंश-शब्द देखो।

२. तद्भव वे हैं जो संस्कृत-शब्दों से बने हैं। जैसे—खेत (क्षेत्र), रात (रात्रि), मेह (मेघ), आँसू (अश्रु), आम (आम्र), ऊँट (उष्ट्र), कपूर (कर्पूर), काठ (काष्ठ), कोयल (कोकिल), गेहूँ (गोधूम), गाँव (ग्राम), घिन (घृणा), हाथ (हस्त), चैत (चैत्र), सींग (शृङ्ग), तेल (तैल), निद (निद्रा), पाँव (पाद), मक्खी (मक्षिका), लाज (लज्जा), इत्यादि।

तत्सम से प्राकृत होते हुए हिन्दी में अधिकतर तद्भव शब्द आये हैं। जैसे—अर्क-अक्कौ-अकवन (आक, अकौन), अस्थि-अट्ठी-हड्डी, अग्नि-अग्गि-आग, अपूर्व-अवरूव-अपरूप, अश्रु-अंस्सू-आँसू, अन्यत्-अएण-आन (दूसरा), अँगुली-अंगुरी-उंगली, इक्षु-(तत्सम)-इच्छू-(प्रा०)-ऊख (हिन्दी), एकादश-एआरह-ग्यारह,

कर्म-कम्मो-काम, कार्य-कज्ज-काज, कृष्ण-कह्णो-कान्हा (कन्हाई), क्रिया-किरिया—क्रिया (किरिया), कुम्भकार-कुंभारो-कुम्हार, गम्भीरम्-गहिर-गहरा, गर्त-गड्ड-गढ़ा, गर्दभ-गड्डहो-गधा, गर्भित-गब्भिण-गाभिन, गृध्र-गिद्धो-गीध (गिद्ध), गृह-घर-घर, गौरव-गउरव-गौरव,

चत्वार—चत्तार (चउरी)—चार, चामर—चमर—चँवर, चतुर्दश—चउदह-चौदह, चन्द्रिका-चन्द्रिमा-चांदनी, चन्द्र-चन्दो-चाँद, छाया-छाहा-छांह, जामातक—जामाउओ-जामाई (जमाई),

तादृश-तारिसो-तैसा, तुन्द-तोन्द-तोंद, त्रीन्-तिरिण-तीन, दण्ड-डंडो-डंडा, दंशन-डसन-डँसना, दंष्ट्रा-दाढा-डाढ़, दृष्टि-दिट्ठी-दीठ, देवर-दिअर-देवर, दोला-डोल-डोला, नर्त्तक-णट्ट-नट, नृत्य-नच्च-नाच, निःश्वास-णिस्सास-निसाँस। निष्ठुर-णिट्ठुर-निठुर,

पञ्चदश—पण्णरहो-पन्द्रह, पश्चिम-पच्छिम-पच्छिम, पुस्तक-पोत्थओ-पोथी, प्रहर—पहरो—पहर, प्रस्तर—पत्थरो—पत्थर, प्रदीप—पलित—पलीता, प्रावृष्-पाउसो-पावस, पृथ्वी-पुहुवी-पुहिमी, भगिनी—भइणी (बहिणी)-बहन, भर्त्ता—भत्तार—भतार, भैरव-भइरवो-भैरव, मधूक-महुअ-महुआ, मार्ग—मग्गो—मग, मध्य—मज्झ—माँझ, मक्षिका—मच्छिआ—माछी (मक्खी), मृत—मिओ—मुआ, मुक्ता-मोत्ता-मोती, मुकुट-मउड़-मौर, मुख—मुक्ख—मुख (मुँह),

यमुना—जउणा—जमुना, यष्टि—लट्ठी-लाठी, लक्ष्मी—लच्छी-लक्ष्मी

(लक्खी), बधिर—बहिरो—बहरा, वत्स—वच्छो—बाछा, वधू—वहू—बहू, वक्र—बंक—बांका, व्याघ्र—बग्घो—बाघ, वायु—बाउ—बायु, विटप—विडवी बिरवा, वृश्चिक—विच्छुओ—बिच्छू, वृषभ—वसहो—बसहा (बैल), वृक्ष—रुक्खी—रूख, शृंगार—सिंगोरा—सिंगार, शय्या—सेज्जा—सेज, शृगाल—सिआल—सियार, शुण्ड—सुण्डो—सूँड़, श्मश्रु—मंसू—मसें (मूँछ), षष्ठी—छट्ठी—छठी, सदृश—सरिसो—सरिस, सप्तपर्ण—छत्तवण्णो—छतिवन (छतौन), सूर्य्य—सुज्जो-सूरज, सूची—सूई—सूई, सैन्धव—सिंधव—सेंधा, स्तम्भ—खंभो—खंभा, स्नान—ण्हाण—नहान, स्नेह—णेहो—नेह, हस्त—हत्थो—हाथ,

३. **देशज** शब्द संस्कृत से नहीं निकले हैं, वे भरत खण्ड के आदिम निवासियों की बोलियों से लिये गये हैं। जैसे—पेट, पगड़ी, खिड़की, अरिबन, ढोंगी, डाभ, इत्यादि। अनुकरण के शब्द (खटखट, करवट, चटपट) भी इसमें हैं।*

४. **विदेशी** शब्द वे हैं जो फारसी, अरबी, अंगरेजी इत्यादि अन्य भाषाओं से आये हैं। जैसे—

फारसी—आदमी, उम्मेदवार, बाग, चश्मा, दूकान, कमर, दाग, मोजा, गुलाब, चापलूस, शर्म, जहान, उरेब, बराबर, होश, सूद, गुमाश्ता, हर, खूब, जोर, गुल, अर्जी, आजन, दोस्त, रेशम, गर्म, कद्दू, जबान, दरबार, निशान, अरमान, उस्ताद, दुश्मन, सौदा, रास्ता, खून, इत्यादि।

अरबी—इम्तिहान, एतराज, औरत, हाल, सिफारिश, अदालत, मुकद्दमा, तारीख, तनख़ाह, मालूम, खलल, इजलास, अदना, जामिन, फर्क, फायदा, किताब, हुक्म, माफी, मुफ्त, खराब, खबर, खयाल, कुल, अजनबी, हकीम, असबाब, जब्त, करीम, हराम, हिफाजत, हिम्मत, किस्सा, गरीब, इजारा, लायक, खास, इजाजत, आदाब, अदब, दफ्तर, हुक्का, गुस्सा, कसर, हिसाब, हक, फुरसत, मुख्तार, फकीर, इत्यादि।

* ऐसे शब्दों की संख्या बहुत थोड़ी है और ऐसा सम्भव है कि आधुनिक आर्य भाषाओं की बढ़ती के नियमों की अधिक खोज और पहचान होने से विद्वान् लोग अन्त में इनकी संख्या बहुत कम कर देंगे।

तुर्की—तोप, चकमक, लाश, तमगा, कोतल, उर्दू, कल्गी, कुली, काबू, कालीन, आगा, चोगा, बावर्ची, कमची, कलावत्त, कुमक, इत्यादि ।

पोर्चुगीज—कमरा, नीलाम, आलमारी, पादरी, मेज, गिर्जा, फर्मा, गोदाम, इत्यादि ।

अंगरेजी—कलक्टर, लाट, प्रेस, डाक्टर, टीन, अपील, स्लेट, डिग्री, फीस, गिलास, कमिटी, फंड, स्कूल, रेल, सम्मन, टिकट, नोटिस, लालटेन, रजिस्टरी, पतलून, कोट, इञ्च, फुट, मास्टर, लम्प, थियेटर, कमीशन, अरदली, बटन, बक्स, बिल, कम्पनी, इत्यादि ।

इबरानी—(Hebren)—यहूदी, इसमाईल, इत्यादि ।

यूनानी—कीमिया, कामूनी (पचानेवाली मीठी दवा), अनीसून (एक प्रकार की सौंफ), करनफल (लौंग), इत्यादि ।

एशिया के अन्य देशों के शब्द—

चीन—चाय, चीनी, लूची, इत्यादि । **जापानी**—रिक्शा, हाराकिरी (आत्महत्या), इत्यादि । **बर्मी**—लूँगी, फूँगी, इत्यादि । **रूसी**—सोवियत, बॉलशेविक, इत्यादि । **मलाया**—गुदाम, सागू, इत्यादि । **तिब्बति**—लामा, इत्यादि ।

नोट—(१) प्रगति, चाल, बाड़ा, बाजू, (ओर, तरफ), सीताफल इत्यादि मराठी भाषा के और उपन्यास, प्राणपण, चूड़ान्त, भद्र लोग, गल्प, नितान्त इत्यादि बँगला भाषा के शब्द हैं ।

(२) हिन्दी में क्रिया और सर्वनाम शब्द प्रायः सब-के-सब तद्भव हैं ।

(३) तत्सम शब्द जो हिन्दी में आते हैं और जो आ रहे हैं वे प्रायः संस्कृत की प्रथमा के अनुस्वार और विसर्ग रहित-एकवचन रूपों में हैं ।

(४) तत्सम और तद्भव शब्दों में रूपों की भिन्नता के साथ-साथ बहुधा अर्थों की भिन्नता भी होती है । तत्सम शब्द प्रायः सामान्य अर्थ में आता है और तद्भव विशेष अर्थ में । तत्सम से कभी-कभी गुरुता का और तद्भव से लघुता का अर्थ लेते हैं । इसी प्रकार कभी-कभी तत्सम के दो अर्थों में से तद्भव से केवल एक ही अर्थ लेते हैं ; जैसे—स्थान (जगह)—थान (पशुशाला)—थाना (कोतवाली) । दर्शन—(मान्यजनों और देवताओं के दर्शन)—देखना (साधारण अर्थ में सभी के लिये) । वंश (कुटुम्ब)—

बाँस (एक पौधा विशेष)। गर्भिणी (केवल मनुष्य के लिये)—गाभिन (चौपायों के लिये)। सौभाग्य (अच्छा भाग्य)—सुहाग (पति के जीते रहने की दशा, पति का प्यार, अच्छा भाग)। क्षेत्र (पवित्र स्थान, तीर्थ इत्यादि, रेखागणित का चित्र, जगह)—खेत (अन्न का खेत)। स्तन (केवल मनुष्य के लिये)—थन (चौपायों के लिये), इत्यादि।

(५) नीचे लिखे तद्भव शब्दों के संस्कृत तत्सम शब्द हिन्दी में कदाचित् ही आते हैं।

अफीम (अहिफेन), आम (आम्र), आँवला (आमलक), उबटन (उद्वर्त्तन), ऊँट (उष्ट्र), खटिया (खट्वा), खपरा (खप्पर), गोबर (गोविट्), घाट (घट्ट), चूल्हा (चुल्लिका), चोंच (चञ्चु), चौकी (चतुष्पदिका), तीता (तिक्त), तुरत (त्वरित्), निराला (निरालय), मिट्टी (मृत्तिका), सत्तू (सक्तु), सलाई (शलाका), हाट (हट्ट), इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

१. किस भाषा को हिन्दी-भाषा कहते हैं? २. हिन्दी-भाषा कहाँ से निकली है? ३. हिन्दी में देवनागरी के कौन-कौन से अक्षर आये हैं? ४. फारसी, अँगरेजी आदि भाषाओं के शब्दों में बिन्दीवाले कौन-कौन अक्षर मिलते हैं? ५. किन-किन अक्षरों के साथ बिन्दी आदि चिह्नों का प्रचार सर्वत्र नहीं है? ६. व्युत्पत्ति के अनुसार कितने प्रकार के शब्द हिन्दी में बोले जाते हैं? पाँच-पाँच उदाहरण दो। ७. किन-किन देशी भाषाओं के शब्द हिन्दी में आये हैं? प्रत्येक के पाँच-पाँच उदाहरण दो। ८. देशज शब्दों के पाँच उदाहरण दो। ९. तत्सम और तद्भव शब्दों में रूपों की भिन्नता के साथ-साथ बहुधा अर्थों की भिन्नता भी होती है—इसके पाँच उदाहरण दो। १०. यदि विदेशी शब्दों को निकाल दें तो हिन्दी की कोई हानि भी होगी? कैसे?

उच्चारण और विवरण (Pronunciation and Spelling)

अ— (१)

उच्चारण के लिये प्रत्येक व्यञ्जन में 'अ' मिला हुआ है। इस 'अ' का

उच्चारण अवश्य होना चाहिये, परन्तु नीचे लिखी अवस्थाओं में इसका उच्चारण प्रायः नहीं होता—

१. हिन्दी के अकारान्त शब्दों में अन्त्य अ का उच्चारण नहीं होता। जैसे—रात, दिन, मोहन, कलम, लटकन, गपड़चोथ, इत्यादि।

अपवाद—एकाक्षरी शब्द का, शब्द के संयुक्त अन्त्याक्षर का, और इ, ई या ऊ के आगे 'य' का 'अ' पूर्ण उच्चरित होता है। जैसे—व, न, धर्म, इन्द्र, प्रिय, सीय, राजसूय, इत्यादि।

२. चार अक्षरों के अकारान्त शब्द में दूसरे अकारान्त वर्ण का अ अनुच्चरित रहता है। जैसे—झटपट, कामरूप, इत्यादि।

अपवाद—यदि दूसरा अक्षर संयुक्त हो या पहला अक्षर उपसर्ग हो तो दूसरे अक्षर का अ पूर्ण उच्चरित होता है। जैसे—सत्यलोक, प्रचलित।

३. अकारान्त भिन्न तीन अक्षरों के शब्द के दूसरे या चार अक्षरों के शब्द के तीसरे अकारान्त वर्ण का 'अ' अनुच्चरित रहता है। जैसे—कपड़ा, भागना, निकलना, समझना, इत्यादि।

४. यौगिक शब्दों के मूल अवयवों का अन्त्य अ अनुच्चरित रहता है। जैसे—देवलोक, प्रबलता, लड़कपन, इत्यादि।

५. शब्द के आदिवर्ण का अ सदा उच्चरित रहता है।

ऋ—

ऋ का उच्चारण 'रि' की भाँति है, भेद नहीं जान पड़ता। इसी आधार पर पुराने काव्य-ग्रन्थों में रिषि, रितु, रिन इत्यादि शब्द मिलते हैं।

ए और ओ—

१. कभी-कभी ए और ओ बिना खिंचाव के उच्चरित होते हैं और ऐसी अवस्था में इन्हें कोई क्रमशः इ और उ से बदलकर भी लिखते हैं। जैसे—एकाई-इकाई, एकट्ठा-इकट्ठा, एलाका-इलाका, देखाना-दिखाना, दोहाई-दुहाई, मोटाई-मुटाई, सोहाग-सुहाग, इत्यादि।

२. ऐ और औ कई शब्दों में अय और अव के समान और कई शब्दों में अइ और अउ के समान उच्चरित होते हैं। जैसे—मैना, डैना, कै, मौका और खिलौना, मैया, भैया, मैत्री, कौआ, गौ, इत्यादि।

य और ष—

य और ष को कहीं-कहीं ज और ख की भाँति बोलते हैं। जैसे—सूर्य, मनुष्य, इत्यादि। इसी आधार पर कई पुराने ग्रन्थों में य और ष के बदले ज और ख मिलते हैं। जैसे—जमुना, जजमान, भाखा, इत्यादि।

ड़ औ ढ़—

ड़ और ढ़ प्रायः शब्द के अन्त अथवा बीच में आते हैं। जैसे—घोड़ा, बाढ़, बड़ाई, चढ़ाई, इत्यादि। अनुनासिक दीर्घ स्वर वाले व्यञ्जन के आगे ड़ या ढ़ के बदले-क्रम से ड या ढ भी ला सकते हैं। जैसे—मेढ़ा-मेढा, खाँड़-खाँड, इत्यादि।

ल—

कई शब्दों में जहाँ पहले 'र' लिखा जाता था वहाँ अब 'ल' लिखना अच्छा समझा जाता है। जैसे—चेरा—चेला, ढारना—ढालना, बारना—बालना, भोरा—भोला, इत्यादि।

नोट—'ऋ, ण, ष' ये अक्षर केवल संस्कृत के शब्दों में आते हैं। जैसे—ऋण, ऋषि, पुरुष, गण, रामायण, इत्यादि। 'ङ, ञ और ण' हिन्दी के शब्दों के आरम्भ में नहीं आते। विसर्ग केवल थोड़े से हिन्दी के शब्दों में आते है। जैसे—छिः, छः, इत्यादि।

(२)

मूर्द्धन्य ण—

१. ऋ, र, और ष् के आगे न के बदले ण आता है। जैसे—ऋण, तृष्णा, इत्यादि।

२. यदि स्वर, कवर्ग, पवर्ग य, व, ह, और अनुस्वार में से कोई 'ऋ, र या ष और न' के बीच में आवे तो भी न के बदले ण आता है। जैसे—वरण, वरुण, रामायण, रावण, ग्रहण, श्रवण, इत्यादि।

नोट—दो पदों के युक्त होने में ऊपर के नियम नहीं लगते, अर्थात् एक पद में ऋ, र या ष् रहे और दूसरे पद में 'न' हो तो 'न' का 'ण' नहीं होता। जैसे—दुर्नाम, त्रिनेत्र, नीरनिधि, इत्यादि।

३. यदि उपर्युक्त वर्णों को छोड़ शेष वर्ण बीच में रहें तो 'न्' का 'ण्' नहीं होता। जैसे—रचना, दर्शन, प्रार्थना, अर्चना, इत्यादि।

४. ट-वर्ग और त-वर्ग से युक्त होने पर अनुस्वार का उसी वर्ग का पञ्चम वर्ण होता है अर्थात् ट-वर्ग के साथ 'ण्' होता है और त-वर्ग के साथ 'न्'। जैसे—घण्टा, पण्डित, कण्टक; ग्रन्थ, दन्त, सन्त, बन्धन, इत्यादि।

५. 'प्र, परा, परि और निर' उपसर्ग अपने आगे के नद्, नम्, नश्, नी और नुद् इत्यादि कुछ धातुओं के 'न्' को 'ण्' में नहीं बदलते। जैसे—प्रणाम, परिणत, निर्णय, प्रणत, इत्यादि।

नोट—१. प्र, परि के आगे उपसर्ग के आ जाने से इसका 'न' बदलकर 'ण्' हो जाता है। जैसे—प्रणिपात, प्रणिधान।

२. 'प्र, परा, पूर्व और अपर' शब्दों के आगे अहन् शब्द का न् बदलकर 'ण्' हो जाता है। जैसे—प्राह्ण, पूर्वाह्ण, अपराह्ण, इत्यादि।

६. 'पर, पार, चन्द्र, नार और उत्तर' शब्दों के आगे 'न्' का 'ण्' हो जाता है। जैसे—परायण, पारायण, नारायण, उत्तरायण।

नोट—'दक्षिणायन' में 'ण' नहीं होता।

स्वाभाविक ण वाले शब्द—गण, गुण, निपुण, पाणि, मणि, वेणी, वेणु, वाणिज्य, वाणी, वीणा, वणिक्, इत्यादि।

मूर्द्धन्य ष—

अ, आ को छोड़ और किसी स्वर, क् या र् के आगे स् के बदले ष् होता है। जैसे—जिगीषा, विवक्षा—विवक्षा, निषिद्ध, विषम, सुषुप्ति, विषाद, निषाद, अभिषेक, इत्यादि।

अपवाद—विस्मरण, अनुसरण, विसर्ग, इत्यादि।

ब और व

बोलने और लिखने में ब और व में भेद अवश्य रखना चाहिये। जो बेद को बेद और बात को वात लिखते हैं, वे भूल करते हैं। प्रायः अधिकतर विद्यार्थी तो ब कभी लिखते ही नहीं। जहाँ ब आना चाहिये वहाँ व और जहाँ व लिखना चाहिये वहाँ ब लिखते हैं, यह बड़ी भूल है। ब और व के उच्चारण स्थानों पर ध्यान रखना उचित है।

१. संस्कृत के बध्, बल्, बन्ध्, बाध्, बिद्, या बिन्द, बुध्, बृन्द् और बृद् इत्यादि धातुओं से बने शब्द बकरादि हैं। जैसे—बीभत्स, बन्धु, बन्धन, बधिर, बंध्या, बल, बालुका, बाधा, बाहु, बिन्दु, बुद्धि, बोध, ब्रह्म, ब्रह्मा, ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य, बृहत्, इत्यादि।

२. बहु, बाण, बाल, बिम्ब, बिल, बिल्व, बलात्, बलात्कार, बाला, बड़वानल इत्यादि शब्द बकारादि हैं।

३. हिन्दी की क्रियाएँ प्रायः सभी *बकारादि* हैं। जैसे—बोलना, बनाना, बकना, इत्यादि।

अपवाद—वारना। (आगे देखो)

फारसी के उपसर्ग बद, बा और बे तथा प्रत्यय बन्द, बर, बरदार, बाज, बान, और आबाद इत्यादि *बकारादि* हैं। जैसे—बदनाम, बाकार, बेसबर, नालबन्द, राहबर, हुक्काबरदार, ठट्ठेबाज, बागबान, हैदराबाद, इत्यादि।

५. संस्कृत के निम्नलिखित शब्द *वैकल्पिक* हैं (अर्थात् ब और व दोनों से लिखे जाते हैं, परन्तु ब से लिखना अधिक प्रचलित है)—बाल्मीकि (वाल्मीकि), बाणिज्य, (वाणिज्य), बल, (वल), बाली (वाली), बाधा (वाधा), बाण (वाण), बाल (वाल-केश), बक (वक), बाष्प (वाष्प), बकुल (वकुल), बटु (वटु), बर्बर (वर्वर), बलि (वलि), बल्लव (वल्लव) बाहु (वाहु), बाद्य (वाद्य), बिन्दु (विन्दु), बीज (वीज), बीर (वीर), इत्यादि।

६. हिन्दी के निम्नलिखित शब्द भी *वैकल्पिक* हैं, परन्तु ब से लिखना अधिक प्रचलित है—

बिदाई (विदाई), बिलोना (विलोना), बिलपना, (विलपना), बिलसना (विलसना), इत्यादि।

नोट—(१) ब और व के भेद से नीचे के शब्द अर्थों में भेद डालते हैं।

बासना (सुगन्धित करना)—वासना (इच्छा)।

बारना (बालना—to light)—वारना (न्योछावर करना), बीरा (बीड़ा—पान की खीली)—वीरा (वीरा स्त्री)।

(२) नीचे लिखे शब्द संस्कृत में व से और हिन्दी में ब और व दोनों

से लिखे जाने लगे हैं । जैसे—वन-बन, वचन-बचन, वात-बात (वायु) वाद-बाद (बहस), इत्यादि ।

अनुस्वार (ं) और अनुनासिक (ँ)—

अनुस्वार (ं) पूर्ण रूप से तानकर उच्चरित होता है, परन्तु अनुनासिक * (ँ) में कुछ भी तानना नहीं पड़ता । जैसे—हंस-हँसी, इत्यादि ।

युक्ताक्षर का आदि अक्षर यदि पंचम वर्ण हो तो इसे लोग अनुस्वार में भी बदलने लगे हैं । जैसे—गङ्गा—गंगा, चञ्चल—चंचल, घण्टा—घंटा, नन्द—नंद, चम्पा—चंपा, इत्यादि ।

नोट—(१) वाङ्मय, सम्राट्, तिन्हें, उन्हें इत्यादि शब्दों में आये पंचम वर्ण अनुस्वार में नहीं बदलते ।

(२) अंतःस्थ और ऊष्म वर्णों के पहले अनुस्वार नहीं बदलता । जसे—संयोग, संरक्षक, संलग्न, संवाद, संसार, इत्यादि ।

ठेठ हिन्दी के शब्दों में दीर्घ स्वरों के आगे (तथा क्रिया और इससे बनी संज्ञा में ह्रस्व स्वरों के आगे भी) अनुनासिक (ँ) का प्रयोग होता है । जैसे—दाँत, नीँद, सूँड़, रेँड़ी, सोँठ, मेँ, उन्हेँ, दोनोँ, गूँगा, पाँचवाँ, परसोँ, जहाँ, लड़कोँ को, ऊँघना, रेँकना, हँसना, पहुँचना, हँसा, पहुँच, इत्यादि ।

अपवाद—थोड़े से शब्दों में ह्रस्व स्वर के आगे भी अनुनासिक का प्रयोग होता है । जैसे—उँगली, मुँह, कुँवर, मँगनी, बहँगी, लहँगा, महँगा, इत्यादि ।

नोट—इन दिनों पुस्तकों में अनुनासिक के बदले अनुस्वार ही का प्रयोग देखा जाता है, परन्तु यह उचित नहीं । जान पड़ता है कि त्वरालेखन के कारण [illegible]खकों ने असावधानी की है या प्रेसों की अयोग्यता से ऐसी बात हुई है । ज[illegible] कुछ हो, परन्तु नये विद्यार्थियों—विशेषकर अहिन्दी-भाषियों के लिये यह [illegible]ीति सन्देह में डालनेवाली है । अतः, हमारी राय है कि अनुस्वार और अ[illegible]नासिक में अवश्य भेद रक्खा जाय ।

---

* मुखना[illegible] [illegible] वचनोऽनुनासिकः ।१।१।८—पाणिनि ।

अभ्यास (Exercise)

१. शब्दों से कहाँ-कहाँ अ का उच्चारण नहीं होता और कहाँ-कहाँ होता है ? २. काम, मोहन, अनबन, राजघाट—इन शब्दों में कहाँ-कहाँ अनुच्चरित अ हैं ? ३. चार वर्णों के शब्दों में कहाँ-कहाँ अनुच्चरित अ आते हैं ? ४. पाँच ऐसे शब्द कहो जिनके प्रथमाक्षर के स्वर ए या ओ के बदले इ या उ भी ला सकते हैं ? ५. दो उदाहरण दो जिनसे यह प्रमाणित हो कि ड़ या ढ़ के बदले ड या ढ भी ला सकते हैं ? ६. शुद्ध करो—ब्राह्मणी, विम्वोष्ट, सूर्यग्रहन, मनुस्य, बेद, भववन्धण, धनुसवान, विस्मरन, चेस्टा विसमकोन हन्सी, नराद, चणचल, सम्बाद। ७. कुछ ऐसे शब्द लिखो जो व और ब के भेद से अर्थ में भी भेद रखते हैं। ८. कुछ ऐसे शब्द लिखो जो संस्कृत में व से और हिन्दी में ब और व दोनों से लिखे जाते हैं। ६. अनुस्वार और अनुनासिक में क्या भेद है ?

ध्वनि-परिवर्त्तन (Phonetic Changes)

१. सन्धि [Euphony]—हिन्दी का संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण हिन्दी में तत्सम शब्दों के लिये संस्कृत के ही नियम लगते हैं, परन्तु ये नियम केवल शब्दों ही तक लगकर रह जाते हैं, हिन्दी के वाक्यों से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यदि के साथ अपि मिलकर और इति के साथ आदि मिलकर बने 'यद्यपि' और 'इत्यादि' शब्द हिन्दी में भले ही लिखे जाते हैं, परन्तु 'राम यदि उपस्थित होता' के लिये 'रामयद्युपस्थित होता' का निर्वाह संस्कृत के वाक्य 'सुन्दरमिदमालेख्यमस्ति' की भाँति हिन्दी में कभी नहीं हो सकता।

सन्धि के सहारे दो भिन्न भाषाओं के शब्द नहीं मिलाये जाते। अतः, कालेज + अध्यापक, खरच + आमदनी, मेरा + आशीर्वाद के बदले, 'कालेजाध्यापक, खरचामदनी, मेराशीर्वाद' लिखना उचित नहीं। 'जिलाधीश' के लिये यह नियम नहीं !

संस्कृत में सभी प्रकार के शब्द सन्धि के नियमों से प्रायः मिला दिये जाते हैं, परन्तु हिन्दी में ऐसा मेल केवल शब्द और प्रत्यय में ही देखा जाता है, प्रत्यय के बदले दूसरे शब्दों के मेल में नहीं। हम 'लड़का' शब्द के साथ 'आई' प्रत्यय मिलाकर 'लड़काई' लिखते हैं, परन्तु 'लड़का' शब्द के साथ 'आया था'

क्रिया लाकर 'लड़का आया था' के बदले 'लड़काया था' नहीं लिख सकते।

नीचे प्रकृति और प्रत्यय के मेल के कुछ नियम दिये जाते हैं—

१. यदि प्रत्यय का आदि वर्ण स्वर हो तो मिलने के पहले शब्दान्त का स्वर गिर पड़ता है और यदि शब्द के अन्त्याक्षर के पूर्व दीर्घ स्वर हो तो वह ह्रस्व हो जाता है या उसका आधा उच्चारित होता है। ऐसी अवस्था में ए को इ से और ओ को उ से बदल देते हैं। यदि शब्दान्त का व्यञ्जन द्वित्व हो तो एक गिर पड़ता है। जैसे—लड़का + आई = लड़काई, लड़ + आई = लड़ाई, देख + आई = दिखाई, बिल्ली + आव = बिलाव, कुत्ता + इया = कुतिया, चौबे + आइन = चौबाइन, बाप + औती = बपौती, इत्यादि।

नोट—(१) ऐसे भी थोड़े से शब्द हैं, जिनके अन्त्याक्षरों के पूर्व के स्वर ह्रस्व नहीं होते और पूर्ण उच्चरित होते हैं। जैसे—डाका + ऊ = डाकू, चोर + ई = चोरी, अहीर + इन = अहीरिन, बिहार + ई = बिहारी, इत्यादि।

(२) ऐसे भी थोड़े से शब्द हैं जो बिना कुछ परिवर्त्तन के प्रत्यय के साथ मिल जाते हैं। जैसे—गुरु + आई = गुरुआई।

२. यदि प्रत्यय का आदि वर्ण व्यञ्जन हो तो शब्द के साथ प्रायः बिना कुछ परिवर्त्तन के मिलाते हैं। थोड़े-से शब्दों में इस नियम का निर्वाह नहीं होता। जैसे—चिल्ला + हट = चिल्लाहट, पानी + वाला = पानीवाला। लड़का + पन = लड़कपन, चूड़ी + हारा = चूड़िहारा, बड़ा + पन = बड़ापन, बड़प्पन, इत्यादि।

२. संयोग (Combination)—(१) किसी वर्ग के दूसरे या चौथे अक्षर (महाप्राण) के द्वित्वाक्षर का उच्चारण नहीं हो सकता, इसलिये संयोग का पूर्व क्रमशः पहला या तीसरा अक्षर (अल्पप्राण) रहता है। जैसे—अच्छा, शुद्ध, रक्खा, इत्यादि।

नोट—बोलचाल में उच्चारण का झुकाव, वर्ग के पहले और दूसरे या तीसरे और चौथे अक्षरों के पूर्व और ह्रस्व के परे क्रमशः उसी वर्ग के प्रथमाक्षर के बिठाने की ओर है। जैसे—कुत्ता, रक्खा, अच्छा, खट्टा, चिट्ठी, कत्था, इत्यादि। पता, चचा, छठा, मीठा, लिखा इत्यादि इस नियम के अपवाद हैं,

परन्तु इनपर भी झुकाव का प्रभाव पड़ रहा है, जिससे कोई-कोई चच्चा, छट्ठा, लिक्खा इत्यादि बोल बैठते हैं।*

(२) संस्कृत नियमानुसार प्रायः दन्त्य स् के साथ त, थ का, तालव्य श् के साथ च, छ का और मूर्द्धन्य ष् के साथ ट, ठ का संयोग होता है। जैसे—स्थान, निश्चय, पुष्ट, इत्यादि।

नोट—यह नियम अंगरेजी शब्दों के लिये ग्राह्य नहीं है। मास्टर को माष्टर, वेस्ट को वेष्ट, मजिस्टर को मजिष्टर इत्यादि लिखना हम उचित नहीं समझते।

(३) स्वर के आगे हलन्त र् के साथ ह भिन्न किसी व्यञ्जन का संयोग हो, तो यह व्यञ्जन विकल्प से दुहरा सकता है। जैसे—कर्म या कर्म्म, धर्म या धर्म्म, कार्य या कार्य्य, सूर्य या सूर्य्य, कर्ता या कर्त्ता, इत्यादि। (दुहरा लिखने की चाल कम हो रही है।)

(४) जब निश्चयसूचक 'ही' को 'सब' के आगे और 'ब' अन्तवाले कालवाचक अव्ययों के आगे लाते हैं तब 'ब' के स्वर 'अ' को गिरा देते हैं। इसके बाद 'ब्' और 'ह्' दोनों 'भ्' में बदल जाते हैं। जैसे—सब + ही = सभी, तब + ही = तभी, जब + ही = जभी, इत्यादि।

(५) कुछ सार्वनामिक बहुवचन शब्दों के आगे 'ही' लगाने से शब्द का अन्त्य स्वर गिर पड़ता है तब ही के साथ संयोग हो जाता है। जैसे—हम + ही = हम्ही, तुम + ही = तुम्ही, जिन + हीं = जिन्हीं, उन + हीं = उन्हीं, इत्यादि।

नोट—हम्ही और तुम्ही के बदले हमी और तुमी भी लिखते हैं।

(६) ग और द के आगे ह रहने से दोनों स्वभावतः विकल्प घ और ध में बदल जाते हैं। जैसे—पगहा—पघा, गदहा—गधा, इत्यादि।

नोट—(१) हिन्दी में ज्ञ का उच्चारण बहुधा ग्यँ के तुल्य होता है, परन्तु इसका शुद्ध उच्चारण कुछ-कुछ ज्यँ के समान है और ज्ञ और क्ष केवल संस्कृत शब्दों ही में आते हैं। जैसे—आज्ञा, परीक्षा, इत्यादि।

---

* दिल्लीवाले प्रायः वर्ग के दूसरे और चौथे अक्षरों को क्रमशः पहले और तीसरे में बदलकर उच्चारण करने की ओर झुकते हैं। वे 'भूख, धन्धा, धोखा और ठंढा' इत्यादि शब्दों को क्रमशः 'भूक, धन्दा, धोका और ठंडा' इत्यादि बोलते और लिखते हैं।

(२) ङ् और ञ् हिन्दी में सदा संयुक्त ही लिखे जाते हैं, परन्तु ण्, न्, और म् अलग और संयुक्त दोनों लिखे जाते हैं। जैसे—गङ्गा, चञ्चल, मन, राम, घण्टा, गण, दन्त, चम्पा, इत्यादि ।

३. लोप (Elision)—(१) संधि की भाँति दो शब्दों के मिलाने में यदि पहले शब्द का अन्त्य व्यञ्जन और दूसरे का आदि व्यञ्जन एक ही हो तो उच्चारण में सरलता के लिये दूसरे का आदि व्यञ्जन गिर पड़ता है और इसका स्वर पहले के अन्त्य व्यञ्जन के स्वर का स्थान लेता है। पहले शब्द में अन्त्य व्यञ्जन के पहले का दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है । जैसे—वह + ही—वही, यह + ही—यही, यहाँ + ही—यहीं, तहाँ + ही—तहीं, नाक + कटा—नकटा, इत्यादि ।

(२) सार्वनामिक कई शब्दों के आगे निश्चयसूचक 'ही' लगाने से इसका 'ही' गिर पड़ता है । जैसे—उस + ही—उसी, तिस + ही—तिसी, इत्यादि ।

(३) उच्चारण में सरलता के लिये नीचे के शब्द भी अक्षरों के गिराने से बन गये हैं । जैसे—दुधाँड़ी (दूध + हाँड़ी), भैया (भइया = भाई + इया), मैया (मइया = माई + इया), दैया (दइया = दाई + इया), पछैंया (पछँ-इया = पछँहिया = पछाँह + इया), इत्यादि ।

नोट—(१) गँवारू बोलियों में कई शब्दों के कोई-न-कोई अक्षर बदल गये हैं । जैसे—मतबल (मतलब), बेराम (बीमार), अमधुर, अरमुद (अमरूद), अमदी (आदमी), राल (लार), चहुँपना (पहुँचना), निसाफ (इनसाफ), इत्यादि । (शुद्ध बोलचाल में इन शब्दों के प्रयोग नहीं होते ।)

(२) प्राकृत भाषा की भाँति चलित हिन्दी में तो नहीं, परन्तु कतिपय प्रांतिक भाषाओं में कुछ निष्प्रयोजन अक्षर भी मिल गये हैं। जैसे—पचासक (पचास), कछुक (कुछ), बाकीरो (बाकी), इत्यादि ।

४. **स्वराघात** (Accentuation of Vowels)—किसी शब्द के उच्चारण में प्रत्येक अक्षर पर स्वर का जो धक्का लगता है, उसे स्वराघात कहते हैं।

संयुक्त व्यञ्जन के पूर्वाक्षर का, या अनुच्चरित अकारवाले अक्षर के पूर्वाक्षर का स्वर बोलने में तन जाता है। जैसे—पक्ष, यज्ञ, पर, बोलकर, इत्यादि ।

संयोग के पूर्व का स्वर जहाँ तानकर बोलने में क्लेशकर होता है, वहाँ बोलना और लिखना पलट भी देते हैं। जैसे—विपत्ति-विपत्, सम्पत्ति-सम्पद्, दुःख-दुख, इत्यादि।

विसर्गवाले अक्षर का उच्चारण झटके के साथ होता है। जैसे—दुःख, निःसन्देह, दुःशासन।

नोट—भिन्न-भिन्न अर्थोंवाले एक ही रूप के शब्दों के अर्थ स्वराघात ही से जाने जाते हैं। जैसे—तू मेरे लड़के को पढ़ा। मैंने ग्रन्थ पढ़ा।

अभ्यास (Exercise)

१. मिलाओ—बड़ा + आई, माई + इया, अब + ही, जहाँ + ही, बड़ा + पन।

२. विच्छेद करो—कभी, उसी, मिठास, भूखा, गोला, लड़कपन।

३. नीचे लिखे प्रत्येक शब्दयुगल में कौन शुद्ध है? कारण दो—
कर्म-कर्म्म, सूर्य-सूर्य्य, पगहा-पघा, गदहा-गधा, मास्टर-माष्टर।

४. नीचे लिखे शब्दों के लिये अपनी राय प्रकट करो—
अमधुर, मतबल, चहुँपना, निसाफ, कछुक, मइया।

५. स्वराघात से क्या लाभ है? उदाहरण दो।

मिश्रित अभ्यास
(Miscellaneous Exercise)

१. नीचे जहाँ-जहाँ अशुद्ध वर्ण हों, शुद्ध करो और कारण दो—

गन्डक में बाढ़ आई है। गुप्फा में साधु रहता है। अछी पुस्तक पढ़ो। सन्सार में बुरे लोक भी हैं। निस्चय नहीं हुआ कि यह किस स्थान का पुरुख है। अक्षोहिनी एक बड़ी सेना का नाम है। आपको नमष्कार है। राम को पुरष्कार दो। भासा-भाष्कर के कई नियम अब नहीं माने जाते। इस चिरह्र को विशर्ग कहते हैं। मैं आपको अरतस्करन से आसीर्वाद देता हूँ। निरोगी रहने के नियम कहिये। बूढ़ापा आ गया। पीयासा लगी है। रमायन में राम और रावन की कहानी है। इसका क्या प्रमान है? विसमकोन किसे कहते हैं? ब्राह्मन से ग्रहन की बात पूछो। मुझे यह बात स्मरन नहीं। चार बेद और अठारह पुरान।

दूसरा अध्याय

शब्द और अर्थ (Word and Meaning)

शब्द (Word)—

कान से जो सुन पड़े, उसे शब्द कहते हैं। सुने हुए शब्द या तो ध्वन्यात्मक होते हैं या वर्णात्मक। जिनके अक्षर स्पष्ट न सुन पड़ें वे ध्वन्यात्मक और जिनके अलग-अलग सुन पड़ें, वे वर्णात्मक शब्द कहलाते हैं। व्याकरण में वर्णात्मक शब्दों का विचार होता है। ऐसे शब्द दो प्रकार के होते हैं—सार्थक और निरर्थक। सार्थक शब्द का अर्थ होता है और निरर्थक का कोई अर्थ नहीं।

व्युत्पत्ति के विचार से सभी शब्द दो प्रकार के होते हैं—रूढ़ और यौगिक; परन्तु संज्ञाएँ तीन प्रकार की हैं—रूढ़, यौगिक और योगरूढ़।

जिस शब्द के * खण्ड सार्थक न हों उसे रूढ़ शब्द कहते हैं। जैसे—धन, जग। किसी रूढ़ में उपसर्ग, प्रत्यय या दूसरे शब्द के मिलाने से जो शब्द बने उसे यौगिक शब्द कहते हैं। ऐसे शब्द के खण्ड सार्थक होते हैं तथा खण्डार्थ और शब्दार्थ में पूर्ण सम्बन्ध रहता है। जैसे—दुर्जन (दुर् + जन), धनवान् (धन + वान्), पाठशाला (पाठ + शाला)। जो यौगिक शब्द के समान ही बने, परन्तु सामान्यार्थ को छोड़ विशेषार्थ का प्रकाश करे उसे योगरूढ़ संज्ञा कहते हैं। जैसे—पङ्कज, जलज, चक्रपाणि।

रूपान्तर के अनुसार सार्थक शब्दों के दो भेद हैं—विकारी और अविकारी। लिङ्ग, वचन और पुरुष के कारण जिस शब्द के रूप में कोई विकार होता है, उसे विकारी और जिसके रूप में कोई विकार नहीं होता, उसे अविकारी या अव्यय कहते हैं। विकारी शब्दों के चार भेद हैं—*संज्ञा*, *सर्वनाम*, *विशेषण* और *क्रिया*। '*संज्ञा*' किसी वस्तु के नाम को, '*सर्वनाम*' संज्ञा के स्थान में आनेवाले शब्द को, '*विशेषण*' † संज्ञा की विशेषता बतलानेवाले शब्द को और '*क्रिया*' किसी व्यापार या काम को कहते हैं।

---

* कोष के विचार से अक्षर का भी अर्थ होता है, परन्तु वह अर्थ रूढ़ शब्द के अर्थ से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता।

† विशेषण संज्ञा की व्यापकता को बाँध देता है। विशेषण-रहित संज्ञा से जितने पदार्थों का बोध होता है विशेषण-सहित से उससे कम का होता है। 'गाय' शब्द जितने का बोध कराता है, काली गाय से उतने का नहीं होता। क्योंकि 'काली' शब्द 'गाय' की व्यापकता को बाँध देता है।

नोट—किन्तु 'सकल' 'समस्त', 'यावतीय' आदि विशेषण ऐसे हैं, जिनसे संज्ञा की व्यापकता में कमी नहीं आती।

अव्यय भी चार प्रकार के हैं—*क्रियाविशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादिबोधक*। जो क्रिया के अर्थ में कोई विशेष बात पैदा करे उसे '*क्रियाविशेषण*', जो सम्बन्ध दिखावे, उसे '*सम्बन्धबोधक*', जो दो वाक्यों, वाक्यखण्डों या शब्दों का परस्पर अन्वय दिखावे उसे '*समुच्चयबोधक*' या '*उभयान्वयी*' और जो मनोविकार को अर्थात् आश्चर्य, हर्ष, पीड़ा आदि को प्रकट करे उसे '*विस्मयादिबोधक*' अव्यय कहते हैं। जैसे—*संज्ञा*—पुस्तक, काशी। सर्वनाम—मैं, कौन, जो, वह। *विशेषण*—सुन्दर, काला, अच्छा। *क्रिया*—कहता हूँ, सोता था। *क्रियाविशेषण*—झट-पट, धीरे-धीरे। *सम्बन्ध-बोधक*—सहित, समेत। *समुच्चयबोधक*—और, या। *विस्मयादिबोधक*—ओह! वाह! हाय!

अर्थ (Meaning)—

अर्थ तीन प्रकार के हैं—*वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य*।

१. यदि कोई शब्द अपने नियत अर्थ का बोध करावे तो उसे 'वाच्य' कहते हैं। जैसे—बैल एक पशु है। यहाँ बैल शब्द का अर्थ पैर, सींग और खुर आदि वाला स्वनाम प्रसिद्ध पशु है, इसलिये यह अर्थ वाच्य हुआ और बैल शब्द वाचक। (वाच्यार्थ का बोध अभिधा नामक शब्द-शक्ति से होता है।)

२. यदि कोई नियत अर्थ का बोध न कराकर अपने सादृश्य या गुण का बोध कराये तो ऐसा अर्थ लक्ष्य कहलाता है। जैसे—'वह मनुष्य बैल है।' यहाँ बैल शब्द अपने नियत अर्थ का बोध नहीं कराता, क्योंकि मनुष्य कभी चार पैरोंवाला पूँछदार बैल नहीं हो सकता। यहाँ बैल शब्द 'बैल के सदृश' इस अर्थ का बोध कराता है, अर्थात् इससे उस मनुष्य की जड़ता, मूर्खता इत्यादि का बोध होता है। मनुष्य बैल है—वह मनुष्य मूर्ख है, इसलिये यह अर्थ 'लक्ष्य' हुआ और बैल शब्द 'लक्षक'। लक्ष्यार्थ का बोध लक्षणा नामक शब्द-शक्ति से होता है।)

३. एक अर्थ व्यंग्य भी होता है। जैसे—किसीने कहा कि सूर्यास्त हुआ। इतने में छात्र ने समझा कि संध्योपासन के लिये आचार्य आज्ञा देते हैं। (व्यङ्ग्यार्थ का बोध व्यञ्जना नामक शब्द-शक्ति से होता है।)

अभ्यास (Exercise)

१. अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना में क्या भेद हैं ? प्रत्येक का उपयोग कहाँ होता है ? उदाहरण दो।

२. अर्थ कितने प्रकार के हैं ? समझाओ।

३. वाक्य में शब्द कितने प्रकार के आते हैं ? उदाहरण दो।

४. व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द कितने प्रकार के हैं ? समझाओ।

५. यौगिक और योगरूढ़ संज्ञाओं में क्या भेद हैं ? उदाहरण दो।

शब्द-संगठन [Structure of Words]

नये-नये शब्द बनाने के मुख्य साधन **प्रत्यय, उपसर्ग** और **समास** इत्यादि हैं।

जो शब्दांश किसी शब्द के अन्त में जोड़ा जाता है, उसे *प्रत्यय* और जो पूर्व में जोड़ा जाता है, उसे *उपसर्ग* कहते हैं। मनुष्यत्व, लड़कपन, घरवाला इत्यादि शब्दों में त्व, पन और वाला इत्यादि प्रत्यय तथा दुर्जन, निर्दोष, प्रबल इत्यादि में दुर्, निर् और प्र इत्यादि उपसर्ग हैं।

कई पदों का मिलकर एक हो जाना *समास* कहलाता है। समास से उत्पन्न यौगिक शब्दों को समस्त या सामासिक शब्द कहते हैं। जैसे—राजमंत्री, चक्रपाणि, गौरीशङ्कर, इत्यादि।

प्रत्ययान्त शब्द

प्रत्यय मुख्यतः दो प्रकार के हैं—(१) वे जो धातु के अन्त में आते हैं। (२) वे जो नाम के * अन्त में आते हैं। लिखावट, आया इत्यादि शब्दों में 'वट' और 'या' पहले ढंग के और मनुष्यत्व, बाहरी इत्यादि में 'त्व और ई' दूसरे ढंग के प्रत्यय हैं।

धातु के अन्त में आनेवाले प्रत्यय

धातु के अन्त में आनेवाले प्रत्ययों से बने शब्द दो प्रकार के हैं—(१) क्रिया प्रत्ययान्त, जैसे–खाया, जाता, इत्यादि। (इसका वर्णन व्याकरण में देखो) और (२) कृत्प्रत्ययान्त (भेद और उदाहरण नीचे देखो)।

कृत्प्रत्ययान्त शब्द

[१] संज्ञा [Noun derived from roots]

(क) भाववाचक (Abstact Noun)

---

* क्रिया के अतिरिक्त जितने शब्द हैं, सभी को संस्कृत में 'नाम' कहते हैं।

प्रत्यय—अ, आ, आई, आन, आप, आपा, आव, आस, ई, औनी, त, ती, न्ती, न, ना, नी, र, वट, हट, इत्यादि ।

शब्द—चाल, मार, दौड़, देख, सोच, विचार । गुजारा, घाटा, छापा । घेरा । लड़ाई, चढ़ाई, गढ़ाई, पढ़ाई । उठान, लगान । मिलाप-जुलाप । बुढ़ापा । चढ़ाव, चुनाव, उतराव, बनाव, घुमाव । निकास, हुलास, प्यास । बोली, हँसी । पढ़ौनी, लिखौनी, कमौनी । बचत, लागत, लगत, खपत । चढ़ती, घटती, गिनती । बढ़न्ती, घटन्ती । लेन, देन, मिलन । होना, चलना । होनी, कटनी, मरनी । ठोकर । मिलावट, सजावट, लिखावट । चिल्लाहट, खुजलाहट, इत्यादि ।

नोट—देखने में, सँभालने से, बचाने से और कहने से इत्यादि के बदले आधुनिक कविताओं में 'देखे से, सँभाले, बचाये, कहे' इत्यादि भी मिलते हैं । (उदाहरण प्रयोगप्रकरण में देखो) ।

(ख) कर्तृवाचक (Agentives)

प्रत्यय—आ, री, का, र, इया, इत्यादि ।

शब्द—भूँजा । (भूँजनेवाला कौंदू) । कटारी । उचक्का । झालर । धुनिया, इत्यादि ।

(ग) कर्मवाचक (Accusative Nouns)

प्रत्यय—०, ना, नी, इत्यादि ।

शब्द—दाल, ओढ़ना (एक प्रकार का वस्त्र जिसको ओढ़ते हैं) । सुँघनी, ओढ़नी, खैनी, पीनी, इत्यादि ।

(घ) करणवाचक (Instrumental Noun)

प्रत्यय—आ, आनी, ई, ऊ, औटी, न, ना,नी, पा, इत्यादि ।

शब्द— झूला, घोटा, डोला, जाता, लग्गा । मथानी । रेती, जोती, लग्गी । झाड़ू । कसौटी । बेलन । घोटना, बेलना, ढकना, छनना, चलना, झरना, ढपना । घोटनी, बेलनी, ढकनी, चलनी, करनी, कतरनी, छोलनी, सुमरनी, कुरेलनी, खोलनी, मथनी । खुरपा, इत्यादि ।

[२] विशेषण (Adjectives derived from roots)

(क) कर्तृवाचक (Agentives used as Adjectives)

प्रत्यय—आऊ, आक, आका,आड़ी, आलू, इया, उआ, ऊ, एरा, ऐत, ऐया, ओड़, ओड़ा, क,क्कड़, टा, ना, वाला, वैया, सार, हार, हारा, इत्यादि।

शब्द—टिकाऊ, कमाऊ, खाऊ। तैराक, पैराक। लड़ाका, उड़ाका। खिलाड़ी। झगड़ालू। बढ़िया, घटिया। पढ़ुआ। डरू, खाऊ। लुटेरा, नोचेरा। फनैत, ढलैत, बटैया। हँसोड़। भगोड़ा। घालक, जाचक। भुलक्कड़, कुदक्कड़। चट्टा। रोना (जैसे—रोनी सूरत)। पढ़नेवाला। पढ़वैया। मिलनसार। राखनहारा, इत्यादि।

(ख) भूतकालिक कृदन्त विशेषण (Past Participle Adjectives)

प्रत्यय—आ।

शब्द—पढ़ा, धोआ, खाया, नहाया, इत्यादि।

नोट—(१) कभी-कभी 'आ' प्रत्यय के आगे 'हुआ' लगाते हैं। जैसे—पढ़ा हुआ, खाया हुआ, इत्यादि।

(२) 'आ' प्रत्यय के अर्थ में 'इत' 'ऊ' और 'औआ' भी मिलते हैं, जैसे—थकित, जाड़त, जरू, चढ़ौआ, बनौआ, इत्यादि।

(ग) वर्त्तमानकालिक कृदन्त विशेषण
(Present Participle Adjectives)

प्रत्यय—ता

शब्द—पढ़ता, बढ़ता, चलता, दौड़ता, इत्यादि।

नोट—कभी-कभी ता के आगे हुआ भी लगाते हैं। जैसे—पढ़ता हुआ, दौड़ता हुआ, इत्यादि।

[३] अव्यय (Derived from roots)

भूतकालिक और वर्त्तमानकालिक विशेषण, क्रिया इत्यादि की विशेषता बतलाने के कारण, अव्यय भी हो जाते हैं। ऐसे अव्यय द्वित्व होकर अधिकतर आते हैं; परन्तु अकेले कम। जैसे—बैठे-बैठे, दौड़ते-दौड़ते, आते-जाते, सोचते-विचारते, सोते-जागते, आते-ही-आते।

संस्कृत कृत्प्रत्ययान्त शब्द

संस्कृत के जितने तत्सम और तद्भव शब्द हिन्दी में आये हैं, संस्कृत नियमानुसार प्रायः सभी नहीं तो तीन चौथाई से अधिक शब्द धातुज हैं। हिन्दी

में केवल उन्हीं शब्दों को धातुज मानना उचित जान पड़ता है, जो खाना, पीना, करना इत्यादि के समान हिन्दी क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हों। नहीं तो लुहार लौह-कार का अपभ्रंश, लौहकर्म पूर्व में रहते (कृ धातु, से अण् प्रत्यय) और सुनार इत्यादि शब्दों को भी कृदन्त में गिनना पड़ेगा, जो हिन्दी-भाषा के लिये एक भारी खटक है। यहाँ केवल बहुज्ञतामात्र के लिये संस्कृत के कुछ प्रत्यय और शब्द दिये गये हैं।

[१] (संज्ञा—Nouns derived from roots)

(क) भाववाचक (Abstract nouns derived from roots)

अ (घञ्, अच्) भू-भाव, स्वद्-स्वाद, पच्-पाक, त्यज्-त्याग, नश्-नाश, मुह्-मोह, ध्वंस्-ध्वंस। जि-जय, भी-भय।

अन (ल्युट्)—ध्यै-ध्यान, गम्-गमन, ज्ञा-ज्ञान, श्रु-श्रवण, मा-मान, दृश्-दर्शन, शी-शयन, कृ-करण, कथ्-कथन, दा-दान।

आ (अङ्)—सेव्-सेवा, मेध्-मेधा, दय्-दया, कृप्-कृपा।

न (नङ्)—यज्—यज्ञ, प्रच्छ्—प्रश्न, यत्—यत्न।

ति (क्तिन्)—स्तु—स्तुति, शक्—शक्ति, बुध्—बुद्धि, वच्—उक्ति, दृश्-दृष्टि, क्लम्—क्लान्ति, गम्—गति, प्री—प्रीति, ख्या—ख्याति, वृध्—वृद्धि, मन्—मति, भज्—भक्ति, स्था—स्थिति, शम्—शान्ति, पुष्-पुष्टि, ऋध्—ऋद्धि, रम्—रति, क्षम्—क्षान्ति, भी—भीति, क्षि—क्षति।

य (क्यप्)—शी—शय्या, हन्—हत्या।

अ—चित्—चिकित्सा, मान्—मीमांसा, गुप्—जुगुप्सा, ज्ञा—जिज्ञासा, पा—पिपासा, लभ्—लिप्सा, जि—जिगीषा।

इत्र—चर्—चरित्र।

(ख) कर्तृवाचक (Agentives derived from roots)

अक (ण्वुल्)—गै—गायक, नी—नायक, पू—पावक, स्मृ—स्मारक, पच्—पाचक, दृश्—दर्शक, पठ्—पाठक, जन्—जनक, कृ—कारक।

अ (क, अण्, ट, ड)—धन + दा—धनद, जल + दा—जलद, गृह + स्था—गृहस्थ। लौह + कृ—लौहकार, माला + कृ—मालाकार, कुम्भ + कृ—कुम्भकार। वन + चर—वनचर, दिवा + कृ—दिवाकर, खे + चर—खेचर। पंक + जन्—पंकज, ख + गम्—खग।

अन (ल्युट्) मदि—मदन, नन्दि—नन्दन, नश्—नाशन, साधि—साधन, शोभि—शोभन, रम्—रमण, गह्—गहन।

ता (तृन, तृच)—दा—दाता, पा—पाता, जि—जेता, भुज्—भोक्ता, वच्—वक्ता, सू—सविता, कृ—कर्त्ता, श्रु—श्रोता, रच्—रचयिता।

अक (ण्वुल्)—रञ्ज्—रञ्जक, नृत्—नर्तक।

अ (अच्) सृप्—सर्प, दिव्—देव, भू—भव।

उ—तन्—तनु, मृ—मरु, बन्ध्—बन्धु, अश्—आशु, मन्—मनु, षिद्—सिन्धु।

उण—साध्—साधु, वा—वायु, जन्—जानु, तल्—तालु।

अन्य—ऋ—अरण्य, पृष्—पर्जन्य।

अनि—अव्—अवनि, धृ—धरणि।

उर—मथ्—मथुरा।

य (क्यप्)—सृ—सूर्य।

(ग) कर्मवाचक (Accusative Nouns derived from roots)

अ (घञ, अप्)—अर्थ—अर्थ। हन्—घात।

य (क्यप्)—भृ—भृत्य, कृ—कृत्य, शास्—शिष्य।

य (ण्यत्)—भृ—भार्य्या, कृ—कार्य।

उ—साध्—साधु।

मन् (मनिन्)—कृ—कर्म्म। धृ—धर्म्म।

(घ) करणवाचक

ल्युट्, अन् (मनिन्)—कृ—करण, चर्—चरण, नी—नयन, घ्रा—घ्राण।

त्र—शास्—शास्त्र, स्तु—स्तोत्र, पत्—पत्र, शस—शस्त्र, अस्—अस्त्र।

अ (घञ्)—पद्—पाद।

ण (क्यप्)—सृ—सूर्य्य।

इत्र—खन्—खनित्र।

(ङ) सम्प्रदानवाचक

अ (घञ्)—दास्—दास।

अन (ल्युट्)—सम्+प्र+दा—सम्प्रदान।

(च) अपादानवाचक

स (मक्)—भू—भीम, भीष्म ।

अ (अप्)—स्रु—स्रुव ।

आनक—भी+भयानक ।

अ (घञ्)—उप + अधि + इ—उपाध्याय ।

अन (ल्युट्)—अप + आ + दा—अपादान ।

(छ) अधिकरणवाचक

इ (कि)—जल + धा—जलधि, नि + धा—निधि ।

अ (घ, घञ्)—गो + चर्—गोचर, व्रज्—व्रज, आ + पण्—आपण, रम्-राम, अधि + इ—अध्याय ।

अन (ल्युट्)—अधि + कृ—अधिकरण, स्था—स्थान ।

(२) विशेषण

(Adjectives derived from roots)

(क) भूतकालिक कृदन्त विशेषण

(Past Participle Adjectives)

त (क्त)—मस्ज्-मग्न, क्लम्-क्लान्त, मुह्-मुग्ध-मूढ़, दृह्—दृढ़, दीप्-दीप्त, क्षि-क्षीण, मद्-मत्त, भञ्ज्-भग्न, बन्ध-बद्ध, पुर—पूर्ण, हृष्-हृष्ट, कुप्—कुपित, व्यथ्—व्यथित, रुज्-रुग्ण, दी—दीन, वाञ्छ—वाञ्छित, ख्या-ख्यात, दा—दत्त, बाध्—बाधित, जीव्—जीवित, पच्—पक्व, दृश्—दर्शित, ऋ—अर्पित, स्था—स्थापित, कल्प्—कल्पित, पा—पिपासित, मान्—मीमांसित ।

(ख) वर्त्तमानकालिक कृदन्त विशेषण

(Present Participle Adjectives.)

अत् (शतृ)—विद्—विद्वान्, अस्—सत् ।

आन, मान, (शानच्)—वृध्—वर्धमान, विद्—विद्यमान, सेव्—सेवमान, कम्प्—कम्पमान, दृश्—दृश्यमान, आस्—आसीन, धाव्—धावमान, ज्वल्—जाज्वल्यमान, दीप्—देदीप्यमान ।

(ग) भविष्यकालिक और औचित्यबोधक कृदन्त विशेषण

तव्य—कृ—कर्त्तव्य, भू—भवितव्य, वच्—वक्तव्य, दृश्—द्रष्टव्य, दा—दातव्य, गम्—गन्तव्य, हन्—हन्तव्य ।

अनीय—दृश्—दर्शनीय, श्रु—श्रवणीय, पूज्—पूजनीय, सेव्—सेवनीय, रम्—रमणीय, वाञ्छ्—वाञ्छनीय, शिक्ष्—शिक्षणीय, ग्रह्—ग्रहणीय, कम्—कमनीय।

य (यत्, ण्यत्, क्यप्)—दा—देय; पा—पेय, सह्—सह्य, रम्—रम्य, वि + चर्—विचार्य्य, मान्—मान्य, त्यज्—त्याज्य, भुज्—भोज्य, बुध्—बोध्य, युज्—योग्य, पूज्—पूज्य, स्तु—स्तुत्य।

(घ) कुछ और विशेषण शब्द

ई (णिन्)—स्था—स्थायी, भू—भावी, दा—दायी।

उ (कु)—लघ्—लघु, ऋज्—ऋजु, मृद्—मृदु।

वर (क्वरप्, वरच्)—नश्-नश्वर, स्था-स्थावर, भास्—भास्कर।

उर (घुरच्)—भञ्ज्—भङ्गुर।

आलु (आलुच्)—दय्—दयालु, नि + द्रा—निद्रालु।

उक (उकञ्)—हन्—घातुक, भू—भावुक।

इष्णु (इष्णुच्)—वृध्—वर्धिष्णु, सह—सहिष्णु।

संस्कृत कृत्प्रत्ययान्त कुछ और शब्द

(क) अन्य शब्द के साथ कृत्प्रत्ययान्त शब्द का मेल

इन्द्र + जित् (जि + क्विप्) = इन्द्रजित्। विज्ञान + वित् (विद् + क्विप्) = विज्ञानवित्। वसु + धा (धा + क) = वसुधा। विश्व + भर (भृ + खच्) = विश्वम्भर, कुम्भ + कार (कृ + अण्) = कुम्भकार। कर्म्म + कार (कृ + अण्) + कर्म्मकार। अग्र + सर (सृ + ट)—अग्रसर। सर्व + ज्ञ (ज्ञा + क) = सर्वज्ञ। आतप + त्र (त्रै + ड) = आतपत्र। गृह + स्थ (स्था + क) = गृहस्थ। अनु + ज (जन् + ड) = अनुज। मनः + हारी (हृ + णिन्) = मनोहारी। शास्त्र + कार (कृ + अण्) = शास्त्रकार। जल + चर (चर् + ट्) = जलचर। शोक + हर (हृ + अच्) = शोकहर। बल + कर (कृ + ट) = बलकर। अग्र + नी (नी + क्विप्) = अग्रणी। धन + दा (दा + क) = धनद। भू + प (पा + क) = भूप। मनसि + ज (जन् + ड)—मनसिज। भुज + ग (गम् + ड)—भुजङ्ग, भुजग। कृत + घ्न (हन् + क)—कृतघ्न। सत्य + वादी (विद + णिन्) = सत्यवादी।

(ख) उपसर्ग के साथ कृत्प्रत्ययान्त शब्द

प्र—नम + क्ति = प्रणति । प्र—भू + डु—प्रभु । उत्—तृ—क्त—उत्तीर्ण । वि—स्तृ + क्त = विस्तीर्ण । वि—स्तृ = क्त = विस्तृत । नि—स्था + अङ्=निष्ठा (स्त्री०) । वि—ज्ञा + ड = विज्ञ । प्र—सद् + क्त = प्रसन्न । वि-श्वस् + क्त = विश्वस्त । सम्—यम् + णिन् = संयमी । आ—श्रि + अच् = आश्रय । आ—ह्वे + क्त = आहूत । वि--धा + कि = विधि । आ—धा + कि = आधि । परि—श्रम् + णिन् = परिश्रमी । आ—छद् + क्त = आच्छादित । प्र = जन् + ड—प्रजा (स्त्री०) । सम्—राज् + क्विप् = सम्राट् । आ—सञ्ज् + क्ति = आसक्ति । प्र—दा + क = प्रद । अभि—ज्ञा + क = अभिज्ञ । परि—मा + क्त = परिमित । उत्—विज् + क्त = उद्विग्न । वि—धा + य = विधाय । आ—सद् + क्ति—आसक्ति ।

नाम के अन्त में आनेवाले प्रत्यय

(नाम के अन्त में आनेवाले प्रत्यय दो प्रकार के हैं—तद्धित प्रत्यय और कारकान्त । नाम में जिन प्रत्ययों के लगाने से शब्द-भेद बनते हैं, वे तद्धित और जिनके लगाने से कारक बनते हैं वे कारकान्त कहलाते हैं ।)

तद्धित प्रत्ययान्त शब्द

(१) संज्ञा (Nouns)

(क) भाववाचक (Abstract Nouns)

प्रत्यय—अ, आई, आना, आपा, आस, इख, इत, ई, ठी, ड़ा, त, नी, पन, हट, इत्यादि ।

शब्द—आपा । बुराई, भलाई । ठिकाना । बुढ़ापा, सुघड़ापा । मिठास, खटास । कालिख । अपनाइत । गर्मी, सर्दी । कनैठी । दुखड़ा । रंगत, संगत । चाँदनी । लड़कपन, बचपन । चिकनाहट, रुखड़ाहट, इत्यादि ।

उर्दू प्रत्यय — गी, ई, आई, इत्यादि ।

शब्द—जिन्दगी, बन्दगी, उम्दगी, ताजगी, रंजगी, मर्दानगी, खुदगर्जी, उस्तादगी, बेहयाई, बेवफाई, इत्यादि ।

(ख) ऊनवाचक या लाघवार्थक (Diminutives)

प्रत्यय—आ, वा, ई, क, टा, ड़ा, ड़ी, या, री, ली, इत्यादि ।

शब्द—पिलुआ, नौआ। बछवा, चमरवा। रस्सी, कटोरी। बालक। रोंगटा। जोगड़ा, टुकड़ा। पलँगड़ी, टँगड़ी खलड़ी। खटिया, डिबिया, कुतिया। कोठरी, छतरी। खटुली, बटुली, इत्यादि।

उर्दू प्रत्यय—क, चा, इचा, इत्यादि।

शब्द—तुपक, बगीचा, चमचा, गलीचा, देगचा, इत्यादि।

नोट—हिन्दी में बहुत से ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें देखते ही एक-ब-एक 'ऊनवाचक' का ध्यान बँधता है, परन्तु वे वास्तव में ऐसे नहीं हैं। जैसे—अँगूठी, कजरी-कजली, खरही, खोई, गोती, गुड्डी, चक्की, छड़ी, ड्योढ़ी, घेली, पहुँची, सिरकी, इत्यादि। (ये शब्द क्रमशः "अँगूठा, कजरा, खरहा, खोआ, गोता, गुड्डा, चक्का, छड़ा, ड्योढ़ा, धेला, पहुँचा, सिरका" इत्यादि शब्दों के ऊनवाचक जान पड़ते हैं, परन्तु ऐसी बात नहीं है।)

(ग) कर्तृवाचक (Agentives)

प्रत्यय—आर, इया, ई, उआ, रा, वन, वाल, वाला, हारा, इत्यादि।

शब्द—सुनार, लुहार, कुम्हार। अढ़तिया, मखनिया। भंडारी, कोठारी, तेली। मछुआ। सँपेरा, कसेरा। दँतवन। कोतवाल। गोवाला। चुड़िहारा, इत्यादि।

उर्दू प्रत्यय—कार, गर, गार, बान, ची, दार, बीन, इत्यादि।

शब्द—पेशकार, काश्तकार। सौदागर, कारीगर, कलईगर। मददगार, खिदमतगार। बागबान, दरबान, मेहरबान, मेजबान। खजानची, मसालची। जमीनदार, आबदार। तमाशबीन, इत्यादि।

(घ) सम्बन्धवाचक

प्रत्यय—आल, औती, जा, ठी, ड़ा, रा, ल, हर, इत्यादि।

शब्द—ससुराल, ननिहाल। कठौती, हथौटी। भतीजा, भांजा। अँगेठी। मुखड़ा, नाकड़ा। कठरा, मँगरा, ककहरा। पीतल, नकेल। खँड़हर, दाहर।

उर्दू प्रत्यय—आना, ई, का, ची, दान, इत्यादि।

शब्द—जुर्माना, तलवाना, नजराना, बयाना, दस्ताना। आदमी, मिर्जई। एक्का, पैका,। घड़ौची, दुमची। पानदान, गूलदान, जुजदान, कलमदान, शमादान।

[२] विशेषण (Adjectives)

(क) **प्रत्यय**—आ, आइन, आहा, ई, ऊ, एरा, ऐ, ऐआ, ऐत, ऐला, ओ, ओं, का, ठा, तना, था, ना, रा, ल, ला, वाल, वाला, वाँ, सा, हर, हरा, हा, इत्यादि ।

शब्द—ठंढा, भूखा, निगोड़ा, कुबड़ा । गोबराईन, घिनाइन । दखिनाहा, उतराहा । कई । पेटू, बाजारू, गजूँ । चचेरा, फुफेरा, ममेरा । जै, कै, तै। घरैया, बनैया । नतैत, लठैत । बनैला, विषैला। बीसो । पचासों । मायका । छठा । इतना, उतना । चौथा । अपना । दूसरा, तीसरा । बिगड़ैल, खपरैल । अगला, पिछला, पहला, सुनहला । दिल्लीवाल, काशीवाल । रामवाला, अग्रवाला। पाँचवाँ, बारहवाँ । आपसा, आगसा, ऐसा, वैसा । छुतहर । सुनहरा, रुपहरा, इकहरा, दुहरा । टकहा, भुतहा, बैसहा, इत्यादि ।

(ख) **उर्दू ढंग के प्रत्यय**—आना, ई, गीन, नाक, बान, मन्द, बर, सार, शाही, गार, दार, बाज, इत्यादि ।

शब्द—दोस्ताना, सालाना, ईरानी, खूनी । ग़मगीन । दर्दनाक, खौफ़-नाक । निगहबान, मेहरबान । अक्लमन्द, दौलतमन्द । ताकतबर, सखुनबर । खाकसार, मिलनसार । बादशाही, नादिरशाही । बेगार । मजेदार । दगाबाज, इत्यादि ।

[३] सर्वनाम (Pronouns)

प्रत्यय—स, ना ।

शब्द—आपस, अपना ।

इ (इञ्)—दशरथ-दाशरथि, दत्त-दात्ति

एय (ढक्)—कुन्ती-कौन्तेय, राधा-राधेय, भगिनी-भागिनेय

इक (ठक्)—रेवती-रैवतिक ।

नोट—(१) व्यवसाय अर्थ में—नौ-नाविक (इक्-ठन्-प्रत्यय) ।

(२) स्थान अर्थ में 'अधि' और 'उप' उपसर्गों के आगे त्यकन् (त्यक) प्रत्यय लगाते हैं। जैसे—अधि—अधित्यका, उप—उपत्यका ।

(३) उपासना अर्थ में—विष्णु + अ = वैष्णव, सूर्य + अ = सौर । गणपति-गाणपत्य, शिव-शैव, शक्ति-शाक्त, इत्यादि ।

[२] विशेषणों से बनी संज्ञाएँ
(Nouns derived from Adjectives)

(क) भाववाचक (Abstract Nouns)—

ता —नम्र-नम्रता, शठ-शठता, गुरु-गुरुता, लघु-लघुता, मूर्ख-मूर्खता, मधुर-मधुरता, शूर-शूरता, वीर-वीरता, सुन्दर-सुन्दरता, सहाय-सहायता, सुजन-सुजनता, उदार-उदारता, दरिद्र-दरिद्रता।

त्व—गुरु-गुरुत्व, लघु-लघुत्व, मूर्ख-मूर्खत्व, महत्-महत्व, शूर-शूरत्व, वीर-वीरत्व, एक-एकत्व, धीर-धीरत्व, द्वि — द्वित्व।

अ (अण्)—गुरु-गौरव, लघु—लाघव।

[३] विशेषण (Adjectives)

(क) संज्ञाओं से बने विशेषण
(Adjectives derived from Nouns)

इक (ठक्, ठञ्)—न्याय-नैयायिक, पुराण-पौराणिक, तर्क-तार्किक, वेद-वैदिक, अलङ्कार-आलङ्कारिक, काय-कायिक, मुख-मौखिक, नगर-नागरिक, समाज-सामाजिक, देह-दैहिक, समुद्र-सामुद्रिक, लोक-लौकिक, विषय-वैषयिक, समय-सामयिक, वर्ष-वार्षिक, मास-मासिक, दिन-दैनिक।

य (यत्, य)—कण्ठ-कण्ठ्य, तालु-तालव्य, अन्त-अन्त्य, प्राक्-प्राच्य, ग्राम-ग्राम्य, सभा-सभ्य।

मत्, वत् (मतुप्)—बुद्धि-बुद्धिमान्, बुद्धिमती, श्री-श्रीमान्, रूप-रूपवान्, विद्या-विद्यावान्, ज्ञान-ज्ञानवान्।

विन्—तेजस्-तेजस्वी, मनस्-मनस्वी, यशस्-यशस्वी, मेधा-मेधावी।

इन्—ज्ञान-ज्ञानी, धन-धनी, प्रणय-प्रणयी, अर्थ-अर्थी, दुःख-दुखी।

मय (मयट्)—स्वर्ण-स्वर्णमय, जल-जलमय, प्रस्तर-प्रस्तरमय, दया-दयामय-दयामयी (स्त्री०)।

इत—आनन्द-आनन्दित, दुःख-दुःखित, फल-फलित, पुष्प-पुष्पित।

ल—पांसु-पांसुल, मांस-मांसल।

इल—पङ्क-पङ्किल, जटा-जटिल, तुन्द-तुन्दिल।

र—मुख-मुखर, मधु-मधुर।

ईय—देश-देशीय, राजन् (क्) + ईय—राजकीय।

इय—यज्ञ-यज्ञिय, राष्ट्र-राष्ट्रिय ।

ईन—कुल-कुलीन, ग्राम-ग्रामीण ।

इन—मल-मलिन ।

(ख) कुछ और विशेषण (Some other Adjectives)

भवत्-भवदीय, अस्मद्-मदीय, तद्-तदीय, युष्मद्-त्वदीय ।

लघु-लघिष्ठ, गुरु-गरिष्ठ, पाप-पापिष्ठ । श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, बलिष्ठ, कनिष्ठ । चिरन्तन, पुरातन ।

गुरुतर, गुरुतम । वृद्धतर, वृद्धतम । प्राचीनतर, प्राचीनतम । आदिम, मध्यम, अधम, अग्रिम, अन्तिम ।

[४] अव्यय (Indeclinables)

दा—एकदा, सर्वदा, सदा ।

त्र—कुत्र, अत्र, तत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, परत्र ।

था—सर्वथा, अन्यथा, उभयथा ।

चित्—किञ्चित्, कदाचित्, कुत्रचित् ।

शः—(शस्) क्रमशः, प्रायशः, अल्पशः ।

सात्—(साति)—भस्मसात्, भूमिसात् ।

तः (तस्)—फलतः, वस्तुतः, कार्यतः, यथार्थतः, स्वतः ।

विशेष्य से विशेषण और विशेषण से विशेष्य बनाना

एक प्रत्यय के स्थान में दूसरे प्रत्यय के लगाने से अथवा प्रत्ययों के जोड़ने या निकाल देने से विशेषण से विशेष्य या विशेष्य से विशेषण बन जाते हैं ।

कृदन्त से बने विशेष्य से विशेषण—भय-भीत, जय-जीत । गमन-गत, खेल-खिलाड़ी, डर-डरू, इत्यादि ।

कृदन्त से बने विशेषण से विशेष्य—हृत्-हरण, स्तम्भित-स्तम्भ, भूत-भाव, लड़ाका-लड़ाई, कुदक्कड़-कूद, इत्यादि ।

तद्धित से बने विशेष्य से विशेषण—दया-दयालु, समाज-सामाजिक, भारत-भारतीय, सोना-सुनहरा, पेट-पेटू, इत्यादि ।

तद्धित से बने विशेषण से विशेष्य--मायावी-माया, धनी-धन, पैसाहा-पैसा, ठंढा-ठंढ, भौगोलिक-भूगोल, इत्यादि।

नोट—विशेष्य से विशेष्य या विशेषण से भी विशेषण बनाते हैं। सर्वनाम, अव्यय और क्रिया भी अन्य शब्दभेदों से प्रत्ययों को मिलाकर बनाते हैं। (पीछे अव्यय का पूरा वर्णन इसी विषय पर है)।

पुँल्लिङ्ग विशेष्य से स्त्रीलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग विशेष्य से पुँलिङ्ग बनाना।

स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय—ई, इया, इन, नी, आइन, आनी, आ, इत्यादि।

स्त्रीलिङ्ग शब्द—देवी, नारी, घोड़ी,। कुतिया, बुढ़िया, बछिया। ग्वालिन, चमारिन, तेलिन, ऊँटिन, बाघिन, हंसिन, साँपिन,। ऊँटनी, सिंहनी, हथनी। चौबाइन, पंडाइन, ठकुराइन। ठकुरानी, खत्रानी, पंडितानी, देवरानी, ममानी, चचानी, जेठानी। पाठिका, बालिका, नायिका, इत्यादि।

☞ बोलचाल में 'लुहारिन, चमारिन, ममानी और चचानी' के बदले 'लोहाइन, चमाइन, मामी और चाची' की प्रधानता है।

नोट—(१) अनियमित—पिता-माता, बाप-मा, राजा-रानी, बैल या साँड़-गाय, भाई-भाभी या भौजाई, ससुर-सास, बेटा-पतोहू या बहू, दामाद-बेटी, मियाँ-बीबी, इत्यादि।

(२) कई शब्दों के पहले नर और मादा लगाकर पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग बनाते हैं। जैसे—नर खरगोश, मादा खरगोश।

पुँल्लिङ्ग प्रत्यय—ओई, आ, आव, इत्यादि।

पुँल्लिङ्ग शब्द—बहनोई, ननदोई। रंडा, भैंसा। बिलाव।

नोट—कतिपय अप्राणिवाचक स्त्रीलिङ्ग शब्दों में आ, अ और औटा प्रत्यय लगाने से पुँल्लिङ्ग शब्द बनते हैं। जैसे—पोथी-पोथा, गाड़ी-गाड़ा, लकड़ी-लकड़ा, अधन्नी-अधन्ना। गठरी-गट्ठड़, लिकड़ी-लक्कड़, टिकड़ा-टिक्कड़; सिल-सिलौटा, इत्यादि।

धातुज धातु (Verbs derived from roots)

(क) प्रेरणार्थक—

उठना-उठाना, उठवाना। समझना-समझाना, समझवाना। भूलना-भुलाना,

भुलवाना। लेटना-लिटाना, लेटाना-लिटवाना। गाना-गवाना। खेना-खिवाना। खोलना-खुलवाना। चुभना-चुभाना, चुभोना, चुभवाना। जीना-जिलाना, जिलवाना। खाना-खिलाना, खिलवाना। कहना-कहाना, कहलाना, कहलवाना। बैठना-बैठाना, बिठाना, बिठालना, बिठलवाना, बिठवाना। कटना-कटाना, कटवाना,। देना-दिलाना, दिलवाना।

(ख) अकर्मक से सकर्मक—

लदना-लादना, फँसना-फाँसना, घिरना-घेरना, फिरना-फेरना, फटना-फाड़ना, छूटना-छोड़ना, बिकना-बेचना, रहना-रखना।

(ग) इच्छार्थक—बकना-बकवासना, भूकना-भुकवासना।

(घ) संयुक्त क्रिया—

निश्चय—बोलउठना, लेचलना, मारबैठना, लेलेना। शक्ति—चलसकना, उठसकना, मारसकना। समाप्ति—कहचुकना, मारचुकना। नित्यता—(पौनःपुन्य)—जायाकरना, देखाकरना। तत्काल—कहडालना, कहदेना, दियेदेना। इच्छा—लिखाचाहना, जायाचाहना, गायाचाहना। आरम्भ—पढ़नेलगना, देनेलगना,। अवकाश—जानेपाना, जानेदेना। परतन्त्रता—लिखनापड़ना; उठनापड़ना। एकार्थ—समझनाबूझना, कूदनाफाँदना।

(ङ) अतिशयार्थक—जलना-जलजलाना; गोदना—गुदगुदाना।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे शब्दों से विशेषण बनाओ—

पढ़ना, बेचना, घटना, हँसना, खाना, भय, विद्या, पूजा, जीव, लघुत्व, स्थापना, जिज्ञासा, अर्पण, संयम, पिशाच, नीति, अभिमान, शोभा, अग्नि।

२. नीचे लिखे प्रत्येक शब्द से संज्ञा बनाओ—

चढ़ना, भूँजना, सठाना, बोलना, पीना, कतरना, कसना, तालव्य, वायवीय, दर्शनीय, गर्म, कल्पित, उजला, भूखा, घरैया, रसीला, वृद्ध।

३. नीचे लिखे शब्दों से अव्यय बनाओ—

बैठना, आना, यह, पहर, घर, कौन, एक, अन्य, भस्म, यथार्थ।

४. नीचे लिखे प्रत्येक शब्द से क्रिया बनाओ—

बैठना, फटना, भूकना, मारना, जाना, जलना, लाज, भीतर, चिकना, ढाल, छनछन, चपत।

५. लिङ्गपरिवर्त्तन करो—

घोड़ी, बूढ़ा, तेलिन, हाथी, खत्री, देवरानी, चाची, ससुर, खरगोश, गाय।

निम्नलिखित विशेषणों से विशेष्य और विशेष्यों से विशेषण बनाओ—

उदय, बलवान, लघु, जातीय, उपद्रवी, गौरव, संयोग, स्वर्ग, पीड़ित, कम्प, मिलित, सुन्दर, सुकुमार, मनोहर, पर्वतीय, विनय, सेना, उत्थान, खटाई, दर्शन, सुखकर, प्रसन्नता, आहार, लोभ, लाल, वायवीय, विस्मृत, कान्त, उज्ज्वल, क्षीण, गृहीत, महिमान्वित, अभिमान, पैशाचिक, सम्पूर्ण, आचार, ज्ञानशून्य, मतलब, मूर्त्ति, विश्वास, निर्दय, आनन्दित, उत्थित, अधिकृत, भरण, दान, लोभी, ज्ञान, बड़ा, फुर्तीला, मधुर, विश्वस्त, पाण्डु, भूख, पाक, फीका, मुक्ति, स्वप्न, काल, विज्ञ।

सामासिक शब्द (Compound Words)

तत्पुरुष—

जिस समस्त शब्द का अन्तिम खण्ड प्रधान हो उसमें तत्पुरुष समास रहता है। जैसे—राजमन्त्री ने पूजा की। गंगाजल लाओ। इन वाक्यों में राजमन्त्री और गंगाजल तत्पुरुष समास हैं।

तत्पुरुष सामासिक शब्द के पूर्वखण्ड में कर्तृवाच्य के कर्त्ता को छोड़ अन्य कारकों और सम्बन्ध के चिह्नों में से कोई एक चिह्न आता है। जैसे—तिलचट्टा (तेल को चाटनेवाला), शोकाकुल (शोक से आकुल), शरणागत (शरण को आया), बुद्धिहीन (बुद्धि से हीन), गंगाजल (गंगा का जल), आनन्दमग्न (आनन्द में मग्न)।

पूर्व खण्ड में कर्म के चिह्न रहने से द्वितीया, करण से तृतीया, सम्प्रदान से चतुर्थी, अपादान से पञ्चमी, सबन्ध से षष्ठी और अधिकरण से सप्तमी तत्पुरुष के सामासिक शब्द बनते हैं। इस प्रकार तत्पुरुष के ६ भेद होते हैं। जैसे—

द्वितीयातत्पुरुष—चिड़ीमार (चिड़िये को मारनेवाला), आँखफोड़ (आँख को फोड़नेवाला), तिलचट्टा (तेल को चाटनेवाला), पाकिटमार (पाकिट को मारनेवाला), गिरहकट (गिरह को काटनेवाला), मुँहतोड़ (मुँह को तोड़नेवाला), इत्यादि।

विस्मयापन्न (विस्मय को प्राप्त), गङ्गाप्राप्त (गंङ्गा को प्राप्त), देशगत (देश को गया हुआ), इत्यादि ।

तृतीयातत्पुरुष—मनगढ़न्त, मनमाना, गुनभरा, मदमाता, दइमारा, ढेंकीछाँटा, कपड़छन्न, इत्यादि ।

शोकाकुल, दुःखाहत, दुःखार्त, श्रीयुक्त, तुलसीकृत, ईश्वरदत्त, वाक्कलह कर्महीन, इत्यादि ।

चतुर्थीतत्पुरुष—ठकुरसुहाती, हथकड़ी, पनडब्बा, रसोईघर, डाकमहसूल, मालगुदाम, इत्यादि ।

देवोत्तर, कृष्णार्पण, पुत्रशोक, ब्राह्मणदेय, कुण्डलहिरण्य, पुत्रहित, इत्यादि ।

पञ्चमीतत्पुरुष—देशनिकाला, गुरुभाई, कामचोर, जन्मरोगी, मनचोर, इत्यादि ।

पदच्युत, ऋणमुक्त, पापमुक्त, विदेशागत, आकाशवाणी, जलजात, इत्यादि ।

षष्ठीतत्पुरुष—लखपती, दनौरी, तिलौरी, दुधहर, दहेड़ी, ध्यानधरना, रेलकुली, चाय-बागान, इत्यादि ।

गङ्गाजल, देवालय, वैश्यकुल, इत्यादि ।

सप्तमीतत्पुरुष—आपबीती, मनमौज, कानाफूसी, घरवास, कामआना, पाँवपड़ना, राहचलना, इत्यादि ।

कर्मपटु, पुरुषोत्तम, नराधम, जलमग्न, शास्त्र-प्रवीण, इत्यादि ।

उपपद—उपपद तत्पुरुष समास कृत् प्रत्ययों के साथ होता है और यह क्रियापद के साथ चलता है । जैसे—

तिलचट्टा, कठफोड़वा, पथरकट, भुईँफोड़, अँखफोड़, इत्यादि ।

कुम्भकार, पादप, गृहस्थ, पंकज, साहित्यकार, करद, भूचर, जलचर, इत्यादि ।

अलुक्—यदि अधिकरण तत्पुरुषसमास में पूर्वपद की विभक्ति का लोप न होवे तो वह अलुक् तत्पुरुष होता है । जैसे—

सरसिज, मनसिज, खेचर, इत्यादि ।

प्रादिसमास—जिस तत्पुरुष के आदि में प्र, परा आदि उपसर्ग और अंत में कृदन्तपद हो वह प्रादिसमास कहलाता है । जैसे—

प्रताप, अनुताप, उच्छृंखल, उद्वेल, अभिमुख, उन्निद्र, इत्यादि ।

नित्यसमास—जिस समास में विपरीत क्रम से काम लिया जाय उसमें नित्य समास होता है। इसके समस्त पदों में प्रायः 'अर्थ' या 'अन्तर' लगा रहता है। पाणिनि व्याकरण में इसका नाम मयूर-व्यंसक भी है। जैसे—

दर्शनार्थ, पठनार्थ, मृगयार्थ, पाठान्तर, विषयान्तर, जन्मान्तर, देशान्तर, तन्मात्र, दर्शनमात्र, अनलसंकाश, दुग्धफेननिभ, मयूरव्यंसक, अपिंगल, इत्यादि।

कर्मधारय—

तत्पुरुष के जिस समस्त शब्द में विशेष्य-विशेषण या उपमान-उपमेय का बोध हो उसमें कर्मधारय समास रहता है। जैसे—परम है जो आत्मा = परमात्मा। दीर्घ है जो आकार = दीर्घाकार। कमल की उपमावाला है जो नयन (या कमलस्वरूप नयन या कमलवत् नयन) = कमलनयन। * चन्द्र की उपमावाला है जो मुख (या चन्द्र-सा मुख) = चन्द्रमुख। छोटा है जो भैया = छुटभैया। फूली हुई है जो बरी = फुलौरी। पकी हुई है जो बरी = पकौड़ी।

कर्मधारय को समानाधिकरण तत्पुरुष भी कहते हैं। कर्मधारय के समस्तपद या तो विशेषणपूर्वपद (जैसे, पीताम्बर, मँझधार), विशेषोभयपद (जैसे, श्यामसुन्दर, खटमिट्ठा), या विशेषणोत्तर पद (जैसे, घननील, सिलबट्टा), होते हैं।

सुप् सुपा (सह सुपा)—

विभक्तियुक्त पद को सुप् कहते हैं। एक सुप् के साथ और एक सुप् का समास सुप्सुपा या सहसुपा समास कहलाता है। जैसे—

पूर्वरात्र, भूतपूर्व, एकीकरण, भस्मीभूत, प्रत्यक्षीभूत, यंत्रीकरण, पूंजीभूत इत्यादि।

'क्त' प्रत्ययान्त—

'क्त' प्रत्ययान्त से बने दो विशेषण पदों का समस्तपद भी कर्मधारय के अन्तर्भुक्त हैं। जैसे—गतागत, सुप्तोत्थित, स्नातानुलिप्त, दत्तापहृत, इत्यादि।

मध्यपदलोपी—

जिस कर्मधारय समास में पूर्वपद को उत्तरपद से सम्बन्ध स्थापित

---

* उपमा के शब्द अन्त में भी रहते हैं। जैसे—चरणकमल।

करनेवाला पद या शब्द लुप्त रहे उसे मध्यपदलोपी कहते हैं। पाणिनि में इसका शाकपार्थिव नाम है। जैसे—

शाकपार्थिव (शाकप्रिय राजा), रजतकङ्कण (रजतनिर्मित कङ्कण), भिक्षान्न, पलान्न (मांस मिश्रित अन्न, पुलाव),

गोबरगणेश, फुलौड़ी, गुड़म्बा, डाकगाड़ी, वनमानुष, इत्यादि।

उपमान *—

यदि उपमेय में उपमान के गुण वर्त्तमान हों तो वहाँ उपमान कर्मधारय समास होता है। जैसे—

चन्द्रमुख (चन्द्र के समान मुख), वज्रकठोर, इत्यादि (उपमानपूर्वपद),

चरणकमल (कमल के समान चरण), पाणिपल्लव, इत्यादि (उपमान उत्तरपद)।

रूपक—

यदि समस्त पद में अभिन्नता मानकर समास समझें तो वहाँ रूपक कर्मधारय होता है। जैसे—

भक्तिसुधा (भक्तिरूपी सुधा), वचनामृत, विद्याधन, इत्यादि।

कीरतधजा, ज्ञानजोत, इत्यादि।

उपमित

जब उपमेय के साथ उपमानपद का समास करते हैं तब उपमित कर्मधारय होता है। जैसे—करपल्लव, चरणकमल, मुखचन्द्र, राजर्षि, नरसिंह, इत्यादि।

द्विगु—

कर्मधारय समास के जिस समस्त शब्द का पूर्वखण्ड संख्यावाचक हो उसमें द्विगु समास रहता है। जैसे—पाँच हैं जो तत्व, उनका समूह = पञ्चतत्व। चार हैं जो वर्ण = चतुर्वर्ण। इसी प्रकार त्रिभुवन, त्रिरात्र, पञ्चरात्र, पञ्चपात्र, त्रिफला, चौमुहानी, चौहद्दी, तिहाई, चौपाई, दुअन्नी, चौअन्नी, अठन्नी, चौकोनी, तिकोनी, इत्यादि।

तद्धितार्थ[१], समाहार[२] (समुदाय) और उत्तरपद प्रधान[3] के विचार से द्विगुसमास के भेद हैं। जैसे—

१. द्विगु (दो गायों के बदले खरीदा हुआ), पञ्चगु, शतगु, अष्टगु, इत्यादि।

---

* उपमा के शब्द को उपमान और जिसको उपमा दे उसे उपमेय कहते हैं।

२. त्रिफला (तीन फलों का समुदाय), शताब्दी, नवरत्न, त्रिमूर्ति, पञ्चपात्र, इत्यादि ।

चौमास, सतरंगी, पंसेरी, चौराहा, चौबटिया, इत्यादि ।

३. चौबीस हस्तप्रमाण, त्रिमासजात,

बहुव्रीहि—

जिस समस्त शब्द का कोई खण्ड प्रधान न हो, बल्कि बाहर से आकर कोई विशेष अर्थ प्रधान हो जाय, उसमें बहुव्रीहि समास होता है। जैसे—चक्रपाणि (चक्र है पाणि में जिनके = विष्णु), चन्द्रशेखर (चन्द्र है शेखर पर जिनके = महादेव), चन्द्रचूड़ (चन्द्र है चूड़ा पर जिनके = महादेव), चतुर्भुज (चार हैं भुजाएँ जिनकी = विष्णु), पीताम्बर (पीला है वस्त्र जिनका = विष्णु), चन्द्रमुखी (चन्द्र-सा मुख है जिसका, वह स्त्री), इत्यादि ।

समानाधिकरण[१], व्याधिकरण[२], मध्यपदलोपी[३], संख्या[४], व्यतिहार[५], तुल्ययोग[६] इत्यादि बहुव्रीहि के भेद हैं। निपातन से सिद्ध होनेवाले मयूरव्यंसक[७] आदि भी इस समास में हैं।

विशेष्य-विशेषण या उपमान-उपमेय से बने समस्त शब्दों में समानाधिकरण और केवल विशेष्य शब्दों से बने समस्त शब्दों में व्यधिकरण बहुव्रीहि समास होता है। व्यधिकरण के दोनों पदों में भिन्न-भिन्न विभक्तियाँ लगी रहती हैं। विग्रह में दिखाई देनेवाले मध्यपद का लोप मध्यपदलोपी बहुव्रीहि में होता है। संख्या बहुव्रीहि के पूर्व पद में संख्यावाचक शब्द रहता है। व्यतिहार में शब्द की पुनरुक्ति से समास होता है, इसके प्रयोग में परस्पर सापेक्ष क्रिया लगती है। तुल्ययोगे बहुव्रीहि के पूर्वपद में 'साथ' अर्थ का शब्द लगा रहता है और समस्त पद का उपयोग अव्ययवत् होता है। जैसे—

१. पीताम्बर (पीला है वस्त्र जिनका विष्णु), नीलकण्ठ (शिव), सिरकटा, इत्यादि ।

२. चक्रपाणि (चक्र है पाणि में जिनके, विष्णु), पद्मनाभ, चन्द्रशेखर, चन्द्रचूड़, पतझड़, इत्यादि ।

३. मृगाक्षी (हरिण की आँखों के समान आँखें हैं जिस स्त्री की), चन्द्रमुखी, इत्यादि ।

४. दशानन, षड़ानन, सहस्राक्ष, इत्यादि ।

५. मुष्टामुष्टि, लाठालाठी, कानाकानी, इत्यादि ।

६. सानुरोध (अनुरोध के साथ वर्त्तमान,), सकुशल, सविनय, इत्यादि ।

नोट—मयूरव्यंसक आदि—अकिञ्चन, चिन्मात्र, इत्यादि ।

नोट—कई समस्त शब्द 'कर्मधारय' और 'बहुव्रीहि' दोनों में आते हैं । **जैसे—**

पीताम्बर { पीला है जो वस्त्र (कर्मधारय)
पीला है वस्त्र जिनका = विष्णु (बहुव्रीहि)

चतुर्भुज { चार हैं भुजाएँ (कर्मधारय का भेद द्विगु)
चार हैं भुजाएँ जिनकी = विष्णु (बहुव्रीहि)

द्वन्द्व—

जिस समस्त शब्द के सब खण्ड प्रधान हों उसमें द्वन्द्व समास रहता है । समास होने पर बीच का योजक अव्यय लुप्त हो जाता है । जैसे—गौरी की और शङ्कर की = गौरीशङ्कर की । मन से, कर्म से और वचन से = मनकर्म-वचन से । इसी प्रकार लोटा-डोरी, भात-दाल, हाथी-घोड़ा, छत्तीस (छः और तीस), चौबीस, पढ़ना-लिखना, आना-जाना, खाना-पीना, इत्यादि ।

द्वन्द्व के भेदों में इतरेतर[१], समाहार[२] और एकशेष[३] की गणना है । जैसे—

१. सीताराम, हरिहर, बहुबेटी, भाईबहन, आना-जाना, इत्यादि ।

२. पाणिपाद, गंगाशोण, देव-पितर, हाथ-पाँव, रुपया-पैसा, इत्यादि ।

३. दम्पति, इत्यादि ।

अव्ययीभाव—

जिस समस्त शब्द से अव्यय का बोध हो अर्थात् जिसका रूप, लिङ्ग, वचन आदि के कारण कभी नहीं बदले, उसमें अव्ययीभाव समास होता

है। * जैसे—यथाशक्ति, प्रतिदिन, अनुरूप, आसमुद्र, हाथोहाथ, बारबार, पहलेपहल, एकाएक, हररोज, रोजां†, रातोरात, अनजाने, अनपूछे, इत्यादि।

अव्ययीभाव समास का प्रयोग कई अर्थों में होता है। जैसे—

१. अतिकष्ट, अतिहिम, इत्यादि (अति अर्थ में); २. निरुपद्रव, दुर्भिक्ष, निर्विघ्न, इत्यादि (अभाव अर्थ में), ३. अतिहर्ष, अतिनिद्र, इत्यादि (असम्प्रति अर्थ में), ४. यथोचित, यथार्थ, यथाशक्ति, यथासाध्य, इत्यादि (अनतिक्रम अर्थ में), ५. उपकूल, उपनगर, उपगृह, इत्यादि (सामिप्य अर्थ में), उपद्वीप, उपसागर, प्रतिमूर्ति, प्रतिबिम्ब, प्रतिफल, इत्यादि (सादृश्य अर्थ में), अनुगमन, अनुधावन, अनुरथ, इत्यादि (पश्चात् अर्थ में), आमरण, आसमुद्र, इत्यादि (पर्यन्त अर्थ में) अनुक्षण, रोज, इत्यादि (पौनःपुन्य अर्थ में), अनुरूप, अनुकूल, इत्यादि (योग्यता अर्थ में), प्रतिदिन, प्रतिगृह, इत्यादि (वीप्सा अर्थ में) अधिगृह, अधिहरि (विभक्ति अर्थ में), इत्यादि।

नञ् समास—

निषेधार्थक—'न' शब्द के योग में जब समास होता है तब उसे नञ् समास कहते हैं। जैसे— नहीं जो अन्त = अनन्त, वा नहीं है अन्त जिसका वह = अनन्त, नहीं है नाथ जिसका वह = अनाथ।

संस्कृत के ऐसे सामासिक शब्द का उत्तर खण्ड यदि स्वर से आरम्भ हो तो न का 'अन्' और यदि व्यञ्जन से हो तो न का 'अ' हो जाता है। जैसे—अनन्त, अनादि, अनाथ, अचेतन, इत्यादि।

नीचे लिखे शब्दों में भी नञ् समास है—अपवित्र, अछूता, अनादर, अनसुना, निकम्मा, नाखुश, अनपढ़, अजान, नाराज, अनजान, इत्यादि।

नोट—(१) द्वन्द्व समास के अन्त में आनेवाले निशा और रात्रि शब्दों के अन्तिम स्वर अ से बदल जाते हैं। तत्पुरुष के उत्तरपद 'राजन्', 'सखि' और 'अहन्' को राज, सख और अह से बदल देते हैं। जैसे—अहर्निश, अहोरात्र, दिवारात्र, महाराज, प्रियसखा, सप्ताह, इत्यादि।

(२) 'महत्' बहुव्रीहि और कर्मधारय में 'महा' से बदल जाता है। 'दास'

---

* जब दो शब्द मिलकर अव्यय हो जायँ, अर्थात् उनका रूप विभक्तियों में न बदले तब ऐसे समास को अव्ययीभाव कहते हैं। —पं० रामावतार शर्मा।

† बदले हँसने के रोज रोता था—पं० केशवराम भट्ट।

शब्द के पूर्व काली, षष्ठी इत्यादि के अन्त्य स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाते हैं। समास में पूर्वपद के न का लोप हो जाता है। जैसे—महाजन, महाबाहु, महद्भुज (षष्ठी तत्पु०), कालिदास, षष्ठिदास, गुणिगण। महात्मागण, राजागण, हस्तिगण, राजवंश।

(३) बहुतेरे संस्कृत तथा कुछ अन्य भाषाओं के समस्त-शब्द अपभ्रंश होकर हिन्दी में आये हैं। उनके अर्थ मूलरूपों में परिवर्त्तन करने ही पर स्पष्ट होते हैं। जैसे—अट्ठाबकर (अष्टावक्र), सौत (सपत्नी), सलोना (सलवण), बादल (वारिद), कहार (स्कन्धधार), सोना (सुवर्ण), सवा (सपाद), साढ़े (सार्द्ध), पौन (पादोन), हथसार (हाथीशाला = हस्तिशाला), भनसार (भानसशाला = महानसशाला), कंसार (कान्दुशाला), इत्यादि।

(४) संस्कृत नियमों से बने कतिपय समस्त शब्द जो हिन्दी में आये हैं। जैसे—घृतान्न, अर्थ, अहर्निश, अहोरात्र, वाचस्पति, सरजिस, मनसिज, नवागत, सुखसुप्त, एकाह, सप्ताह, ग्रामान्तर, निर्भीक, अन्यमनस्क, सस्त्रीक, सदय, समय, सुपुत्र, चञ्चलाक्ष, कुक्कुटाक्ष, पुण्डरीकाक्ष, कमलाक्षी, चञ्चलाक्षी, शरचापहस्त, आबालवृद्धवनिता, यावज्जीवन, प्रत्यक्ष, समक्ष, परोक्ष, त्रिलोकी, सपत्नी, सोदर, सहोदर, नृप, कुञ्जर, मद्यपायी, मिष्टभाषी, नष्टप्राय, नेत्रपथ, कापुरुष, कदन्न, दम्पति, अश्रुतपूर्व, वीरकेशरी, इत्यादि।

चलित हिन्दी में प्रयुक्त कतिपय समस्त शब्द—

जलखई, चिड़ीमार, गिरहकट, कठफोड़वा, मनगढ़ंत, कपड़छन, ढेंकीछाँटा, मालगोदाम, ठकुरसुहाती, टिकटघर, देशनिकाला, कामचोर, मनरोग, गछपका, जेलदारोगा, बन्दरनाच, बेलपात, चायबागान, आपबीती, मनमौज, कानाफूसी, अधूरा, अनभल, गछचढ़ा, भुँइभोड़, पथरकट, मँझधार, खासमहल, मोटापतला, सिलबट्टा, पकौड़ी, जीवनबीमा, डाकगाड़ी, आमदरबार, छमाही, नौरंगी, चौअन्नी, अधमन्ना, तेपहर, हाट-बाजार, घरबाहर, सागपात, पतझड़, इत्यादि।

अभ्यास (Exsrcise)

१. 'पीताम्बर, और 'चतुर्भुज' में कौन-कौन समास हैं? समझाओ।

२. नीचे लिखे समस्त शब्दों में समास बताओ और विग्रह करो—

हाथोहाथ, अनपढ़, सीताराम, चन्द्रमुख, चौकोन, दुपहर, शरणागत, चाल-चलन, पङ्कज, चौंतीस।

सहचर शब्द

(Correlative terms)

सहचर शब्द द्वन्द्व समास से बनते हैं। ये प्रायः तीन प्रकार के होते हैं—विपरीतार्थबोधक, प्रायः एकार्थबोधक और सजातीय।

विपरीतार्थबोधक सहचर शब्द—

(Antonyms correlated)

अग्र-पश्चात्, भद्राभद्र, आय-व्यय, जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य, जय-पराजय, धर्माधर्म, जीवन-मरण, जल-थल, दोष-गुण, आकाश-पाताल, स्वर्ग-नरक, हर्ष-विषाद, रात-दिन, हिताहित, इत्यादि।

प्रायः एकार्थबोधक सहचर शब्द—

(Words almost of the same meaning correlated)

मान-मर्यादा, बल-विक्रम, बल-वीर्य, क्रिया-कर्म, आमोद-प्रमोद, तर्क-वितर्क, दीन-दुःखी, श्रद्धा-भक्ति, जीव-जन्तु, सेवा-सुश्रूषा, मणि-माणिक्य, धन-दौलत, हँसी-खुशी, हाट-बाजार, चाल-चलन, इत्यादि।

सजातीय सहचर शब्द—

(Words of the same group correlated)

वर-कन्या, आहार-विहार, अन्न-वस्त्र, रीति-नीति, फल-फूल, अस्त्र-शस्त्र, हाथ-पाँव, कागज-कलम, नाम-धाम, साज-बाज, दूध-दही, बाजा-गाजा, धूम-धड़का, इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

(१) शून्य स्थानों को पूर्ण करके सहचर शब्द बनाओ—

हृष्ट-, अंग-, आकार-, लज्जा-, आचार-, काट-, मामला-, घर-, आमोद-, बन्धु-, मान-, जन-, सुख-, देश-, धनी-, हँसी-।

द्विरुक्ति (Words Repeated)

द्विरुक्ति भी रचना का एक अङ्ग है। कभी द्विरुक्ति के दोनों खंड एक-से होते हैं और कभी कुछ विकृत। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

वर-घर, वन-वन, राम ही राम, मन ही मन, दल के दल, हाथोंहाथ, कानोंकान, बातोंबात, मीठे-मीठे, एक-एक, दो-दो, दोनों-के-दोनों, एक सौ पाँच-पाँच, दो हजार चार सौ तीन-तीन, पौने दो-दो, सवा तीन-तीन, साढ़े चार-चार, सवा-सवा, डेढ़-डेढ़, ढाई-ढाई, दो रुपये चार आने एक-एक पाई, पाँच मन दो-दो सेर, तीन दिन चार घण्टे चार-चार मिनट, दो महीने पाँच-पाँच दिन, तीन वर्ष चार-चार महीने, रो-रो, जब-जब, पी-पी, होते-होते, रगड़ते-रगड़ते, तब-तब, नये-नये, ला-लाकर, इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

१. द्विरुक्ति बनाओ—

एक रुपया सात आने। दो महीने तीन दिन। पौने तीन। बात में। घर पर। तीन अच्छे आम। सात मन तीन सेर दो छटाँक।

उपसर्ग [Prefix]

उपसर्ग शब्दों के पूर्व में मिलकर उनके अर्थ बदल देते हैं। जैसे—यश-अपयश, गुण-अवगुण, जय-पराजय, योग-वियोग, इत्यादि।

(१) संस्कृत के बीस उपसर्ग हैं। इनके प्रधान अर्थ या भाव उदाहरण सहित आगे लिखे जाते हैं—

प्र — अतिशय, उत्कर्ष, गति, यश, उत्पत्ति और व्यवहार आदि का प्रकाशक है। जैसे—प्रबल, प्रणाम, प्रताप, प्रसिद्ध, इत्यादि।

परा—विपरीत, नाश और अनादर आदि का प्रकाशक है। जैसे—पराजय, पराभव, पराधीन, इत्यादि।

सम—सहित और उत्तमता आदि का प्रकाशक है। जैसे—सन्तुष्ट, सम्बन्ध, सम्मुख, संस्कार, संस्कृत, इत्यादि।

अप—हीनता, लघुता, आदि का प्रकाशक है। जैसे—अपयश, अपवाद, अपशब्द, अपमान, अपकार, इत्यादि।

अनु—सादृश्य, पश्चात् और क्रम आदि का प्रकाशक है। जैसे—अनुरूप, अनुगामी, अनुचर, अनुपात, इत्यादि।

अव—अनादर, अंश और हीनता आदि का प्रकाशक है। जैसे—अवज्ञा, अवगुण, अवनति, अवतार, इत्यादि।

निर्—निषेध और रहित आदि का प्रकाशक है। जैसे—निर्दोष, निराकार, निर्जीव, निर्भय, निर्धन, इत्यादि।

दुर्—कठिनता, दुष्टता, निन्दा और हीनता आदि का प्रकाशक है। जैसे—दुर्गम, दुर्जन, दुर्दशा, दुर्बुद्धि, दुर्मति, इत्यादि।

अभि—अधिकता और इच्छा आदि का प्रकाशक है। जैसे—अभिमत, अभिप्राय, अभिमान, इत्यादि।

वि—भिन्नता, हीनता, असमानता और विशेषता आदि का प्रकाशक है। जैसे—वियोग, विकार, विवरण, विशेष, विलक्षण, इत्यादि।

अधि—प्रधानता, समीपता और उपरिभाव आदि का प्रकाशक है। जैसे—अधिराज, अधिपति, अध्यक्ष, अधिकार, इत्यादि।

सु—उत्तमता, सुगमता और श्रेष्ठता आदि का प्रकाशक है। जैसे—सुजाति, सुगम, सुथरा, सुजन, सुलभ, इत्यादि।

उत्—उच्चता और उत्कर्ष आदि का प्रकाशक है। जैसे—उदय, उद्गम, उदाहरण, उत्पत्ति, इत्यादि।

अति—अतिशय और उत्कर्ष आदि का प्रकाशक है। जैसे—अतिकाल, अतिभाव, अतिगुप्त, इत्यादि।

नि—बहुत और निषेध आदि का प्रकाशक है। जैसे—निरोध, निवारण, निषेध, नियोग इत्यादि।

प्रति—प्रत्येक, बराबरी, विरोध और परिवर्त्तन आदि का प्रकाशक है। जैसे—प्रतिदिन, प्रतिशब्द, प्रतिवादी, इत्यादि।

परि—सर्वतोभाव, अतिशय और त्याग इत्यादि का प्रकाशक है। जैसे—परिपूर्ण, परिजन, परितोष, परिच्छेद, इत्यादि।

अपि—निश्चय और छिपाव आदि का प्रकाशक है। जैसे—अपिधान।

उप—समीपता, लघुता और सहायक आदि का प्रकाशक है। जैसे—उपवन, उपग्रह, उपकार, इत्यादि।

आ—सीमा, ग्रहण, विरोध, चढ़ाव, खिंचाव आदि का प्रकाशक है। जैसे—आसमुद्र, आजन्म, आदान, आगमन, आरोहण, आकर्षण, इत्यादि।

ऊपर लिखे उपसर्गों के सिवा नीचे लिखे शब्दांश भी उपसर्गवत् आते हैं—

अ, अन्—निषेध और अभाव आदि के प्रकाशक हैं। जैसे—अपवित्र, अपयश, अनादि, अनन्त, इत्यादि।

कु—बुराई और नीचता का प्रकाशक है। जैसे—कुपुत्र, कुजाति, कुपात्र, कुयश, इत्यादि।

स—साथ, संयोग आदि का प्रकाशक है। जैसे—साकार, सप्रेम, सपत्नीक, इत्यादि।

सह—साथ, संगति आदि का प्रकाशक है। जैसे—सहगमन, सहयोगी, सहचर, इत्यादि।

(२) हिन्दी उपसर्ग (या संस्कृत के तद्भव उपसर्ग)

अ, अन—निषेध और अभाव के प्रकाशक हैं। जैसे—अतोल, अमोल, अजान, अपढ़, अनमिल, अनरीति, अनपढ़, इत्यादि।

अप—हीनता, लघुता आदि का प्रकाशक है। जैसे—अपशकुन, अपयश।

नि—निषेध और अभाव आदि का प्रकाशक है। जैसे—निकाम, निडर, निकम्मा, निगोड़ा, इत्यादि।

स (सु)—उत्तमता, साथ आदि का प्रकाशक है। जैसे—सपूत, सजग।

क (कु)—बुराई और नीचता आदि का प्रकाशक है। जैसे—कपूत, कुटेव, कुढङ्ग, कुखेत, इत्यादि।

वि—'बिना' का प्रकाशक है। जैसे—विचार।

औ (अव)—अनादर, हीनता आदि का प्रकाशक है। जैसे—औघट (अवघट), औगुन (अवगुण)।

दु (दुर्)—कठिनता, हीनता, नीचता आदि का प्रकाशक है। जैसे—दुबला, दुकाल।

(३) उर्दू के उपसर्ग—

ला, बे—अभाव अर्थ में आते हैं। जैसे—लाचार, लापरवाह, बेशक, बेकार, बेशुमार, बेलगान, बेकायदा, इत्यादि।

गैर—निषेध का अर्थ देता है। जैसे—गैरहाजिर, गैरमुमकिन, इत्यादि।

बद—हीनता का अर्थ देता है। जैसे—बदमाश, बदनाम, बदनसीब, बदसूरत, इत्यादि।

ब—अनुसार का अर्थ देता है। जैसे—बदस्तूर, बजिन्स, इत्यादि।

हर—प्रति का अर्थ देता है। जैसे—हररोज, हरघड़ी, इत्यादि।

बा—से का अर्थ देता है। जैसे—बाकलम, बाकायदा, इत्यादि।

ना—निषेध का अर्थ देता है। जैसे—नालायक, नासमझ, नाचीज, इत्यादि।

खुश—उत्तमता का सूचक है। जैसे—खुशदिल, खुशबू, इत्यादि।

दर—'में' का अर्थ देता है। जैसे—दरअसल, दरहकीकत इत्यादि।

कम—अल्प का सूचक है। जैसे—कमजोर, कमसिन, कमबख्त इत्यादि।

बिला—अभाव का अर्थ देता है। जैसे—बिलाशक, बिलाकसूर, इत्यादि।

फी—प्रत्येक का अर्थ देता है। जैसे—फीरुपया, फीगज, फीघर, इत्यादि।

हम—साथ का अर्थ देता है। जैसे—हमराही, हमउम्र, इत्यादि।

सर—प्रधानता का अर्थ देता है। जैसे—सरताज, सरदार, सरकार, इत्यादि।

नोट—(१) कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार उपसर्ग भी एक साथ आते हैं। जैसे—वि-विहार, वि+अव—व्यवहार, सु+वि+अव=सुव्यवहार, सम्+अभि+अव—समभिव्यवहार, इत्यादि।

(२) जिस भाषा के उपसर्ग हों उसी भाषा के शब्दों में उन्हें लाना उचित है।

अभ्यास (Exercise)

१. उपसर्ग शब्द क्या करता है?

२. नीचे लिखे शब्दों में जो उपसर्ग आये हैं, उनके अर्थ लिखो—

आगमन, परिपूर्ण, प्रत्युत्तर, कुपात्र, निषेध, विहार, अनुचर, प्रयोग, अवतार, दुर्जन, उत्पत्ति, अतोल, अपयश, सपूत, कपूत, बेशक, बदस्तूर ।

३. ऊपर लिखे शब्दों के अर्थ बतलाओ ।

प्रत्यय एवं उपसर्गवत् प्रयुक्त शब्द
(Words used as suffixes and prefixes)

(१) प्रत्ययवत् प्रयुक्त शब्द ।
(Words used as Suffixes)

—अन्वित—आश्चर्य्यान्वित, विस्मयान्वित, क्रोधान्वित ।

—आच्छन्न—शोकाच्छन्न, मेघाच्छन्न, तिमिराच्छन्न, मायाच्छन्न ।

—कर्म्म—शिल्पकर्म्म, कृषिकर्म्म, कुकर्म्म, अपकर्म्म, सत्कर्म्म, शुभकर्म्म ।

—चर—अनुचर, सहचर, खेचर, भूचर ।

—च्युत—पदच्युत, धर्म्मच्युत, राजच्युत, स्वर्गच्युत ।

—प्रिय—प्राणप्रिय, अप्रिय, ज्ञानप्रिय, सत्यप्रिय, शान्तिप्रिय, सुखप्रिय ।

—पति—पशुपति, श्रीपति, भूपति, नृपति, विश्वपति, रमापति, गणपति ।

—परायण—सत्यपरायण, न्यायपरायण, धर्म्मपरायण, ज्ञानपरायण ।

—भ्रष्ट—स्थानभ्रष्ट, धर्म्मभ्रष्ट, पथभ्रष्ट, तपोभ्रष्ट, आचारभ्रष्ट ।

—मुख—विमुख, पराङ्मुख, सम्मुख, सुमुख ।

—लोक—इहलोक, परलोक, गोलोक, त्रिलोक, सुरलोक, देवलोक ।

—रूप—अनुरूप, कुरूप, स्वरूप, विश्वरूप ।

—यात्रा - जीवनयात्रा, समुद्रयात्रा, रथयात्रा, डोलयात्रा ।

(२) उपसर्गवत् प्रयुक्त शब्द (Words used as prefixes)

धर्म्म—धर्म्मबुद्धि, धर्म्मज्ञान, धर्म्मशील, धर्म्मात्मा, धर्म्मभीरु, धर्म्मद्वेषी ।

अर्थ—अर्थविचार, अर्थकरी, अर्थगौरव, अर्थनीति, अर्थलोभ, अर्थव्यय, अर्थहीन, अर्थागम, अर्थबोधक ।

आत्म—आत्मगरिमा, आत्मघाती, आत्मचिन्ता, आत्मज्ञान, आत्मतत्व, आत्मत्याग, आत्मतृप्ति, आत्मदान, आत्मदोष, आत्मद्रोह, आत्मप्रशंसा, आत्मप्रसाद, आत्मविक्रय, आत्मविसर्जन, आत्मविस्मृत, आत्मनिर्भर, आत्मप्रतिष्ठा, आत्मरक्षा, आत्मशासन, आत्मश्लाघा, आत्मशुद्धि, आत्मसंयम, आत्मसमर्पण ।

कर्म्म—कर्म्मवीर, कर्म्मयोग, कर्म्मकाण्ड, कर्म्मभोग, कर्म्मफल, कर्म्मप्रिय, कर्म्मनाश, कर्मनिष्ठ, कर्म्मचारी, कर्म्मकुशल।

बल—बलवान्, बलशाली, बलहीन, बलविक्रम, बलप्रयोग, बलपूर्वक।

विश्व—विश्वप्रेम, विश्वपति, विश्वजित, विश्वकर्मा, विश्वव्यापी, विश्वविद्यालय, विश्वम्भर, विश्वनाथ, विश्वविख्यात, विश्वकोष।

राज—राजाज्ञा, राजकर, राजदण्ड राजद्रोह, राजधानी, राजगृह, राजनीति, राजपथ, राजभोग, राजलक्ष्मी, राजवंश, राजटीका, राजसूय, राजस्व, राजहंस, राजसभा, राजद्वार, राजसिंहासन, राजपुरुष, राजकार्य, राजकन्या, राजकुमार, राजघाट, राजदरबार।

लोक—लोकमत, लोकलज्जा, लोकनाथ, लोकप्रिय, लोकपाल, लोकापवाद, लोकनिन्दा।

सर्व—सर्वनाम, सर्वनाश, सर्वजन, सर्वग्रास, सर्वाधिकारी, सर्वसाधारण, सर्वमय, सर्वत्र, सर्वथा, सर्वदा, सर्वोपरि, सर्वानन्द, सर्वेश्वर।

अभ्यास (Exercise)

१. निम्नलिखित शब्दों में से प्रत्येक को प्रत्यय के समान व्यवहार करके यौगिक शब्द बनाओ—

अनुष्ठान, अन्तर, अवलम्बन, अर्थी, आगार, आलय, उचित, उत्तम, उदय, आत्मा, आर्त्त, आशय, आहत, कर, कार, कला, ग्रहण, गोचर, जय, वत्सल, वर्ग, भाजन, मण्डल, मात्रा, यात्रा, लोक, शाला, शाली।

२. निम्नलिखित शब्दों में से प्रत्येक को उपसर्ग के समान व्यवहार करके यौगिक शब्द बनाओ—

इति, सत्य, यथा, धर्म, जीवन, हिम, श्री।

तीसरा अध्याय

पद-संगठन (Structure of Parts of a Sentence)

ऊपर शब्दों के बनाने की रीतियाँ बताई गई हैं। उन्हीं बने हुए शब्दों और मूल शब्दों से संगठित वाक्यों के द्वारा हमलोग अपने मनोभाव को प्रकट करते हैं। वाक्यों में शब्दों की आकृतियाँ प्रायः कुछ-न-कुछ बदल जाती हैं।

'लड़का-झगड़ा-हट' तीनों शब्दों से कोई विशेष भाव नहीं निकलता। यदि हम कहें—'लड़के को झगड़े से हटाओ' तो इससे एक पूर्ण भाव निकलता है और उपर्युक्त शब्दों की आकृतियाँ भी बदल जाती हैं तथा साथ-साथ कुछ शब्दांश या चिह्न भी दीख पड़ते हैं, जिन्हें विभक्ति चिह्न कहते हैं। वाक्य के एक-एक अंश को पद कहते हैं। प्रत्येक पद में एक विभक्ति अवश्य रहती है। ऊपर के वाक्यों में तीन पद हैं—'लड़के को, झगड़े से, हटाओ' इन पदों में 'को' 'से' और 'आओ' विभक्तियाँ हैं।

संस्कृत के प्रत्येक पद में विभक्ति अवश्य दिखाई देती है, परन्तु हिन्दी के लिये यह बात नहीं है। हिन्दी के कई पदों में विभक्तियाँ नहीं दीख पड़तीं, परन्तु उनमें गुप्त रूप से वे अवश्य रहती हैं।

वाक्यों में पाँच प्रकार के पद होते हैं—संज्ञापद, सर्वनामपद, विशेषण-पद, क्रियापद और अव्ययपद। इन पदों की रचना व्याकरण की पुस्तकों में देखो। विस्तारभय से हमने यहाँ इनका वर्णन नहीं किया है। हाँ, लिङ्ग, वचन और कारक पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

लिङ्ग—

लिङ्ग उसे कहते हैं जिससे पुरुषत्व या स्त्रीत्व का ज्ञान हो। लिङ्ग दो हैं—पुँल्लिग और स्त्रीलिंग। पुरुषजातिबोधक शब्द पुँल्लिग और स्त्रीजातिबोधक शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे—घोड़ा (पुँल्लिग) और घोड़ी (स्त्रीलिङ्ग)।

वचन—

वचन उसे कहते हैं जिससे एकत्व या अनेकत्व का ज्ञान हो। जैसे—घोड़ा (एक)—घोड़े (अनेक), घोड़ी (एक)—घोड़ियाँ (अनेक)। वचन दो हैं—एकवचन और बहुवचन। शब्द के जिस रूप से एक पदार्थ का बोध हो, उसे एकवचन और जिससे एक से अधिक पदार्थों का बोध हो उसे बहुवचन कहते हैं। ऊपर के उदाहरणों में 'घोड़ा' और 'घोड़ी' एकवचन तथा 'घोड़े' और 'घोड़ियाँ' बहुवचन हैं।

बहुवचन के चिह्न 'ए, एँ, ओं, यों, ओ, यो और याँ' हैं।

कारक—

कारक उसे कहते हैं, जो क्रिया की उत्पत्ति में सहायक हो अर्थात्

जो किसी शब्द का सम्बन्ध क्रिया से बतावे। कारक ६ हैं—कर्त्ता, कर्म्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण।

नोट—सम्बन्ध और सम्बोधन का क्रिया के साथ सम्बन्ध नहीं है, इसलिये इन्हें संस्कृत के वैयाकरणों ने कारक नहीं माना है। भाषाभास्कर, भाषाप्रभाकर आदि पुस्तकों में ये कारक माने गये हैं।

जो काम करे उसे कर्त्ता १, जिसपर काम का फल हो उसे कर्म्म २, जिसके द्वारा काम हो उसे करण ३, जिसके लिये काम किया जाय उसे सम्प्रदान ४, जिससे कोई वस्तु अलग हो उसे अपादान ५ और आधार को अधिकरण ६ कहते हैं। जैसे—राम १ ने पाठशाला ६ में आलमारी ५ से मोहन ४ के लिये हाथ ३ से पुस्तक २ को निकाला।

कर्त्ता और कर्म्म दो-दो प्रकार के होते हैं—**प्रधान और अप्रधान।**

वाक्य में यदि क्रिया के लिङ्ग, वचन कर्त्ता के अनुसार हों तो उसका कर्त्ता प्रधान (उक्त) और कर्म्म अप्रधान (अनुक्त) होता है। जैसे—'राम पुस्तक पढ़ता है। सीता ग्रन्थ पढ़ती है।' इसी प्रकार वाक्य में यदि क्रिया के लिङ्ग, वचन, कर्त्ता के अनुसार न हों तो कर्म्म प्रधान (उक्त) और कर्त्ता अप्रधान (अनुक्त) होता है। जैसे—'राम ने पुस्तक पढ़ी। राम से पुस्तक पढ़ी गई।'

कर्मकारक सकर्मक क्रियाओं के साथ आता है। कई सकर्मक क्रियाएँ दो कर्म लेती हैं। जैसे—उसने **राम को ग्रन्थ** दिखाया। मैंने **उसको एक रीति** बताई। ऐसी क्रिया का एक कर्म वस्तुबोधक और दूसरा प्राणिबोधक होता है। वस्तुबोधक को मुख्य कर्म और प्राणिबोधक को गौण कर्म कहते हैं। 'कहना, पूछना, दुहना, जाँचना, पकाना' इत्यादि क्रियाओं के साथ अपादान कारक का चिह्न भी आता है। जैसे—मैं तुमसे (को) एक बात कहता हूँ। उसने आपसे (को) क्या पूछा? रसोइया चावल से भात पकाता है। दरिद्र धनी से धन जाँचता है। हम गाय से दूध दुहते हैं।

यदि किसी अकर्मक क्रिया के साथ उसीके धातु से बना हुआ या उससे मिलता-जुलता कोई कर्म आवे तो वह सजातीय कर्म कहलाता है। जैसे—राम प्रतिदिन एक लम्बी दौड़ दौड़ता है।

आधार तीन प्रकार के हैं—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक।

(१) औपश्लेषिक उस आधार को कहते हैं, जिसके किसी अवयव से संयोग हो। जैसे—वृक्ष पर पक्षी है। दरी पर बैठता है। वह घर में है। (२) वैषयिक वह आधार है जिससे विषय का बोध हो। जैसे—ईश्वर में मन लगा है। भोजन में चित्त लगा है। इन वाक्यों में मन का विषय ईश्वर और चित्त का विषय भोजन है। (३) अभिव्यापक वह आधार है, जिसमें आधेय सम्पूर्ण रूप से व्याप्त हो। जैसे—परमेश्वर सबमें हैं। तिल में तेल है।

कारक के चिह्न—

कर्त्ता—शून्य, ने, से।	सम्प्रदान—को।
कर्म—शून्य, को।	अपादान—से।
करण—से।	अधिकरण—में, पर।

नोट—(१) शून्य चिह्न से तात्पर्य चिह्नरहित का है।

(२) हेतु, द्वारा, कारण, पूर्वक, करके इत्यादि से करण का; के लिये, के अर्थ, के निमित्त इत्यादि से सम्प्रदान का; और 'को' से कभी-कभी अधिकरण का अर्थ लेते हैं। जैसे—ज्ञान द्वारा सुख मिलता है। विद्यार्थी के लिये पुस्तक खरीदी। राम हाट (को) गया।

सम्बन्ध और सम्बोधन—

जो लगाव, स्वत्व या अपनापन का बोध करावे उसे सम्बन्धपद कहते हैं और जिसके साथ लगाव हो वह सम्बन्धी कहलाता है। जैसे—राम का बेटा, पीतल का लोटा। सम्बन्ध का चिह्न 'का' है।

किसीको पुकार या चिताकर अपनी ओर सावधान करने को सम्बोधन कहते हैं। जैसे—हे राम, दया करो। अरे लड़के, कहाँ जाते हो?

सम्बोधन के चिह्न 'हे', 'अरे' इत्यादि हैं।

अभ्यास (Exercise)

१. कारक कितने हैं? प्रत्येक की परिभाषा लिखो। २. 'सम्बन्ध' और 'सम्बोधन' कारक हैं या नहीं? कारण बताओ। ३. 'से' और 'को' किन कारकों के चिह्न हैं? उदाहरण दो। ४. आधार कितने प्रकार के हैं? उदाहरण दो। ५. गौणकर्म किस कारक में रहता है? उदाहरण दो।

शब्द-प्रयोग (Uses of words)

बोलने और लिखने में केवल सार्थक शब्दों का व्यवहार होता है। कभी-कभी निरर्थक शब्दों का भी प्रयोग देखा जाता है। वे वाक्य की थोड़ी-सी शोभा बढ़ा देते हैं या कभी उनसे कोई अर्थ (जैसे—अनुकरण इत्यादि का) समझ लिया जाता है। जैसे—अरे राम, कुछ पानीवानी पिलाओगे या नहीं? क्या अल्लबल बकता है?

शब्द के अर्थ (Meaning of words)

किसी शब्द का अर्थ तीन प्रकार से करते हैं—प्रतिशब्द द्वारा; व्युत्पत्ति द्वारा और लक्षण या परिभाषा द्वारा।

१. प्रतिशब्द (Synonyms)

एक अर्थ के शब्द आपस में प्रतिशब्द कहलाते हैं। जैसे—'कमल, अब्ज, अम्बुज, अरविंद, उत्पल, कुवलय, कुमुद, कोकनद, तामरस, नीरज, पङ्कज, पद्म, राजीव, वारिज, शतदल, श्रीपर्ण, सरसिज, सरोज, नलिन, शतपत्र और सरोरुह'—ये शब्द आपस में प्रतिशब्द हैं।

जहाँ तक हो सके 'प्रतिशब्द' को शब्द से सरल तथा उसीकी श्रेणी में रखना चाहिये। विशेष्य का प्रतिशब्द विशेष्य होवे, विशेषण नहीं। इसी प्रकार विशेषण का प्रतिशब्द विशेषण होवे, विशेष्य नहीं। अतः, 'भानु' का प्रतिशब्द मार्तण्ड या भास्कर न देकर सूर्य देना उचित है। इसी प्रकार 'तृषित' का अर्थ प्यास न देकर 'प्यासा' देना चाहिये।

नोट—हमने यहाँ विस्तारभय से 'प्रतिशब्द' के उदाहरण छोड़ दिये हैं। इसके लिये कोषों का खूब व्यवहार करना चाहिये।

२. व्युत्पत्त्यर्थ (Etymological meaning)

प्रकृति-प्रत्यय के योग से और समास इत्यादि से जो अर्थ करते हैं, वह **व्युत्पत्त्यर्थ** है। यौगिक या योगरूढ़ शब्द का ऐसा अर्थ शीघ्र ही समझ में आ जाता है। जैसे—पाठक = पाठ करनेवाला, देवालय = देव (देवता) का आलय (घर), चक्रपाणि = चक्र है पाणि में जिनके अर्थात् विष्णु। तरंग उठती है जिसमें सो **तरंगिनी** (नदी), विष्णु हैं इष्टदेव जिसके सो **वैष्णव** इत्यादि।

३. लाक्षणिक या पारिभाषिक अर्थ (Implied meaning)

जिस शब्द का ठीक प्रतिशब्द नहीं मिलता, उसका लाक्षणिक अर्थ करते हैं। जैसे—अध्यवसाय = कई बार असफलता प्राप्त होने पर भी दृढ़ता से उसी कार्य में तत्पर रहना।

पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग साहित्य, विज्ञान, कला, इतिहास, भूगोल, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र इत्यादि में अधिकतर होता है। वे शब्द प्रायः तत्सम होते हैं। जैसे—समानाधिकरण, मध्याकर्षण, मनोविज्ञान, पुरातत्व, उपनिवेश, अन्तर्राष्ट्रीय, दर्शन, विनिमय इत्यादि।

नीचे लिखे शब्दों के प्रतिशब्द कोष से निकालकर मनन कर लो।

अग्नि, इन्द्र, सिद्धि (अष्ट), निधि (नव), इन्द्र, वायु, सूर्य, चन्द्र, नदी, पर्वत, पृथ्वी, रात्रि, सूर्यकिरण, चन्द्रकिरण, समुद्र, राक्षस, देवता, स्वर्ग, जल, वन, वृक्ष, गृह, कार्य, हाथी, अश्व, शूकर, शृगाल, सिंह, सेना इत्यादि।

सांकेतिक संख्यावाचक—

१ (चन्द, छिति), २ (कर, पक्ष, नेत्र), ३ (राम), ४ (वेद), ५ (बाण, शर) ६ (ऋतु, रस), ७ (मुनि, ऋषि, जलधि), ८ (वसु), ६ (निधि, नन्द, ग्रह), १० (दिक्), ११ (रुद्र), १२ (आदित्य, साध्य), १३ (विश्व), १४ (भुवन, रत्न), १६ (तिथि), १६ (कला), १७ (धन), १८ (पुराण), २५ (तत्त्व), २६ (तुषित), २७ (नक्षत्र), ३२ (दन्त), ४६ (अनिल)।

उदाहरण—संवत ग्रह[९] शशि[१] जलधि[७] छिति[१] छठ तिथिवासर चंद।
चैतमास पख कृष्ण में पूरण आनँदकंद।
(बिहारी सतसई की रचना १७१६ संवत में पूर्ण हुई)

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे वाक्यों के मोटे अक्षरों में छपे शब्दों से क्या अर्थ समझते हो ?

खाने के लिये **रोटी-ओटी** ले आओ। **जूता-ऊता** पहन कर तैयार हो जाओ। **अल्ल-बल्ल** मत बको।

२. नीचे लिखे शब्दों के प्रतिशब्द लिखो—

किरण, चन्द्र, जल, पृथ्वी, बिजली, भौंरा, मृत्यु, मेघ, राजा, रात, समुद्र, साँप, सूर्य, स्त्री, हाथी और सोना।

३. नीचे लिखे शब्दों के व्युत्पत्यर्थ लिखो—

विद्यालय, पाठशाला, पीताम्बर, चन्द्रमौलि, त्रिपुरारि, सुशीलता, प्रीतिपात्र, पुण्यवान्, नीरोग, सलोना, चन्द्रचूड़ और चौहद्दी।

४. नीचे लिखे शब्दों के पारिभाषिक अर्थ बताओ—

उद्योग, वाणिज्य, सूक्ष्मदर्शक यंत्र, त्रिभुज, सरौता।

कुछ एकार्थक शब्द और उनके अर्थभेद

(Distinction between synonymous terms)

प्रयोग के अनुसार शब्द के अर्थ पर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। बहुत-से एकार्थक शब्द हैं, जिनमें साधारण दृष्टि से कोई भेद नहीं जान पड़ता, परन्तु उनमें अर्थगत भेद अवश्य है। अतः अर्थगत भेद पर ध्यान रखकर शब्दव्यवहार करने से रचना की गम्भीरता बढ़ जाती है।

१. **अज्ञान**—स्वाभाविक बुद्धिरहित।

अनभिज्ञ—अभिज्ञता (तजरबा) रहित।

२. **अलौकिक**—जो लोक में दुर्लभ हो।

अस्वाभाविक—जो सृष्टि या मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध हो।

नोट—अलौकिक का अस्वाभाविक होना सम्भव है, परन्तु अस्वाभाविक अलौकिक नहीं हो सकता।

३. **अहङ्कार**—अपने को उचित से अधिक जानना।

अभिमान—प्रतिष्ठा में अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा समझना।

गर्व, दर्प—रूप, यौवन, कुल, विद्या और धन इत्यादि के कारण अभिमान प्रकाश करना और दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखना।

गौरव—अपनी महत्ता का यथार्थ ज्ञान।

दम्भ—किसी अयोग्य व्यक्ति का बाह्याडम्बर।

४. **अस्त्र**—ऐसा हथियार जो फेंककर चलाया जाता है। जैसे—तीर।

शस्त्र—ऐसा हथियार जो हाथ में रखकर चलाया जाता है। जैसे—तलवार।

५. **अज्ञ**—अनजान, जो कुछ न जाने।

मूर्ख—जड़-बुद्धि ।

मूढ़—वह व्यक्ति जिसकी समझ में यह न आता हो कि अब क्या करना चाहिये । जड़-बुद्धि ।

अनभिज्ञ—किसी बात से अपरिचित ।

६. आगत—आया हुआ ।

आगामी—आनेवाला ।

७. आधि—मानसिक कष्ट ।

व्याधि—शारीरिक कष्ट ।

८. उपकरण—वह सामग्री, जिसकी सहायता से कोई कार्य सिद्ध हो ।

जैसे—भोजन बनाने के लिये लकड़ी, आग, जल, पात्र इत्यादि ।

उपादान—वह सामग्री, जिससे कोई पदार्थ बने ।

जैसे—घड़ा बनाने के लिये—मिट्टी । नाव बनाने के लिये—काठ, लोहा ।

९. मुनि—धर्मादि का ज्ञानी, मौनव्रती ।

ऋषि—सत्यद्रष्टा, धर्मद्रष्टा, मन्त्रद्रष्टा ।

१०. कुल—एक जाति का (मानवकुल) ।

सार्थ—वणिक इत्यादि का दल (वणिकसार्थ) ।

यूथ—समूह (गजयूथ) ।

११. क्षमता—कार्य करने की शक्ति ।

प्रभाव—किसी व्यक्ति के ज्ञान, मान, धन इत्यादि का दूसरों पर होनेवाला परिणाम ।

१२. ज्ञानी—बुद्धिमान् ।

अभिज्ञ—अनुभवी ।

१३. तट—जलाशयादि का किनारा ।

पुलिन—जलसंलग्न किनारा ।

सैकत—बालूवाला किनारा ।

१४. दया—दूसरों के दुःख दूर करने की स्वाभाविक इच्छा ।

कृपा—छोटों के साथ की जानेवाली दया ।

सहानुभूति—दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझना, हमदर्दी ।

करुणा—वह दया जो किसीके दुःख से दुःखी होकर की जाय ।

१५. **प्रेम**—किसीके साथ निरपेक्ष स्वाभाविक अनुराग। अति पवित्र भाव-मिश्रित स्वर्गीय वस्तु।

वात्सल्य—सन्तान के प्रति माता-पिता का स्नेह।

श्रद्धा—किसी विशेषता के विचार से किसी के प्रति उत्पन्न आदर का भाव।

प्रीति—मन का मिलन (प्रीति की रीति सदा चलिआई—रामायण।)

भक्ति—पूज्यजनों के साथ अकपट अनुराग।

स्नेह—आशीर्वाद योग्य पात्रों (पुत्र, कन्या इत्यादि) के साथ अनुराग।

प्रणय—दाम्पत्य अनुराग। सख्य भावमिश्रित अनुराग (स्त्री, पुत्र, भ्राता, बन्धु, इत्यादि में)।

१६. **प्रणाम**—बड़ों के प्रति नम्रता।

नमस्कार—बराबरवालों के प्रति नम्रता।

अभिवादन—आत्मपरिचय देकर प्रणाम करना।

नमस्ते—सभी के लिये अभिवादन का प्रचलित शब्द।

१७. **पुत्र**—बेटा।

बालक—कोई लड़का।

१८. **बन्धु**—जो वियोग नहीं सह सके (अत्यागसहनो बन्धुः)।

सुहृद्—जो प्रेमी सदा सहमत रहे (सहैवानुमतः सुहृत्)।

मित्र—जिनकी क्रिया एक हो (एकक्रियं भवेन्मित्रम्)।

सखा—जिनके प्राण एक हों (समप्राणः सखा मतः)।

मीत—एक नामवाले (स्त्री० मीतिन)।

१९. **प्रमाद**—जानी हुई वस्तु में असावधानी के कारण होनेवाली भूल।

भ्रम—अज्ञात से होनेवाली भूल।

२०. **शोक**—वियोग का दुःख, चित्त की व्याकुलता।

दुःख—साधारण कष्ट, मानसिक पीड़ा।

व्यथा—किसी आघात के चलते जो पीड़ा हो।

वेदना—दुःख की वास्तविक अनुभूति, हार्दिक या मानसिक पीड़ा।

यन्त्रणा—असह्य दुःख का अनुभव।

यातना—आघात से उत्पन्न कष्टों की अनुभूति।

२१. **क्षोभ**—सफलता न मिलने पर मन का विकार।

खेद—निराश हो जाने पर मन का विकार।

विषाद—दुःख की हालत में कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विस्मृति।

२२. श्रम—शरीर की शक्ति लगाकर काम करना।

आयास—मन की शक्ति लगाना।

परिश्रम—श्रम की विशेषता।

उद्यम—अनवरत उद्योग।

प्रयास—विशेष कष्ट का अनुभव करते हुए कार्य-सम्पादन करना।

चेष्टा—किसी कार्य के सम्पादन की इच्छा।

२३. सम्राट्—राजाओं का राजा।

राजा—भूपति-मात्र।

२४. सेवा—देवताओं और गुरुजनों की टहल।

शुश्रूषा—दुःखित और रोगी व्यक्तियों की टहल।

२५. स्त्री—कोई स्त्री।

पत्नी—विवाहिता स्त्री।

२६. द्वेष—कारणवश दूसरों से शत्रुता या घृणा।

ईर्ष्या—दूसरों की सफलता देखकर जलना।

स्पर्द्धा—उन्नति में दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा।

हिंसा—जीव-हत्या या जीव-पीड़ा में प्रवृत्ति।

डाह—ईर्ष्या के चलते जलन।

२७. आयु—सम्पूर्ण जीवन की अवधि।

अवस्था—जन्म-काल से अबतक की उम्र।

वय—उम्र। वय विलोकि हिय होय हरासू—रामायण।

२८. अमूल्य—जिसका मूल्य न लग सके।

दुर्मूल्य—जो उचित मूल्य से कहीं अधिक मूल्य पर मिले।

बहुमूल्य—जिसका मूल्य बहुत हो।

अलभ्य—जो कठिनता से प्राप्त हो।

२९. आतंक—व्यापक भय।

भय—अनिष्ट की आशंका से मन में उत्पन्न होनेवाला विकार या भाव।

त्रास—किसी घटना, वस्तु या जीव से कष्ट पाने की भावना।

३० ग्लानि—किसी अपराध के चलते अपनी दशा देखकर मन में होने-वाला खेद।

संकोच—उस कार्य को प्रकट करने से हिचकिचाना जो नियम के विरुद्ध हो गया है।

लज्जा—वह मनोभाव जो स्वभावतः दूसरों के सामने सिर उठाने या बोलने नहीं देता।

व्रीडा—वह स्वाभाविक बाधा जो सुन्दर कार्य करने पर भी किसीके आगे उसे प्रकट करने से रोकती है।

३१. निन्दा—सच्चा अवगुण बतलाना।

अपवाद—झूठमूठ दोष लगना।

कलंक—कुसंग के चलते चरित्र पर दोष लगना।

अपयश—स्थायी दोषी बन जाना।

३२. मंत्रणा—गुप्तरूप से किसी काम में सलाह-विचार।

परामर्श—आगे-पीछे खूब सोच-समझकर किसीको अपनी राय देना।

३३. महाशय—सभी के लिये इसका प्रयोग है।

महोदय—
महानुभाव— } अपने से बड़ों के लिये लिखते हैं।

३४. इच्छा—किसी भी वस्तु की इच्छा।

कामना—किसी विशेष वस्तु की कामना।

संकल्प—किसी कार्य के सम्पादन या किसी वस्तु की प्राप्ति का दृढ़ निश्चय।

३५. प्रार्थना—विनय या प्रार्थना से दीन भाव प्रकट होता है।

अनुरोध—बराबर वालों के लिये अनुरोध का प्रयोग होता है।

३६. अपराध—राजनैतिक या सामाजिक नियम का उल्लंघन।

पाप—नैतिक या धार्मिक नियम का उल्लंघन।

३७. आचार—१. साधारण चाल-चलन, २. रीति-व्यवहार।

व्यवहार—वर्त्ताव। सामाजिक सम्बन्धों में औरों के साथ किया जाने वाला आचरण।

नोट—न, नहीं और मत; परन्तु-किन्तु के लिये अव्यय-प्रकरण देखिये।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे प्रत्येक शब्दयुगल में परस्पर क्या भेद है ?

कीर्त्ति-यश, नमस्कार-प्रणाम, आधि-व्याधि, कृपा-करुणा, दर्शन-पर्यवेक्षण, रीति-नीति, पुस्तक-पुस्तिका, भाषा-बोली, आशंका-सन्देह, आयु-अवस्था, बैठक-अधिवेशन ।

२. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

बाण एक शस्त्र का नाम है । महावीर ने भगवान् को स्नेह के साथ नमस्कार किया । भगवान् सारे संसार को भक्तिपूर्वक पालता है । मुरा के बालक चन्द्रगुप्त भारत के राजा थे । इस नगर में हैजा फैलने का संदेह है । दादू जाति के मोची थे, इसमें आशंका है । बुद्धदेव ने ८० वर्ष की अवस्था पाई । पटना जिले की भाषा मगही है । भारत के सभी प्रान्तों में हिन्दी लिपि का प्रचार बढ़ रहा है । नायकम् को देवनागरी भाषा का ज्ञान है ।

श्रुतिसम भिन्नार्थक शब्द (Paronyms)

कई शब्द ऐसे हैं जिनके उच्चारण प्रायः एक-से हैं, परन्तु अर्थ एक नहीं । नीचे थोड़े-से ऐसे शब्द दिये जाते हैं—

अभिराम (सुन्दर)—अविराम (बिना विश्राम) । अंश (भाग)—अंस (स्कन्ध) । अणु (कण)—अनु (उपसर्ग) । इति (समाप्त)—ईति (शस्यविघ्न) । कुल (वंश)—कूल (तीर) । कृत (किया हुआ)—क्रीत (खरीदा हुआ) । केसर (सिंह की गर्दन पर का बाल)—केशर (कुंकुम) । चिर (दीर्घ)—चीर (वस्त्र) । च्युत (भ्रष्ट)—चूत (आम्रवृक्ष) । तरणी (नौका)—तरणि (सूर्य)—तरुणी (स्त्री) । दार (पत्नी)—द्वार (दरवाजा) । दारा (भार्य्या)—द्वारा (हेतु) । दिन (दिवस)—दीन (दरिद्र) । द्विप (हाथी—द्वीप (टापू) । दूत (संवाददाता)—द्यूत (जूआ) । देश (राज्य)—द्वेष (शत्रुता) । नीड़ (खोता)—नीर (पानी) । पाणि (हाथ)—पानी (जल) । परुष (कठोर)—पुरुष (नर) । प्रसाद (अनुग्रह) – प्रासाद (महल) । प्रकृत (यथार्थ)—प्राकृत (भाषाविशेष) । वसन (वस्त्र)—व्यसन (विषयानुरक्ति) । बलि (पूजोपहार)— बली (बलशाली) । बिना (अभाव में)—वीणा (बाजा) । लक्ष (लाख)—लक्ष्य (उद्देश्य) । शङ्कर (शिव)— सङ्कर (जारज) ।

शव (लाश, रात)—सब (कुल)। शम (शान्ति)—सम (बराबर)। शर (तीर)—सर (तालाब)। सुत (पुत्र)—सूत (सारथी)। शुचि (पवित्र)—सूचि (सूई)—सूची (तालिका)। शूर—वीर—सूर—(सूर्य)—सुर (देवता, आवाज)।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे प्रत्येक शब्दयुगल में परस्पर क्या भेद है ? समझाओ।
अन्न—अन्य, अशक्त—असक्त, आरति—आरती, कृत—क्रीत, द्वीप—द्विप, सिल—सील, लक्ष—लक्ष्य, नीड़—नीर, शव—सब, शम—सम।

भिन्नार्थक शब्द (Homonyms)

भिन्नार्थक शब्द दो-एक अन्य शब्दों से ध्वनि और प्रायः उच्चारण में मिलते तो हैं, परन्तु उनके अर्थ और मूल भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. आगा (हिन्दी)—अगवाड़ा (front)
   आगा (फ़ारसी)—सरदार (leader)
२. आन (हिन्दी)—लाज (shame), दूसरा (other)
   आन (अरबी)—समय (time)
३. आम (हिन्दी)—फल (mango)
   आम (अरबी)—साधारण (common)
४. इतवार (हिन्दी)—रविवार (Sunday)
   इतवार फ़ारसी)—विश्वास (confidence)
५. कन्द (संस्कृत)—मूल (root)
   कन्द (फ़ारसी)—मिश्री (sugarcandy)
६. कफ (संस्कृत) —बलगम (phlegm)
   कफ (फारसी—फेन (foam)
   कफ़ (अरबी)—कमीज का कफ़ (cuff)
७. कमान (फारसी)—धनुष (bow)
   कमान (अं० अपभ्रंश)—फौजी काम की आज्ञा (command)
८. कान (हिन्दी)—अङ्ग-विशेष (ear)
   कान (अपभ्रंश)—कृष्ण (Krishna)

९. कुन्द (संस्कृत)—फूल (a kind of flower)
कुन्द (फ़ारसी)—मन्द (dull)
१०. कुल (संस्कृत)—वंश (family)
कुल (अरबी)—सब (whole), केवल (only)
११. कै (हिन्दी)—कितना (how many), अथवा (or)
कै (अरबी)—वमन (vomiting)
१२. खैर (हिन्दी)—कत्था (catechu)
खैर (फ़ारसी)—कुशल (welfare), कुछ परवाह नहीं (very well)
१३. गौर (संस्कृत)—गोरा (fair-complexioned)
गौर (अरबी)—ध्यान (close attention)
१४. चारा (हिन्दी)—घास (forage)
चारा (फारसी)—उपाय (remedy)
१५. जाल (संस्कृत)—जाल (net), माया (Illusion)
जाल (अरबी)—फरेब (deceit)
१६. झख (संस्कृत)—मछली—fish)
झख (हिन्दी)—खीजना ।
१७ तूल (संस्कृत)—रुई (cotton)
तूल (हिन्दी)—तुलना (comparison)
तुल (अरबी)—लम्बाई (length)
१८. पट (संस्कृत)—कपड़ा (cloth), परदा (screen)
पट (हिन्दी)—किवाड़ (shutter), उलटा (upside down), तुरत (at once)
१९. पर (संस्कृत)—पराया (foreign,) दूर (distant), ऊपर (on), किन्तु (but), तो भी (still)
पर (हिन्दी)—अधिकरण का चिह्न (on)
पर (फारसी)—पाँख (feather)
२०. बाण (संस्कृत)—तीर (arrow)
बान (हिन्दी)—आदत (habit)

२१. रास (संस्कृत)—क्रीड़ा, एक प्रकार का नाच, रसों का समूह।

रास (हिन्दी)—डोर, बाग (rein)

रास (फारसी)—अंतरीप (cape)

२२. शकल (संस्कृत)—टुकड़ा, चमड़ा, छाल।

शकल (फारसी)—चेहरा (Appearance)

२३. सन (हिन्दी)—एक पौधा।

सन (अरबी)—संवत्।

२४. सर (संस्कृत)—तालाब (pond), तीर (arrow), पानी (water)

सर (फारसी)—सिर (head), प्रधान (chief)

सर (अंगरेजी —महाशय (sir)

२५. हाल (हिन्दी)—पहिये की हाल—(the tire of a wheel) आसन्न काल (recent time)

हाल (देशज)—तरी, तरावट।

हाल (अरबी)—अवस्था (condition), विवरण (statement)

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे प्रत्येक शब्दयुगल परस्पर भिन्नार्थक शब्द हैं, उनकी भिन्नता वाक्य-योजना द्वारा बताओ—

अम्ब—अम्बु, आचार—आचार, आयत—आयत, कुल—कुल, नाल—नाल, संग—संग, सन—सन, हार—हार।

एक शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ
(Apparent Homonyms)

हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द हैं, जो भिन्नार्थक शब्दों की भाँति दीख पड़ते हैं, परन्तु वास्तव में वैसे नहीं हैं। भिन्नार्थक शब्द (Homonyms,) भिन्न-भिन्न मूलों से निकलते हैं, लेकिन नीचे का प्रत्येक शब्द एक ही मूल रखता है और भिन्न-भिन्न अर्थ देता है—

अर्थ—धन, अभिप्राय, प्रयोजन, कारण, निमित्त।

अङ्क—परिच्छेद, चिह्न, संख्या, गोद।

गुण—स्वभाव, कौशल, रस्सी, सत्व-रज-तम गुण, इन्द्रिय विषय, रौंदा। गुरु—शिक्षक, भारी, श्रेष्ठ।

गोत्र—कुल, गोत, पहाड़।

घृणा—घिन, दया, धिक्कार।

जलज—कमल, मोती, मछली, शङ्ख, सेंवार, चन्द्रमा।

जीवन—जीविका, जल, प्राण।

तत्व—मूल, यथार्थ, पञ्चभूत, ब्रह्म।

तनु—काया, दुबला, पतला।

तात—पिता, भाई, मित्र, बड़ा, पूज्य, प्यारा।

तारा—नक्षत्र, आँख की पुतली, वालि की स्त्री, बृहस्पति की स्त्री, देवी-विशेष।

ताल—ताड़, बाजे का ताल, पोखरा, हरताल।

नाग—साँप, हाथी, नागकेशर।

पक्ष—पख, पंख, दल, ओर, सहाय, बल।

पत्र—पत्ता, चिट्ठी, पंख, रथ, पुस्तक का पन्ना।

पय—दूध, जल।

पोत—बच्चा, नाव, स्वभाव, वस्त्र, गुड़िया।

रस—पौधे का दूध, सार, स्वाद, काव्यरस, जल, प्रेम, पारा, षट्रस।

विधि—ब्रह्मा, ईश्वर, भाग्य, रीति।

वेला—समय, ज्वार, समुद्रतट।

शिव—महादेव, मङ्गल, भाग्यशाली, वेद।

सारंग—रागविशेष, मोर, सर्प, मेघ, हरिण, पानी, देशविशेष, पपीहा, हाथी, राजहंस, सिंह, कोयल, कामदेव, रंगविशेष, वर्ण, धनुष, भौंरा, मधुमाछी, कपूर, कमल, भूषण, धनुषविशेष, फूल, छत्र, शोभा, रात, दीपक, स्त्री, शंख, वस्त्र।

सुधा—अमृत, पानी।

सैन्धव—नमक, घोड़ा, सिन्धु नदी के पास का।

हरि—विष्णु, इन्द्र, साँप, मेढ़क, सिंह, घोड़ा, सूर्य, चाँद, तोता, बानर, यमराज, हवा, ब्रह्मा, शिव, किरण, मोर, कोयल, हंस, आग, धनुष, पहाड़, गज, कामदेव, हरा रंग।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे शब्द किन-किन अर्थों में प्रयुक्त होते हैं ?
धर्म, तात, कान, शुचि, पान, सुधा, बेला, तत्त्व, पत्र, सारंग।

विपरीतार्थक शब्द (Antonyms)

जो दो शब्द आपस में प्रतिकूल अर्थ बतावें, विपरीतार्थक कहलाते हैं। वे नीचे लिखे प्रकार से बनकर प्रयुक्त होते हैं—

(१) भिन्न शब्द द्वारा—आकाश-पाताल, आदि-अन्त, आय-व्यय, प्रकाश-अन्धकार, ऊँच-नीच, उदय-अस्त, जीवन-मरण, धनवान-निर्धन, पंडित-मूर्ख, स्तुति-निन्दा, गुरु-लघु, मित्र-शत्रु, वाचाल-मूक, सुख-दुःख, स्थावर-जङ्गम, हर्ष-विषाद।

(२) नञ् योग द्वारा—आदि-अनादि, ज्ञान-अज्ञान, भद्र-अभद्र, मङ्गल-अमङ्गल, शान्ति-अशान्ति, शुद्ध-अशुद्ध, सम्भव-असम्भव।

(३) उपसर्ग द्वारा—क्रय-विक्रय, मान-अपमान, यश-अपयश, योग-वियोग, घात-प्रतिघात, वाद-प्रतिवाद, राग-विराग, विवाद-निर्विवाद, उन्नति-अवनति।

(४) उपसर्ग-परिवर्त्तन द्वारा—अनुराग-विराग, अनुग्रह-निग्रह, आदान-प्रदान, उपकार-अपकार, सजीव-निर्जीव, सम्पद्-विपद्, सरस-नीरस, सुगन्ध-दुर्गन्ध, सुलभ-दुर्लभ संयोग-वियोग, समर्थ-असमर्थ, इत्यादि।

(५) लिंग-परिवर्त्तन द्वारा—राजा-रानी, माता-पिता, इत्यादि।

नोट—ऐसे विपरीतार्थक शब्द कभी-कभी एक साथ भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे—सुखदुःख, पापपुण्य, साधुअसाधु, सुजातिकुजाति, दानवदेव, ऊँच-नीच, आगेपीछे, धर्म्माधर्म, दोषगुण, जीवनमरण, हिताहित, न्यायान्याय, शुभाशुभ, इत्यादि। (पीछे 'सहचरशब्द' देखो)

अभ्यास (Exercise)

१ नीचे लिखे शब्दों के प्रतिलोम शब्द बताओ—

प्रलय, नीच, बालक, पुण्य, देव, शुभ, धनी, आहार, घात, मिथ्या, विराग, जंगम, अस्त ।

२ उपर्युक्त शब्दों से बने प्रतिलोम शब्दों को वाक्यों में व्यवहृत करो ।

वर्णविन्यास भिन्न एकार्थक शब्द

(Words of the same meaning but of different Spelling)

बहुत-से एकार्थक शब्द ऐसे हैं, जिनके वर्णविन्यास नाम-मात्र के भेद रखते हैं । जैसे—

अगुआ-अगुवा, अंगुली-उँगली, अञ्जलि-अञ्जली, अटवी-अटवि, अन्तरिक्ष-अन्तरीक्ष, अमिय-अमी, अभिनन्दन-अभिवादन, अवनि-अवनी, अलि-अली, आँचल-आँचर, आलि-आली, इन्धन-ईंधन, इम्रती-इमरती, कटि-कटी, कलश-कलस, किशलय-किसलय, कुटिर-कुटीर, कैकेयी-कैकयी, कोष-कोश, कौशल्या-कौसल्या, गड्ढा-गढ़ा, गदहा-गधा, गाण्डिव-गाण्डीव, घिण-घिन, चमगादड़-चमगीदड़, चरित-चरित्र, छठ-छट्ठी, जोति-जोत, झंगा-झगा, टकुआ-टकुवा, ठोंकना-ठोकना, डाल-डार, ढाना-ढहाना, तक्कर-तक्र, तगमा-तमगा, तरणि-तरणी, दश-दस, दास-दाश, धरणि-धरणी, धूली-धूलि, निमिष-निमेष, प्रतिकार-प्रतीकार, फुलवाड़ी-फुलवारी, वलीमुख-बलीमुख, बहन-बहिन, भृकुटि-भ्रकुटि, भल्लुक-भल्लूक, भूमि-भूमी, मणि-मणी, महि-मही, मसुर-मसूर, मूसल-मुसल, युवती-युवति, रँहट-रहट, रशना-रसना, रात्रि-रात्री, राष्ट्रिय-राष्ट्रीय, लहू-लोहू, बराणसी-वाराणसी, वशिष्ठ-वसिष्ठ, वाष्प-वास्प, शावक-सावक, शिलाजित-शिलाजीत, शूकर-सूकर, श्रेणि-श्रेणी, सँडसि-सँडसी, सरयु-सरयू, सुमिरण-सुमिरन, हरें-हर्रे, हिन्दुस्थान-हिन्दुस्तान, हिंसक-हिंसक, इत्यादि ।

नोट—विद्यार्थी को चाहिये कि अपने समूचे लेख में शब्दों का प्रयोग एक ही ढंग से करे । एक लेख में कहीं 'घबराना' और कहीं 'घबड़ाना' लिखना उचित नहीं । अतः, ऊपर जितने शब्द दिये गये हैं, उनके लिये और वैसे अन्य शब्दों के लिये सर्वदा ध्यान रखना चाहिये ।

अभ्यास (Exercise)

१. वर्णविन्यास-भिन्न एकार्थक शब्दों के बीस उदाहरण दो।
२. पहले प्रश्न के उत्तरवाले शब्दों से वाक्य बनाओ।

उपसर्गभेद से एक धातु के भिन्न-भिन्न अर्थ

(Different Meanings of roots with Prefixes)

भिन्न-भिन्न उपसर्गों के साथ एक मूल धातु के (विशेषकर संस्कृत के किसी धातु के) भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते हैं।

जैसे—

१. हृ (चोरी करना, ले जाना इत्यादि)—

प्रहार = प्र-हृ (मारना) + घञ् = आघात।
संहार = सम्-हृ (नाश करना) + घञ् = विनाश, ध्वंस।
आहार = आ-हृ (खाना) + घञ् = भोजन।
विहार = वि-हृ (टहलना) + घञ् = भ्रमण।
व्यवहार = वि-अव-हृ (लेना) + घञ् = आचरण।
परिहार = परि-हृ (छोड़ना) + घञ् = परित्याग।
उपहार = उप-हृ (भेंट देना) + घञ् = भेंट।
अपहरण—अप-हृ (चोरी करना) + अन् = चोरी।
प्रतिहारी = प्रति-हृ (रक्षा करना) + णिन् = द्वारपाल।
प्रत्याहार = प्रति-आ-हृ (अलग करना) + घञ् = लौटालेना।

२. ईक्ष् (देखना)—

उपेक्षा = उप-ईक्ष् (तुच्छ-जानना) + अ (स्त्री० आ) = अनादर
निरीक्षण = निर्-ईक्ष् (देखना) + अन = देखभाल।
परीक्षा = परि-ईक्ष् (जाँचना) + अ (स्त्री० आ) = जाँच।
प्रतीक्षा = प्रति-ईक्ष् (राह देखना) + अ (स्त्री० आ) = प्रत्याशा

३. गम् (जाना)—

अनु-अनुगमन (पश्चाद्गमन)। निर्—निर्गमन (निःसरण)।
प्रति-प्रतिगमन (लौटना)। आ-आगमन (आना)।
उत्-उद्गम (उत्पत्ति)। सम्-सङ्गम (मिलन)।

कृ (करना)—

अनु-अनुकरण (देखादेखी) । प्रति-प्रतिकार (प्रतिशोध) ।
सम-संस्कार (जीर्णोद्धार) । वि-विकार (परिवर्त्तन) ।
अधि-अधिकार (स्वामित्व) । उप-उपकार (भलाई) ।
अप-अपकार (बुराई) । प्र-प्रकृत (यथार्थ) ।
प्र-प्रकार (ढंग) । आ-आकार (रूप) ।
आ-आकृति (रूप) । दुर्-दुष्कर (असाध्य) ।

५. नी (राह दिखाना)—

परि-परिणीत (विवाहित) । अप-अपनीत (अपसारित) ।
आ-आनीत (लाया हुआ) । निर्-निर्णीत (स्थिरीकृत) ।
उप-उपनीत (उपस्थित) । अभि-अभिनीत (खेला-हुआ) ।
प्र-प्रणीत (रचित) । वि-विनीत (नम्र) । अनु-अनुनय (प्रार्थना) ।

६. भू (होना)—

प्र-प्रभूत (प्रचुर) । सम्-सम्भूत (उत्पन्न) ।
परा-पराभूत (पराजित) । उत्-उद्भूत (सम्भूत) ।
अनु-अनुभूत (बीता हुआ) । अभि-अभिभूत (पराजित) ।

७. बद् (बोलना)—

अप-अपवाद (अपयश) । परि-परिवाद (निन्दा) ।
परि-परिवर्त्तन (बदला) । वि-विवाद (झगड़ा) ।
प्रति-प्रतिवाद (आपत्ति) । अनु-अनुवाद (उलथा) ।
अभि-अभिवादन (वन्दना) । प्र-प्रवाद (अफवाह) ।
सम्-संवाद (खबर) । दुर्-दुर्वाद (अपशब्द) ।

८. वृत् (होना)—

प्र-प्रवृत्त (उद्यत) । नि-निवृत्त) (शान्त) ।
अनु-अनुवर्त्तन (पश्चाद्गमन) । आ-आवर्त्तन (घूमना) ।

९. ज्ञा (जानना)—

अव-अवज्ञा (अनादर) । अनु-अनुज्ञा (अनुमति) ।
प्रति-प्रतिज्ञा (दृढ़ संकल्प) । वि-विज्ञान (विशेष-ज्ञान) ।
अभि-अभिज्ञान (स्मारक) । परि-परिज्ञान (सम्यक् ज्ञान) ।

१०. चर् (घूमना)—

सम्-सञ्चार (विस्तार)। अनु-अनुचर (सहचर)।
परि-परिचर (भृत्य)। वि-विचार (अभिप्राय)।

११. चि (संग्रह करना)—

सम्-सञ्चय (संग्रह)। अप-अपचय (क्षति)।
उप-उपचय (वृद्धि)। परि-पारचय (पहचान)।

१२. ग्रह् (लेना)

नि-निग्रह (शासन)। परि-परिग्रह (ग्रहण)।
अनु-अनुग्रह (दया)। सम्-संग्रह (सञ्चय)।
प्रति-प्रतिग्रह (दान ग्रहण)। आ-आग्रह (अनुरोध)।

१३. पत् (गिरना)—

नि-निपात (विनाश)। उत्-उत्पात (उपद्रव)।
प्र-प्रपात (झरना)। सम्-सम्पात [जैसे—सम्पात वृत्त]।

१४. स्था (ठहरना)—

प्र-प्रस्थान (यात्रा)। अव-अवस्था (स्थिति)
अधि-अधिष्ठान (स्थिति)। उत्-उत्थान (उठना)।
अनु-अनुष्ठान (सम्पादन)। वि + अव-व्यवस्था (स्थिरता)।
अव-अवस्था (हालत)। सं-संस्था (योजना)।

१५. दा (देना)—

आ-आदान (ग्रहण)। प्र-प्रदान (अर्पण)।
प्रति-प्रतिदान (विनिमय)। उप + आ = उपादान (सामग्री)।
नि—निदान (मूल कारण)। सम् + प्र-सम्प्रदान (कारक का नाम)।

१६. दिश् (आज्ञा देना)—

आ-आदेश (आज्ञा)। उप-उपदेश (शिक्षा)।
निर्—निर्देश (आदेश)। प्र-प्रदेश (छोटा देश)।
वि-विदेश (दूसरा देश)। प्रति + आ-प्रत्यादेश (खण्ड)।

१७. धा (स्थापित करना)—

प्र-प्रधान (खास)। अनु + सम्-अनुसन्धान (खोज)।
नि-निधान (भण्डार)। वि-विधान (विधि)।

परि-परिधान (वस्त्र)। अभि-अभिधान (शब्दकोष)।
उप-उपधान (तकिया)। वि + अव-व्यवधान (अन्तर)।

१८. युज् (मिलन)—

प्र-प्रयोग (व्यवहार)। अप-अपयोग (अव्यवहार)।
सम्-संयोग (मिलाव)। नि-नियोग (आदेश, अधिकार)।
अनु-अनुयोग (प्रश्न, खोज)। दुर्-दुर्योग (षड्यंत्र)।
वि-वियोग (विरह)। सु—सुयोग (अवसर)।
उत्-उद्योग (चेष्टा)। प्रति-प्रतियोग (बाधा)।
अभि—अभियोग (नालिश)। उप-उपयोग (व्यवहार)।

अभ्यास (Exercise)

निम्नलिखित धातु भिन्न-भिन्न उपसर्गों के योग से जो-जो अर्थ देते हैं, उन्हें उदाहरण के साथ लिखो—ईक्ष्, कृ, भृ, चर्, धा और युज्।

शब्दों-भेदों में परिवर्त्तन

(The same word used as different Parts of Speech)

हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द हैं जो प्रयोग के अनुसार भिन्न-भिन्न शब्द-भेदों में आते हैं। नीचे थोड़े-से ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं।

(१)

अच्छा ··· संज्ञा—अच्छों से मिलिये, बुरों से बचिये।
विशेषण—राम ने अच्छा काम किया।
अव्यय—अच्छा, हम आवेंगे।

आगे ··· संज्ञा—पुस्तक आपके आगे है।
क्रियाविशेषण—वह आगे आया।
सम्बन्धबोधक अव्यय—वाटिका मंदिर के आगे है।

और ··· विशेषण—और लड़कों ने क्या कहा ?
अव्यय—राम और श्याम पढ़ने गये हैं।

इसलिये ··· क्रियाविशेषण—वह इसलिये नहाता है कि ग्रहण लगा है।
समुच्चायक—तू दुर्दशा में है, इसलिये मैं तुझे दान दिया चाहता हूँ।

एक ··· विशेषण—एक दिन ऐसा हुआ।

सर्वनाम—१. एक आता है, एक जाता है।

२. पुनि बन्दौं शारद सुरसरिता। युगल पुनीत मनोहर चरिता।
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत इक हर अविवेका।

क्रियाविशेषण— एक तुम्हारे ही दुःख से हम दुःखी हैं।

की…क्रिया—आपने यह प्रतिज्ञा की।

सम्बन्ध का चिह्न—आपकी घोड़ी अच्छी है।

कुछ…सर्वनाम—घी में कुछ मिला है।

विशेषण—कुछ पानी।

क्रियाविशेषण—लड़की कुछ छोटी है।

केवल… विशेषण—रामहि केवल प्रेम पियारा।

क्रियाविशेषण—तू केवल चिल्लाता है।

समुच्चायक—करती हुई विकट ताण्डव-सी मृत्यु निकट दिखलाती है।
केवल एक तुम्हारी आशा प्राणों को अटकाती है।

कोई…सर्वनाम—कोई गया है या नहीं?

विशेषण—तुम्हारी कोई पुस्तक अच्छी नहीं।

क्रियाविशेषण—इसमें कोई २०० पृष्ठ हैं?

क्या…सर्वनाम—राम ने आपको क्या कहा?

विशेषण—वहाँ क्या बातें हुईं?

क्रियाविशेषण—घोड़े दौड़े क्या हैं, उड़ आये हैं।

जो…सर्वनाम—बाघ, जो बैठा था, मारा गया।

विशेषण—जो किताब चाहो, ले लो।

अव्यय—उसका सामर्थ्य नहीं, जो आपका सामना करे।

दोनों…विशेषण—दोनों लड़के।

सर्वनाम—दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।

पत्थर…संज्ञा—पत्थर मत फेंको।

अव्यय—तुम मेरी मदद पत्थर करोगे।

साथ…संज्ञा— विपत्ति में कोई साथ नहीं देता।

सम्बन्धबोधक अव्यय—मैं आपके साथ गया।

क्रियाविशेषण—वे लड़के साथ खेलते हैं।

यह···सर्वनाम—यह किसका घर है ?

विशेषण—यह किताब किसकी है ?

क्रियाविशेषण—लीजिये, महाराज ! मैं यह चला ।

हाँ···क्रियाविशेषण—तुमने भात खाया ?···हाँ ।

संज्ञा—उसने हाँ-में-हाँ मिलाया ?

अव्यय—हाँ ! हाँ ! खाई में गिर न पड़ना ।

(२)

अकाल—संज्ञा (=दुर्भिक्ष), विशेषण (जैसे-अकाल मृत्यु) ।

करकरा—संज्ञा (=सारस विशेष), विशेषण (जैसे-करकरा रुपया) ।

करारा—संज्ञा (=किनारा), विशेषण (जैसे-करारी चपत) ।

किराना—संज्ञा (मसाला), क्रिया (फटकना) ।

गोदना—संज्ञा, क्रिया ।

तीर—संज्ञा (वाण), अव्यय (समीप) ।

रमना—संज्ञा (मैदान), क्रिया (घूमना) ।

सीधा—संज्ञा, विशेषण, अव्यय ।

नोट—राम-राज्य, भगीरथ-प्रयत्न, भीष्म-प्रतिज्ञा, भीम-काय, कृष्ण-सर्प—इनमें राम, भगीरथ इत्यादि व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ विशेषण होकर आई हैं ।

'पाप-वासना, पुण्य-स्मृति, गो-स्वभाव और स्वर्ण-युग' में भी पाप, पुण्य आदि संज्ञाएँ विशेषण होकर आई हैं ।

'गोरों' और 'कालों' में भेद-भाव नहीं रखना चाहिये । 'लाल' एक बहुमूल्य पदार्थ है । 'पापियों' को दंड देना चाहिये । इन वाक्यों में 'विशेषण' संज्ञा की भाँति प्रयुक्त हैं । (विशेषण प्रकरण देखो)

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे शब्दों को भिन्न-भिन्न शब्द-भेदों में रखकर वाक्य बनाओ—

कौन, जो, थोड़ा, दूर, न, पांत, बहुत, सो, यहाँ, वाह-वाह !

पदांश परिवर्त्तन
(Change of components)

यौगिक पदों के किसी अंश के बदले (अथवा सभी अंशों के बदले) उसी अर्थ का कोई अन्य मधुर अंश या शब्द रखकर रचना की सुन्दरता बढ़ा सकते हैं।

जैसे—पृथ्वीपति—भूपति, आनन्दकर—सुखकर, सुरबाला—देवकन्या श्रवणगोचर—कर्णगोचर, नृपति—नरपति, वारिनिधि—जलनिधि, भूपाल—महीपाल, राजकुमारी—राजकन्या, जगदीश—जगन्नाथ, मृगाक्षी—मृगनयनी, क्षीरसमुद्र—क्षीरसागर, राजादेश—राजाज्ञा, इत्यादि।

नोट १. ऊपर के उदाहरणों से विदित होता है कि ऐसे शब्दों में कई, पूर्व-पद परिवर्तित शब्द हैं और कई उत्तर-पद परिवर्तित।

२. जलवाची शब्दों के आगे 'ज' जोड़ने से कमलवाची शब्द बनते हैं। जैसे—सरोज, सरसिज, जलज, नीरज, सलिलज, अम्बुज, तोयज, पयोज, वारिज, वनज, पंकज, इत्यादि।

३. जलवाची शब्दों के आगे 'द' या 'धर' जोड़ने से मेघवाची शब्द बनते हैं। जैसे—जलद, जलधर, नीरद, नीरधर, सलिलद, सलिलधर, अम्बुद, अम्बुधर, तोयद, तोयधर, पयोद, पयोधर, वारिद, वारिधर, वनद, वनधर, इत्यादि।

४. जलवाची शब्दों के आगे 'धि' या 'निधि' जोड़ने से समुद्रवाची शब्द बनते हैं। जैसे—जलधि, जलनिधि, नीरधि, नीरनिधि, सलिलधि, सलिलनिधि, अम्बुधि, अम्बुनिधि, तोयधि, तोयनिधि, पयोधि, पयोनिधि, वारिधि, वारिनिधि, वनधि, वननिधि, पंकधि, पंकनिधि, उदधि, इत्यादि।

५. ऐसे शब्द केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों में जोड़े जाते हैं, तद्भव में नहीं। अतः, पानीधर, पानीज, तालाबनिधि इत्यादि नहीं लिख सकते।

अभ्यास (Exercise)

आगे लिखे यौगिक शब्दों में प्रत्येक के किसी एक अंश को अथवा सभी अंशों को उसीके अर्थ के किसी शब्द से बदलकर यौगिक शब्द बनाओ—

जलज, जलधि, सुखद, सर्वज्ञ, भूपति, लोकपाल, निशिचर, देवबाला, पुष्पशाला, शस्त्रास्त्रशाला और ज्ञानशून्य।

उच्चारण भेद से अर्थभेद
(Accent & Emphasis)

शब्द के किसी विशेष अक्षर के उच्चारण में भेद डालने से उस शब्द का और वाक्य के किसी विशेष शब्द के उच्चारण पर बल देने से उस वाक्य का अर्थ बदल जाता है। जैसे—

(१) खैर-ख़ैर, कै-क़ै, आगा-आग़ा, कूल-कुल, इत्यादि*।

(२) वह क्या काम करता है? (वह काम कौन है?) वह क्या काम करता है? (हम नहीं जानते कि वह काम करता है)।

आप ग्रन्थ पढ़ते हैं? (आप पढ़ते हैं या कोई दूसरा?) आप ग्रन्थ पढ़ते हैं? (ग्रन्थ या कोई दूसरी चीज?)

नोट—पीछे 'स्वराघात' देखो।

अभ्यास (Exercise)

(१) चार ऐसे उदाहरण दो जिनमें उच्चारण-भेद से अर्थ-भेद हो जाय।

(२) नीचे लिखे प्रत्येक शब्द-युगल में परस्पर क्या भेद है

गौर-ग़ौर, खैर-ख़ैर, कै-क़ै, कद-क़द।

अपभ्रंश शब्द (Corrupted Words)

हिन्दी में बहुत-से तद्भव शब्द आये हैं जिन्हें अपभ्रंश शब्द भी कहते हैं। आगे थोड़े से ऐसे शब्द और उनके मूल शब्द दिये जाते हैं—

संस्कृत—

अजान—अज्ञान, अबुझ—अबुध, अनाड़ी—अनार्य, अफीम—अहिफेन, आम—आम्र, आसरा—आश्रय, आँवला—आमलक ईख—ईक्षु, उठान—उत्थान, उछाह—उत्साह, उबटन—उद्वर्तन, उघारना—उद्घाटन, उबालना—उद्वेलन, ऊमस—ऊष्म, ऊँट—उष्ट्र, कबूतर—कपोत, काग—काक, कुम्हार—कुम्भकार, कोयल—कोकिल, कोरा—केवल, खटिया—खट्वा, खपरा—खर्पर, खोता—खगायतन, गोबर—गोविट्, गहरा—गम्भीर, गड्ढा—गर्त्त, गुनी—गुणी घी—घृत, घड़ी—घटी, घाट—घट्ट, चोंच—चञ्चु, चूल्हा—चुल्लिका, चौकी—चतुष्किका, छाता—छत्र, जीभ—जिह्वा, जेठ—ज्येष्ठ, जोरू—जाया, जमुहाना-

---

*अर्थ पीछे देखो

जृम्भा, जम्बीरी—जम्बीर, ठाकुर—ठक्कुर, तुरत—त्वरित, तीता—तिक्त, दाद—दद्रु, दाँत—दन्त, धुआँ—धूम्र, धुनि—ध्वनि, नाच—नृत्य, नह—नख, पूत—पुत्र, पतला—प्रतनु, पढ़ना—पठन, पानी—पानीय, बेल—वल्ली, बुरा—विरूप, भौंरा—भ्रमर, माथा—मस्तक, मझला—मध्यम, मुँह—मुख, मिट्टी—मृत्तिका, योग—योग्य, रिन—ऋण, रिस-रोस—रोष, रुखाई—रुक्षता, रसोई—रसवती, लाख—लाक्षा, लाज—लज्जा, लत्तर—लता, सेज—शय्या, सूत—सूत्र, सोक—शोक, सत्तू—सक्तु, सलाई—शलाका, हाट—हट्ट, हाथ—हस्त, इत्यादि।

अरबी और फारसी—

अखतियार-अख्तियार, अफसोस-अफ़सोस, इस्तहार-इश्तहार, कदरदान-क़दरदाँ, कबूल-क़ुबूल, कानून-क़ानून, किस्मत-क़िस्मत, कीमखाब—कमख्वाब, कैद-क़ैद, खातिर-ख़ातिर, खाँमखाँ-ख्वाहमख्वाह, खुराक-खूराक, चस्म-चश्म, जप्त-ज़ब्त, जमाबन्दी-जमअबन्दी, जुम्मामसजिद-जामअमसजिद, जुलुम-जुल्म, तखत-तख्त, तसदीक-तसदीक़ ताज्जुब-तअज्जुब, तारीफ-तअरीफ, दावा-दअवा, बक्सीस-बखशीश, बेजा-बेजा़, बैनामा-बअनामा, महजीत-मसजिद, माफ-मुआफ़, मामूली-मअमूली, मोताफा-मुतवफा़, मौजा-मौज़अ, म्यादी-मिआदी, रफा-रफअ, स्यात्-शायद, इत्यादि।

अंग्रेजी—

इंजिन-ऐंजिन, टिकट-टिकिट, डाक्टर-डॉक्टर, तारपीन-टरपेंटाइन, थेटर-थियेटर, फलालैन-फ्लैलिन, बोतल-बोटल, बंक-बैंक, मील-मिल, मील-माइल, लंकलाट-लाँगक्लाथ, वासकोट-वेस्टकोट, सम्मन-समन, सिलेट-स्लेट, इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे शब्दों के मूल शब्द बताओ—

आज, आठ, आधा, अगुआ, उगाल, उछाह, कपड़ा, काम, कबूतर, कटारी, काठ, कोठा, कुआँ, करेला, खटिया, गहरा, घाव, चोंच, चोर, छुरी, तीता, दाल, मछली, जूझना, बिजली, बादल, सेठ, सौत, सच, हाथ, हिय, तेरस, स्यात्, दवा, खुराक, मील, तारपीन, बंक।

चौथा अध्याय
प्रत्ययान्त शब्दप्रयोग
कृत् और तद्धित प्रत्यय

(१) संज्ञा-प्रयोग—

"उनके देखे से आ जाती है जो रौनक मुँह पर,
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।"
"आन सँभाले जान थी जाती, जान बचाये आन थी जाती।"
"एक न सँभला तेरे सँभाला, था जो बेताव अन्दरवाला।"
"न आये अगर वह तुम्हारे कहे से, तो मिन्नत करो घेरे-घेरे मना लो।

(२) विशेषण-प्रयोग—

खाया मुँह, नहाया बदन नहीं छिपता।"
"बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय।"
"मरे को मारनो न सूर की बड़ाई है।"
"ऐ जानी पहचानी रातो तनहाई की डरानी रातो !"
"गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।"
कहीं झरोखे कटे हुए हैं, कहीं चौतरे पटे हुए हैं।"
फूल बिछे हैं किसी भवन में, सुरभि सनी है सदा पवन में।"
"बहता पानी निर्मला बंधा गंदा होय।"
"बहती गंगा में हाथ धो लो।"
"तो मेरी मनकली सूखती झट खिल जाती।"
"पढ़ता सुग्गा उड़ गया।"

(३) अव्यय प्रयोग—

"बैठे-बैठे दिन नहीं कटता।"
"लड़का दौड़ते-दौड़ते थक गया।"
"लड़की दौड़ते-दौड़ते थक गई।"
"इस जीव को शरीर में न तो किसीने आते देखा न जाते।"

"ईश्वर की माया को लोग सोचते और विचारते ही रहे, परन्तु आज तक उसका भेद किसीने नहीं पाया।"

"थक गई मैं दुःख सहते-सहते, थक गये आँसू बहते-बहते।"

"उठते-बैठते रोका सबको, सोते-जागते टोका सबको।"

"तेरे आते ही आते काम आखिर हो गया।"

"नन्दजी से मिल कुशलक्षेम पूछ कहने लगे।"

"वह पूछके आता है। मैं खाकर जाता हूँ। मैं खाकर के जाता हूँ।"

(४) आजकल 'हारा, हार' इन प्रत्ययों से बने बहुत-से शब्द गद्य में नहीं आते। जैसे—राखनहारा, सिर्जनहार, इत्यादि।

(५) 'औआ प्रत्यय दो अर्थों में आता है। जैसे—चढ़ौआ = चढ़ा हुआ, चढ़नेवाला। बिकौआ = बिका हुआ, बिकनेवाला।

(६) इये, इयेगा, इयो और ना प्रत्ययान्त विधि क्रियाएँ अविकारी हैं, क्योंकि उनमें लिङ्ग, वचन और पुरुष के कारण कोई विकार नहीं होता। जैसे—चाहिये, खाइये, 'सर मेरा काटके पछताइयेगा, झूठी फिर किसकी कसम खाइयेगा?' 'चलियो सबसे यों तू पर जी मत फँसाइयो।" 'नाजुक है दिल, न ठेस लगाना इसे कहीं।' लगा कहने चल भाग रे फिर न आना, मियाँ मैं भी चलता हूँ, टुक रहके जाना।'

(७) संस्कृत के मतुप् और वतुप् (मान्, वान्) प्रत्यय तद्धित में और शानच् (आन, मान) कृदन्त में आते हैं। मतुप् प्रत्ययान्त शब्द का अन्त्य 'न' हल् होता है, परन्तु शानच् का नहीं। जैसे—श्रीमान्, बुद्धिमान्, दयावान्; वर्त्तमान, वर्द्धमान, क्रियमाण, विद्यमान, इत्यादि।

नोट—अनुमान, परिमाण, प्रमाण, समान इत्यादि शब्द शानच् या मतुप् प्रत्ययान्त नहीं हैं।

(८) जिन शब्दों के अन्त और उपान्त में अ, आ या म आवे उनके उत्तर तथा विद्युत्, स्रज्, नभस् इत्यादि शब्दों के उत्तर वत् लाते हैं, इन्हें छोड़ शेष शब्दों के उत्तर मत् लाते हैं। जैसे—ज्ञानवान्, दयावान्, लक्ष्मीवान्, विद्युत्वान्, स्रग्वान्, श्रीमान्, नभस्वान्, धीमान्, बुद्धिमान्।

(९) क्विप् प्रत्यय लगाकर व्यञ्जनान्त धातुओं से बने और शतृ (अत्) एवं स्यतृ (स्यत्) प्रत्ययान्त शब्द सर्वदा हलन्त ही रहते हैं। जैसे—जगत्,

विपद्, सम्राट्, वणिक्, विद्युत्, आपद्, सम्पद्, उपनिषद् [उपनिषत्], प्रावृट्, सम्यक्, जाग्रत्, महत्, भविष्यत्।

(१०) किसी शब्द के परे एक ही अर्थ में एक बार दो प्रत्ययों का लगाना अशुद्ध है। जैसा—ऐक्यता, धैर्यता, नैपुण्यता, दरिद्र्यता। इनके बदले में, 'ऐक्य, धैर्य, नैपुण्य, दारिद्र्य या एकता, धीरता, निपुणता, दरिद्रता' लिखना उचित है।

अभ्यास (Exercise)

१. कर्तृवाचक के किन-किन प्रत्ययों का प्रयोग आजकल की हिन्दी में नहीं होता?

२. किसी शब्द के परे एक ही अर्थ में एक बार दो प्रत्ययों को ला सकते हैं या नहीं? क्यों?

३. नीचे लिखे शब्द शुद्ध हैं या अशुद्ध? क्यों?

वर्त्तमान्, विद्यामान, बुद्धिमान्, प्रमान, जगत, महत, भविष्यत, साम्यत्व और महानता।

४. नीचे लिखे वाक्यों में मोटे अक्षरों में छपे शब्द किन-किन प्रत्ययों से किन-किन अर्थों में बने हैं।

'सबही से मिल **बोलना** मीठे-मीठे **बोल**। मीठी बोली **बोलकर** बनो यार **अनमोल**।' 'उसकी **निशानियाँ** और **यादगारें** सैंतकर रखते थे।' 'हरीभरी वर वृक्षाली, लिये फलों की है **डाली**, झोंके आ-आकर किसके, हाथ चूमते हैं इसके। फिर जब विरुद्ध **पक्षवाला** इसका **चुटीला** उत्तर **देता** था और **चिथेड़ने** लगता था तब **पूरब** के **सूर्य** को पश्चिम में उगवा देता था। इसमें जब एक **आदमी** **खड़ा** होकर **वक्तृता** करता तब इधर की दुनिया उधर हो जाती थी।

कारकान्त (Case-endings)

शून्य-चिह्न

शून्य चिह्न नीचे लिखी अवस्थाओं में आता है—

१. उक्त कर्त्ता में। जैसे—मोहन आया। महाराज बोले। वह तो

भूले थे हमें, हम भी उन्हें भूल गये। सीता एक ग्रन्थ लाई है। वह पीछे हो लिया। श्रीकृष्ण मथुरा चल दिये। निकल आओ कि अब मरता है बूढ़ा।

२. उक्त कर्म में। जैसे—मैंने रोटी खाई। रावण से सीता हरी गई। योंही रात सारी उन्होंने गँवाई।

३. द्विकर्मक क्रिया के जब दोनों कर्म रहें तब मुख्य कर्म में। जैसे—उसने नंगों को वस्त्र दिये। मैंने उसे एक रीति सिखाई। हमको चालें बतायेगा अब कौन?

४. विधेयभाव में। जैसे—लड़की सूखकर काठ हो गई। क्या आपने उसे आदमी समझा है?

५. सम्बोधन में। जैसे—छिपे हो कौन-से पर्दे में बेटा।

नोट—बहुवचन से चिह्नसंस्कार के अनुसार अर्द्धानुस्वार रहित ओ या यो लाते हैं। जैसे—हे बेटो।

६. किसी शब्द के केवल अर्थ-मात्र में और लिङ्ग, वचन, परिमाण, संख्या या दर इत्यादि के अर्थ में। जैसे—बालक, सुन्दर, घोड़ियाँ, घोड़े, एक मन चावल, चार, दो रुपये सेर मिठाई, इत्यादि।

७. किसी-किसी क्रियाविशेषण में। जैसे—न खाया, अच्छा ही हुआ। होचुका, भला चलो भी तो। बेढब पड़ा हुआ है, झगड़ा इधर-उधर, इत्यादि।

ने

'ने' चिह्न नीचे लिखी अवस्था में आता है *—

अनुक्त कर्त्ता में अर्थात्

(क) सकर्मक क्रियाओं का सामान्य, आसन्न, पूर्ण और सन्दिग्ध भूतकालों में कर्त्ता के आगे 'ने' चिह्न आता है।

---

* ने चिह्न नीचे लिखी अवस्था में नहीं आता—उक्त कर्त्ता में, अर्थात—(क) नहाना, छींकना, खाँसना और थूकना को छोड़, शेष अकर्मक क्रियाओं के कर्त्ता में 'ने' चिह्न कभी नहीं आता। जैसे—वह आया। मैं गया हूँ। राम सोया था।

(ख) सकर्मक 'भूलना' क्रिया के कर्त्ता में ने चिह्न का प्रयोग नहीं होता तथा 'बोलना, समझना, बकना, जनना, सोचना और पुकारना' में विकल्प से होता है (उदाहरण ऊपर देखो)

जैसे—मैंने रोटी खाई। रानियों ने पेड़े खाये हैं। रानियों ने सखियों को बुलाया था। राम ने पुस्तक पढ़ी होगी।

अपवाद—

(१) **भूलना** क्रिया के कर्त्ता में ने चिह्न का प्रयोग हमें नहीं मिला है। जैसे—**आप** वह प्रतिज्ञा न भूले होंगे। **वह** तो भूले थे हमें **हम** भी उन्हें भूल गये। बुद्धिमती माँ का उपदेश **गारफील्ड** कभी न भूले।

नोट—'लाना' क्रिया के लिये नीचे की टिप्पणी देखो।

(२) **बोलना, समझना, बकना, जनना, सोचना और पुकारना** क्रियाओं के कर्त्ता 'ने' चिह्न विकल्प से लेते हैं।

बोलना—महाराज बोले। (प्रेमसागर)

(कर्म लुप्त रहने पर 'ने' लुप्त रहता है, परन्तु कर्म के साथ कोई-कोई लाते हैं)।	वह झूठ बोला। (पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी) रामचन्द्रजी ने झूठ नहीं बोला। (पं० रामजीलाल शर्मा) उन्होंने कभी झूठ नहीं बोला। (बालविनोद)। उसने कई बोलियाँ बोलीं। (पं० अं० प्र० वाजपेयी)

समझना—हमने तुम्हारी बात नहीं समझी।

हम तुम्हारी बात नहीं समझे।

हमको समझा है दिल में क्या तूने।

हम न समझे कि यह आना है या जाना तेरा। (भट्टजी)

(ग) सामान्य, आसन्न, पूर्ण और सन्दिग्धभूत भिन्न सभी कालों की सकर्मक क्रियाओं के कर्त्ता 'ने' चिह्नरहित होते हैं। जैसे—मैं भात खाता था। राम पुस्तक पढ़ता है।

(ग) एक, अधिक या सब खण्ड अकर्मकवाली संयुक्त क्रियाओं के कर्त्ता **ने** चिह्न रहित होते हैं। जैसे—**मैं** एक पुस्तक लाया। **श्याम** पीछे हो लिया। **राम** पढ़-लिख चुका। **सीता** सो गई।

नोट—लाना क्रिया 'ले' धातु और 'आना' के योग से बनी है। पहले उसका रूप ल्याना था, पर बाद में लाना हो गया। (पं० अं० प्र० वाजपेयी)

अपवाद—संयुक्त अकर्मक क्रिया का अन्तिम खण्ड डालना हो तो सामान्य, आसन्न, पूर्ण और संदिग्ध भूतकालों में कर्त्ता के आगे ने चिह्न सदा आता है, परन्तु यदि अन्तिम खण्ड देना हो तो विकल्प से आता है। (उदाहरण ऊपर देखो)

(ङ) नित्यताबोधक सकर्मक संयुक्त क्रिया का कर्त्ता ने चिह्न कभी नहीं लेता। (उदाहरण पाठ में देखो।)

बकना—तुम बहुत बके।
तुमने बहुत बका। (पं० अम्बिकादत्त व्यास)

जनना—भैंस पाड़ा जनी।
भैंस ने पाड़ा जना। (पं० अम्बिकादत्त व्यास)
बकरी तीन बच्चे जनी। (पं० केशवराम भट्ट)
चित्राङ्गदा ने तुझे जना। (लाला भगवानदीन)
आमन्त्रित कर सूर्यदेव को मैंने मन में,
मन्त्रशक्ति से तुझे जना था पिताभवन में।
(श्री मैथिलीशरण गुप्त)

सोचना—उसने यह बात सोची।
वह यह बात सोचा। (पं० केशवराम भट्ट)

पुकारना—पूतना पुकारी। (पं० केशवराम भट्ट)

(कर्म लुप्त रहने पर 'ने' भी लुप्त रहता है, नहीं तो नहीं।—भट्ट)

चोबदार पुकारा—करा खाँ! निगाह रूब रू।
(राजा शिवप्रसाद)
सत्यपुरुषों ने जिसको बारंबार पुकारा, अच्छा है।
जिसने गली में तुझको पुकारा। (पं० केशवराम भट्ट)

३. सजातीय कर्म लेने के कारण जो अकर्मक क्रिया सकर्मक हो जाती है, उसके कर्त्ता के आगे 'ने' चिह्न नहीं आता, परन्तु कोई-कोई ऐसी कुछ क्रियाओं के साथ सामान्य, आसन्न, पूर्ण और सन्दिग्ध भूत कालों में 'ने' चिह्न लाते भी हैं। जैसे—

सिपाही कई लड़ाइयाँ लड़ा।
वह शेर की बैठक बैठा (पं० कामताप्रसाद गुरु)
मैं क्रिकेट खेला। (पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी)
उसने टेढ़ी चाल चली।
मैंने बड़े खेल खेले हैं।
उसने चौपड़ खेली। (पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी)

४. नहाना, छींकना, खाँसना और थूकना—इन चार अकर्मक क्रियाओं में भी उपर्युक्त चारों कालों में 'ने' चिह्न का प्रयोग मिलता है। जैसे—तुमने क्यों छींका? तुमने नहाया है। उसने खाँसा है। मैंने थूका।

(ख) सब खण्ड सकर्मकवाली संयुक्त क्रिया के कर्त्ता के आगे सामान्य, आसन्न, पूर्ण और संदिग्ध भूतकालों में ने चिह्न आता है। जैसे—मोहन ने ग्रन्थ को देख लिया। मैंने उत्तर दे दिया था।

अपवाद—नित्यताबोधक * सकर्मक संयुक्त क्रिया का कर्त्ता ने चिह्न कभी नहीं लेता।

वे बार-बार गिना किये, हाथ कुछ न लगा। (भारतेन्दु)

वह रात भर बैठे-बैठे पढ़ा किया।

वह चित्र-सी चुपचाप खड़ी सुना की। (पं० अम्बिकादत्त व्यास)

इस दृश्य को पाण्डव सामने बैठे देखा किये। (बालभारत)

वह तो भूले थे हमें हम भी उन्हें भूल गये।

हज़रत भी कल कहेंगे कि हम क्या किये। (पं० केशवराम भट्ट)

(१) संयुक्त अकर्मक क्रिया का अन्तिम खण्ड 'डालना' हो तो सामान्य, आसन्न, पूर्ण और सन्दिग्ध भूतकालों में कर्त्ता के आगे ने चिह्न सर्वदा आता है। परन्तु यदि अन्तिम खण्ड 'देना' हो तो विकल्प से आता है। जैसे—

उसने रात-भर जगा-डाला। (पं० अम्बिकादत्त व्यास)

जब मानसिंह चढ़ आये तब पठानों की सेना चल दी।

(पं० केशवराम भट्ट)

श्रीकृष्ण मथुरा चल दिये। (प्रेमसागर)

मैं अपना-सा मुँह लेकर चल दिया। (विद्यार्थी)

उसने रात-भर जाग दिया (पं० अम्बिका दत्त व्यास)

अपवाद —

'मुसकुरा देना, हँस देना और रो देना' क्रियाओं के कर्त्ता 'ने' चिह्न कभी नहीं छोड़ते। जैसे—मोहन ने नारद को देखकर मुस्कुरा दिया। जब वह आये, यार ने हँस दिया। मुकद्दर ने रो-रो दिया हाथ मलकर।

(पं० केशवराम भट्ट) †

(२) संकेत में संयुक्त क्रिया के अन्त में 'होना' का हेतुहेतुमद्भूत-रूप 'ने' चिह्न के साथ भी प्रयुक्त होता है। जैसे—

---

* पौनःपुन्य अर्थ सूचक।

† अनुक्त कर्त्ता में 'से' इत्यादि चिह्न भी आते हैं।

यदि राम ने पढ़ा होता तो अवश्य सफल होता।
यदि भैया आये थे तो आपने उन्हें रोक लिया होता।

को

'को' * चिह्न नीचे लिखी अवस्था में आता है—

१. अनुक्त कर्म में, जैसे—आमों को खाता है। तारों को देखता है। फूलों को बटोरता है। राम उसे पहचानता है। मैंने ब्राह्मण को सताया है।

२. व्यक्तिवाचक, अधिकारवाचक और व्यापारकर्तृवाचक में। जैसे—राम को पढ़ने दो। मालिक को समझाना। सिपाही को बुलाओ। वह अपने नौकर को कभी नहीं मारता।

३. गौणकर्म या सम्प्रदान कारक में। जैसे—पूतना कृष्ण को दूध पिलाने लगी। भला, वह किसीको मुँह दिखावेगी। तूने मुझे क्या कहा। मैंने उसको पुस्तक खरीद दी। उसने नंगों को वस्त्र दिये।

४. आना, छजना, पचना, पड़ना, भाना, मिलाना, रुचना, लगना, शोभना, सुहाना, सूझना, होना और चाहिये इत्यादि के योग में। जैसे—उन्हें याद आती है आपकी बातें। आपको यह टोपी नहीं छजती। उसको भोजन नहीं पचता। दिल को कल नहीं पड़ती। उसको क्या पड़ा है, बिगड़ता है मेरा। तुझको पराई क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू। मुझे राम के बिछोह में कुछ नहीं भाता। मुझे अपना स्वत्व कब मिलेगा? आपको क्या रुचता है, भात या रोटी? बच्चों को मिठाई बहुत रुचती है। अपना घर सभी को भला लगता है। तुझे यह चाल नहीं शोभती। तुम्हारी बात मुझे कुछ भी नहीं सुहाती। आपको क्या सूझा है? तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं, हम बेजार बैठे हैं। यशोदा को लड़की के होने की भी सुध न थी। क्या मुझे आपसे कुछ भी लगाव नहीं है? आपको सवेरे उठना चाहिये।

५. निमित्त, आवश्यकता और अवस्था-द्योतन में। जैसे—राम हमसे

---

* सर्वनाम में 'को' के बदले कहीं 'ए' लगाते हैं। सम्प्रदान अर्थ में 'के लिये' भी आता है। 'ए' के प्रयोग में ऊपर के सभी नियम और 'के लिये' के प्रयोग में सम्प्रदान अर्थवाले नियम लगते हैं।

मिलने को आये थे। वे स्नान को गये हैं। भोजन बनाने को सीधा तौलते हैं। इसीके देखने को मैं बचा था। अब मुझको पढ़ने जाना है। तुमको यहाँ फिर आना होगा। उसको अपना पाठ सीखना है। उसको कल रोते-रोते बीता।

६. **योग्य, उपयुक्त, उचित, आवश्यक, नमस्कार, धिक्कार और धन्यवाद आदि तथा इनके अर्थवाची अन्यान्य शब्दों के योग में। जैसे**—यह आपको योग्य नहीं। क्या यह उसको उपयुक्त है? स्वच्छ वायुसेवन आपको उपयोगी होगा। ऐसा करना आपको उचित नहीं। विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य रखना उचित है। मुझको जाना आवश्यक है। पण्डितजी को प्रणाम। ऐसी स्वतन्त्रता को नमस्कार। पापी को धिक्कार। झूठे को फटकार। आपको धन्यवाद।

७. **समय, स्थान और विनिमयद्योतन में। जैसे**—गाड़ी भोर को जायगी। वह रात को आवेगा। कल रात को अच्छी वर्षा हुई। मोहन घर को गया। घोड़ा कितने को दोगे। पुस्तक कितने को ली।

विकल्प—ऐसी जगह कहीं में और कहीं पर भी लाते हैं। विनिमय में सम्बन्ध के चिह्न भी आते हैं। जैसे—गाड़ी भोर में जायगी। वह रात में आवेगा। कल रात में अच्छी वर्षा हुई। मोहन घर पर गया। घोड़ा कितने में (पर) दोगे। पुस्तक कितने में (पर या की) ली है।

८. **समाना, चढ़ना, खुलना, लगाना, होना, डरना, कहना और पूछना आदि क्रियाओं के योग में। जैसे**—आपको भूत समाया है। ऐसी क्या बू समा गई तुमको? आपको भूत चढ़ा है। मुझे इस चोरी का भेद खुल गया। वह किसी काम का नहीं, उसको आग लगाओ। कोठरी में क्यों नहीं रहते, उसको क्या हुआ है? कायर को डरें तो कहाँ रहें? तुमको एक बात कहता हूँ, घर पर कह देना। उसने आपको क्या पूछा?

विकल्प—समाना, खुलना, लगाना और होना इत्यादि के योग में 'को' के बदले कहीं 'में', कहीं 'पर' तथा डरना, कहना और पूछना इत्यादि में 'को' के बदले 'से' चिह्न भी लाते हैं। जैसे—आपमें भूत समाया है। ऐसी क्या बू समा गई तुममें? आपपर भूत चढ़ा है। मुझपर इस चोरी का भेद खुल गया। वह किसी काम का नहीं, उसमें आग लगाओ। कोठरी में क्यों नहीं

रहते, उसमें क्या हुआ है? कायर से डरें तो कहाँ रहें? तुमसे एक बात कहता हूँ, घर पर कह देना। उसने आपसे क्या पूछा?

नोट—होना क्रिया के साथ अस्तित्व अर्थ में 'को' के बदले में 'के' भी लाते हैं। जैसे—नन्दजी के पुत्र हुआ है। उसके दाढ़ी है। मेरे एक बेटी है। चली थी बरछी किसी पर, किसीके आन लगी। (ऐसी जगह को भी लाते हैं।)

नीचे लिखी अवस्थाओं में 'को' चिह्न प्रायः लुप्त रहता है, परन्तु विशेष अर्थ में स्वराघात के बदले कहीं-कहीं लाते भी हैं—

(१) छोटे-छोटे जीवों तथा अप्राणिवाचक संज्ञाओं के साथ।

जैसे—उसने बिल्ली मारी। मगर एक जुगनू चमकते जो देखा। मैं चिट्ठी लिखता हूँ। बैल घास खाता है।

(२) अन्य उदाहरण—किधर तुम छोड़कर मुझको सिधारे। मैं सुबह आया। वह पटने गया। राम पढ़ने जाता है।

से

'से' चिह्न नीचे लिखी अवस्थाओं में आता है—

१. करण कारक में। जैसे—बाण **से** मारा। श्रीकृष्ण दोनों हाथों **से** छाती में मुँह लगा, लगे प्राण समेत पय पीने।

२. अनुक्त कर्त्ता में। जैसे—मुझ**से** रोटी खाई गई। आप**से** ग्रन्थ पढ़े गये। रानी **से** सोया नहीं जाता।

३. प्रेरक कर्त्ता में। जैसे—यदि शत्रुओं **से** तेरा नाम न जपवाऊँ तो मैं चाणक्य नहीं! सभा में जाते हो तो मेरा प्रस्ताव लोगों **से** मनवा के छोड़ना। मैं राम **से** पत्र लिखवाता हूँ।

४. क्रिया करने की रीति या प्रकार बताने में। जैसे—वह सारी शक्ति **से** यत्न करता है। अन्तःकरण से पूजा करो। धीरे **से** बोलो। खुशी **से** रहो।

५. मूल्यवाचक संज्ञा और प्रकृतिबोध में। जैसे—कल्याण कञ्चन **से** माल नहीं ले सकते? अनाज किस भाव **से** बेचते हैं। दो सौ रुपये **से** घोड़ा मोल लिया। छूने **से** गर्मी जान पड़ती है। देखने **से** धनी मालूम होता है।

विकल्प—ऐसी जगह कहीं 'में' और कहीं 'पर' भी लाते हैं।

६. कारण, साथ, द्वारा, चिह्न, विकार, उत्पत्ति और निषेध में। जैसे—आलस्य **से** वह समय पर न आया। दया से हृदय पिघल गया। वह गर्मी **से** रुख तमतमाया हुआ, वह रोने से मुँह भरभराया हुआ। घृत और दुग्धाभाव से दुर्बल हुए हम रो रहे। नदी में रहना मगर **से** बैर। छाती **से** छाती मिलाओ। राजा मन्त्री से सलाह करते हैं। आप पुस्तकें रख जाइये, अपने नौकर **से** भेज दूँगा। अक्षरों **से** लेखक पहचाने जाते हैं। जटा **से** साधु जान पड़ता है। वह एक आँख **से** काना और एक पाँव **से** लँगड़ा है। कपास, ऊन आदि **से** वस्त्र बनते हैं। विद्या **से** ज्ञान होता है। आप-**से**-आप कुछ नहीं हो सकता। जितना भाग्य में होगा उतना ही मिलेगा, दौड़-धूप **से** क्या लाभ? झगड़ने **से** क्या प्रयोजन?

विकल्प—साथ, निषेध, विकार इत्यादि अर्थ में '**से**' के बदले कभी-कभी सम्बन्ध का चिह्न भी आता है। जैसे—उसने उनपर क्रोध **की** दृष्टि **की**। झगड़े **का** क्या प्रयोजन? एक आँख **का** काना। एक पाँव **का** लँगड़ा। आँखों **के** अन्धे नाम नैनसुख। कानों **के** बहरे।

'**से**' के बदले कहीं-कहीं 'में' भी आता है। जैसे—ऐसा काम करो जिसमें यश मिले।

नोट—हेतु, कारण, प्रकार इत्यादि शब्दों के साथ भी **से** चिह्न आता है। जैसे—इस हेतु **से** वह समय पर नहीं पहुँचा। इस कारण **से** उसका निवारण मैं नहीं कर सकता। इस प्रकार **से** तुम्हारा रहना ठीक नहीं।

७. अपादान (विभाग) में। जैसे—वृक्ष **से** पत्र गिरते हैं। वह ऐसे गिरा जैसे आकाश **से** वज्र गिरे।

८. पूछना, दुहना, जाँचना, कहना, रींधना, (पकाना) इत्यादि क्रियाओं के गौण कर्म में। जैसे—आप**से** पूछता हूँ। ग्वाला गाय **से** दूध दुहता है। दरिद्र धनी **से** जाँचता है। मोहन आप**से** कई बातें कह चुका। रसोइया चावल **से** भात पकाता है।

विकल्प—कहीं '**से**' के बदले '**को**' भी लाते हैं, परन्तु कहीं-कहीं मुख्य कर्म को लोप करना पड़ता है।

९. भिन्नता, परिचय, अपेक्षा, आरम्भ, परे, बाहर, रहित, हीन, दूर, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, अतिरिक्त, लज्जा, बचाव, डर, निकलना, इत्यादि और इन्हीं शब्दों के अर्थवाले दूसरे शब्दों तथा दिग्वाचक शब्दों के योग में। जैसे—वह उस**से** भिन्न है। राम अपने भाइयों **से** अलग है। उसको इन सिद्धान्तों **से** अच्छा परिचय है। धन **से** विद्या श्रेष्ठ है। बुद्धिमान शत्रु बुद्धिहीन मित्र **से** उत्तम है। उस**से** तो वह पशु भला जो काम सैकड़ों आता है। गंगा **से** हिमालय तक और कोशी **से** गण्डक तक मिथिला देश है। घर **से** बाहर तक खोज डाला। घर **से** परे वन है। अमेरिका समुद्र **से** परे है। देश **से** बाहर भी जाया करो। ऐ अटकल और ध्यान **से** बाहर, जान **से** और पहचान से बाहर। यह विद्या **से** रहित है। ईश्वर दोषों **से** रहित हैं। विद्या **से** हीन मनुष्य और पशु में भेद नहीं। मँझधार **से** किनारा दूर है। रहते हैं मुझ**से** दूर-दूर आठ पहर अलग-अलग। मुझ**से** आगे। राम से पीछे। कृष्ण से ऊपर। मोहन से नीचे। उस जाति **से** अतिरिक्त वह जाति है। गुरु से लज्जा क्या! तुम्हें यारों से शर्माना पड़ेगा? दुष्टों से सदा बचते रहना। वह सिंह से बाल-बाल बच गया। मैं तुमसे क्यों डरने लगा? ईश्वर से डरो। अब आपसे भय होता है। लोगों को मैदान से निकाल दो। दूध से घी निकाला जाता है। घर से दक्षिण नदी बहती है।

विकल्प—आगे, पीछे, ऊपर, नीचे इत्यादि और दिग्वाचक शब्दों के योग में से के बदले सम्बन्ध का चिह्न भी आता है।

१०. स्थान और समय की दूरी बताने में। जैसे—जनकपुर यहाँ से चार कोस है। पटना गया से प्रायः ६० मील दूर है। आज से कितने दिन बाद आप आइयेगा? आज से हजार वर्ष पहले भारत की क्या दशा थी?

११. क्रियाविशेषण के योग में। जैसे—कहाँ से टपक पड़े? किधर से टहल कर आये? बाहर से भीतर गये।

१२. पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में। जैसे—पेड़ से उसने बन्दूक चलाई (पेड़ पर चढ़कर)। कोठे से देखो तब दीख पड़ेगा (कोठे पर चढ़कर)।

१३. निर्धारण (निश्चय) में। जैसे—मोहन कौम से हिन्दू है।

विकल्प—उसी अर्थ में 'से' अधिकरण के चिह्नों के आगे भी आता है। ऐसी अवस्था में 'से' कभी गिर भी जाता है। जैसे—इन विद्यार्थियों में से

किसको चुनते हो ? दूर कर बालों को सिर पर से। पुरुषों में रामचन्द्र उत्तम थे। पत्थरों में हीरा बहुमूल्य है।

नीचे लिखे वाक्यों में 'से' चिह्न प्रायः लुप्त रहता है, परन्तु विशेष अर्थ में कहीं-कहीं लाते भी हैं। द्वारा शब्द के आगे 'से' कभी नहीं लाते। जैसे—

इस कारण उसका निवारण मैं नहीं कर सकता। इस हेतु वह समय पर नहीं आ सका। इस प्रकार तुम्हारा रहना ठीक नहीं। इस तरह आप क्यों बोलते हैं ? मन्त्री के द्वारा राजा से भेंट हुई। मैं तुम्हें जूते-जूते मारूँगा। चावल किस भाव बेचते हो ? नौकर के हाथ पुस्तकें भेजी थीं। न आँखों देखा, न कानों सुना। वे दाँतों अँगुलियाँ काटने लगे। खिल गई मेरे दिल की कली आप-ही-आप। तुमने अपने हाथों ये बखेड़े खड़े किये। बच्चा घुटनों चलता है। अब तेरे किये क्या होगा। किसके भरोसे लड़ूँ ? आपके सहारे मेरे दिन कटते हैं। साँप पेट के बल चलता है। ठंढे-ठंढे सिधारिये घर को। दूधन नहाओ पूतन फलो। किसके मुँह खबर भेजी है ? उसकी ओर तुम रहो।

में और पर *

नीचे लिखी अवस्थाओं में ऊपर के चिह्न आते हैं—

१. अधिकरण में। जैसे—तिल में तेल है। पेड़ पर पत्ती है। पाठशाला में विद्यार्थी है। छप्पर पर चिड़ियाँ हैं। ईश्वर में मन लगा है।

२. निर्धारण, कारण, भीतर, भेद, मूल्य, विरोध, अवस्था और द्वारा अर्थ में। जैसे—पशुओं में हाथी बड़ा है। पहाड़ों में हिमालय सबसे ऊँचा है। ऐसा काम करो, जिसमें वह कार्य सिद्ध हो। आप कितने दिनों में पहुँचेंगे ? समुद्र में अथाह जल है। शिव और विष्णु में भेद नहीं। तुमने यह पुस्तक कितने में (पर) ली है ? पैर में जूता, हाथ में कड़ा, गले में माला। रामजी के ध्यान में लीन रहो। रामजी ने एक ही बाण में उसका भवबन्धन काट दिया।

नोट—निर्धारण, कारण और मूल्य बताने में दूसरे चिह्न भी लाते हैं। (पीछे देखो)।

* 'पै' भी अधिकरण का चिह्न है, परन्तु इसका प्रयोग गद्य में कदाचित् ही होता है।

३. अनुसार, सातत्य, दूरी, ऊपर, संलग्नता और अनन्तर के अर्थों में और वार्तालाप के प्रसंग में 'पर' चिह्न लाते हैं।

जैसे—नियम पर काम करो। पत्र पर पत्र भेजते गये, कुछ उत्तर नहीं? यहाँ से चार कोस पर। घोड़े पर चढ़ो। द्वार पर खड़े रहो। इसपर वह क्रोध से बोला।

४. गत्यर्थ धातुओं के साथ। जैसे—मोहन घर पर गया। मैं तुम्हारी शरण में आया।

विकल्प—मोहन घर को गया। मोहन घर गया। मैं तुम्हारी शरण को आया। मैं तुम्हारी शरण आया। (ऐसे वाक्य भी बोले जाते हैं)।

नीचे लिखे वाक्यों में, 'में' या 'पर' चिह्न प्रायः लुप्त रहता है, परन्तु विशेष अर्थ में कहीं-कहीं लाते भी हैं।

जैसे—इस समय तुम चले जाओ। सीधे जाओ, दायें-बायें कभी मत झाँको। मैं आपके पाँव पड़ता हूँ। इस जगह रहना ठीक नहीं। आपको क्या हाथ लगा? मुझे पढ़ना-लिखना कुछ काम नहीं आया। एक ही बार इतना खर्च मत करो। वह आठों पहर ईश्वर का ध्यान करता है। जीते-जी सुख नहीं मिला। आने सेर चावल कब मिलेगा? प्यारे दीनदयाल के भनक पड़ेगी कान। आँखों देखा खुसरू कहे। सामने रहो।

नोट—सम्बन्धबोधक अव्ययों के आगे भी अधिकरण के चिह्न लुप्त रहते हैं। (पीछे देखो)।

सम्बन्ध और सम्बोधन के चिह्न

१. सम्बन्ध का चिह्न

का

'का' चिह्न नीचे लिखी अवस्थाओं में आता है—

१. सम्बन्ध में। * जैसे—तुलसीदास की † रामायण। राम का भक्त।

---

* 'सम्बन्ध' कई प्रकार के होते हैं—कर्तृकर्मभाव, सेव्यसेवकभाव, जन्यजनकभाव, अङ्गाङ्गिभाव, स्वस्वामिभाव, कार्यकारणभाव, इत्यादि (उदाहरण ऊपर देखो)।

† आकारान्त विशेषण के समान 'का' भी 'के' में बदलता है तथा सर्वनाम में दूसरे रूपों में भी आता है। जैसे—अच्छा घोड़ा—राम का घोड़ा, अच्छी घोड़ी—राम की घोड़ी, अच्छे घोड़े—राम के घोड़े, मेरा घोड़ा—मेरी घोड़ी, इत्यादि।

राम का पुत्र । हाथ की अँगुली । रानी की दासी । पीतल का थाल । स्वर्ण का भूषण । मिट्टी का घड़ा ।

२. सम्पूर्णता, मूल्य, समय, परिमाण, व्याप्ति, अवस्था, दर, बदला, केवल, स्थान, प्रकार, योग्यता, शक्ति के साथ, भविष्यत्, कारण, आधार, निश्चय, शुद्धता, भाव, लक्षण और शीघ्रता आदि में । जैसे—सब-के-सब चले गये । सात रुपये की थाली । एक दिन की छुट्टी । एक हाथ का साँप । चार दिनों की चाँदनी फिर अँधेरी रात । एक वर्ष का बच्चा । इस भारत में कभी आठ मन के भाव से चावल बिकता था । राजा का रंक, राई का पर्वत । घर के घर ही में हो जाय फैसला दिल का । खुली की खुली रह गईं आँखें सबकी । बहुत अरमान ऐसे हैं कि दिल के दिल में रहते हैं । मिथिला की नारियाँ । अचम्भे की बात सुनने योग्य होती है । दुःख की बोली दुःख देती है । यह पानी पीने का है । मैं बूढ़ा हो गया, अब मैं चलने-फिरने का नहीं । यह बात अब ठहरने की नहीं । अब यह विपत्ति की घड़ी टलने की नहीं । गया तो फिर यह नहीं मेरे हाथ आने का । राह का थका बटोही गाढ़ी नींद सोता है । समुद्र की मछलियाँ बड़ी होती हैं । सच्चे का सच्चा और झूठे का झूठा आज ही आप जान सकेंगे । दूध का दूध और पानी का पानी । तेरी महिमा अपार, गुण गावे संसार । दिन का सोना और सदा एक वस्तु का खाना अच्छा नहीं । बात का ढीला, मुँह का हलका । शरीर का कोमल । बात की बात में निकल आई । रेलगाड़ी आन की आन में आ पहुँची ।

नोट—आधार में 'का' के पूर्व 'में' और 'पर' तथा लक्षण में 'का' के बदले 'से' भी लाते हैं । जैसे—समुद्र की मछलियाँ । घोड़े पर का आसन । मुँह से हलका । शरीर से कोमल ।

३. तुल्य, अधीन, समीप, ओर, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, बाहर, बायाँ, दाहिना, योग्य, अनुसार, प्रति, साथ इत्यादि और इनके अर्थ-वाची अन्य शब्दों तथा अव्ययों के योग में । जैसे—राम के तुल्य । कर्म के अधीन । घर के निकट । नदी की ओर । आपके आगे । मेरे पीछे । आपके ऊपर । घर के नीचे । पाठशाला के बाहर । राम का बायाँ । तुम्हारे योग्य । कहने के अनुसार । उनके प्रति । पति के साथ । तुम्हें माता कब की पुकार रही है । वह कहाँ का कहाँ गया ।

विकल्प—ऊपर के कई शब्दों के योग में 'से' भी आता है। जैसे—तुम्हें माता कबसे पुकार रही है। वह कहाँ से कहाँ गया (शेष उदाहरण पीछे-देखो)।

४. विशेष्य उपमान हो तो उपमेय में। जैसे—दया का समुद्र। प्रेम का बन्धन। प्रेम की गाँठ। कर्म की फाँस।

५. कभी-कभी गौणकर्म में। जैसे—कोई गधा तुम्हारे लात मारे।

६. उन शब्दों के योग में जो कृदन्तीय शब्दों के कर्त्ता या कर्म के अर्थों में आ सकें। जैसे—उसीके आने से तुम भागे जाते हो (वह आया, इसीलिये तुम भाग जाते हो)। क्या हुआ जग के रूठे से ? तेरे पढ़ने से मुझे नहीं आवेगा। तुम्हारी कतरब्योंत नहीं जाती। रोटी के खाते ही जी मचलाने लगा। (रोटी खाई, इसीलिये जी मचलाने लगा)।

नोट—(१) कभी-कभी सम्बन्धी लुप्त रहता है। जैसे—तुम सबकी सुन लेते हो, लेकिन अपनी कुछ भी नहीं कहते। मन की मन ही में रहे। यह कभी नहीं होने का। मैं तेरी न सुनूँगा। ऐसा तो न हो कि तकरार की ठहरे।

(२) सम्बन्ध का चिह्न लुप्तावस्था में कदाचित् ही मिलता है। हाँ, समास करने पर लुप्त हो जाता है।

२. सम्बोधन के चिह्न

हे, ऐ, अरे, अरी, इत्यादि

हे, ऐ, अरे, अरी इत्यादि चिह्न, किसीको बुलाने, धिक्कारने अथवा हर्ष, शोक इत्यादि के साथ उसके नाम लेने में आते हैं। हमने ये चिह्न विस्मयादिबोधक के पाठ में रख दिये हैं, परन्तु ये अन्य विस्मयादि चिह्नों से बहुत भिन्न हैं।

अरी, री इत्यादि को केवल स्त्रीलिंग के सम्बोधन में लाते हैं। जैसे—अरी लड़की, री पगली, इत्यादि।

सम्बोधन बिना चिह्न के भी आता है। जैसे—राम ! कुछ भी तो सुध लो। लड़के, क्या करते हो ?

कारकादि के चिह्न-भेद से अर्थभेद

एक ही शब्द में भिन्न-भिन्न चिह्नों के लगाने से अर्थ में भेद पड़ता है। नीचे ऐसे थोड़े से उदाहरण दिये जाते हैं--

{ उसके बहन नहीं है = उसको बहन नहीं है।
{ उसकी बहन नहीं है = दूसरे की बहन है।

{ चार दिनों पर आये = चार दिनों के बाद आये।
{ चार दिनों में आये = चार दिनों के भीतर आये।

{ लंका भारत से दक्षिण है = भारत के बाहर।
{ कुमारी अन्तरीप भारत के दक्षिण है = भारत का अङ्ग।

विभक्तियाँ शब्दों से मिलकर लिखी जायँ या अलग ?

हिन्दी भाषा में कारक की विभक्तियों का झगड़ा * बहुत दिनों से चला आ रहा है। बहुत-से विद्वानों की राय है कि विभक्ति शब्दों के साथ मिलाकर लिखी जाय, किन्तु इसके विपरीत बहुत लोग अलग ही लिखना पसन्द करते हैं। नीचे हम दोनों पक्षों की दलीलें देते हैं—

(क) साथ लिखने के पक्ष में—

१. संस्कृत में विभक्ति शब्द के साथ मिलाकर लिखी जाती है। जैसे—'रामस्य' से यदि शब्द हटा दिया जाय, तो विभक्ति का खास कुछ अस्तित्व नहीं रहता। सिर्फ 'ने' या 'रा' कुछ खास अर्थ नहीं रखता। ऐसी अवस्था में संस्कृत की तरह हिन्दी में विभक्ति को साथ लिखना ही उचित है।

२. प्रत्यय अपना खास अर्थ रखते हैं और विभक्ति की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र होते हैं, तो भी वे शब्द में मिलाकर लिखे जाते हैं। जैसे—'चूड़ीवाला'। फिर विभक्तियाँ भी शब्द के साथ मिलाकर क्यों न लिखी जायँ ?

३. उपसर्ग भी शब्द के साथ मिलाकर लिखे जाते हैं। जैसे–विजय, पराजय। तब विभक्ति ने क्या बिगाड़ा है जो शब्दों से अलग रक्खी जाय ?

४. लिंग, वचन और क्रिया का परिवर्तन करने के लिये जिन विभक्तियों का व्यवहार होता है, वे शब्दों में सम्मिलित हो जाती हैं।

* इसका पूरा-पूरा विवरण जानने के लिये पं० गोविन्दनारायण मिश्र का 'विभक्ति-विचार' पढ़ना चाहिये।

जैसे—गुरुआनी, लड़कियाँ, पढ़ीं, इत्यादि। इसी तरह कारक-निर्देश करने के लिये जो विभक्तियाँ आती हैं उन्हें भी शब्दों के साथ ही मिलाकर लिखना उचित है।

५. जब एक पद (समास) बनाने के लिये भिन्न-भिन्न पदों को एक साथ मिला देते हैं। जैसे—('राजकुमार', 'हरिमन्दिर', इत्यादि)। तब एक पद बनाने के लिये अङ्गाङ्गी-सम्बन्धी शब्द और विभक्ति को **एक साथ** मिलने में क्या आपत्ति है?

६. आर्थिक दृष्टि से और लाघव के विचार से भी विभक्तियों का साथ-साथ लिखना ही उपयुक्त जान पड़ता है। पं० रामदास गौड़ का भी यही मत है।

(ख) पृथक् लिखने के पक्ष में—

१. विभक्तियाँ अव्यय हैं और उन्हें शब्दों से अलग रखना ही अच्छा है। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी भी इसी के पक्ष में हैं।

२. यदि शब्द और विभक्ति के बीच 'ही' रखते हैं तो 'न' को फुटका देते हैं। जैसे—'राम ही ने धनुष तोड़ा।' इससे सिद्ध होता है कि विभक्ति को अलग रखने में कोई हर्ज नहीं।

३. स्पष्टता के विचार से भी विभक्ति का पृथक् रहना अच्छा है। 'उसने चावल खाये' यह वाक्य दो अर्थों का हो जाता है। परन्तु 'ने' को अलग लिखने से यह गड़बड़ी नहीं होती।

नोट—विभक्ति अलग रहे या साथ-साथ, अर्थ एक ही निकलेगा। तब रही लेखक की रुचि और सुविधा की बात। हाँ, सर्वनाम से विभक्तियों को अलग लिखना कभी उचित नहीं। हाँ, सम्बोधन की विभक्तियाँ अलग ही रहती हैं शेष विभक्तियों के विषय में हम पं० जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का यह दोहा लिख देना पर्याप्त समझते हैं—

> "कहुँ विभक्ति संगहि रहत, कहूँ विलग हू होय।
> दोउन को सम करि लिखौ, दूर लिखहु जनि कोय॥"

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे वाक्यों में कारक इत्यादि का कौन चिह्न किस अर्थ में आया है?

वामन से बलि छला गया। हो चुका भला छोड़ भी तो दो। राजा ने ब्राह्मण को वस्त्र दिये। छिपे हो कौन से पर्दे में बेटा? मुझे मिठाई अच्छी

लगती है। कायर को क्यों डरें ? राम ने उसे बड़ी मार मारी। मेरी गैया को कौन दुहेगा ? उनसे मुँह छिपाने को क्या पड़ा है ? आपको सुख हो। आपको प्रणाम। राम ने बाण से बालि को मारा। मैं नौकर से भेज दूँगा। इससे बढ़कर कोई पाप नहीं। उसे सुन्दर वेश से देख खुशी हुई। इससे क्या काम, मुझसे कहो ? जब पाँच बरस का बालक हुआ। छः-छः पसेरी की बात। विपद् की घड़ी टलने की नहीं। मुँह-माँगा धन पाता है। उसके बहन नहीं है। माँ कब की पुकार रही है। कवियों में कालिदास बड़े हैं। मैं उनसे किस बात में कम हूँ ? हाथ-पैर तो कहने ही में नहीं हैं। एक ही तीर से काम तमाम किया।

२. नीचे लिखे वाक्यों में कारक आदि के चिह्न कहाँ-कहाँ लुप्त हैं ? क्यों ?

मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। वह यह बात कहता है। वे बार-बार गिना किये, हाथ कुछ न लगा। मैं अपना-सा मुँह लेकर चल दिया। राम कलकत्ते गया। मैं तुम्हें जूते-जूते मारूँगा। दूधन नहाओ पूतन फलो। अब तेरे किये क्या होगा ? वह आठों पहर ईश्वर का ध्यान करता है। आँखों देखा खुसरू कहे।

३. पाँच ऐसे वाक्य कहो, जिनमें सम्बन्धी लुप्त हों। ४. पाँच ऐसे वाक्य कहो, जिनमें कर्म चिह्नरहित हों। ५. चार ऐसे वाक्य कहो, जिनमें करण चिह्न-रहित हों। ६. तीन ऐसे वाक्य कहो, जिनमें अधिकरण चिह्नरहित हों। ७. नीचे लिखे प्रत्येक जोड़ के वाक्यों में क्या भेद है ?

उसके बेटी नहीं है। उसकी बेटी नहीं है।
दो दिनों में आये। दो दिनों पर आये।
घोड़ा कितने को लाये ? घोड़ा कितने में लाये ?

८. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

उसने पीछे हो लिया। सीता ने एक ग्रन्थ लाई है। जब मैंने आपके यहाँ जाकर बैठा तब आपने बोला—"कहो भाई, किधर पर आये हो।" राम ने दिनभर बैठे-बैठे लिखा किया। वह दिनभर सो डाला। जब उसने सोया, राम रो दिया। तुममें यह चाल नहीं शोभती। उनके ओर तुम रहो। राम का बेटी आती है। सीता की बाप अच्छा है। वह सात रुपये लिये तब पुस्तक लाई। कल पानी ने बरसा था, इसलिये मैंने घर से बाहर नहीं निकला।

६. शून्य चिह्न का प्रयोग उक्त कर्त्ता, उक्त कर्म, मुख्य कर्म, विधेयभाव, सम्बोधन और क्रियाविशेषण में वाक्य बनाकर दिखाओ।

१०. 'लाना' क्रिया के साथ चिह्न का प्रयोग नहीं होता, क्यों ?

११. किन-किन सकर्मक क्रियाओं के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग विकल्प से होता है ?

१२. 'को' और 'से' के बदले सम्बन्ध के चिह्न का प्रयोग कब होता है ?

१३. अनुक्तकर्म में व्यापार कर्तृवाचक और विनिमयद्योतक भाव में 'को' का प्रयोग करो।

१४. अनुक्तकर्त्ता में, प्रकृतिबोध में, उत्पत्ति में, भिन्नता बताने में और निर्धारण में 'से' का प्रयोग करो।

१५. 'पर' का प्रयोग कहाँ-कहाँ होता है ? एक-एक उदाहरण दो।

पाँचवाँ अध्याय

समासप्रयोग

१. द्वन्द्व समास में स्त्रीलिङ्ग, मान्य और अल्प स्वरवाले शब्द प्रायः पहले आते हैं। जैसे—राईनोन, राजारानी, रामलक्ष्मण, सीताराम, राधाकृष्ण, दालरोटी, इत्यादि।

द्वन्द्व समास से बने समस्त शब्द का लिङ्ग, अन्तिम खण्ड के अनुसार होता है, परन्तु जिसमें पूर्व खण्ड की प्रधानता हो, उसका लिङ्ग उसी खण्ड के अनुसार होता है। जैसे—आज ही हमारे राजारानी आये हैं।

नोट—(१) "कुत्ते-बिल्ली खाये डालते हैं। नरनारी आये हैं। पिता-माता अच्छे हैं। कितने दिन-रात गुजर गये।" इत्यादि वाक्य भी प्रयोग में हैं।

(२) हिन्दी में एक दशा के कई शब्दों को जब द्वन्द्व समास की रीति पर लाते हैं तब अन्तिम शब्द को छोड़, अन्य शब्दों के आगे कारकादि के चिह्नों को कभी अकेले और कभी चिह्न संस्कारों के साथ लोप कर देते हैं। ऐसी दशा में 'और' इत्यादि समुच्चायक का भी लोप होता है, परन्तु प्रायः अन्तिम शब्द के पहले नहीं। जैसे—सोनपुर का मेला देखने योग्य है। वह पुरुषों से और स्त्रियों से और बालकों से और बूढ़ों से भरा रहता है तथा वहाँ हाथियों का और घोड़ों का तो ठिकाना ही नहीं रहता—**सोनपुर का मेला देखने योग्य है। वह पुरुषों, स्त्रियों, लड़कों और बूढ़ों से भरा रहता है तथा वहाँ हाथी-घोड़ों का तो कुछ ठिकाना ही नहीं रहता।**

३. तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु के लिङ्ग अन्तिम अंश के अनुसार और बहुव्रीहि के विशेष्य के अनुसार होते हैं। जैसे—गंगाजल मीठा है। महारानी चली गईं। विक्रमादित्य की सभा में नवरत्न थे। स्वच्छतोया नदी कल-कल शब्द करती हुई बह रही है *।

नोट—(१) बहुव्रीहि के समस्त शब्द विशेषण होते हैं, इसलिये उनके परे विशेषण अर्थ में किसी प्रत्यय का प्रयोग नहीं हो सकता अतएव **'नीरोग' और 'निरपराध'** इत्यादि के बदले **नीरोगी, निरपराधी** इत्यादि लिखना अशुद्ध है।

(२) बहुव्रीहि के समस्त शब्द प्रायः दीर्घान्त नहीं होते। अतः, निराशा, हताशा इत्यादि के बदले निराश, हताश इत्यादि होंगे।

(३) अव्ययीभाव का **समस्त शब्द प्रयोग में अव्यय है**। जैसे—वह मेरे पास प्रतिदिन आता है। मैंने भगवान् की पूजा यथाशक्ति की।

(४) पदों में समास हो जाने पर यदि सन्धि भी हो सके तो वे प्रायः मिलाकर लिखे जाते हैं। जैसे—देशोन्नति, शिक्षानुसार, इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

१. द्वन्द्व समास के पूर्वखण्ड में कैसे शब्द आते हैं? उदाहरण दो। २. द्वन्द्व समास में से समस्त शब्द का लिङ्ग किस खण्ड के अनुसार होता है? उदाहरण दो। ३. बहुव्रीहि के समस्त शब्द के परे विशेष अर्थ में कोई प्रत्यय लग सकता है या नहीं? उदाहरण दो। ४. अव्ययीभाव समास का समस्त शब्द प्रयोग में क्या होता है? वाक्य बनाकर दिखाओ।

५. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

राम सीता वन चले गये। नोनराई लाओ। आपकी राजारानी कहाँ रहता है। सीतामढ़ी का मेला बहुत-सा घोड़ा, हाथी, बैल और मनुष्य से भरा रहता है। मेरे आज्ञाअनुसार चलो। नीरोगी मनुष्य के आनन्द का ठिकाना नहीं।

द्विरुक्तिप्रयोग

१. संज्ञा की द्विरुक्ति से प्रत्येक का बोध होता है। जैसे—घर-घर देखा एके लेखा।

---

* यौगिक शब्दों के लिंग 'लिंगप्रकरण' में भी दिये गये हैं।

यदि संज्ञा की द्विरुक्ति के बीच में 'ही' आवे तो **केवल या अभ्यन्तर** का बोध होता है। जैसे—राम ही राम पुकारो। मन ही मन सोचो। यदि बीच में सम्बन्ध का कोई चिह्न आवे तो लगातार या अत्यन्त का बोध होता है। जैसे—दल के दल आ पड़े। गधों का गधा। यदि द्विरुक्ति का पहला खण्ड केवल बहुवचन का संस्कार रक्खे तो लगातार का बोध होता है। जैसे—यह चीज हाथोंहाथ पहुँच गई। बात कानोंकान फैल गई। बातों-बात में भेद खुल गया।

२. **विशेषण की द्विरुक्ति से अत्यन्त और समस्त** का बोध होता है, परन्तु संख्या की द्विरुक्ति से प्रत्येक का अर्थ निकलता है। जैसे—मीठे-मीठे बोल बोलो। एक-एक आम दो। सबके दो-दो बेटे हुए।

यदि एक से दूसरे को उत्कृष्ट या निकृष्ट बताना हो तो विशेषण की द्विरुक्ति के बीच में 'से' चिह्न लाते हैं। जैसे—अच्छे से अच्छे शिक्षक मेरे स्कूल में हैं। समुदाय के अर्थ में, संख्या की द्विरुक्ति बीच में सम्बन्ध का चिह्न लेती है। जैसे—दोनों के दोनों लड़के मूर्ख निकले।

३. **क्रिया और अव्यय की द्विरुक्ति से बराबर, निश्चय और धीरे-धीरे** का बोध होता है। जैसे—सीता रो-रो कहने लगी। **जब-जब** मैं दूध लाता हूँ, बिल्ली **पी-पी** जाती है। होते-होते वह पहुँच गया। **रगड़ते-रगड़ते** आग निकल गई। **जब-जब** धर्म की हानि होती है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं। **नये-नये** वृक्ष **ला-लाकर** लगाये गये।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे वाक्यों को द्विरुक्ति के अनुसार ठीक करो—

सभी घरों में देखता हूँ एक ही बात है। लगातार रगड़ने से आग निकल आई। सात आम इसको, सात आम उसको, सात उसको इसी प्रकार प्रत्येक लड़के को आम दिये। यह चीज इस हाथ से उस हाथ, उस हाथ से उस हाथ, उस हाथ से उस हाथ पहुँचा दी गई।

लिङ्गप्रयोग

जोड़वाले शब्दों को छोड़ शेष शब्दों के लिङ्गसूचक नियम नीचे दिये जाते हैं—

पुँल्लिङ्ग होते हैं—

१. थोड़े-से प्राणिवाचक शब्द—

चीलर, तीतर, नीलकण्ठ, बेंग, झींगुर, काग, भेड़िया, छछून्दर, कौआ, चीता, झिंगा, पत्ती, पंछी, पिल्लू, कृमि, उकाव, गिद्ध, घड़ियाल, गोह, बाज, लाल, सारस, पण्डुक, मेढ़क, व्यक्ति, प्राणी।

नोट—(१) नीचे लिखे शब्द दोनों लिङ्गों के लिये हैं, परन्तु पुँल्लिङ्ग ही बोले जाते हैं—बछरू (बाछा-बाछी), पठरू (पाठा-पाठी), शिशु (लड़का-लड़की), कुतरू (कुत्ता-कुत्ती)। दम्पति, (पति-पत्नी), परिवार, इत्यादि।

(२) बुलबुल शब्द पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों में बोला जाता है।

२. मटर, उर्द, जौ, गेहूँ, धान, बूट, चना, गन्ना, तिल, धनियाँ नीबू, इत्यादि।

३. संस्कृत के नपुंसक और पुँल्लिङ्ग शब्द।

अपवाद—जय, देह, सन्तान, वास, गन्ध, दाह, सुगन्ध, शपथ, तान, औषध, इन्द्रिय, पुस्तक, उपाधि, राशि, विधि, मृत्यु, ऋतु, वस्तु, आय, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग हैं।

वैकल्पिक—विनय, विजय, समाज, तरङ्ग, सामर्थ्य, कुशल, वायु, पवन, अग्नि इत्यादि शब्द प्रयोग में स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्ग दोनों हैं।

४. अकारान्त और आकारान्त शब्द * —

कीचड़, बाल, मुँह, कन्धा, जाड़ा, पहिया, इत्यादि।

अपवाद—(१) आँच, बाँह, आँव, बूँद, सौंह, आँख, दूब, नाक, साँस, लहर, सड़क, घास, दाल, हींग, मिर्च, ईंट, लार, कींच, भौंह, मूँछ, काँख, शक्कर इत्यादि शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(२) लघुतासूचक 'इया' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे—डिबिया, पिढ़िया, हँड़ियाँ, खटिया, पटिया, इत्यादि।

(३) संस्कृत में आत्मन्, महिमन् इत्यादि शब्द पुँल्लिङ्ग हैं। इनसे बने आत्मा, महिमा इत्यादि शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग में व्यवहृत हैं, परन्तु कोई-कोई आत्मा को पुँल्लिङ्ग भी लिखते हैं।

५. उर्दू ढंग के 'आब' भागान्त, बकारान्त और शकारान्त शब्द—

---

* इस नियम में संस्कृत के नपुंसक और पुँल्लिङ्ग से बने तद्भव भी रक्खे गये हैं।

गुलाब, जुलाब, हिसाब, कबाब, खिजाब, जवाब, पेशाब, नसीब, मजहब, मतलब, ताश, गोश, नेश, जोश, इत्यादि।

अपवाद—शराब, किताब, राब, मिहराब, तलब, किमखाब, तरकीब, दाब, शब, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग हैं।

६. आव, त्व, पन, पा, आपा, पना और य प्रत्ययान्त शब्द—चढ़ाव, मनुष्यत्व, लड़कपन, बुढ़ापा, गुंडपना, राज्य, इत्यादि।

७. पहाड़ों, ग्रहों, दिनों, महीनों, नगों और धातुओं के नाम—विन्ध्य, चन्द्रमा, सोमवार, बैसाख, नीलम, सोना, इत्यादि।

अपवाद—धातुओं में चाँदी और पीतल स्त्रीलिङ्ग हैं।

८. **इ, ई, ऋ, ॠ, ऌ और ॡ** को छोड़ शेष अक्षरों के नाम।

९. स्त्रीलिङ्ग नियमों के अपवादवाले शब्द।

स्त्रीलिङ्ग होते हैं—

१. थोड़े से प्राणिवाचक शब्द—

लीख, उड़ीस, चील, भेंड़, बटेर, कोयल, मैना, हिल्सा, दीमक, श्यामा, चिड़िया, जूँई, तूती, जूँ, जोंक, अबाबील, सारू, लावा, गोरैया, कचबचिया इत्यादि।

२. मिर्च, मूँग, मसूर, अरहर, गाजर, दाख सरसों, घिया, इत्यादि।

३. संस्कृत के स्त्रीलिङ्ग शब्द—

दया, कृपा, आशा, माला, चन्द्रिका, इत्यादि।

अपवाद—'तारा' और 'देवता' प्रयोग में पुँल्लिङ्ग हैं।

४. अरबी के आकारान्त और 'त फ अ ई ल' के वजनवाले शब्द—जमा, हवा, दगा, सजा, दवा, दुआ, हया, खता, बला, रगा़, कज़ा, अदा, गिज़ा, वफा, तमन्ना, कीमिया, दुनिया, तस्वीर, तदवीर, तरकीब, तफसील, तक्सीर, तहरीर, इत्यादि।

अपवाद—'तावीज' पुँल्लिङ्ग है।

५. इकारान्त, तकरान्त तथा आस और इशभागान्त शब्द—रोटी, चिट्ठी, रात, छत, गत, पत, ताँत, नौबत, दौलत, प्यास, आस, मिठास, उचास, बख्शिश, कोशिश, इत्यादि।

अपवाद—पानी, घी, दही, जी, मोती, भात, दाँत, गात, गोत, मूत, सूत,

शर्बत, वक्त, दरख्त, कद, सुबूत, कोत, खत, खिल्लत, दस्त, गश्त, गोश्त, दस्तखत, बन्दोबस्त, निकास, इजलास, तख्त, भूत, प्रेत, इत्यादि पुँल्लिङ्ग हैं।

६. **आई, ता, वट, हट, न और कृदन्तीय शून्य प्रत्ययान्त शब्द**—लड़ाई, मित्रता, बनावट, आहट, चिकनाहट, कतरन, चालचलन, चलन, उलझन, चमक, पकड़, पूँछ, मारपीट, चालढाल, इत्यादि।

नोट—'चालचलन' को कोई-कोई पुँल्लिङ्ग लिखते हैं।

अपवाद—खेल, बिगाड़, बोझ, बोल, इत्यादि पुँल्लिङ्ग हैं।

७. **तिथियों, नदियों और नक्षत्रों के नाम**—

परिवा, दूज, तीज, गंगा, यमुना, अश्विनी, भरणी, इत्यादि।

अपवाद—'पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़' नक्षत्र पुँल्लिङ्ग हैं।

८. **इ, ई, ऋ, ॠ, और ऌ अक्षरों के नाम।**

९. **पुल्लिङ्ग नियमों के अपवादवाले शब्द।**

नोट—१. यौगिक शब्द का लिङ्ग उसके अन्तिम खण्ड के अनुसार होता है। जैसे—पाठशाला (स्त्रीलिङ्ग), दयासागर (पुँल्लिङ्ग), इत्यादि।

अपवाद—(१) परमात्मा, महात्मा इत्यादि पुंल्लिङ्ग हैं।

(२) यदि यौगिक शब्द का अन्तिम खण्ड अव्ययसूचक हो तो कोई-कोई उसका लिङ्ग प्रथम खंड के अनुसार लिखते हैं। जैसे—आज्ञानुसार (स्त्रीलिङ्ग), शिक्षा-निमित्त (स्त्रीलिङ्ग), प्रश्नानुसार (पुँल्लिङ्ग), इत्यादि।*

(३) अंगरेजी के बहुत-से शब्द हिन्दी में आये हैं, जिनमें बोतल, डेस्क, लालटेन, पेंसिल, रिपोर्ट, लैम्प, काँग्रेस, कानफरेन्स और लिस्ट इत्यादि स्त्रीलिङ्ग हैं।

(३) जो शब्द दोनों लिङ्गों में बोला जा सके उसे स्त्रीलिङ्ग और जिसके लिङ्ग में सन्देह हो उसे पुँल्लिङ्ग बोलना उचित है। (सितारेहिन्द)।

व्यवहार में आनेवाले स्त्रीलिङ्ग शब्द

अकारान्त शब्द—

अहेर, अकड़, अचकन, अटक, अद्रक, अधवाड़, अबेर, अलड़बलड़, अक्ल, अफयून (अफीम), अफवाह, अमावस, अम्ल, अनबन, अपील, अरहर,

---

* किन्तु समास की दृष्टि से ऐसे शब्दों को पुँल्लिग मानना ही उचित है।

आग, आतश, आमद, आब, आवाज, आस्तीन, आह, आपद, आँट, आड़, आन, आय, आँख, आब, आवभाव, आशीष, आसिख, इल्म, ईंट, ईख, शरीर, उठ-बैठ, उड़ान, उतरन, उरेब, उलझन, उमीद, उम्र, ऊख, एवज, ऐंठ, ओठ, ओझल, ओह, औलाद, औषध। कदर, कन्दील, कमर, कमान, कल, कलक, कलम, कचक, कचकच, कचपच, कचभच, कतरन, कमर, कसर, कमीज, कसम, कानफरेन्स, कांग्रेस, काँख, कालकूट, किमखाब, किताब, किश्मिश, किरण, किरीच, कूक, कोटर, कोयल, कोशिश, कौम, क्षेम। खरीद, खरभर, खबर, खस, खखार, खटक, खीज, खातिर, खाज, खाल, खाट, खान, खीझ, खीर, खीज, खींच, खुशामद, खैर, खैंच, खोरिश, ख्वाहिश। गच, गजल, गपशप, गरज, गर्ज, गर्द, गरदन, गर्दिश, गलबाँह, गवर्नमेंट, गहवर, गाज, गाँठ, गागर, गाजर, गुजर, गेंद, गोद, गोलमिर्च, गंध, गंधक। घास, घिन, घुमण्ड, घूस। चरब, चश्म, चलन, चश्मक, चखचुख, चपरास, चपेट, चमक, चकाचक, चकाचौंध, चटक, चटशाल, चटाक, चट्टान, चसक, चहकार, चहलपहल, चार, चाय, चाह, चाट, चाल, चालचलन, चादर, चाव, चालढाल, चिट, चिल, चिलवन, चीज, चुहुल, चुरुट, चूक, चूतड़, चैन, चाट, चोंच, चौक, चौंक, चौखट, चंग। छटाँक, छठ, छड़, छलक, छलाँग, छाँछ, छाँद, छाँटन, छाँह, छान, छाप, छार, छींट, छूट, छेम, छेक। जगह, जमीन, जड़, जड़ावर, जलन, जान, जागीर, जायदाद, जाजिम, जाँघ, जाँच, जीभ, जेब। झकोर, झपास, झलक, झाँक, झाँझ, झाड़न, झालर, झाड़, झिझक, झिड़क, झिलम, झीख, झील, झूमक, झूल, झोंक। टक, टकसाल, टक्कर, टंकोर, टनक, टर, टसक, टहल, टाँक, टाँग, टाँड़, टाप, टाल, टीस, टूट, टूम, टेक, टेम, टेर, टेव, टोक, टोकटाक, टोल। ठठक, ठमक, ठिठक, ठिठुर, ठुनुक, ठेक, ठीक, ठोकर, ठोर, ठौर, ठण्ढ, ठण्ढक। डकार, डग, डगर, डाढ, डार, डाह, डाँट, डींग, डीठ, डोर। ढलक, ढार, ढाल, ढोल, ढूँक, ढूक। तड़क, तड़प, तरफ, तमक, तरंग, तरफ, तलवार, तर्स, तलछट, तहसील, तकरार, तकलीफ, तदबीर, तफसील, तर्ज, तरकीब, तलब, तलाक, तसवीर, तहवील, तलाश, तकसीर, तनख्वाह, तहरीर, ताक, तान, तातील, तारीख, तारीफ, तालीम, तुपक, तोंद, तोल। थाह। दखल, दलील, दपट, दरगाह, दलक, दस्तावेज, दाल, दाढ़, दामन, दाख, दाव, दाद, दिक, दीठ, दीवार, दुम, दूर, दूकान, देह, देखरेख, देर, दोजख,

दोहर, दौड़, दौड़धूप। धधक, धमक, धरहर, धरोहर, धाँयधाँय, धाह, धाक, धुन, धूर, धूल, धूप, धूम, धौल। नकेल, नस, नकल, नजर, नजीर, नजम, नब्ज, नस्ल, नसर, नाक, नाव, नास, नालिश, निकल, निछावर, निमाज, निजाम, नींद, नेवर, नेयाज, नोकझोंक। पकड़, पलटन, परेड, परवरिश, परवाह, पलक, पहुँच, परस, पहचान, पत्तल, परख, पह, पहल, पखाल, पच्चक, पछाड़, पजेब, पटकन, पढ़न, पतवार, पागुर, पायल, पात, पाग, पिस्तौल, पीनक, पीठ, पीव, पीर, पुलिस, पुस्तक, पुकार, पूछ, पूँछ, पेठ, पैठ, पोय, प्यास। फटकन, फड़, फतह, फब, फबन, फस्ल, फाँक, फाँट, फिकिर, फीस, फूँक, फूट, फूटन, फुहार, फेंक, फेंट, फोंक, फौज। बक, बम, बहर, बहल, बहीर, बन्दूक, बकझक, बकबक, बटन, बवासीर, बहस, बख्शीश, बतास, बर्फ, बगल, बाँक, बाँह, बाछ, बाढ़, बात, बान, बार, बारूद, बाल-छड़, बास, बागडोर, बिध, बिलावल, बिहनौर, बीट, बीन, बुहारन, बुनियाद, बूझ, बेन, बैठक, बैस, बोतल, बौछार, बन्धेज। भगेल, भड़क, भस्म, भर, भनक, भरमार, भाँवर, भाँग, भाप, भीख, भीड़, भूख, भूल, भेंट। मटक, मढ़न, मरिच, मरोड़, मलार, मसक, महक, मदद, मस्जिद, मसनद, महताब, मलमल, मंजिल, मजलिस, माँग, माँद, मालिश, मार, मिठास, मिर्च, मीच, मीयाद, मीजान, मीनार, मुहिम, मुराद, मुश्किल, मुहनाल, मुश्क, मुहर, मूँग, मूँछ, मूँज, मेंड़, मेहराब, मेज, मेख, मेकदार, मेकराज, मोच, मौज, मंजिल। याद। रगड़, रपट, रसीद, रहकल, रहट, रहन, रहाइस, रसद, रकम, रग, रविश, राख, राव, राल, राब, रास, राह, राय, रिस, रिपोर्ट, रीझ, रीढ़, रीस, रुच, रूह, रूबकार, रेड़, रेख, रेल, रेलपेल, रेह, रोआस, रोक, रोकड़, रोकन, रोर। लकीर, लचक, लट, लटक, लड़, लताड़, लप, लपक, लपेट, ललक, लहक, लहकावर, लहर, लहर-बहर, लगाम, लाज, लाद, लूह, लार, लाश, लाठ, लाह, लाग, लीक, लीद, लू, लूक, लूख, लूह, लेव, लोटन, लोथ, लौंग। वयस, वजह, वारिश, वार, विध, विजय। शक्ल, शमशेर, शर्म, शव, शराब, शक्कर, शरण, शाल, शाम, शाहराह, शिकार। सकुच, सटक, सटल, सटासट, सड़क, सड़न, समझ, समेट, सरकार, सम्हाल, सहन, समाद, सदन, सहत, सलाह, साँक, साँकर, साँग, साँझ, साख, साध, सान, साँस, साजिश, सिनक, सिरफोड़ौवल, सिफारिश, सींक, सीख, सीम,

सुगन्ध, सुट्टकन, सुड़प, सुध, सुरंग, सुलह, सूज, सूझ, सूँढ़, सूजन, सैन, सोंध, सोंठ, सौंफ, सौगन्ध, सौंह। हड़, हरताल, हरावल, हल-चल, हद, हाँक, हाट, हिर्स, हीक, हैकल, होड़, हौल, हौस।

आकारान्त शब्द—

अदा, अंगिया, अँटिया, अढ़ैया, अर्चा, आत्मा। इस्तीफा। उखड़ा। कला, कगारा, कठिया, कठोलिया, किरिया, किमिया, कुटिया, कुल्हिया, कोहरा। खता, खटिया, खड़िया, खड़खड़िया। गठिया, ग्रीवा, गुटिका, गुफा, गुड़िया, गुटका, गोखा। घटा। जमा, जँघिया। टिकिया। ठिलिया। डिबिया। तकिया, तमन्ना, तूतिया, तौलिया। थलिया। दफा, दवा, दगा, दुनिया, दुपहरिया, दोआ। नरिया। पगिया, पटिया, पुड़िया, पिढ़िया। फरिया। बला, बाँह, बाहना, बिरिया, बुँदिया। भुजा। मनसा, मलिया, मचिया, मड़ैया, मिर्चा। वफा। लूका। सजा, सटिया, सुविधा, सलूका, शमा। हवा, हवास, इत्यादि।

अन्यस्वरान्त शब्द—

अपमृत्यु, आयु, कुहु, बाहु, रेणु, वायु; वेणु, आबरू, आरजू, खड़ाऊँ, खूँ, गुफ्तगू, झाड़ू, तराजू, दारू, बालू, बू, भ्रू, ब्यालू, ब्यारू, हर्रे, कै, सेवै, जै; अधगो, गो, टेओ, दासो, सरसों, पतियारो, कादों; गौ, दौ, परचौ, पौ, भौं, लौ, इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे शब्दों के लिङ्ग बताओ—

उड़ीस, झींगुर, दीमक, बुलबुल, तारा, दाख, हवा, निकास, तिल, तान, समाज, जाड़ा, घास, पीतल, नीलम, छत, काँख, मिठास, किताब, चिराग, गंध।

२. पाँच ऐसे शब्द कहो, जो दोनों लिङ्गों में बोले जाते हों।

३. पाँच प्राणिवाचक शब्द बताओ, जो सदा स्त्रीलिङ्ग ही बोले जाते हैं।

४. यौगिक शब्दों के लिङ्ग कैसे जाने जाते हैं।

संज्ञा-प्रयोग

भेद-सम्बन्धी विशेषता—

१. कुछ जातिवाचक संज्ञाएँ प्रयोग में व्यक्तिवाचक के समान आती हैं। जैसे—पुरी (जगन्नाथ), देवी (दुर्गा), दाऊ (बलदेव), संवत् (विक्रमी संवत्), इत्यादि। कुछ उपनाम के शब्द—सितारेहिन्द (राजा शिवप्रसाद), भारतेन्दु

(बाबू हरिश्चन्द्र), गुसाँईजी (गोस्वामी तुलसीदास), दक्षिण (दक्षिणी हिन्दुस्तान), इत्यादि। कुछ योगरूढ़ संज्ञाएँ—गणेश, हनुमान, हिमालय, गोपाल इत्यादि।

२. कभी-कभी **व्यक्तिवाचक संज्ञा** व्यक्तिविशेष के गुण की प्रसिद्धि के कारण उस गुण के रखनेवाले सब पदार्थों के लिये आती है; ऐसी अवस्था में वह जातिवाचक हो जाती है। जैसे—आल्प्स **यूरोप का हिमालय** है। शेक्सपियर **यूरोप** के **कालिदास** थे। इन वाक्यों में हिमालय का अर्थ है '**ऊँचापहाड़**' और कालिदास का अर्थ '**महाकवि**'। इसलिये यहाँ इनको व्यक्तिवाचक न कहकर जातिवाचक कहेंगे।

३. व्यक्तिवाचक, भाववाचक, समूहवाचक और द्रव्यवाचक का बहुवचन नहीं होता। जब इनका प्रयोग बहुवचन में होता है वे संज्ञाएँ जातिवाचक हो जाती हैं। जैसे—मेरे वर्ग में तीन **राम** हैं। पानीपत में तीन **लड़ाइयाँ** हुईं। दोनों **सेनाओं** में यह समाचार फैल गया। तेली के पास भिन्न-भिन्न प्रकार के **तेल** बिकते हैं। आश्चर्य है कि छोटी-मोटी **कृपाएँ** मन को मुग्ध कर लें। उनकी जानतोड़ **कोशिशें** प्रजा को मनुष्य-कोटि में लाने का यत्न कर रही हैं। उसके आगे सब **रूपवती स्त्रियाँ** निरादर हैं। वे सब कैसे अच्छे **पहिरावे** हैं!

वचन-सम्बन्धी—

जातिवाचक **संज्ञा** के बहुवचन में भी एकवचन का प्रयोग होता है। जैसे—'घोड़ा बली पशु है।' यहाँ घोड़ा शब्द से घोड़ों का बोध होता है। 'घोड़े बली पशु हैं' ऐसे वाक्य भी प्रयोग में हैं।

यदि कोई शब्द ही बहुवचन बोधक हो तो उसका बहुवचन नहीं बनाना चाहिये। जैसे—मेरे भोजन की **सामग्री** खरीदो। जाने की **तैयारी** करो। ऐसी जगह सामग्रियाँ और तैयारियाँ लिखना उचित नहीं, परन्तु भिन्नता के अर्थ में बहुवचन भी लिख सकते हैं। जैसे—दोनों सेनाओं में लड़ने की तैयारियाँ होने लगीं।

'लोग' शब्द 'जन' 'गण' 'वर्ग' इत्यादि के समान बहुवचन का द्योतक है। जैसे—'ब्राह्मणलोग।' इस आधार पर 'स्त्रीलोग' लिखना उचित नहीं, क्योंकि 'लोग' शब्द पुँल्लिङ्ग है और, इसका स्त्रीलिङ्ग 'लुगाई' है।

रूप-सम्बन्धी—

१. संज्ञाओं में **राजा, महाराजा, पाठशाला, देवता, तारा,** इत्यादि शब्द कहीं-कहीं विकृत रूपों में भी मिलते हैं। इनमें तारा, शब्द के विकृत रूप विशेष प्रचलित हैं। जैसे—देश-देश के **राजे** आये। **महाराजों** की कौन चलावे! मैं सब **पाठशालों** को देख चुका। **देवतों** के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी। **तारे** निकल आये।

२. **दादा, दुलहा, जरा, अदना, आला** इत्यादि शब्द विकृत और अविकृत दोनों हैं।

३. **पटना, आरा, दरभंगा, छपरा, कलकत्ता** इत्यादि स्थानवाचक शब्द विकृत हैं, परन्तु कोई-कोई लेखक इन्हें अविकृत के समान लिखते हैं, जिससे इनकी कोमलता नष्ट हो जाती है। अतएव, 'छपरा से आया। दरभंगा से गया। कलकत्ता में रहता है।' इत्यादि वाक्य अशुद्ध हैं।

४. कुछ विकृत आकारान्त शब्दों का प्रयोग सम्बोधन के एकवचन में अविकृत-सा होता है। जैसे—छिपे हो कौन से पर्दे में **बेटा**? रे **बबुआ**!

५. कोई-कोई लेखक हिन्दी में आये हुए संस्कृत के कतिपय तत्सम शब्दों के सम्बोधन—एकवचन रूप संस्कृत ही के नियमानुसार रखते हैं। जैसे—**हे देवि, हे सखे, श्रीमान्** इत्यादि।

६. कोई-कोई एकारान्त और ओकारान्त संज्ञाओं के चिह्नसहित, बहुवचन रूप **दूबेओं ने, हरेओं ने, कोदोओं ने, सरसोंओं ने,** इत्यादि के बदले 'दूबों ने, हरों ने, कोदो ने, सरसों ने, इत्यादि लिखते हैं। ऐसे रूपों से कभी-कभी आकारान्त संज्ञाओं के रूपों का बोध होता है, इसलिये इन्हें त्यागना ही उचित है।

७. विकृत आकारान्त तथा दोनों इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के चिड़ियें, तिथिएँ, देविएँ इत्यादि नियमानुसार बने रूप प्रयोग में कम आते हैं। इनके बदले **चिड़ियाँ, तिथियाँ, देवियाँ,** इत्यादि रूप प्रयोग में हैं।

अभ्यास (Exercise)

१. व्यक्तिवाचक संज्ञा जातिवाचक कब होती है? उदाहरण दो। २. पाँच ऐसे उदाहरण दो, जिनसे जान पड़े कि प्रयोग में जातिवाचक संज्ञाएँ भी व्यक्ति-वाचक होती हैं। ३. 'ये सब कैसे अच्छे पहिरावे हैं!' इस वाक्य में 'परिहावे' कौन संज्ञा है?

४. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

जाने की तैयारियाँ करो। लड़की लोग आ रही हैं? तीन नदी से चार मछली लाया। उन किताब को क्या करोगे। गायो जा रही हैं। चार ग्राम से आठ बालकों आये। पाँच बैल को लाओ? खेत पर जाकर अन्नों ले आओ। कलकत्ता से आया। छपरा में रहता है। देविएँ आती हैं। बातें चली गईं। हे बालकों, कहाँ जाते हो? तारा निकल आये। नदियें बह रही हैं।

सर्वनाम-प्रयोग

(इसकी कुछ बातें वाक्य-रचना में देखो)

१. 'मैं' और 'तू' नियमानुसार बने रूपों के सिवा 'मेरे को, मेरे में, हमारे में, तैं, तैंने, तेरे को, तेरे में, तेरे पर, तुम्हारे में, तुम्हारे पर' इत्यादि रूप भी कहीं-कहीं बोले जाते हैं, परन्तु इनकी विशेष प्रधानता नहीं है। जैसे—भगवान् जाने, **हमारे में**, यह सुमति कब आयगी (प्रताप)। जिन बातों से हमारे में चरित्र आता है............(साहित्यसुमन)।

२. 'अपना' शब्द सार्वनामिक अर्थ देने के सिवा विशेषण और (आगे विशेष्य लुप्त रहने पर) संज्ञा का भी बोध कराता है। जैसे—मैं आप वहाँ जाऊँगा। कृपा कर मेरा अपराध क्षमा करें, अब मैं अपनेको अवश्य सुधारूँगा। मेरा अपना-पराया कोई काम नहीं आया। जब अपनों ने कोई सहायता नहीं की तब पराये की कौन आशा! सभी अपनों की खोजखबर लेते हैं। अपनों से विरोध करनेवाला नष्ट होता है।

३. 'इन्होंने' उन्होंको, जिन्होंसे, तिन्हों के लिये, किन्होंने' इत्यादि रूप भी प्रयोग में मिलते हैं। इनमें 'इन्होंने, उन्होंने' इत्यादि कर्त्ता के रूप, नियमानुसार बने 'इनने, उनने' इत्यादि रूपों से अधिकतर प्रचलित हैं, परन्तु अन्य रूप * कम आते हैं।

४. कोई-कोई 'इस्ने, उस्ने, जिस्ने, जिस्को, तिस्में' इत्यादि रूप भी लिखते हैं, परन्तु गद्य में अब ऐसे प्रयोग नहीं होते।

५. बहुवचन में **ये** और **वे** के बदले क्रम से **यह** और **वह** भी प्रयुक्त होते

---

* विशेषकर गुजरात और महाराष्ट्र के लेखक लिखते हैं।

हैं। जैसे—यह दोनों लड़के बड़े सुशील हैं। वह दोनों भाई पटने चले गये। वह † कहाँ गये हैं?

६. पूर्वकथित दो वस्तुओं में से पहली के लिये वह और दूसरी के लिये यह प्रयोग करते हैं। जैसे—महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन वचन और कर्म एक रहते हैं और इनके भिन्न-भिन्न।

७. 'कोई' शब्द जब वाक्य में दोहरा आता है तब क्रिया भी बहुवचन हो जाती है, परन्तु आदर में बिना दुहराये भी बहुवचन क्रिया लाते हैं। जैसे—कोई-कोई कहते हैं। आपके यहाँ कोई आये हैं?

८. कौन और क्या जब अकेले आवें तब 'कौन' से प्राणी का और 'क्या' से अप्राणी का बोध होता है। जैसे—कौन पढ़ता है। कौन है? क्या गिरा? क्या है? (यदि कौन और क्या के विषय में पहले से कुछ भी ज्ञान हो तो यह नियम नहीं लगता।)

९. सर्वनाम के आगे विशेष्य आने से 'यह, वह' विशेषण कहलाते हैं। ऐसी अवस्था में सर्वनाम कारकादि के चिह्न छोड़ तो देता है, परन्तु उसमें संस्कार अवश्य बना रहता है। जैसे—इस विषय पर किसी प्रकार की चर्चा मत कीजिये।

नोट—'कौन, जौन, तौन' इत्यादि यदि 'सा, से, सी' प्रकारार्थक प्रत्ययों के साथ आवें तो वे ऊपर की अवस्था में नहीं बदलते। जैसे—छिपे हो कौन-से पर्दे में बेटा! रहो जौन-से देश में।

अभ्यास (Exercise)

१. 'यह' और 'वह' के प्रयोग में क्या भेद है? २. 'कौन' और 'जौन' में कब विकार नहीं होता? उदाहरण दो। ३. आजकल 'जो' के बदले कौन सर्वनाम अधिकतर बोला जाता है? उदाहरण दो।

४. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

हम कोई दिन में तुमके यहाँ जायँगे और तुमके लिये उचित प्रबन्ध करा देंगे। मैं पर वह की बात विदित हो गई। कौन किताब को पढ़ोगे। जौन-तौन बालक के साथ मत जाओ। उन्हींसे काहे को बोलते हो? मैं मेरे लिये पढ़ता हूँ।

---

† उर्दूवाले प्रतिष्ठा के लिये वह के बदले वो भी बोलते हैं। जैसे—उनके देखे से जो आ जाती है रौनक मुँह पर, वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

५. नीचे के वाक्यों के रिक्त स्थानों में उचित सर्वनाम रक्खो।—लाठी उसकी भैंस। तुमने—पाठ याद कर लिया। आप—क्या पढ़ते हैं? कौन—कहता है? क्या—नहीं जानता कि तुझे ही लिखना होगा? जो परिश्रम करते हैं—सुख पाते हैं। मैं—उसकी कथा कहता हूँ।

विशेषण प्रयोग

(इसकी कुछ बातें वाक्य-रचना में देखो)

१. बहुत-से परिमाणबोधक विशेषण बहुवचन विशेष्य के साथ अनिश्चित संख्याबोधक हो जाते हैं। जैसे—थोड़े मनुष्य, बहुत लड़के, इत्यादि।

२. निश्चयबोधक संख्याओं के पहले 'लगभग, प्रायः' इत्यादि शब्दों के लगाने से या दो पूर्णाङ्क संख्याओं को एक साथ लिखने से अनिश्चयबोधक विशेषण बनते हैं। जैसे—लगभग चालीस विद्यार्थी, प्रायः बीस लड़के, चार-पाँच आम, पाँच-सात दिन, इत्यादि।

नोट—डेढ़-दो रुपये, अढ़ाई-तीन वर्ष, इत्यादि-इत्यादि प्रयोग भी इसी अर्थ में हैं। किसी पूर्णाङ्क संख्या के आगे एक लगाने से लगभग का अर्थ निकलता है। जैसे—चालीस एक आदमी।

३. बीसो, पचीसो, हजारो इत्यादि संख्याएँ निश्चयबोधक विशेषण हैं, परन्तु जब इनके अन्त्य स्वर 'ओं' रहे तब अनिश्चय का बोध होता है। जैसे—बीसो आदमी आये (पहले से केवल बीस ही का निश्चय था)। **बीसों** आदमी आये (कई बीस आदमी, अनिश्चय)।

नोट—आजकल बीसों, पचीसों, पचासों, सैकड़ों, हजारों, लाखों इत्यादि कतिपय अनिश्चयबोधक संख्याओं को छोड़, शेष दोनों, तीनों, चारों इत्यादि शब्द 'दोनो, तीनो, चारो' के समान 'निश्चय बोधक' में भी लिखे जाते हैं।

४. थोड़े-से विशेषण अकेले भी आते हैं, ऐसी अवस्था में उनके लुप्त विशेष्य अनुमान से समझते हैं। जैसे—बापुरे बटोही पर बड़ी कड़ी बीती। महाराज ने बिछावन पर लम्बी तानी।

५. विशेष्यरहित विशेषण संज्ञा का अर्थ देता है। जैसे—बड़ों का कहना मानो। इतने में ऐसा हुआ। जैसे को तैसे मिले। पण्डितजी आये।

नोट—ऐसी संज्ञाएँ कभी जातिवाचक होती हैं और कभी व्यक्तिवाचक। जैसे—झूठ बोलना पण्डितों को उचित नहीं (जातिवाचक)। पण्डितजी नहीं आये (व्यक्तिवाचक)।

६. कुछ विशेषण सर्वनामों की भाँति आते हैं। जैसे—सभा में एक (कोई) आता है तो एक (कोई) जाता है। एक दूसरे (आपस) में प्रेम व्यवहार रहना चाहिये। दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।

७. विशेषण के बदले विशेष्य और विशेष्य के बदले विशेषण का प्रयोग अनुचित है। जैसे—'वह सन्तोष हो गये।' यह वाक्य अशुद्ध है, इसके बदले 'वह सन्तुष्ट हो गया।' या 'उसे सन्तोष हो गया।' लिखना उचित है।

८. बहुत्व के अर्थ में विशेषण और विशेष्य, दोनों में से किसी एक ही को बहुत्वबोधक रखना उचित है। जैसे—'बहुसंख्यक बालक या बालकगण', 'बहुत से आदमी या आदमी लोग।' ऐसी जगह **बहुसंख्यक बालकगण'** और **'बहुत से आदमी लोग'** अशुद्ध हैं।

९. **सा, नाम, नामक, सम्बन्धी, रूपी** इत्यादि शब्दों को **संज्ञा** के साथ मिलाकर विशेषण बनाते हैं, **'सा'** सर्वनाम के साथ भी आता है। जैसे—मुझ-सा तुच्छ, फूल-सा शरीर, बाहुक नामक सारथी, दशरथ नामक राजा, पाठशाला-सम्बन्धी काम, तृष्णारूपी नदी, इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे प्रत्येक जोड़े में परस्पर क्या भेद है ?

पाँच आदमी—चार-पाँच आम। चालीस आदमी—-चालीस-एक आदमी। पचासो आदमी—पचासों आदमी।

२. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

बीस विद्यार्थी परीक्षा में गये थे, बीसों उत्तीर्ण हो गये। माली ने सब पेड़ को काट डाला। सैकड़ो बार हमने समझाया। बहुसंख्यक मनुष्यगण यहाँ आये थे। बहुत-से आदमी लोगों को हमने देखा था। श्रीमान् सीतादेवी का कथा बड़ा मीठा है। गोरा स्त्री पीला साड़ी पहने हुई है। रूखा-सूखा बात बड़ा कड़वा होता है। यह किताब का क्या मोल है ? वह लड़की को बुलाओ। कौन घर में रहते हो ? कोई काम में शीघ्रता मत करो। इस पुस्तकों का क्या मोल है ? उस घरों में कौन रहते हैं ? राम क्रोध हो गया।

क्रिया-प्रयोग

१. समीपी भूत और भविष्यत् में वर्त्तमान काल का व्यवहार होता है। जैसे—'आप कब आये ? मैं अभी आता हूँ।' 'जो तुम कहते हो, हम समझते हैं।'

'आप कब जायँगे ? मैं शीघ्र ही जाता हूँ ।' 'तुम यहाँ बैठो, हम अभी आते हैं ।' 'कचहरी कब खुलेगी ? बस, परसों खुलती है ।'

२. लेखक कभी-कभी भूतकाल के लिये वर्त्तमान का प्रयोग करते हैं, जिसे ऐतिहासिक वर्त्तमान कहते हैं । जैसे—गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—"धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपद काल परखिये चारी ।"

३. धमकी आदि के अर्थ में भविष्यत् के लिये भूतकाल का प्रयोग करते हैं । जैसे—'यदि बात खुली तो मारे जाओगे ।' "बचोगे न तुम और न साथी तुम्हारे, अगर नाव डूबी तो डूबोगे सारे ।"

४. पूर्णभूत के लिये सामान्य और आसन्नभूतों की क्रियाएँ भी कभी-कभी आती हैं । जैसे—पिता की आज्ञा से रामचन्द्रजी बन गये । गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है ।

५. जब कहनेवाला तनिक क्रोध के साथ या उदासी से कुछ कहता है तब क्रिया का लोप हो जाता है । जैसे—जब किया नहीं तब डर कैसा ? आपको इससे क्या मतलब ?

६. (क) जब सामान्य वर्त्तमान **काल** की क्रिया के आगे **नहीं** आवे तब 'हूँ, हैं, है' इत्यादि सहायक अंशों **का** लोप कर देते हैं । जैसे—अब वह यहाँ **नहीं** आता । आप मेरे यहाँ कभी **नहीं** खाते ?

(ख) रचना की उत्तमता के लिये और **अभ्यास** के अर्थ में, कभी-कभी क्रिया के सहायक अंश 'था, थे' इत्यादि को छोड़ भी देते हैं । **जैसे**—जब वह **आता** तब पैसे **ले** जाता । दोनों बली दिनभर तो धर्मयुद्ध **करते** और साँझ को घर **आ** एक साथ भोजन कर विश्राम । * (प्रेमसागर)

७. कभी-कभी क्रियार्थक संज्ञा में सम्बन्ध **का** चिह्न जोड़कर उससे भविष्यत् का अर्थ निकालते हैं । जैसे—"अब यह विपत्ति की घड़ी टलने की नहीं । गया तो फिर वह नहीं मेरे हाथ आने का ।" (भट्टजी)

८. क्रिया के साधारण रूप के आगे—'वाला' प्रत्यय मिलाकर वा यों ही-विद्यमानता बोधक **हो** (होना) धातु के सामान्य वर्त्तमानकालिक रूप लगाने से **भविष्यत्** का **अर्थ** निकलता है । जैसे—"डरो उसे जो वक्त **है** आनेवाला । यदि कुछ काटना **है** तो बोना पड़ेगा ।" (भट्टजी)

* वाक्यरचना में कर्त्ता और क्रिया का मेल शीर्षक पाठ देखो ।

९. कोई-कोई स्त्रीलिङ्ग में **'आई, खाई, गई, दी'** इत्यादि को **'आयी, खायी, गयी, दियी, (दिई)'** इत्यादि लिखते हैं, परन्तु यह रीति खटकती है। इससे 'य' अनुच्चरित वर्ण का दोष देवाक्षर की पवित्र वर्णमाला पर लगता है। हाँ, संस्कृत शब्दों को—जो संस्कृत व्याकरण में शुद्ध हैं—लिखना अनुचित नहीं। जैसे—धराशायी, सामयिक, दायित्व, निराश्रयी, इत्यादि।

१०. **हुवा, हूया, हुये, होवा, खावा, खावागे, जावोगे, आवोगे, आवेगी** इत्यादि रूप त्याज्य हैं, इनके बदले हुआ, हुए, होओ, खाओ, जाओगे, आओगे, जाओगी, आओगी इत्यादि रूप नियमानुसार उचित हैं।

११. कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के जितने बहुवचन रूप 'तुम' के साथ आते हैं वे आदरसूचक 'आप' के साथ नहीं आते। इसके साथ अन्यपुरुषवाले बहुवचन रूप आते हैं, परन्तु कभी-कभी परिचय, बराबरी और लघुता के विचार से मध्यम पुरुषवाले बहुवचन रूप भी आते हैं। जैसे—(१) आप बैठे हैं। आप बैठते हैं। आप बैठें। आप खायँ। आप जायँ। (२) आप सूर्यकुल-भूषण हो। आप मोल लोगे? आप अगलों की रीति पर चलते हो।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे वाक्यों की क्रियाएँ क्या अर्थ देती हैं?

आप कब खायँगे? मैं अभी खाता हूँ। शुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहते हैं। अगर नाव डूबी तो डूबोगे सारे। रामायण में गुसाँईजी ने कहा है।

२. नीचे लिखे वाक्यों के व्यर्थ अंशों को हटा दो—

आपको इससे क्या मतलब है? आप उसके यहाँ कभी नहीं जाते हैं, यह बात उचित नहीं है। जब किया नहीं है, तब डर कैसा?

३. कोई-कोई स्त्रीलिङ्ग में 'आई, खाई, गई, दी' इत्यादि को 'आयी, खायी, गयी, दियी (दिई), इत्यादि लिखते हैं। इसके विषय में तुम्हारी क्या राय है?

अव्यय-प्रयोग

(१) नहीं, न और मत में भेद—

(क) सामान्यवर्त्तमान, तात्कालिकवर्त्तमान, आसन्नभूत और किसी प्रश्न के उत्तर में नहीं का प्रयोग होता है। जैसे—मैं **नहीं** खाता। वह **नहीं** आ रहा है। इस वर्ष मैंने आम **नहीं** खाया है। तुमने परीक्षा दी है? **नहीं**।

(ख) 'दो' या अधिक में किसीका निषेध जताना हो तब, और 'विधि

में' न का प्रयोग होता है। जैसे—न धर्म, न विद्या, न धन, कुछ काम न आया। न खाया, न पिया, न कुछ बात ही की—यों ही चला गया। इसे न ले। अभी उपन्यास कभी न पढ़ना। यह पुस्तक और किसीके हाथ में न दीजिये।

(ग) ऊपर की क्रियाओं को छोड़ अन्यत्र **न** और **नहीं** दोनों आते हैं, भेद इतना ही है कि केवल निषेध में **न** और निषेध की निश्चयता में **नहीं** का प्रयोग होता है। जैसे—वह **न** आया, वह **नहीं** आया, मैं **न** पढ़ूँगा—मैं **नहीं** पढ़ूँगा।

(घ) '**मत**' केवल विधि में लाते हैं। जैसे—तुम मत जाओ।

नोट—'**न**' निश्चय के अर्थ में **प्रश्नार्थक अव्यय है**। जैसे—तुम तो इसी समय पढ़ लोगे **न**? बोलो **न**, जाओगे?

२. जब '**न—न**' समुच्चयबोधक होकर आते हैं तब पहले से 'न तो' और दूसरे से 'और न' का बोध होता है। जैसे—उसने न पढ़ा, न पढ़ेगा।

(२) ओर, तरफ, तरह, मार्फत, नाईं, खातिर इत्यादि के पहले '**की**' लाते हैं। जैसे—राम की ओर, खेत की तरफ, लड़के की तरह, उसकी मार्फत, सोहन की नाईं, आपकी बाबत, तेरी खातिर, इत्यादि।

(३) बहुत-से अव्यय दो-दो करके एक साथ आते हैं और नित्य **सम्बन्धी** कहलाते हैं। जैस—'यदि-तो, जो-तो, यद्यपि-तथापि या तो भी', इत्यादि। प्रयोग—यदि ठंढ न लगे तो यह हवा बहुत दूर तक चली जाती है। जो आप आज्ञा करें तो हम, जन्मभूमि देख आवें। यद्यपि मैं वहाँ नहीं गया तथापि मैंने वहाँ का सारा वृत्तान्त सुना।

अन्य नित्यसम्बन्धी अव्यय—जब-तब, ज्यों-त्यों, जहाँ-वहाँ वा तहाँ, जिधर-उधर, जोभी-सोभी, अगर्चे-ताहम्, इत्यादि।

अभ्यास (Exercise)

१. 'नहीं' और 'न' के प्रयोग में क्या भेद है? उदाहरण दो। २. 'मत' कहाँ आता है? ३. चार ऐसे वाक्य बनाओ, जिनमें नित्यसम्बन्धी अव्यय हों।

मिश्रित अभ्यास (Miscellaneous Exercise)

१. नीचे लिखे वाक्यों में जो-जो अशुद्धियाँ हों, उन्हें शुद्ध करो और अशुद्ध होने के कारण बताओ—

जब बड़ों को देखो, उन्हें नमस्कार करो, क्योंकि वे तुमपर भक्ति रखते हैं। जब हम अपने बन्धुओं से दूर पर जाते हैं, उनको बड़ा दुःख होता है।

उनसे कुछ लाभ नहीं, क्योंकि वे यहाँ की बातों से अज्ञान हैं। ईश्वर पर भरोसा रक्खो, क्योंकि वही सबों का राखनहारा है। भगवान् की सहायता सभी को मिलती है, अतः विपद् में धीरताई रक्खो। आपने वह प्रतिज्ञा न भूले होंगे। मैंने आया था, परन्तु आपका भेंट न हुआ। तुमने इसके लिये व्यर्थ चेष्टा करते हो, निराश होना पड़ेगा। निरपराधी को दण्ड देना उचित नहीं। यह खबर इस कान से उस कान, उस कान से उस कान फैल गई। ब्राह्मण लोगों का यहाँ रहना उचित नहीं। दोनों राजाओं ने लड़ने की तैयारी कर ली। दरभंगा से कलकत्ता को आम भेजा जाता है। उन्हींके लिये पुस्तकों खरीद लो। इस वर्ष बहुत-से विद्यार्थी लोग फेल हो गये। तुझको इससे क्या मतलब है? महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि इनका मन, वचन और कर्म एक रहते हैं और उनके भिन्न-भिन्न।

२. नीचे लिखे प्रत्येक शब्द से एक-एक वाक्य बनाओ—

सुखदायक, आविर्भाव, हर्षविषाद, जन्ममृत्यु, हिताहित, अनुष्ठान, औत्सुक्य, उत्कण्ठा, तपोभ्रष्ट, सा, नामक, लगभग, इतना।

३. अर्थ लिखो—

प्रयोग, अप्रयोग, संयोग, वियोग, अनुयोग, दुर्योग, नियोग, सुयोग, उद्योग, प्रतियोग, अभियोग, उपयोग।

४. जोड़वाले शब्दों को छोड़ शेष शब्दों के पुँल्लिङ्ग-सूचक नियम कौन-कौन हैं? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दो।

५. 'अपना' शब्द किन-किन अर्थों में आता है? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दो।

६. चार ऐसे वाक्य बनाओ जिनमें जातिवाचक संज्ञाएँ व्यक्तिवाचक हो गई हों।

७. नीचे लिखे प्रत्येक शब्दयुगल में परस्पर क्या भेद है?

सूचि-सूची, जाल-जार, सर-शर, मित्र-बन्धु, संहार-परिहार, भृत्य-दास, चतुर-बुद्धिमान्, मूर्ख-मूढ़।

८. नीचे लिखे प्रयोगों पर तुम्हारा क्या विचार है? कारण सहित लिखो। दियी, हुवा, हुया, खावो, जावोगे, हुये।

९. नीचे लिखे शब्द शुद्ध हैं या अशुद्ध? कारण दो—

वर्त्तमान, श्रीवान्, जगत, नैपुण्यता।

छठा अध्याय

वाक्य प्रकरण

वाक्य (Sentence)

जिसके सुनने से कहनेवाले का पूर्ण अभिप्राय समझ में आ जाय ऐसे शब्दसमूह को वाक्य कहते हैं। जैसे—बालक सोता है। फूल लाल है।

नोट—(१) कभी-कभी हमलोग किसी घोड़े इत्यादि को देखकर घोड़ा क्या कर रहा है ? कौन पशु आता है ? इत्यादि प्रश्न किया करते हैं। ऐसे प्रश्नों के लिये 'चरता है' 'घोड़ा' इत्यादि उत्तर पाते हैं और सुनते ही पूर्ण अभिप्राय भी सुगमता से समझ जाते हैं। अतएव, ऐसे स्थानों में 'चरता है। घोड़ा।' इत्यादि पूर्णवाक्य हैं, यद्यपि ये 'घोड़ा चरता है। घोड़ा आता है।' इत्यादि के लिये आये हैं।

किसीने पूछा—"आप खाइयेगा ?" उत्तर मिला—'हाँ'। ऐसी जगह 'हाँ।' इतना ही पूर्णवाक्य है। इसमें कर्त्ता और क्रिया दोनों लुप्त हैं।

खण्डवाक्य (Clause) और वाक्यांश (Phrase)

१ जो वाक्य दूसरे की अपेक्षा रख सके उसे **खण्डवाक्य** कहते हैं। जैसे—तब वह परीक्षा देगा। वह ज्योंही सो गया। जब वह आता है। यदि वह जाय।

खण्डवाक्य दो प्रकार के हैं—**प्रधान खंडवाक्य** और **अधीन खंड-वाक्य। प्रधान खण्डवाक्य** (Principal clause) की अधीनता में **अधीन खण्डवाक्य** (Sub-ordinte clause) रहता है और उसके एक अंग का काम देता है। जैसे—मैंने समझ लिया कि वह चोर है। इस वाक्य में 'मैंने समझ लिया' प्रधान खंडवाक्य है और 'वह चोर है' अधीनखंडवाक्य। यह अधीन खण्डवाक्य 'प्रधान खंड वाक्य' की क्रिया का कर्म है।

नोट—वाक्य के बीच में भी छोटे-छोटे वाक्य प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें **अन्तर्वाक्य** कहते हैं। जैसे—क्या आपने आर्यपुत्र को, मैं उनका नाम कैसे लूँ, देखा है ? मैं कृष्ण को, वह बड़ा छली है, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हार गई।

२. वाक्य के परस्पर सम्बन्धी दो या अधिक शब्दों को, जिनसे पूरी बात

नहीं जानी जाती, वाक्यांश कहते हैं। जैसे—इतना सुनते ही, आपके पीछे, भलीभाँति परीक्षा कर लेने पर।

उद्देश्य और विधेय (Subject & Predicate)

प्रत्येक वाक्य के दो अङ्ग हैं—उद्देश्य और विधेय।

जिसके विषय में कुछ कहा जाय उसे उद्देश्य और उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाय उसे विधेय कहते हैं। जैसे—बालक सोता है। इस वाक्य में 'बालक' उद्देश्य है और 'सोता है' विधेय।

नोट—(१) कितना ही बड़ा या छोटा वाक्य क्यों न हो, परन्तु वे दोनों मोटे भाग उसमें अवश्य रहते हैं। कभी-कभी वाक्य से कहीं उद्देश्य, कहीं विधेय और कहीं दोनों लुप्त रहते हैं। (पीछे 'वाक्य' के दोनों नोट देखो)।

उद्देश्य और विधेय दोनों, 'विशेषण, क्रियाविशेषण' इत्यादि शब्दों से बढ़ाये जा सकते हैं। जो शब्द उद्देश्य की विशेषता बतलाते हैं उन्हें **उद्देश्य का विस्तार** और जो विधेय की विशेषता बतलाते हैं उन्हें **विधेय का विस्तार** कहते हैं। जैसे—**सुशील** बालक **खाकर** सोता है।

नोट—विस्तार के विचार से उद्देश्य और विधेय दोनों के दो-दो भेद हो सकते हैं—साधारण और वर्द्धित।

उद्देश्य और विधेय का विस्तार
(Subject and its Adjuncts)

उद्देश्य में नीचे लिखे शब्द-भेद हो सकते हैं—

(क) संज्ञा (Noun)—**बालक** पढ़ता है।

(ख) सर्वनाम (Pronoun)—**मैं** पढ़ता हूँ।

(ग) विशेषण (Adjective)—**लोभी** दुःख सहते हैं।

(घ) क्रियाविशेषण (Adverb)—जिनका **भीतर-बाहर** एक-सा हो।

(ङ) वाक्यांश (Phrase)—**साँझ-सबेरे** टहलना स्वास्थ्यप्रद है।

(च) संज्ञावत् कोई शब्द (Any word used as a noun)—
पढ़कर पूर्वकालिक कृदन्त है।

२. उद्देश्य किन कारकों में रहता है ?

(क) कर्त्ताकारक में—**मोहन** रोटी खाता है।—प्रधान

श्याम ने रोटी खाई।—अप्रधान

(ख) कर्मकारक में—**पुस्तक** लिखी गई है ।—कर्मवाच्य चिह्नरहित

शर्माजी को सभापति बनाया गया ।—चिह्नसहित

(ग) करणकारक में—

बूढ़े से चला नहीं जाता । **आप से** बोलते नहीं बनता ।	भाववाच्य (किसी-किसी के मत से)

(घ) सम्प्रदान कारक में—

आपको यह कहना योग्य नहीं है । **राम को** लिखना पड़ेगा ।	योग्यता, कर्तव्य और आवश्यकता जताने में *

† **नोट**—जो संज्ञा सम्बोधन में आती है वह मुख्य उद्देश्य नहीं हो सकती, क्योंकि वह विधेय से साक्षात् सम्बन्ध नहीं रखती । सम्बोधन के आगे 'उद्देश्य मध्यमपुरुष सर्वनाम में गुप्त या प्रकट रहता है । जैसे—हे प्यारे, कहाँ जाते हो ? भगवन् ! तू मेरी खबर कब लेगा ?

३. उद्देश्य के विस्तार में नीचे लिखे शब्दभेद हो सकते हैं—

(क) विशेषण । जैसे—**लाल** घोड़ा आता है । **पढ़ता** सुग्गा उड़ गया । **आया** हुआ नौकर सो गया ।

(ख) समानाधिकरण शब्द । जैसे—परमहंस **बँसुलिया बाबा** पटने गये थे । राम के पिता **दशरथजी** यह नहीं चाहते थे । मैं **मोहनलाल** इकरार करता हूँ ।

(ग) सम्बन्ध । जैसे—**राम का** घोड़ा घास खाता है ।

(घ) वाक्यांश । जैसे—**आकाश में फिरता हुआ** चन्द्रमा राहु से ग्रसा जाता है ।

विधेय और विधेय का विस्तार

(Predicate and its Extension)

१. विधेय से, उद्देश्य के विषय में नीचे लिखी कोई **एक बात पाई जाती है—**

(क) करना, जैसे—मैं खाता हूँ । वह पढ़ता है ।

---

* कोई-कोई कहते हैं कि इन वाक्यों में 'क्रिया का साधारणरूप' ही उद्देश्य हो सकता है ।

† वाक्य-विभाजन में सम्बोधन को छोड़ देते हैं या सर्वनाम के साथ उद्देश्य रख देते हैं ।

(ख) होना। जैसे—फूल लाल है। सन्ध्या हुई।

(ग) सहना। जैसे—नौकर मारा गया। खेत बोया जायगा।

३. साधारण विधेय में केवल एक क्रिया रहती है। जैसे—बालक सोता है। सीता जाती है।

नोट—कई अकर्मक अपूर्ण क्रियाएँ ऐसे हैं जिनके पूरक शब्द विधेय के नित्य साथी समझे जाते हैं और ऐसे विधेय को **जटिल विधेय** कहते हैं।

पूरक के नीचे लिखे शब्द-भेद हो सकते हैं—

(क) विशेषण। जैसे—वह लड़का **पागल** है।

(ख) संज्ञा। जैसे—राम का भाई **चोर** निकला।

(ग) सम्बन्ध। जैसे—चार बैल **उसके** हुए।

(घ) क्रियाविशेषण। जैसे—**श्याम** वहाँ था।

३. विधेय के विस्तार में नीचे लिखे शब्द-भेद हो सकते हैं—

(क) कर्म। जैसे—घोड़ा घास खाता है।

(ख) विधेयार्थवर्द्धक। जैसे—

१. वह **घर** गया। (संज्ञा)

२. **सब दिन** चले **अढ़ाई कोस**। (संज्ञा-वाक्यांश)

३. ललिता **मधुर** गाती है। (क्रियाविशेषणवत् विशेषण)

४. स्त्रियाँ **उदास** बैठी थीं। (विशेष्य के परे विशेषण)

५. स्त्री **बकते-बकते** चली गई। (पूर्ण क्रियाद्योतक)

६. मोहन **छाता लिये** जाता था। (अपूर्ण क्रियाद्योतक)

७. रामचन्द्र **पढ़कर** चला गया। (पूर्वकालिक)

८. बच्चा **लेटते ही** सो गया। (तत्कालबोधक कृदन्त)

९. तुम **इतनी रात गये** क्यों आये ? (स्वतन्त्र वाक्यांश)

१०. गाड़ी **जल्दी** जायगी। (क्रियाविशेषण)

११. चोर **कहीं-न-कहीं** छिपा है (क्रियाविशेषण वाक्यांश)

१२. चिड़िया **धोती समेत** उड़ गई। (सम्बन्धसूचकान्त)

१३. मैंने **छुरी से** कलम काटी। (कर्त्ता, कर्म और सम्बन्ध छोड़, शेष कारक)

नोट—कई विद्वान् विधेयार्थवर्द्धक के बदले विधेय के विस्तार में ऊपर के सभी भेदों को अलग-अलग गिनती मान लेते हैं।

कर्म इत्यादि अन्यान्य कारकों में भी उद्देश्य ही के समान शब्द-भेद और विस्तार हो सकते हैं। इसी प्रकार विस्तार का प्रत्येक अंश आवश्यकतानुसार विशेषण इत्यादि शब्दों से बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास (Exercise)

१. वाक्य किसे कहते हैं ? २. खण्डवाक्य और वाक्यांश किसे कहते हैं ? ३. खण्डवाक्य कितने प्रकार के हैं ? उदाहरण दो। ४. अन्तर्वाक्य किसे कहते हैं ? उदाहरण दो। ५. वाक्य के कितने अंग हैं ? उदाहरण देकर समझाओ। ६. उद्देश्य और विधेय के विस्तारों के क्या भेद हैं ? ७. उद्देश्य के कौन-कौन कारक हैं ? उदाहरण दो। ८. क्या सम्बोधन की संज्ञा भी उद्देश्य है ? क्यों ? ९. अकर्मक अपूर्ण क्रियाओं के पूरक में कौन-कौन शब्द-भेद हो सकते हैं ? उदाहरण दो। १०. नीचे लिखे वाक्यों में प्रत्येक अंग को अलग-अलग करो—

तुम अपने मन में ऐसा कभी मत सोचो। तुमलोग भारत के पुत्र हो। चरित्र-बल पाकर ही तुमलोगों का हृदय बलिष्ठ होगा। एक-एक गुण का अभ्यास करके लोग गुणों से अपने को अलंकृत कर सकते हैं।

११. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य में उद्देश्य का विस्तार करो—

कृष्ण को लोग योगी कहते हैं। अर्जुन ने लड़ाई में आश्चर्यजनक कार्य किये। रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण समेत वन गये। स्त्री अपने पति के लिये प्राण दे देती है। राम ने वन में लाखों राक्षसों को मारा।

१२. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य में विधेय का विस्तार करो—

शूद्रक नाम का एक परम बुद्धिमान्, प्रबल, महाप्रतापी राजा राज करता था। राजा बैठे थे कि द्वारपाल ने निवेदन किया। चाण्डाल-कन्या आई है। राजा बोले—प्रतिहारी ले आया।

१३. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य के उद्देश्य और विधेय दोनों को बढ़ाओ—

शकुन्तला यही है। रामचन्द्र वन गये। सूए ने आशीर्वाद दिया। सूआ उसी ओर देखने लगा। कादम्बरी ने पूछा। मदलेखा ने कहा।

१४. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य को उद्देश्य या विधेय का विस्तार मानकर वाक्य बनाओ—

हमारी तपस्या के विघ्न की मूर्त्ति। कैसा विघ्न। साथवालों को बिदा करके।

शकुन्तला के हावभाव देखने की। मेरे हृदय से कैसे। पवन के सम्मुख चलती। बड़े चाव से कान लगाकर। टिड्डी के समान।

वाक्यभेद (Kinds of Sentence)

स्वरूप के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—**साधारण (अमिश्र), मिश्र (संकीर्ण) और संयुक्त (संसृष्ट)।**

जिस वाक्य में केवल एक उद्देश्य और एक विधेय हो उसे **साधारण वाक्य** कहते हैं। जैसे—राम पढ़ता है।

जिस वाक्य में एक साधारण वाक्य तथा इसीके आश्रित एक या अधिक अङ्गवाक्य होते हैं, उसे **मिश्रवाक्य** कहते हैं। जैसे—मैं देखता हूँ कि श्याम खेलता है। इसमें 'मैं देखता हूँ' यह साधारण वाक्य है जो मुख्य है और 'श्याम खेलता है' यह अङ्ग है; क्योंकि क्रिया का कर्म है। अन्य उदाहरण—**साधु कहता है कि भूखों को भोजन दो। वह आदमी जो कल आया था, आज भी आया है। जब पानी बरसता है तब मेढ़क बोलते हैं।**

जिस वाक्य में दो या अधिक साधारण या मिश्रवाक्य रहते हैं, उसे **संयुक्तवाक्य** कहते हैं। संयुक्तवाक्य के मुख्य वाक्यों को **समानाधिकरण वाक्य** कहते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे के आश्रित नहीं रहते। जैसे—

(१) राम पढ़ता है और श्याम खेलता है। (**दो साधारण वाक्य**)

(२) श्याम माखन चोर है, इसलिये जब मैं ढूँढ़ती हूँ तब वह छिप जाता है। (**एक साधारण और एक मिश्रवाक्य**)

(३) जब भाफ जमीन के पास इकट्ठी दिखाई देती है तब उसे कुहरा कहते हैं और जब वह हवा में कुछ ऊपर इकट्ठी दीख पड़ती है तब उसे बादल कहते हैं। (**दो मिश्रवाक्य**)।

अङ्गवाक्य [आश्रितवाक्य]

(Sub-ordinate Sentences)

ऊपर कह आये हैं कि मिश्रवाक्यों के अङ्गवाक्य होते हैं जो मुख्यवाक्यों के अधीन रहते हैं।

अङ्गवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञावाक्य, विशेषणवाक्य और क्रियाविशेषण वाक्य।

१. जब किसी अङ्गवाक्य का प्रयोग मुख्यवाक्य की किसी संज्ञा के स्थान में होता है तब उसे संज्ञावाक्य कहते हैं। जैसे—इससे जान पड़ता है कि **बुरी संगति का फल बुरा होता है**। साधु कहता है कि **भूखों को भोजन दो**। उसका यह कथन है कि **सूर्य चलता है**, मैं नहीं मानता। यहाँ तीनों वाक्यों के अङ्गवाक्य क्रमशः—**कर्त्ता, कर्म और समानाधिकरण** संज्ञा के बदले आये हैं।

नोट—'संज्ञावाक्य' संयोजक अव्यय 'कि' से आरम्भ होता है, किन्तु कभी-कभी 'कि' का लोप भी करते हैं। जैसे—तुम सुशील हो, यह सब जानते हैं। मेरे मित्र ने कहा—"अब मुझे इसकी आवश्यकता नहीं।"

२. जब कोई अङ्गवाक्य मुख्य-वाक्य की किसी संज्ञा के विशेषण का काम देता है तब उसे 'विशेषणवाक्य' कहते हैं। जैसे—वह आदमी **जो कल आया था**, आज भी आया है। वह अपने विद्यार्थी को, **जो भाग गया था**, मारते हैं। वह अपने विद्यार्थी को, उस छड़ी से मारते हैं, **जो मेले में खरीदी गई थी**। यहाँ तीनों वाक्यों के अङ्गवाक्य क्रमशः—कर्त्ता, कर्म और करण के विशेषण होकर आये हैं।

नोट—विशेषण वाक्यों को 'जो, जैसा, जितना, जब, जहाँ, जिसे' इत्यादि शब्दों से आरम्भ करते हैं और मुख्यवाक्यों में उनके 'नित्य सम्बन्धी शब्द' लाते हैं। कभी-कभी ये शब्द लुप्त भी रहते हैं। जैसे—जो आवे सो जाय। जो बचे सो भागे। जिसकी लाठी उसकी भैंस। जो हुआ सो हुआ। सच हो सो कह दो। उन्होंने जितना काम किया उतना कोई न करेगा।

३. जब कोई अङ्गवाक्य किसी क्रिया के विशेषण का काम देता है तब उसे क्रियाविशेषणवाक्य कहते हैं। जैसे—**जब पानी बरसता है** तब मेढ़क बोलते हैं। **जहाँ पहले थल था**, वहाँ अब जल है। ज्यों ही **वह आया**, त्योंही चला गया। कोई नहीं उतना खाता, **जितना वह खाता है**। यहाँ चारो वाक्यों के अङ्गवाक्य क्रमशः—कालवाचक, स्थानवाचक, रीतिवाचक और परिमाणवाचक क्रियाविशेषण हैं।

नोट—क्रियाविशेषण वाक्यों को 'जब, जहाँ, जिधर, ज्यों, यदि, यद्यपि, कि' इत्यादि शब्दों से आरम्भ करते हैं और मुख्य वाक्य में उनके नित्य सम्बन्धी शब्द आते हैं। कभी-कभी ये शब्द लुप्त भी रहते हैं। जैसे—यदि जा सको तो जाना। यह रसीद लिख दी की सनद रहे। बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।

समानाधिकरणवाक्य—(Co-ordinate Sentences)

हम पीछे लिख आये हैं कि संयुक्तवाक्य के मुख्यवाक्यों को **समानाधिकरणवाक्य** कहते हैं, क्योंकि वे एक दूसरे के आश्रित नहीं रहते।

समानाधिकरणवाक्य चार प्रकार के होते हैं—संयोजक, विभाजक, विरोधदर्शक और कारणसूचक।

१. **संयोजक** में केवल एक वाक्य दूसरे से समान या असमान अवधारण के साथ युक्त रहता है। जैसे—मैं आगे बढ़ गया और तू पीछे रह गया। वस्त्र केवल शोभा के लिये नहीं है, परन्तु उनसे स्वास्थ्य की रक्षा भी होती है। एक तो मेरे पाँव में दाभ की पैनी अनी लगी है, दूसरे कुरे की डाल में अंचल उलझा है।

२. **विभाजक** के मुख्यवाक्यों में व्यावृत्ति या विकल्प का सम्बन्ध रहता है। जैसे—"वह जीता है या मर गया ?" न वहाँ कोई मनुष्य मिला, न कोई पशु दिखाई दिया।

३. **विरोधदर्शक** के मुख्यवाक्यों में परस्पर विरोध रहता है। जैसे—आपसे बहुत कुछ आशा थी, परन्तु वह फलवती न हुई। मुझे सत्य बोलना चाहिये, परन्तु वह अप्रिय न हो।

४. **कारणसूचक** के मुख्यवाक्यों में परस्पर फल और कारण का सम्बन्ध रहता है। जैसे—आप उसे बहुत चाहते थे, इसलिये वह नष्ट हुआ। हिमालय पर्वत परम रमणीय है, क्योंकि वहाँ प्रकृति के वास्तविक दर्शन होते हैं।

नोट—जब संयुक्तवाक्य के अंशों में उद्देश्य, विधेय इत्यादि की पुनरावृत्ति नहीं करके अव्यय इत्यादि से काम चलाते हैं तब उसे संकुचितवाक्य कहते है। जैसे—राम और श्याम एक ही शिक्षक से पढ़ते हैं। मैंने पुस्तकें खरीदीं और पढ़ीं। न उसमें मनुष्य थे, न जानवर। अब वह राजर्षि के नाम से नहीं, वरन् ब्रह्मर्षि के नाम से प्रसिद्ध हो गये। गुरुजी बीमार हैं, इसलिये पढ़ाने नहीं आये।

वाक्यभेद
(२)

क्रिया के अनुसार वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—कर्तृप्रधान, कर्मप्रधान और भावप्रधान।

कर्तृप्रधान की क्रिया कर्तृवाच्य, कर्मप्रधान की कर्मवाच्य और भावप्रधान की भाववाच्य होती है। जैसे—(१) राम पुस्तक पढ़ता है। (२) सीता से ग्रन्थ पढ़ा गया। (३) चला जाय। बैठा जाय। रानी से सोया नहीं जाता।

वाक्यभेद
(३)

सभी वाक्य नीचे लिखे आठ रूपों में मिलते हैं—

१. **विधानार्थक**—जिससे किसी बात का होना पाया जाय। जैसे—रामजी लंका गये। लड़कियाँ लिख रही हैं। २. **निषेधार्थक**—जिससे किसी बात का न होना पाया जाय। जैसे—उसने पुस्तकें नहीं लिखीं। ३. **आज्ञार्थक**—जिससे आज्ञा समझी जाय। जैसे—वहाँ जाओ। बैठा जाय। भात मत खाना। ४. **प्रश्नार्थक**—जिससे प्रश्न समझा जाय। जैसे—कहाँ जाते हो? यह सड़क कहाँ गई है? ५. **विस्मयादिबोधक**—जिससे विस्मय आदि समझा जाय। जैसे—वाह! क्या ही उत्तम दृश्य है! ६. **इच्छार्थक**—जिससे इच्छा जानी जाय। जैसे—जय हो! भगवान् आपका भला करे। ७. **संदेहार्थक**—जिससे सन्देह या सम्भव का बोध हो। जैसे—शायद मैं आऊँ। राम जाता होगा। ८. **संकेतार्थक**—जिससे संकेत का बोध हो। जैसे—यदि तुम पढ़ते रहते तो आज तुम्हारी यह अवस्था नहीं होती।

अभ्यास (Exercise)

१. स्वरूप के अनुसार वाक्य कितने प्रकार के होते हैं? उदाहरण दो। २. समानाधिकरण वाक्य किसे कहते हैं? उदाहरण दो। ३. आश्रितवाक्य और समानाधिकरण वाक्य में क्या भेद है? समझाओ। ४. आश्रित वाक्य कितने प्रकार के होते हैं? उदाहरण दो। ५. समानाधिकरण वाक्य कितने प्रकार के हैं? उदाहरण दो। ६. संकुचित वाक्य किसे कहते हैं? उदाहरण दो। ७. सभी प्रकार के वाक्य किन-किन रूपों में मिलते हैं? एक-एक उदाहरण दो। ८. नीचे लिखे वाक्यों में कौन किस प्रकार का है? तीनों वाक्य भेदों के अनुसार बताओ—

"जो किसी अच्छे काम में आप प्रवृत्त होता है, उसकी सहायता ईश्वर करते हैं।" यह उपदेश माँ के मुँह से बचपन में मातृ-भक्त 'गारफील्ड' को बार-बार सुनने में आता था। बुद्धिमती माँ का उपदेश 'गारफील्ड' कभी न भूले।

उसने इन सब विषयों का ऐसा उत्तर दिया कि जिसको स्मरण करने से हँसी आती है। उसने उत्तर दिया कि सब कुशल है, परन्तु राजकुमार को तृप्ति न हुई। अब भूमि एक-सी आई, दो ही सरपट में ले लेंगे। केश खड़े करके और कनौती उठाकर घोड़े दौड़े क्या हैं, उड़ आये हैं।

१०. नीचे लिखे प्रत्येक शब्द से मिश्रवाक्य बनाओ—

कि, जो, जैसा, जितना, जब, वहाँ, उधर, जैसे, तथापि।

११. नीचे लिखे प्रत्येक शब्द से संयुक्त-वाक्य बनाओ—

क्योंकि, वरन्, परन्तु, और, इसलिये, अथवा, तथा।

१२. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्यांश से एक-एक संयुक्तवाक्य बनाओ—

वस्त्र केवल शोभा ही के लिये नहीं है। दूसरे कुरे की डाल में अंचल उलझा है। राजा प्रजा का रक्षक है। नहीं तो मनुष्य-जाति की स्त्रियों में इतनी दमक कहाँ पाइये। मेरी मनकामना सिद्ध होने के लक्षण तो दिखाई देते हैं।

१३. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्यांश से एक-एक मिश्र वाक्य बनाओ—

जो जंगल से लाये जाते थे। उतना कोई न करेगा। तो एक बात कहूँ ?

सातवाँ अध्याय

Sentences (Continued)

वाक्यरचना (Syntax)

व्याकरण से सिद्ध किये पदों का मेल के अनुसार यथाक्रम रखने को वाक्यरचना कहते हैं।

मेल (Concord)

वाक्य का एक पद दूसरे से लिंग, वचन, पुरुष, काल और नियम इत्यादि का जो सम्बन्ध रखता है, उसे मेल कहते हैं। जब वाक्य में दो शब्द एक ही लिङ्ग, वचन, पुरुष, काल और नियम के हों तब वे आपस में मेल, समानता या सादृश्य रखनेवाले कहे जाते हैं।

हिन्दी में कर्त्ता या कर्म के साथ क्रिया का, संज्ञा के साथ सर्वनाम का, सम्बन्ध * के साथ सम्बन्धी का और विशेष्य के साथ विशेषण का मेल रहता है। कुछ और शब्द भी आपस में सम्बन्ध रखते हैं जो नित्य सम्बन्धी कहलाते हैं।

---

* 'का, की, के' चिह्नयुक्त सम्बन्ध पद जब विशेषण माना जाय तब सम्बन्ध और सम्बन्धीका; नहीं तो केवल सम्बन्ध के चिह्न और सम्बन्धी का।

कर्त्ता और क्रिया में मेल

१. चिह्नरहित कर्त्ता की क्रिया कर्त्ता ही के अनुसार होती है—चाहे वाक्य में कर्म किसी अवस्था में रहे या न रहे। जैसे—श्याम पढ़ता है। सीता पढ़ती है। राम का बालक आता है। सब बालक आते हैं। मैं आता हूँ। वे आते हैं। स्त्री जाती है। स्त्रियाँ जाती हैं। श्याम रोटी खाता है। सीता दासी को पुकारती है।

२. यदि वाक्य में एक ही लिङ्ग, वचन और पुरुष के कई चिह्नरहित कर्त्ता 'और' (या इसी अर्थ के किसी अन्य योजक शब्द) से * संयुक्त हों तो क्रिया उसी लिङ्ग में बहुवचन होगी, परन्तु यदि उनके समूह से एकवचन का अर्थ समझा जाय तो क्रिया एकवचन होगी। जैसे—राम और श्याम आते हैं। सीता, सावित्री और माधुरी वाटिका में गई हैं। उसका उत्साह और आनन्द बड़ा है। भेड़ियाँ और बकरियाँ चर रही हैं। वह और वह जाते हैं।

३. यदि वाक्यों में दोनों लिङ्गों और वचनों के अनेक चिह्नरहित कर्त्ता हों तो क्रिया बहुवचन के सिवा लिङ्ग में अन्तिम 'कर्त्ता' के अनुसार होगी। जैसे—एक घोड़ा, दो बैल और बहुत-सी बकरियाँ चरती हैं। एक बकरी, दो गायें और बहुत-से बैल चरते हैं।

नोट—(क) ऐसी जगह प्रायः बहुवचन और पुँल्लिङ्ग कर्त्ता अन्त में रहता है। (प्रयोग में इसका विशेष विचार नहीं देखा जाता)।

(ख) यदि पिछला कर्त्ता एकवचन हो तो क्रिया एकवचन और बहुवचन दोनों होती है। जैसे—तुम्हारी बकरियाँ, उसकी घोड़ी और मेरा बैल उस खेत में चरता है (चरते हैं)। —पंडित अम्बिकादत्त व्यास।

(ग) यदि दोनों लिङ्गों के एकवचन कर्त्ता 'और' (या इसी अर्थ के किसी अन्य योजक शब्द) से संयुक्त हों तो क्रिया प्रायः पुँल्लिङ्ग और बहुवचन होती है। जैसे—किसी गाँव में एक बुढ़वा और बुढ़िया रहते थे। आज ही राजा और रानी गये हैं! इस राज्य में बाघ और बकरी एक घाट पानी पीते हैं।

(घ) समस्त शब्दों की क्रियाओं के नियम 'समासप्रयोग' में देखो।

४. यदि चिह्नरहित अनेक कर्त्ता हों और उनके बीच में विभाजक शब्द

---

* 'समासप्रयोग' और 'विरामचिह्न' देखो।

लावें तो **क्रिया, लिंग और वचन में अन्तिम कर्त्ता के अनुसार होती है।** जैसे—मेरी बेटी या उसका बेटा जाता है। आज मोहन का घोड़ा या राम की बकरियाँ बिकेंगी।

५. यदि चिह्नरहित अनेक कर्त्ताओं और क्रिया के बीच में कोई समुदाय-वाचक शब्द आ पड़े तो **क्रिया लिंग और वचन में समुदायवाचक शब्द के अनुसार होगी।** जैसे—लड़ाई में बालक, युवा, नर-नारी, राजा रानी सब-के-सब पकड़े गये या भीड़-की-भीड़ पकड़ी गई।

६. यदि चिह्नरहित अनेक कर्त्ताओं से बहुवचन का अर्थ निकले तो क्रिया बहुवचन और यदि एकवचन का अर्थ निकले तो **क्रिया एकवचन होती है,** चाहे कर्त्ताओं के आगे समुदायवाचक शब्द हों या न हों। जैसे—इसके मोल लेने में दो रुपये सात आने तीन पैसे लगे हैं। धन, जन, स्त्री और राज मेरा क्यों न गया? खेती-बारी, घर-द्वार मेरा सब चला गया। चार मास और तीन बरस इसके करने में लगा है। मेरा उत्साह, धैर्य और आनन्द बढ़ता जाता है। इसके मोल लेने में दो रुपया आठ आना लगा है। दाल और भात अच्छा बना है। **(यह नियम जीवधारी के लिये नहीं है)।**

७. यदि वाक्य में उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष दोनों के साथ या किसी एक के साथ कर्त्ता होकर आवे **तो क्रिया उत्तमपुरुष के अनुसार होगी।** यदि कर्त्ता केवल मध्यम और अन्यपुरुषों में हो तो **क्रिया मध्यमपुरुष के अनुसार होगी।** जैसे—तुम, वह और हम चलेंगे। तुम, वह और मैं चलूँगा। तुम और हम चलेंगे। तुम और मैं चलूँगा। वह और हम चलेंगे। वह और मैं चलूँगा। तुम और वह (श्याम) चलोगे। *

नोट—वाक्य में पहले मध्यमपुरुष आता है और अन्त में उत्तमपुरुष। अन्यपुरुष दोनों के बीच में लाते हैं। †

८. आदर के लिये चिह्नरहित एकवचन कर्त्ता की क्रिया भी बहुवचन होती है। जैसे—पण्डितजी आये हैं। वह जाते हैं।

नोट—परमेश्वर के लिये बहुधा एकवचन क्रिया का ही प्रयोग होता है। जैसे—ईश्वर जानता है, हम झूठ नहीं बोलते।

---

* ऐसी जगह दिल्ली के उर्दूवाले पण्डित क्रिया को सदा पुँल्लिंग, बहुवचन और अन्य-पुरुष में रखते हैं।

† इस क्रम को कोई-कोई नहीं भी पालते हैं।

९. जब कोई स्त्री अपने पति या परिवार की ओर से या किसी ऐसे समुदाय की ओर से जिसमें स्त्री-पुरुष सब हों, कुछ कहती है तब वह भी अपने लिये पुँल्लिङ्ग और बहुवचन क्रिया का प्रयोग करती है। जैसे—ब्राह्मणी ने कुन्ती से कहा—"न जानें हम बकासुर राक्षस के अत्याचार से कैसे छुटकारा पावेंगे।"

१०. **क्रिया मुख्य कर्त्ता के अनुसार** होती है, कर्त्ता के विधेय स्वरूप के अनुसार नहीं। जैसे—लड़की बीमारी से सूखकर काठ हो गई। वह राजा स्त्री हो गया। यह विरोध ही का फल है कि अर्जुन विराट् के घर स्त्री रूप में वृहन्नला कहलाता है। स्त्रियाँ झुंड बन गईं। औरतें भी आदमी कहलाती हैं।

११. एक कर्त्ता की दो या अधिक क्रियाएँ (सकर्म और अकर्मक दोनों) हों तो कर्त्ता का चिह्न केवल पहली **क्रिया के अनुसार आता है,** परन्तु शेष क्रियाएँ भी नियमबद्ध रहती हैं। जैसे—मेरे सब लड़कों ने साथ-साथ एक ही स्थान में विद्या सीखी और खेले-कूदे।

१२. दो या अधिक वाक्यों के 'समान कर्त्ता' को बार-बार न लाकर केवल एक ही बार लाते हैं और क्रियाओं के उत्तर अंश समान हों तो उन्हें सबों में नहीं रखते, केवल अन्तिम क्रिया में रखते हैं। जैसे—सीता खाती-पीती थी।

१३. एक वाक्य में पूर्वकालिक का वही कर्त्ता होता है जो समापिका क्रिया का होता है, परन्तु कर्त्ता का चिह्न पूर्वकालिक के अनुसार नहीं होता। जैसे—मैं पाठशाला में बैठकर पढ़ता हूँ।

कर्म और क्रिया में मेल

१. यदि कर्म चिह्न-रहित हो तो चिह्न-सहित कर्त्ता की **क्रिया कर्म के अनुसार होती है।** परन्तु यदि दोनों चिह्न युक्त हों तो क्रिया सदा एकवचन **पुँल्लिग और अन्यपुरुष में रहती है।** जैसे—मैंने रोटी खाई। मुझसे रोटी खाई गई। रानी ने भात खाया। रानी ने सहेलियों को बुलाया। दासी कहती है कि रानी ने मुझे मारा। उन्होंने उसे अधिक आदर की चीज समझा है।

नोट—'श्रोताओं ने खूब ही उत्साह और आनन्द प्रकट किया।' इसमें

'उत्साह और आनन्द' से एकवचन का अर्थ लिया गया है। (पीछे 'कर्त्ता और क्रिया में मेल' शीर्षक पाठ का छठा नियम देखो)।

२. यदि कर्म न हो सके या लुप्त हो तो चिह्न सहित कर्त्ता की क्रिया सदा एकवचन पुँल्लिङ्ग और अन्यपुरुष में रहती है। जैसे—मुझसे बैठा नहीं जाता। मैंने पढ़ा है। रानी ने देखा था।

कर्त्ता, कर्म और क्रिया सम्बन्धी नोट—

(१) अङ्गवाक्य और क्रियार्थक संज्ञा के अनुसार होनेवाली क्रियाएँ सर्वदा एकवचन पुँल्लिङ्ग और अन्यपुरुष में होती हैं। जैसे—तूने कहा कि पुस्तक अच्छी है। इस कार्य के लिये उनका दौड़ना-धूपना कुछ भी लाभदायक नहीं हुआ। टहलना अच्छा है।

(२) क्रिया जिसके अनुसार होनेवाली है, यदि उसके लिङ्ग में सन्देह हो तो क्रिया पुँल्लिङ्ग ही होती है। जैसे—उसने कुछ न किया। महाभारत में लिखा है। दरवाजा कौन खटखटाता है?

(३) कतिपय संज्ञाओं के केवल बहुवचन प्रयोग मधुर जान पड़ते हैं। जैसे—प्राण निकल गये। उसने प्राण छोड़ दिये। बूँदें पड़ रही हैं। आँसू टपक पड़े। आपके दर्शन कब होंगे? अक्षत छींटे गये। ओठ फड़कने लगे। होश उड़ गये। शत्रुओं के दाँत खट्टे हो गये।

संज्ञा और सर्वनाम में मेल

१. सर्वनाम में उसी संज्ञा के लिङ्ग और वचन होते हैं, **जिसके बदले वह आता है**, परन्तु कारकों में भेद रहता है। जैसे—राम ने कहा कि मैं जाऊँगा। सीता कहती है कि मैं यहाँ नहीं रहूँगी, मुझको वन ही में सुख मिलेगा।

२. सम्पादक, ग्रन्थकार, किसी सभा का प्रतिनिधि और बड़े-बड़े अधिकारी अपने लिये **'मैं' के बदले 'हम' का प्रयोग करते हैं**। जैसे—हमने पहले किसी अङ्क में यह बात लिखी है। हम चौथे अध्याय में यह बात लिख आये हैं। हम अपने सभासदों से इसके विषय में फिर राय लेंगे। हम अपने राज्य का प्रबन्ध कर लेंगे।

नोट—वक्ता केवल अपने लिये भी 'मैं' के स्थान में बहुधा 'हम' का प्रयोग करते हैं। जैसे—'हम' आधी दक्षिणा लेकर क्या करें? (भारतेन्दु)।

३. एक प्रसंग में किसी एक संज्ञा के बदले पहली बार जिस वचन में

सर्वनाम का प्रयोग करें, आगे के लिये भी वही वचन रखना उचित है। एक ही संज्ञा के लिये 'आप' और 'तुम' अथवा 'महाराज' और 'आप' कहना असंगत है। इसलिये अगले वाक्य अशुद्ध हैं—'राम ने श्याम से कहा कि मैं तुझे कभी न पढ़ाऊँगा, क्योंकि **तुमने हमारी** पुस्तकें, जिन्हें **हमने तुम्हारे** बाप से खरीदी थीं, चुरा ली है। जिस बात की चिन्ता **महाराज** को है, सो कभी न हुई होगी, क्योंकि तपोवन के विघ्न तो केवल **आपके** धनुष की टंकार ही से मिट जाते हैं। **आपने** बड़े प्यार से कहा कि आ बच्चे, पहले तू ही पानी पी ले। उसने **तुम्हें विदेशी** जान **तुम्हारे** हाथ से जल न पिया।

नोट—कभी-कभी एक ही वाक्य में 'मैं' और 'हम' एक ही संज्ञा के लिये क्रमशः व्यक्ति और प्रतिनिधि के अर्थ में आते हैं। जैसे—मैं चाहता हूँ कि आगे ऐसी सूरत न हो और हम सब एकचित्त होकर रहें।

४. संज्ञाओं के बदले का एक सर्वनाम वही लिङ्ग और वचन लेगा जो उनके समूह से समझे जायँगे। जैसे—राम और श्याम पढ़ने गये हैं, परन्तु वे शीघ्र आवेंगे। श्रोताओं ने जो उत्साह और आनन्द प्रकट किया, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

५. **'तू' अनादर और प्यार अर्थ में**, किसी संज्ञा के बदले तथा देवताओं के लिये आता है। जैसे—अरे शठ, तू क्या करता है? अरे बेटा—तू मुझसे क्यों रूठ गया है? हे ईश्वर! तू संसार का स्वामी है। तू अनन्त है। तू घटघट की जानता है। तेरी महिमा अपरम्पार है। (**अब ऐसी जगह 'तुम' भी आने लगा है।**)

६. मध्यमपुरुष में सार्वनामिक शब्द की अपेक्षा अधिक आदर सूचित करने के लिये किसी संज्ञा के बदले ये शब्द प्रयुक्त होते हैं—(१) **पुरुषों के लिये**—कृपानिधान, महाशय, महानुभाव, कृपासागर, श्रीमान्, हुज़ूर, हुज़ूरवाला, साहिब, जनाब इत्यादि। (२) **स्त्रियों के लिये**—श्रीमती, देवी इत्यादि। जैसे—कृपानिधान की आज्ञा होती तो यह दास घर जाता। हुज़ूर का क्या हुक्म होता है? श्रीमती की आज्ञा कब होगी?

७. बड़ों के सामने अपनी हीनता और दीनता दिखलाने के लिये उत्तम-पुरुष के बदले ये शब्द आते हैं—(१) **पुरुषों के लिये**—सेवक, दास, सेवकाधम, विनयावनत, बन्दा इत्यादि। (२) **स्त्रियों के लिये**—दासी,

आज्ञाकारिणी, इत्यादि। जैसे—इस सेवक को भी याद में रखियेगा। इस दासी ने क्या अपराध किया है?

८. आदरार्थ अन्यपुरुष में 'आप' के बदले ये शब्द आते हैं—(१) **पुरुषों के लिये**—श्रीमान्, प्रभुवर, मान्यवर, हुजूर इत्यादि (२) **स्त्रियों के लिये**—श्रीमती, देवी, इत्यादि। जैसे—क्या तुम जानते हो कि श्रीमान् कब आवेंगे? श्रीमती के विषय में आपके पास कोई समाचार आया है?

सम्बन्ध * और सम्बन्धी में मेल

१. सम्बन्ध के चिह्न में **वही लिङ्ग और वही वचन** होते हैं, जो **सम्बन्धी के होते हैं**। जैसे—सीता का घर। सीता के दो पुत्र। राम की घोड़ी और राम की घोड़ियाँ।

२. आकारान्त विशेषण के परिवर्तन में जो-जो नियम लगते हैं, **वे ही नियम सम्बन्ध के चिह्नों के लिये भी** हैं। जैसे—अच्छा घोड़ा—राम का घोड़ा—अच्छे घोड़े—राम के घोड़े। अच्छे घोड़े को—राम के घोड़े को। अच्छे घोड़ों को—राम के घोड़ों को—अच्छी घोड़ी। राम की घोड़ी। अच्छी घोड़ियाँ—राम की घोड़ियाँ।

नोट—यदि समस्त शब्द सम्बन्धी होकर आवें तो भी ऊपर ही के नियम लगते हैं। (समासप्रयोग देखो)।

३. यदि सम्बन्धी में कई संज्ञाएँ बिना समास के आवें तो सम्बन्ध का चिह्न उस संज्ञा के अनुसार होगा, जिसके पहले वह रहेगा। जैसे—राम के बैल, गाय और बकरियाँ चरती हैं। मेरी माता और पिता जीवित हैं।

विशेषण और विशेष्य में मेल

कई बातें पीछे '**विशेषण**' में देखो।

१. विशेषण के लिङ्ग और वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं, चाहे वह विशेषण के आगे रहे या पीछे। जैसे—यह पीली धोती है। यह धोती पीली है। पीले कपड़े लाओ। कपड़े पीले हैं।

नोट—(१) जब कर्मकारक के आगे चिह्न न रहे तब उसका विधेयविशेषण ठीक ऊपर के नियम से कर्म ही के अनुसार होता है। जैसे—अपनी लाठी सीधी करो। कोई चीज समझो न, अपनी बुरी तुम। मैंने लाठी सीधी की। मैंने यह बात पूरी की।

---

* पीछे मेल शीर्षक पाठ की पादटिप्पणी देखो।

(२) जब कर्मकारक के आगे चिह्न रहे तब उसका विधेयविशेषण या तो कर्म के अनुसार होता है या सदा एकवचन पुँल्लिङ्ग रहता है। जैसे—उसने लाठी को सीधी किया या उसने लाठी को सीधा किया। रहो बात को करते अपनी बड़ी तुम। हम आप जल बुझे मगर इस दिल की आग को, सीने में हमने 'जौक' न पाया बुझा हुआ।

(३) समय, परिमाण या धन का विशेषण यदि बहुवचन, संख्यावाचक हो तो विशेष्य कारकादि के प्रत्यक्ष चिह्नों के साथ प्रायः एकवचन रूप में रहता है, परन्तु जब चिह्न प्रत्यक्ष नहीं रहते तब बहुवचन रूप में भी आता है। जैसे—'तीन घण्टे की छुट्टी मिली। पाँच रुपये की पुस्तक लाये। चार सेर का आटा बिका। तीन घण्टे लगे। मैं चार रुपये दूँगा।

२. यदि कई विशेषणों का एक ही विशेष्य हो तो सब-के-सब उसी विशेष्य के अनुसार होंगे तथा अन्तिम विशेषण के पहले 'और, या' इत्यादि में से कोई एक समुच्चायक आवेगा। जैसे—काला और उजला घोड़ा लाओ। काले और उजले घोड़े लाओ। काले और उजले घोड़ों को लाओ। मैंने स्वप्न में एक बड़ी ऊँची और डरावनी मूर्त्ति देखी।

३. यदि एक विशेषण की कई समासरहित संज्ञाएँ विशेष्य हों तो विशेषण लिङ्ग और वचन में उसी संज्ञा के अनुसार होगा, जिसके समीप वह रहेगा। जैसे—छोटे लड़के और लड़कियाँ। ऐसी माता और पिता।

नोट—समस्त शब्द के विशेषण के लिये 'समासप्रयोग' देखो। उदाहरण—अच्छे माँ-बाप। हमारे राजारानी।

४. यदि क्रिया का साधारण रूप किसी संज्ञा के आगे विधेय-विशेषण होकर सम्प्रदान या क्रिया की पूर्त्ति का अर्थ दे तो वह लिङ्ग, वचन आदि में उसी संज्ञा के अनुसार होगा, परन्तु यदि वह उस संज्ञा के सम्बन्धी का अर्थ दे तो ज्यों-का-त्यों रहेगा। जैसे—मुझे प्रतीक्षा करनी होगी, बुद्धदेव की है यह युक्ति; कब तक, जब तक तुच्छ जीव तक पा न सके, पृथ्वी पर मुक्ति। दुःख की व्यथा उठानी पड़ेगी। जो बात होनी थी, हो गई। उपदेश करना था, कर दिया। जो रुपये देने थे, दे दिये। मुझे रोटी खानी चाहिये। उसे दस काम करने चाहिये *। क्या जान देना आसान है? झूठमूठ कसम खाना छोड़ दो। रोटी बनाना सीख लो।

---

* कोई चाहिये का बहुवचन 'चाहियें' बनाते हैं, परन्तु यह खटकता है।

नोट—ऊपर के उदाहरणों में जहाँ हमने सम्प्रदान इत्यादि या सम्बन्ध का अर्थ लिया है वहाँ कोई-कोई प्रतिकूल अर्थ भी करते हैं और अपने अर्थ के अनुसार वाक्यों में भेद डालते हैं। जैसे—जो बात होनी थी, हो गई। रुपये की हानि सहना पड़ेगी। दुःख की व्यथा उठाना पड़ेगी। उसे भिक्षा माँगना पड़ेगी। झूठमूठ कसम खानी छोड़ दो। रोटी बनानी सीख लो। हमारे जानते ये वाक्य मधुर नहीं जान पड़ते, अतएव प्रतिकूल अर्थ करना भी खटकता है।

५. भूत और वर्त्तमानकालिक कृदन्त-विशेषण जब क्रिया की विशेषता बतलाते हैं तब उनके **अन्त्य स्वर 'आ' के बदले सर्वदा 'ए' लाते हैं।** जैसे—लड़की दौड़ते-दौड़ते थक गई। थक गई, मैं दुःख सहते-सहते। थक गये, आँसू बहते-बहते।

नित्य सम्बन्धी शब्द

वाक्यों में कुछ शब्द ऐसे आते हैं जो **नित्य सम्बन्धी** होते हैं। बहुत-से अव्यय, कतिपय सर्वनाम और थोड़े से अन्य शब्द नित्य सम्बन्धी हैं। * नित्य सम्बन्धी शब्दों में भेद डालने से वाक्य अशुद्ध हो जाता है। नीचे थोड़े-से प्रयोग दिये जाते हैं।

१. 'यद्यपि' और 'तथापि' में नित्य सम्बन्ध है। तथापि के बदले **किन्तु, पर,** या **परन्तु** का लिखना खटकता है, परन्तु **'तो भी'** लिख सकते हैं। जैसे—**'यद्यपि'** वह नहीं आया **तथापि** मैंने वहाँ का सारा वृत्तान्त सुन लिया। **यद्यपि** वह नहीं आता **तो भी** हम उसको प्यार करते हैं।

२. 'जब' के साथ 'तब' का सम्बन्ध है 'तब' के बदले 'तो' का प्रयोग खटकता है। जैसे—जब राम आया तब मैं गया।

३. 'यदि' के साथ 'तो' का सम्बन्ध है। 'तो' के बदले 'तब' लिखना खटकता है। जैसे—यदि मनुष्य मरणशील न होता तो उसकी श्रेष्ठता का कहना ही क्या था।

नोट—(१) 'यदि' के बदले इसी अर्थ में 'जो' भी आता है। जैसे—जो आना हो तो कल ही आओ।

(२) कभी-कभी नित्य सम्बन्धी शब्द गुप्त भी रहते हैं। जैसे—आप आवेंगे तो मैं जाऊँगा। जब आप आवें, मेरी पुस्तक लाइयेगा।

---

* 'नित्य सम्बन्धी शब्द' पीछे स्थान-स्थान पर दिये गये हैं।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

१. सीता ने दासी को पुकारता होगा । रोटी और दाल अच्छा है । एक बैल, दो घोड़ा और बहुत सा गायें चरता है । आपके राजा और रानी कहाँ रहती हैं ? आज मेरी बेटी और उसका भाई आवेंगे । मैं, तू और वह चलेगा । ईश्वर जानते हैं, हम झूठ नहीं बोलता । वह स्त्री बीमारी से सूख कर काठ हो गया । स्त्रियाँ भी मनुष्य कहलाता है । श्रोता खूब ही उत्साह और आनन्द प्रकट किये । रानी भात खाई थी । राम ने कही कि पुस्तक अच्छी है । रानी से बैठी नहीं जाती । रामायण में लिखी है—राम प्राण छोड़ दिया । आप खाये ? हाँ हम खाये । आप कहा था ? जी नहीं, हम नहीं कहा था ।

२. राम श्याम से कहा कि मैंने तुझे कभी नहीं पढ़ाऊँगा, क्योंकि तुम हमारी पुस्तक, जिसे हम तुम्हारे बाप से खरीदी थी, चुरा लिया है । जिस बात की चिन्ता महाराज को है, सो कभी न हुआ होगा, क्योंकि तपोवन के विघ्न तो केवल आपके धनुष की टंकार ही से मिट जाता है । आप बड़े प्यार से कहा कि आ बच्चे, पहले तू ही ने पानी पी ले । वह तुम्हें विदेशी जान तुम्हारे हाथ से जल न पिया । श्रोता जो उत्साह और आनन्द प्रकट किये, उनके वर्णन नहीं हो सकते । मैंने पाँचवें अध्याय में यह बात लिखा हूँ ।

३. चार घण्टों का छुट्टी मिली । मैंने तीन रुपयों का पुस्तक लाई । मैं रोटी को पतली बनाई । छोटी लड़की और लड़के आई हैं । दुःख का व्यथा उठाना पड़ेगा । बातें करना पड़ेगा । आपको दाल खाना चाहिये । रोटी बनानी सीख लो । मैं पीड़ा सहती-सहती थक गई । यदि आप नहीं आते तब मुझे कौन सहायता देता ? यद्यपि आप नहीं आया, परन्तु मैं सभी बातें जान लिया । मैं जरा ही-सा घुड़का था कि वह फूट कर रो दिया । वह चोर को पकड़िस है ।

क्रम (Order)

१. वाक्य में उद्देश्य या कर्त्ता को पहले और विधेय या क्रिया को अन्त में रखते हैं । जैसे—बालक खाता है ।

नोट—कर्त्ता या क्रिया चाहे एक हो या अनेक दोनों अपने ठीक स्थानों पर आते हैं और जब अनेक हों तब अन्तिम कर्त्ता या क्रिया के पहले 'और, या' इत्यादि समुच्चायक अव्यय लाते हैं। जैसे—राम या मोहन आता है। सीता आई, बैठी और रोई।

२. उद्देश्य के विस्तार को उद्देश्य के पहले और विधेय के विस्तार को विधेय के पहले रखते हैं। जैसे—सुशील बालक धीरे-धीरे पढ़ता है।

३. कर्मकारक को सकर्मक क्रिया के पहले और गौणकर्म को मुख्य कर्म के पहले रखते हैं। जैसे—राम ने घर में पुस्तक निकाली। राजा ने दरिद्रों को वस्त्र दिये।

४. 'करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण' ये चार कारक, कर्त्ता और कर्म के बीच में उलटे क्रम से आते हैं, अर्थात् पहले अधिकरण, तब अपादान, तब सम्प्रदान और तब करण। जैसे—राम ने घर में आलमारी से श्याम के लिये हाथ से पुस्तक निकाली। —**पं० रामावतार शर्मा।**

नोट—जब एक साथ अनेक अधिकरण आवें तब पहले कालाधिकरण लाते हैं। जैसे—संध्या में घर-घर आनन्द रहता है। वर्षाऋतु में बादल छाये रहते हैं।

५. सम्बोधन वाक्य में सबसे पहले आता है। जैसे—हे राम! मेरी खबर क्यों नहीं लेते?

६. सम्बन्धी के पहले सम्बन्ध को, विशेष्य के पहले विशेषण को और क्रिया के पहले क्रियाविशेषण को लाते हैं—परन्तु विधेयविशेषण और उपाधिसूचक विशेषण विशेष्य के आगे आते हैं। जैसे—राम का सिपाही अच्छे घोड़ों को खूब पहचानता है। आपका पुत्र सुशील है। मोहनलाल मिश्र आये हैं।

नोट—(१) विशेषण का भी विशेषण होता है जो उसके पहले आता है। जैसे—अत्यन्त सुन्दर बालक। बहुत ही अच्छा घोड़ा। बड़ा भारी वृक्ष।

(२) सम्बन्धी का विशेषण सम्बन्धपद के पहले रखना उचित नहीं, परन्तु यदि भ्रम न हो तो रख भी सकते हैं। जैसे—आश्रम की शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु श्रम को नाश करती है। सरोवर के समीप एक बड़ा भारी शाल्मली का वृक्ष था।' (कादम्बरी)।

(३) जब एक ही विशेष्य के कई विशेषण एक साथ आवें तब अन्तिम

विशेषण के पहले 'और, या' इत्यादि समुच्चायक अव्यय लाते हैं। जैसे—'महाराज, यह सूआ सकलशास्त्रवेत्ता, राजनीतिज्ञ, सद्वक्ता, चतुर, सकलकलाभिज्ञ, महाकवि और गुणी है।' (कादम्बरी)।

(४) 'केवल, सिर्फ, प्रधानतः, कठिनता से' इत्यादि शब्द जिसके पहले आते हैं उसीकी विशेषता बतलाने लगते हैं। इनका प्रयोग करते समय विशेष ध्यान रखना चाहिये, नहीं तो अर्थ में उलट-फेर हो जायेगा। जैसे—केवल राम चिट्ठी को पढ़ सकता है। राम चिट्ठी को केवल पढ़ सकता है।

(५) यदि एक सम्बन्धी के कई अधिकारी सम्बन्धपद हों तो सम्बन्ध के चिह्न को कभी अन्तिम अधिकारी के आगे और कभी सबों के आगे लाते हैं। जैसे—यह माधुरी और कुन्ती की माता है। वह तुम्हारा और मेरा घर है।

(६) सम्बन्धपद के समानाधिकरण में कई संज्ञाओं के रहने पर भी सम्बन्ध का चिह्न केवल अन्तिम संज्ञा के आगे आता है। जैसे—यह ग्रिअर्सन साहब स्थानीय कलक्टर और मजिस्ट्रेट, की चिट्ठी है।

(७) क्रिया की पूर्त्ति उसीके पहले आती है। जैसे—एक पलंग बिछा हुआ था। उसका लड़का चोर निकला।

७. प्रश्नवाचक शब्द को उसीके पहले रखना चाहिये जिसके विषय में मुख्यतः प्रश्न किया जाता है। जैसे—वह कौन शिक्षक है? वह शिक्षक कौन है? राम क्या बनाता है? क्या राम बनाता है? इन चारों वाक्यों में प्रश्नवाचक शब्दों ही के कारण अर्थभेद हो गये हैं।

यदि पूरा वाक्य ही प्रश्न हो तो प्रश्नवाचक शब्द को वाक्य के आरम्भ में रखते हैं। जैसे—क्या, आपको यही करना था?

नोट—जब वाक्य में प्रश्नवाचक शब्द नहीं आता तब बोलने के ढंग और वक्ता के मुख की आकृति से प्रश्न समझा जाता है। जैसे—मुझे ठहरना होगा? कुछ पूछना चाहते हो?

८. पूर्वकालिक क्रिया समापिका क्रिया के पहले आती है। जैसे—राम खाकर पढ़ता है! मोहन सोकर पढ़ेगा। सीता ने देखभालकर खाया।

नोट—(१) पूर्वकालिक और समापिका दोनों क्रियाएँ अपने-अपने विस्तार को अपने से पहले रखती हैं। जैसे—राम अपने घर में रोटी खाकर स्कूल में पुस्तकों को भलीभाँति पढ़ता है।

(२) यदि पूर्वकालिक और समापिका दोनों क्रियाओं का एक ही विस्तार

हो तो उसे पूर्वकालिक ही से पहले रखते हैं। जैसे—राम ने पाठशाला में मेरी पुस्तक लेकर पढ़ ली।

९. विस्मयादिबोधक शब्द को प्रायः वाक्य के आरम्भ में लाते हैं। जैसे—वाह ! आपने खूब कहा।

१०. वाक्य में आनेवाले दूसरे-दूसरे पदों में से जो पद जिसके साथ अन्वित हो सके उसको उसीके पास रखना चाहिये। जैसे—वह घर पर किस हेतु गया है ? देवमन्दिर घर के आगे है।

ऊपर क्रमनिर्णय के जितने नियम दिये गये हैं, यद्यपि वे मुख्य हैं, तथापि उनका निर्वाह भलीभाँति नहीं होता। कारण नीचे लिखे जाते हैं—

१. **वाक्य के जिस भाग या पद की प्रधानता** दिखानी हो, उसे पहले रखते हैं, इससे वाक्य के अन्य अंशों में भी स्थानपरिवर्त्तन हो जाता है। जैसे—

क्रिया कर्त्ता से पहले—खाता तो हूँ मैं, आप क्यों दुःखी होते हैं ? बुलाहट थी मेरी, गया वह। **पूर्वकालिक क्रिया कर्त्ता से पहले**—मुझे देखकर वह घर में घुस गया। साँप देखकर सभी डर जाते हैं। **कर्म पहले**—तुम्हींको वह बुलाता है। उसीको मैं मारूँगा। **करण पहले**—छुरी से उसने हाथ काटा। **सम्प्रदान पहले**—आपके लिये मैंने सब कुछ किया। **अपादान पहले**—झूले से वह गिरी तो सही, परन्तु सखियों ने बीच ही में लोक लिया। **सम्बन्ध पहले**—मेरी तो आपने कोई पुस्तक नहीं देखी। **सम्बन्ध पद से सम्बन्धी पहले**—घर किसका है ? यह पुस्तक मोहन की है। घर मेरा और झगड़ा तुमलोगों में। **अधिकरण पहले**—तिल में तेल है। सिंहासन पर राजा है। **अन्य शब्द सम्बोधन से पहले**—सुनते हो, लड़के ! अभी-अभी, बेटा ! **क्रियाविशेषण पहले**—अभी-अभी वह यहाँ से उठके गया है। **क्रिया-विशेषण कर्म से पहले**—वह भलीभाँति आपको पहचानता है। **विधेय-विशेषण पहले**—सच्चे और निराले तो तुम्हारे सभी कार्य होते हैं। **पूरक पहले**—चोर तो उसका लड़का निकला, इसका क्या अपराध ? इत्यादि।

कविता में प्रायः सभी पद और किसी-किसी के टुकड़े भी स्थान परिवर्त्तन करते हैं। जैसे—

दो प्राणी भी अवनि व्रज के साथ जो बैठते थे।
तो आने की न मधुवन से बात ही थे चलाते ॥

पूछा जाता परस्पर भी व्यग्रता से यही था।
दोनों प्यारे कुँवर अब लौं लौट के क्यों न आये ? (प्रियप्रवास)

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

जब नल का ऐसा दुर्दशा हुआ तब उसने दमेन्ती से बोला की आयसी आपती में हम और तू अलग हो जाय। दमेन्ती कहा—"हे राजा, तेरा बात सुनकर मेरा छाती फटता है। ऐसे विपत्ती में हम तुमको छोड़कर किस तरह जा सकते हैं। जब तुम मारग का थका आउर भूषा अपना पूरब सुध समरन करेगा और हम तेरी दुख का साथी हूँगा।"

मंदिर का भीतरवाला चारिकाभीत पर पाथर में खोदा हुआ अनेक प्रकार का देवमूर्त्तियाँ बना है। जिनका आकित आरजों का मूरतियों से बहुत मिलते हैं। इनके अत्रिक्त उस मंदिर में पाथरों पर आयसी अद्भुत चितरकारियाँ है जिसको देखने से आसचरज होती है।

बिल्ली उत्तर दी—"हाँ, आपकी प्रभुता मुझे शक्तिमान बिल्ली बनाई है। अभी हम दूसरे बिल्लियों से डर करती हूँ। पर मैं एक नई बैरी पाई हूँ।"

मैं आपका कृपापत्र पाया। बाँच के बड़ा प्रसन्न हुए। आप जो पुस्तकें हमारे पास ऐसे कृपा से भेजे हैं सो बहुत ही अच्छे हैं। मैंने संस्कृत में दो नवीन ग्रन्थ बनाया हूँ।

२. नीचे चार पदसमूह हैं। प्रत्येक समूह के शब्दों को इस प्रकार बैठाओ कि एक पूर्ण वाक्य बन जाय।

(१) यह, लोचन भर, अच्छा, प्यारी को, देखने का, है, अवसर। (२) छन्द, कैसी, इस समय, इसकी, चढ़ी, एक, बनाने में, भौंह, लगती है, सुन्दर, और, स्पष्ट, पुलकित, प्रीति, कपोलों से, कैसी, झलक, रही है। (३) लिखने की, छंद, तो, सखी, मैंने, परन्तु, बना लिया, नहीं है, सामग्री। (४) पढ़ती जा, तू, कोमल, मैं, इस, अपने, कमल के, नखों से, पत्ते पर, लिख लूँगी।

३. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्यसमूह में परस्पर क्या भेद है ?

(१) केवल शिक्षक इस पुस्तक को पढ़ा सकते हैं। शिक्षक केवल इस पुस्तक को पढ़ा सकते हैं। शिक्षक इस पुस्तक को केवल पढ़ा सकते हैं।

(२) मैं कठिनता से पढ़ सकता हूँ। कठिनता से मैं पढ़ सकता हूँ।

वाक्यार्थबोध

वाक्यार्थबोध के लिये आगे लिखी बातों का होना आवश्यक है—आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति।

१. आकांक्षा—वाक्य में एक पद को दूसरे पद के साथ अन्वय के लिये जो चाह होती है, उसे आकांक्षा कहते हैं। जैसे—'घोड़ा, बैल, हाथी' इत्यादि अकेले रहकर वाक्यार्थ नहीं दे सकते, जबतक उनके साथ 'चरता है, जाता है, आवेगा' इत्यादि चाहक पद न आवें।

२. पदों के परस्पर उचित सम्बन्ध को योग्यता कहते हैं। जैसे—यदि कोई कहे कि **'आग से सींचते हैं'**, तो यह शुद्ध वाक्य नहीं हुआ, क्योंकि 'सींचते हैं' क्रिया की योग्यता आग से नहीं, बल्कि 'जल' से है। इस कारण **'जल से सींचते हैं'**—शुद्ध वाक्य हुआ। इसी प्रकार 'गत दिवस को काशी जाऊँगा। आगामी सोमवार को मित्र आये थे', इत्यादि वाक्य भी अशुद्ध हैं।

३. पदों की समीपता को आसक्ति कहते हैं। जैसे—यदि कोई भोर को 'बालक' कहकर साँझ को 'पढ़ता है' बोले तो यह अर्थबोधक वाक्य नहीं होगा। **'बालक'** के साथ ही **'पढ़ता है'** कहने से शुद्ध वाक्य होगा।

अभ्यास (Exercise)

१. वाक्य में आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति की क्या आवश्यकता है?

२. आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति से क्या समझते हो?

३. 'आँख से सुनते हैं। नाक से देखते हैं'—ये दोनों वाक्य हैं या नहीं? क्यों?

४. 'गत वर्ष हम परीक्षा देंगे।' इस वाक्य में क्या भूल है? कारण दो।

आठवाँ अध्याय

वाक्यविभाजन (Analysis)

वाक्यविभाजन में वाक्य के अंग अलग-अलग कर दिये जाते हैं और यह दिखाया जाता है कि वे आपस में क्या सम्बन्ध रखते हैं।

नोट—पीछे लिख आये हैं कि स्वरूप के अनुसार वाक्य के तीन भेद हैं—अमिश्र, संकीर्ण और संसृष्ट। आगे इन्हीं वाक्यों के विभाजन बताये जाते हैं।

अमिश्रवाक्य (Simple Sentences)

अमिश्रवाक्य के विभाजन में मुख्यतः चार भाग दिखाये जाते हैं—उद्देश्य, उद्देश्य का विस्तार, विधेय और विधेय का विस्तार। विधेय के विस्तार में कर्म, कर्म का विस्तार और विधेयार्थवर्द्धक नाम के तीन भाग किये जाते हैं। इसलिये सब मिलकर छः भाग हुए—

१. उद्देश्य। २. उद्देश्य का विस्तार। ३. क्रिया और यदि क्रिया अपूर्ण हो तो पूरक भी। ४. कर्म। ५. कर्म का विस्तार। ६. विधेयार्थ-वर्द्धक।

उदाहरण—

विभाजन के लिये वाक्य—

१. मोहन का भाई मेरी पुस्तक धीरे-धीरे पढ़ता है। २. वह कुत्ता परसों से पागल हो गया है। ३. आये हुए मनुष्य ने पाठशाला में मुझे एक चित्र दिखाया। ४. एक सेर दूध ठीक होगा। ५. मुझे कल रुपये देने पड़ेंगे। ६. छिपे हो कौन से पर्दे में बेटा ? ७. बिना सफाई के जीना कठिन है।

---

* वाक्यविश्लेषण, वाक्यपृथक्करण, वाक्यविग्रह, वाक्यविच्छेद इत्यादि भी वाक्यविभाजन के नाम हैं।

विभाजन—

उद्देश्य		विधेय				
			विस्तार			
उद्देश्य	विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्मकावि०	विधेयार्थवर्द्धक
(१) भाई	मोहन का	पढ़ता है	पुस्तक	मेरी	धीरे-धीरे
(२) कुत्ता	वह	पागल (पू०) हो गया है	—	—	परसों से
(३) मनुष्य ने	आये हुए	दिखाया	चित्र (मु०) मुझे (गौ०)	एक	पाठशाला में
(४) दूध	एक सेर	ठीक (पू०) होगा	—	—	—
(५) मुझे	—	देने पड़ेंगे	रुपये	—	कल
(६) (तुम) बेटा	—	छिपे हो	—		कौन से पर्दे में
(७) जीना	—	कठिन (पू०) है	—	—	बिना सफाई के

(मु०) = मुख्य। (गौ०) = गौण। (पू०) = पूरक।

(१) संकीर्ण वाक्य (Complex Sentences)

संकीर्णवाक्य में पहले यह ढूँढ़ना होगा कि कौन अंश प्रधान है और कौन अङ्गवाक्य। फिर अङ्गवाक्य को पदविशेष समझकर समूचे वाक्य का विभाजन 'अमिश्रवाक्य' के समान करना पड़ेगा। इसके पीछे अङ्गवाक्य का भी विभाजन अमिश्रवाक्य के समान होगा।

उदाहरण

विभाजन के लिये वाक्य—

१. श्याम कहता है कि शीघ्र पढ़ो।

२. मेरा भाई, जो यहाँ बैठा था, परसों आया।

३. जब राम का बैल आता है तब काली गाय जाती है।

विभाजन—

वाक्य	वाक्यभेद	संयोजक	उद्देश्य		विधेय			
			उद्देश्य	विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का वि०	विधेयार्थ-वर्द्धक
(१) श्याम कहता है	संकीर्ण { प्रधान	कि	श्याम	...	कहता है	(तुम शीघ्र पढ़ो)	...	...
(तुम) शीघ्र पढ़ो	अङ्ग (संज्ञा)		तुम	...	पढ़ो			शीघ्र
(२) मेरा भाई परसों आया	संकीर्ण { प्रधान	...	भाई	मेरा	आया	...	...	परसों
जो यहाँ बैठा था।	अङ्ग (विशेषण)		जो		बैठा था	...	....	यहाँ
(३) काली गाय तब जाती है	संकीर्ण { प्रधान		गाय	काली	जाती है	...	...	तब
जब राम का बैल आता है	अङ्ग वा०		बैल	राम का	आता है	...	...	जब

संसृष्टवाक्य (Compound Sentence)

जिन सब वाक्यों के मिलाने से **संसृष्टवाक्य** बना हो, उन्हें अलग-अलग कर दो और **समुच्चायक को भी दिखाओ**। यदि संसृष्टवाक्य अमिश्र वाक्यों से बना हो तो अमिश्रवाक्य की रीति से, यदि संकीर्णवाक्यों से बना हो तो संकीर्णवाक्य की रीति से 'वाक्यविभाजन' करो।

उदाहरण—

१. राम पढ़ेगा, पर भोजन नहीं करेगा।
२. श्याम दुष्ट है, इसलिये जब वह आता है, मैं चल देता हूँ।
३. जब बच्चा रोता है, माँ आती है और जब सोता है, चली जाती है।

विभाजन—

वाक्य	भेद		
१. राम पढ़ेगा[1] पर (वह) भोजन नहीं करेगा[2]	संसृष्ट	अमिश्र[1] .... अमिश्र[2]	शेष के लिए संकीर्ण वाक्य का विभाजन देखो।
२. श्याम दुष्ट है[1] इसलिये मैं (तब) चल देता हूँ[2] वह जब आता है[3]	संसृष्ट	अमिश्र[1] .... संकीर्ण: प्रधान[2] ...... अंग[3] (क्रि० वि०)	
३. माँ (तब) आती है[1] बच्चा जब रोता है[2] और (वह तब) चली जाती है[3] (वह) जब सोता है[4]।	संसृष्ट	संकीर्ण: प्रधान[1] ...... अंग[2] (क्रि० वि०) संसृष्ट: प्रधान[3] .. ... अंग[4] (क्रि० वि०)	

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे वाक्यों का विभाजन करो—

१. राम के पास एक सुन्दर चित्र था। २. किसी समय दो मित्र साथ चले जाते थे। ३. आदिनाथ बाबू उस लड़के को पानी में डूबते हुए देख कर अपने प्राणों का मोह न करके, उसके उद्धारार्थ कुएँ में कूद पड़े। ४. आदिनाथ ने एक हाथ से लड़के को पकड़ा और दूसरे हाथ से डोरी पकड़ी। ५. जिनका चरित्र अच्छा है, वे भद्र हैं। ६. जो लोग स्थायी ऐश्वर्य के लिये क्षणभंगुर शरीर और चञ्चला लक्ष्मी का मोह नहीं रखते, वे देवत्व प्राप्त करके महाधन के अधिकारी होते हैं। ७. जो सब मनुष्यों को प्यार करता है, वह ईश्वर का प्यारा होता है। ८. उन्होंने निर्भय होकर पूछा—"आप इस पुस्तक में क्या लिख रहे हैं?" ९. तुम्हारा कोई पड़ोसी यदि दुर्जन है तो उसके साथ तुम सर्वदा सदय व्यवहार करो। १०. उसमें से निकलने का उपाय न देखा, तब वे कबूतर जाल लेकर उड़े।

पदच्छेद (Parsing)

किसी वाक्य के शब्दों में व्याकरण घटाने के समय संज्ञा, क्रिया आदि भेद-प्रभेदों को बिलगाने, लिङ्ग, वचन आदि को बिखराने और दूसरे-दूसरे शब्दों से उनके सम्बन्ध बताने को पदच्छेद (वाक्यविवरण, पदपरिचय, पदनिर्देश, पदनिर्णय, पदविन्यास, शब्दबोध, व्याकरण घटाना) कहते हैं।

संज्ञा के पदच्छेद में संज्ञा, संज्ञा के भेद, लिङ्ग, वचन, कारक आदि और अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध—इतनी बातें बताई जाती हैं।

सर्वनाम के पदच्छेद में संज्ञा ही के समान सर्वनाम, सर्वनाम के भेद, पुरुष, लिङ्ग, वचन, कारक और अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध—इतनी बातें बताई जाती हैं।

विशेषण के पदच्छेद में संज्ञा ही के समान बातें करनी पड़ती हैं, अर्थात् विशेषण, विशेषण के भेद, लिङ्ग, वचन, कारक आदि और विशेष्य।

क्रिया के पदच्छेद में क्रिया, क्रिया के भेद, वाच्य, प्रकार, काल, लिङ्ग, वचन, पुरुष और वह शब्द, जिससे क्रिया सम्बन्ध रखती है—इतनी बातें बताई जाती हैं।

अव्यय के पदच्छेद में अव्यय, अव्यय के भेद और यदि अव्यय सम्बन्ध रखनेवाला हो तो सम्बन्धी शब्द—इतनी बातें लिखी जाती हैं।

उदाहरण—मैं अच्छी पुस्तकें धीरे-धीरे पढ़ता हूँ।

मैं—सर्वनाम, पुरुषवाचक, उत्तमपुरुष, पुँल्लिङ्ग, एकवचन, 'पढ़ता हूँ' क्रिया का कर्त्ता।

अच्छी—विशेषण, गुणबोधक, स्त्रीलिङ्ग, बहुवचन, कर्मकारक, इसका विशेष्य 'पुस्तकें' है।

पुस्तकें—संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिङ्ग, बहुवचन, कर्मकारक, 'पढ़ता हूँ' क्रिया का कर्म।

धीरे-धीरे—रीतिवाचक क्रियाविशेषण, 'पढ़ता हूँ' क्रिया की विशेषता बतलाता है।

पढ़ता हूँ—क्रिया, सकर्मक, कर्तृवाच्य, साधारण सामान्यवर्त्तमान, पुँल्लिङ्ग, एकवचन, उत्तमपुरुष, इसका प्रधान कर्त्ता 'मैं' और कर्म 'पुस्तकें' हैं।

पदच्छेद में तभी सफलता मिल सकती है जब व्याकरण का भली-भाँति अध्ययन हो। पदच्छेद समझने का विषय है, रटने का नहीं। इसी ग्रन्थ के पाँचवें अध्याय के पाठ तथा तीसरे अध्याय के पाठों में 'शब्द भेदों में परिवर्त्तन' बारबार पढ़ना, सो भी समझते हुए पढ़ना, आवश्यक है।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे वाक्यों के प्रत्येक पद का पदनिर्देश करो—

तुम अवश्य जाओ। मैं पीछे गया। राम आपके पीछे गया। घोड़े दौड़े क्या हैं, उड़ आये हैं। लीजिये महाराज, मैं यह चला। तुम मेरी मदद पत्थर करोगे!

परिवर्त्तन (Conversion)

पद, वाक्यांश और खण्डवाक्य

(Words, Phrases and Clauses)

नोट—पद, वाक्यांश और खण्डवाक्य के परस्पर परिवर्त्तन के मुख्य आधार 'समास, कृत और तद्धित' हैं।

(क) पद के बदले वाक्यांश—

सुखद—सुख देनेवाला। द्रुतगामी—शीघ्र चलनेवाला। यथाशक्ति—शक्ति के अनुसार। आपादमस्तक—पैर से सिर तक। शाक्त—शक्ति के उपासक। संप्रेक्षित—जाँचा हुआ (हिसाब)। सँपेरा—साँप पालनेवाला।

(ख) वाक्यांश के बदले पद—

विष्णु के उपासक—वैष्णव। राजनीति जाननेवाला—राजनीतिज्ञ। प्रतिष्ठा प्राप्त किया हुआ—लब्धप्रतिष्ठ। न बहुत ठंढा, न बहुत गर्म—नातिशीतोष्ण। व्याख्या करनेवाला—व्याख्याता। तेज चलनेवाला—द्रुतगामी।

(ग) पद के बदले खण्डवाक्य—

कृतज्ञ—जो की हुई भलाई को मानता है। स्वदेशी—जो अपने देश का है। सधवा—जिस स्त्री का पति जीवित है। देय—जो देने के योग्य हो। दुःखी—जिसको दुःख हो। वेदज्ञ—जो वेद जानता है।

(घ) खण्डवाक्य के बदले पद—

जो सुख देता है—सुखद। घुटने तक जिसकी भुजा फैली है—आजानुबाहु। जिस स्त्री का पति जीवित नहीं है—विधवा। जिसके पास धन नहीं है—निर्धन। जो मद पीता है—मद्यप।

(ङ) वाक्यांश के बदले खण्डवाक्य—

मेरे बैल के आते ही—जब मेरा बैल आता है। निन्दा का पात्र—जिसकी निन्दा सभी लोग करते हैं। नीति का जाननेवाला—जो नीति को जानता है। पहचान से बाहर—जो पहचाना न जा सके।

(च) खण्डवाक्य के बदले वाक्यांश—

जिसकी प्रशंसा सभी करते हैं—प्रशंसा का पात्र। जब जाड़ा समाप्त होगा—जाड़े के समाप्त होने पर। जब भोजन कर चुका—भोजन कर चुकने पर।

(छ) पद के बदले वाक्यांश और खण्डवाक्य—

क्षणस्थायी—१. क्षण भर ठहरनेवाला (वाक्यांश)। २. जो क्षणभर ठहरनेवाला हो (खण्डवाक्य)।

निरामिषाशी—१. मांस-मछली नहीं खानेवाला (वाक्यांश)। २. जो मांस-मछली नहीं खाता (खण्डवाक्य)।

निर्जन—१. मनुष्यों की गतिविधि से रहित (वाक्यांश)। २. जहाँ मनुष्यों की गतिविधि नहीं है (खण्डवाक्य)।

निर्देशक—१. बतानेवाला (वाक्यांश)। २. जो बताता है (खण्डवाक्य)।

स्त्रैण—१. स्त्री के वशीभूत (वाक्यांश)। २. जो स्त्री के वशीभूत रहता है (खण्डवाक्य)।

अवश्यम्भावी—१. अवश्य घटित होनेवाला (वाक्यांश)। २. जो अवश्य घटित होगा (खण्डवाक्य)।

अनेक शब्दों के बदले एक शब्द

अँगरेजी जाननेवाला—अँगरेजीदाँ। अन्य पाठ—पाठान्तर। अन्य स्थान—स्थानान्तर। अन्य नाम—नामान्तर। अन्य जन्म—जन्मान्तर। अन्य देश—देशान्तर। अन्य ग्रन्थ—ग्रन्थान्तर। अच्छा-बुरा सोचकर काम नहीं करनेवाला—अविवेकी, अविचारी। अपना कहानेवाला—आत्मीय। अल्प (थोड़ा) खानेवाला—मिताहारी, अल्पाहारी। अल्प (थोड़ा) जाननेवाला—अल्पज्ञ। अन्य भाषा में परिणित—भाषान्तरित। अपने मन से सेवा करनेवाला—स्वयंसेवक। अपने को पण्डित समझनेवाला—पण्डितम्मन्य। अपने को कृतार्थ समझनेवाला—कृतार्थम्मन्य। अपने ऊपर निर्भर रहनेवाला—आत्मनिर्भर। अपने पैरों पर खड़ा रहनेवाला—स्वावलम्बी। अपने देश की वस्तु—स्वदेशी। अपने आपको मार डालना—आत्महत्या। अपने स्वार्थ में लगा रहनेवाला—स्वार्थपर, स्वार्थी। अपने आपको मार डालनेवाला—अत्महन्ता। अनुरोध के साथ—साधुरोध। अनुसन्धान करने योग्य—अनुसंधेय। अन्यत्र आसक्त रहनेवाला—अन्यासक्त। अर्जुन का पुत्र—आर्जुनि (अभिमन्यु)। अधिक दिनों तक ठहरनेवाला—चिरस्थायी। अनेक बार पीनेवाला—अनेकप। अभिनय करने योग्य—अभिनेय। अभिनय करनेवाला—अभिनेता, (स्त्री०) अभिनेत्री। अवश्य ही घटनेवाला—अवश्यम्भावी। आकाश को चूमनेवाला—गगनचुम्बी। आकाश में चलने-फिरनेवाला—नभचर (खेचर)। आकाश से जानेवाला—विहग, विहंग, विहंगम। आँखों के सामने—समक्ष, प्रत्यक्ष। आँखों के पीछे—परोक्ष। आँखों की पलकें न गिरना—अनिमेष। आगे जन्म लेनेवाला—अग्रज, (स्त्री०) अग्रजा। आग्रह के साथ—साग्रह। आठ पैरोंवाला—अष्टपद (मकड़ा)। आदर के साथ—सादर। आनन्द के साथ—सानन्द। अलंकार जाननेवाला—अलंकारज्ञ। इतिहास के सम्बन्ध का—ऐतिहासिक। इतिहास जाननेवाला—इतिहासज्ञ, इतिहासवेत्ता। इन्द्र को जीतनेवाला—इन्द्रजित्। इन्द्र की पत्नी—इन्द्राणी। ईश्वर या परलोक में अविश्वासी—नास्तिक। ईश्वर या परलोक में विश्वासी—आस्तिक। उदार हृदयवाला—उदाहृदय। उदार मनवाला—उदारमना। उर्दू जाननेवाला—उर्दूदाँ। ऊँचा मन रखनेवाला—

उच्चमना। उपासना करने योग्य—उपासनीय, उपास्य। उपासना करनेवाला—उपासक। उपकार करने की इच्छा—उपचिकीर्षा। उष्ण (गरम) पीनेवाला—उष्णपा। उदार चरितवाला—उदारचरित। जिसका उच्चारण कठिनाई से हो—दुरुच्चार्य। ऋषि का कहा हुआ—आर्ष। ऋतुओं का भरण करनेवाली—ऋतुम्भरा। एक राजा के शासन में चलनेवाला—राजतंत्र। एक उदर से जन्म लेनेवाला—सोदर, सहोदर। जिसकी उपमा न हो—अनुपमेय। जो कर्त्तव्य स्थिर न कर सके—किंकर्त्तव्यविमूढ़। कल्पना से परे—कल्पनातीत। किसी विषय का विशेष जाननेवाला—विशेषज्ञ। कानून-विरुद्ध चलनेवाली संस्था—अवैध संस्था। कष्ट से होनेवाला—कष्टसाध्य। कहीं ऊँचा कहीं नीचा—उच्चावच, ऊबड़-खाबड़। किसीके बदले बोलनेवाला—प्रतिनिधि। काठ से बना हुआ—काष्ठमय, काष्ठनिर्मित। कहीं भी आसक्त नहीं रहनेवाला—अनासक्त। कर देनेवाला—करद (सामन्त)। कहीं झुका-कहीं उठा—बन्धुर। कुञ्ज में रहनेवाला—कुञ्जर। कुमार्ग पर चलनेवाला—कुमार्गगामी। कुशल के साथ—सकुशल। कुर-कुर शब्द करता हुआ जानेवाला—कुरग, कुरंग, कुरंगम (हरिण)। कुत्ते जैसे पैरोंवाला—श्वापद (जंगली जीव)। कुश की नोंक की भाँति बुद्धिवाला—कुशाग्रबुद्धि। कुरु से उत्पन्न—कौरव। कुल लाँघकर चलनेवाली—कुलटा। कुन्ती का पुत्र—कौन्तेय। कृष्ण का पुत्र—कार्ष्णि। कुत्सित है जिसकी माता— कदम्ब। कुत्सित है जो पुरुष—कापुरुष, कुपुरुष, किम्पुरुष। कुत्सित है जो प्रभु—किम्प्रभु। कुत्सित अश्व—कदश्व (खराब घोड़ा)। कुत्सित रूप से गरम होनेवाला—कवोष्ण। कुत्सित अन्न—कदन्न। खलिहान लीप-पोत देनेवाली—खलपू। खूब पका हुआ—सुपक्व। करने योग्य—विधेय। किये हुए उपकार को न माननेवाला—कृतघ्न, अकृतज्ञ। किये हुए उपकार को माननेवाला—कृतज्ञ। गणना करनेवाला—गणक। गणित जाननेवाला—गणितज्ञ। गणपति को पूजनेवाला—गाणपत्य। गोला फेंकनेवाला—गोलन्दाज। गृह में रहनेवाला—गृहस्थ। गिड़ता-पड़ता जानेवाला—पतंग (कीड़ा-गुड्डी)। गंगा का पुत्र—गांगेय (भीष्म)। गदा धारण करनेवाला—गदाधर। गिरि को धारण करनेवाला—गिरिधर (श्रीकृष्ण)। गिरिओं का ईश—गिरीश। गीत गानेवाला—गायक, गवैया। गुण-दोष का विवेचन करनेवाला—समालोचक। गुण ग्रहण करनेवाला—गुणग्राही। क्षणभर टिकनेवाला—क्षणस्थायी। क्षणभर में टूटनेवाला—

क्षणभंगुर। क्षण भर ठहरनेवाला—क्षणिक। चक्र धारण करनेवाला—चक्रधर। चार पैरोंवाला—चतुष्पद। चिरकाल तक ठहरनेवाला—चिरस्थायी। चिरकाल से होनेवाला—चिरन्तन। छः पैरोंवाला—षट्पद (भौंरा)। छाती के बल रेंगकर चलनेवाला—उरग, उरंग, उरंगम। छोटी वस्तुओं को बड़ी दिखानेवाला यंत्र—अणुवीक्षण यंत्र। जिसका नाम कोई नहीं जाने—अज्ञातनामा। जिसका शत्रु पैदा न हुआ—अजातशत्रु, अभूतरिपु। जिस स्त्री का पति मर गया—विधवा। जिसकी आशा न की जाय—आशातीत। जिसकी पत्नी बिछुड़ गई हो—विपत्नीक। जिसकी दारा जीवित नहीं हो—निदार। जिसको किसीसे भय न हो—अकुतोभय। जिसकी चिन्ता नहीं की जा सके—अचिन्तनीय, अचिन्त्य। जिसकी कान्ति कभी फीकी न हो—अम्लान कान्ति। जिसकी स्त्री मर गई हो—विधुर, रँडवा। जिसे खाने को भात न मिला हो—अभुक्त। जो जन्म नहीं लेती—अजा (प्रकृति)। जो मृग को विद्ध करता है—मृगावित्। जो जन्म नहीं लेता—अज (ब्रह्मा)। जो जान से मार डालना चाहे—जिघांसु। जो हो सके—संभव। जो करना चाहे—चिकीर्षु। जो हो नहीं सके—असंभव। जो पीना चाहे—पिपासु। जो होकर ही रहे—भवितव्यता, होनहारी। जो जानना चाहे—जिज्ञासु। जो सर में जन्म ले—सरोज। जो पहले कभी नहीं हो—अभूतपूर्व। जो पहले था—भूतपूर्व। जो सब कुछ सह ले—सर्वसहिष्णु। जो पहले कभी नहीं देखा गया हो—अदृष्टपूर्व। जो ममतारहित हो—निर्मम। जो पहले कभी नहीं सूँघा गया हो—अनाघ्रातपूर्व। जो पहले कभी नहीं दिया गया हो—अदत्तपूर्व। जो पहले कभी न सुना गया—अश्रुतपूर्व। जो पहले कभी न किया गया हो—अकृतपूर्व। जो अपने स्थान से गिर पड़ा हो—पतित, भ्रष्ट, च्युत। जो सभी पदार्थों को खा जाता है—सर्वभुक् (आग)। जो इन्द्र को जीत ले—इन्द्रजीत। जिस स्त्री का पति विदेश में हो—प्रोषितपतिका, प्रोषितभर्तृका। जिस स्त्री के कोई सन्तान नहीं हुई है—वन्ध्या। जिस स्त्री के एक ही सन्तान होकर रह गई—काकवन्ध्या। जिस जमीन पर दो तरह की फसलें होती हैं—दो फसली। जिस पेड़ में बिना फूल के फल लगते हैं—वनस्पति। जो आकाश (ख) का गमन करे—खग। जो देखने में नहीं आवे—अदृश्य। जो मनुष्य का चरित्र भलीभाँति जाने—

लोकचरितभिज्ञ । जो सर्वत्र व्यापक हो—सर्वव्यापी, सर्वव्यापक । जो बराबर बहता रहे—पोप्लूयमान । जो खाने योग्य हो—खाद्य। जो स्त्री सूर्य को भी नहीं देखे—असूर्यम्पश्या । जो बात युक्ति-संगत नहीं हो—अयौक्तिक। जो खाने योग्य नहीं हो—अखाद्य । जहाँ एक भी मच्छड़ नहीं हो—निर्मच्छिक। जहाँ एक भी बाघ नहीं हो—निर्व्याघ्र। जहाँ किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हो—निरुपद्रव। जहाँ एक भी मनुष्य नहीं हो—निर्जन। जहाँ मनुष्य की गति-विधि नहीं हो—निर्जन, विजन। जहाँ चार पथ मिल जायें—चतुष्पथ। जहाँ चार राहें मिल जायें—चौराहा। जहाँ चार मुँह मिलते हैं—चौमुहानी। जिसका कोई अन्य काम नहीं—अनन्यकर्मा। जिसका तल-प्रान्त नहीं छुआ जा सके—अतलस्पर्शी। जिसका प्रति विधान न हो सके—अप्रतिविधेय। जिनका परिमाण न हो—अपरिमेय। जिसका कोई अन्य उपाय न हो—अनन्योपाय। जिसका कभी विनाश न हो—अविनाशी। जिसका नाम कोई नहीं जानता है—अज्ञातनामा। जिसका अभिनय किया जा चुका हो—अभिनीत। जिसका चित्त एक ही विषय में लगा हो—एकाग्रचित्त। जिसका निवारण कठिनाई से हो—दुर्निवार। जिसका वर्णन हो सके—वर्णनीय। जिसका जन्म गर्मी से सो—उष्मज (खटमल)। जिसका जन्म जरायु से हो—जरायुज (मनुष्यादि)। जिसका निवारण न हो—अनिवार्य। जिसका कोई आकार न हो—निराकार। जिसका उल्लेख किया जा सके—उल्लेखनीय। जिसका पार न हो—अपार। जिसका पेट बृक के समान हो—बृकोदर। जिसके देवता शिव हों—शैव। जिसका मन किसी अन्य ओर न हो—अनन्यक्मना। जिस स्त्री का व्रत पति हो—पतिव्रता। जिस पुरुष का व्रत पत्नी हो—पत्नीव्रत। जिसकी कोई अन्य गति नहीं—अनन्यगति। जिसकी तुलना न हो—अतुलनीय। जिसकी शरण ग्रहण करे—शरण्य। जिसकी आँखों से आँसू गल-गल कर निकले—गलदश्रु। जिसकी संख्या नहीं की जा सके—संख्यातीत। जिसकी प्रशंसा सभी करते हैं—सर्वप्रशंसित। जिसकी भुजाएँ घुटनों तक हों—आजानुबाहु। जिसकी आँखें कमल सदृश हों—कमलनयन, कमललोचन। जिसकी उपमा नहीं हो—अनुपम। जो शक्ति का उपासक हो—शाक्त। जिसकी कामना बीत गई हो—वीतकाम। जिसको राग नहीं है—वीतराग। जिसके आरपार देखा जा सके—पारदर्शी। जिसके भीतर कोई सार पदार्थ न हो—अन्तः-

सारशून्य। जिसके लिये कर न दे—निष्कर। जिसके छः मुख हैं—षड़ानन। जिसके पास कुछ नहीं हो—अकिंचन। जिसके दाढ़ी-मूछें न हों—अजातश्मश्रु। जिसके चार भुजाएँ हों—चुतुर्बाहु, चतुर्भुज (विष्णु)। जिसके सिर पर चन्द्रमा हो—चन्द्रशेखर। जिसके पूर्ण करने में अधिक व्यय हो—व्ययबहुल। जिसके अंग-प्रत्यंग गल गये हों—गलितांग। जिसके नख सूप के समान हों—शूर्पनख। जिसे एकदम स्पृहा नहीं हो—निःस्पृह। जिसको वाक्य द्वारा प्रकाशित न कर सकें—अनिर्वचनीय। जिसकी स्पृहा नष्ट हो गई हो—वीतस्पृह, विगतस्पृह। जिसको कहीं आश्रय न हो—अनाश्रय, निराश्रय। जिसको कोई कामना न हो—निष्काम। जिनके दश रथ हैं—दशरथ, मन, श्रीरामचन्द्र के पिता। जिसने कर्मों को त्याग दिया—संन्यासी। जो भूमि उपजे—उर्वरा, उपजाऊ। जो भूमि न उपजे—अनुर्वरा, ऊसर। जिसे पूर्व जन्म की याद हो—जातिस्मर। जिसमें सार बात हो—सारगर्भित। जिसमें धूआँ हो—धूमिल। जिसमें पंक हो—पंकिल। जिसमें अधिक मांस हो—मांसल। जिसमें अधिक फेन हो—फेनिल। जनक की कन्या—जानकी। जबतक जीवित रहे—यावज्जीवन। जिस नारी का भाग्य अच्छा हो—सुभगा। जिसमें सन्देह न हो—निस्सन्देह। जनों का समूह जनता। जिसे दुःख हो—दुःखी। जिसे सुख हो—सुखी। ज्योतिष जाननेवाला—ज्योतिषी। जिसका भाग खराब हो—अभागा। जिसमें किसी प्रकार का विवाद न हो—निर्विवाद। जिसमें कामना वर्त्तमान है—सकाम। जिनके देवता विष्णु हैं—वैष्णव। जिसको देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं—लोमहर्षण। जिसका उदर लम्बा है—लम्बोदर (गणेश)। जिसकी गरदन सुन्दर है—सुग्रीव। जो लाँघा जा सके—उल्लंघनीय। जो लांघा न जा सके—अलंध्य, अलंघनीय। जो अत्यन्त दीर्घ न हो—नातिदीर्घ। जो अत्यन्त छोटा न हो—नातिह्रस्व। जो दुःख से मिले—दुर्लभ। जो सुख से मिले—सुलभ। जो सुख से हो सके—सुकर। जो दुःख से हो सके—दुष्कर। जो बारंबार भूल रहा है—दोदुल्यमान। जो एक ही का भक्त हो—अनन्यभक्त। जो बार-बार चमके—देदीप्यमान। जो उड़ता चला जाय—उड्डीयमान। जो उड़ चुका हो—उड्डीन। जो प्राचीन काल से होने वाला है—पुरातन। जो इस समय होनेवाला है—अधुनातन। जो जल में जन्म ले—जलज। जो बोलने योग्य न हो—अवक्तव्य। जो कहने योग्य न हो—अकथ, अकथनीय। जल पर जो कर लगे—जलकर। जो जल पर डाका

डाले—जलदस्यु। जो दो बार जन्म ले—द्विज। जो सव्य (बायें) हाथ से तीर चलाये—सव्यसाची। जो सहने की शक्ति रक्खे—सहिष्णु, सहनशील। जो सभी प्रकारों के कष्ट सह सके—कष्टसहिष्णु। जो जल धारण करे—जलधर। जो जल में चले—जलचर। जो हाथ में वीणा धारण करे—वीणापाणि (सरस्वती)। जो हाथ में कमल (सरोज) धारण करे—सरोजपाणि (विष्णु)। जो शूल धारण करे—शूलपाणि (शिव)। जो हाथ में चक्र धारण करे—चक्रपाणि (विष्णु)। जो लाज न करे—निर्लज्ज। जो चार मुख रक्खे—चतुरानन (ब्रह्मा)। जो जटाएँ रक्खे—जटिल। जो बहुत और व्यर्थ की बातें बोलते हैं—गप्पी। जो लोक में नहीं पाया जाता—अलौकिक। जो स्तंभ बन जाय—स्तंभीभूत। जो पुंज बन जाय—पुंजीभूत। जो आर्य न हो—अनार्य। जो मन में पैदा हो—मनोज, मनसिज। जो मधु से सम्बन्ध रक्खे—माधव। जो न्याय जाने—नैयायिक। जो भस्म बन जाय—भस्मीभूत। जो काम में निरर्थक देर लगाये—दीर्घसूत्री। जो मर रहा हो—म्रियमाण। जो बात आगे चलकर कहीं कही जाय—वक्ष्यमाण। जो चेष्टा नहीं करे—अचेष्ट। जो कटु वचन बोले—कटुभाषी। जो मृदु वचन बोले—मृदुभाषी। जो किसी पर अभियोग लगावे—वादी। जो विवाद करे—विवादी। जो देखने में सुन्दर हो—सुदर्शन। जो देखने में प्रिय लगे—प्रियदर्शन। जो केवल दूध पीकर रहे—दुग्धाहारी। जो पढ़ने योग्य हो—पठ्य, पठनीय। जो देने योग्य हो—देय। जो अंडे से जन्म ले—अंडज। जो पिण्ड से जन्म ले—पिण्डज। जो स्वेद से जन्म ले—स्वेदज (चीलर, चमकुन)। जो नाथ रहित हो—अनाथ। जो शरण-रहित हो—अशरण। जो गिना न जाय—अगणित। जो प्रिय वचन बोले—प्रियवादी। जो अभियोग का विरोध करे—प्रतिवादी। जो दूसरी ओर का पक्ष लेता है—विपक्षी। जो याचना करे—याचक। जो नारी जादू जाने—डायन, जादूगरनी। जो अनुकरण करने योग्य हो—अनुकरणीय। जो देर में पचे—गुरुपाक। जो दूर की बात सोचे—दूरदर्शी, दूरन्देश। जो दिन में एक ही बार भोजन करे—एकाहारी। जो धन चले-फिरे नहीं—स्थावरसम्पत्ति। जो भेदा न जाय—अभेद्य। जो दैव को जाने—दैवज्ञ। जो पढ़ने योग्य न हो—अपाठ्य। जो देने योग्य न हो—अदेय। जो नाशवान् हो—नश्वर। जो आसानी से पच जाय—लघुपाक। जो सुनते ही याद हो जाय—श्रुतिधर। जो विश्वास के तुल्य

हो—विश्वस्त। जो विश्वास के तुल्य न हो—अविश्वसनीय। जो वस्तु संसार की न हो—अलौकिक। डूबता हुआ—निमज्जमान। तीन फलों का—समाहार—त्रिफला। तीर फेकनेवाला—तीरन्दाज। तैरता हुआ—प्लवमान। तीन कालों को जाननेवाला—त्रिकालज्ञ। तीन कालों को देखनेवाला—त्रिकालदर्शी। तीन भुवनों का समाहार—त्रिभुवन। तीन लोकों का समाहार—त्रिलोकी। तुलना करने योग्य—तुलनीय। दूसरे के ऊपर भरोसा करनेवाला—परमुखापेक्षी। दूसरे का सौभाग्य देखकर कातर होनेवाला—परश्रीकातर। दुःख से भी जब भिक्षा न मिले—दुर्भिक्ष। दुष्ट आत्मा जिसकी हो—दुरात्मा। दो बार जो जल पिये (पहले सूँढ़ से फिर मुँह से)—द्विप (हाथी)। दो बार कहे—द्विरुक्ति। दशरथ का पुत्र—दाशरथि। देवों के देव—महादेव। देखनेवाला—दर्शक। दुष्ट (दुःख देनेवाला) यव—यवानी। देवताओं का राजा—देवराज (इन्द्र)। द्विजों का राजा—द्विजराज (चन्द्रमा)। दोपहर का सूर्य—मार्तण्ड। द्वीप में जन्म लेनेवाला—द्वैपायन (व्यास)। दूर की वस्तु पास दिखानेवाला यंत्र—दूरवीक्षण यंत्र। धृतराष्ट्र के पुत्र—धार्तराष्ट्र। धन देनेवाला—धनद। नई ब्याही स्त्री—नवोढ़ा। न अधिक शीत, न अधिक उष्ण—नातिशीतोष्ण। परिणाम सोचकर काम करनेवाला—परिणामदर्शी। प्रवास में रहनेवाला—प्रवासी। पहले प्रतिष्ठा पाया हुआ—लब्धप्रतिष्ठ। पीछे जन्म लेनेवाला—अनुज, (अनुजा स्त्री०)। प्रिय बोलनेवाली स्त्री—प्रियंवदा। परिवार के साथ रहनेवाला सपरिवार, सकुटुम्ब। पत्नी के साथ रहनेवाला—सपत्नीक। पिंजरे में रहनेवाला—पंजरस्थ। पद (पैरों) से पीनेवाला—पादप (वृक्ष)। पाँच वटों का समाहार—पंचवटी। भूमि पर चलनेवाला—भूचर। पाँच पात्रों का समाहार—पंचपात्र। प्रजा के द्वारा चलनेवाला राज्य—प्रजातंत्र। पहले मीठा जान पड़े, किन्तु परिणाम न देखा जाय—आपातमधुर। पाण्डु का पुत्र—पाण्डव। पृथा का पुत्र—पार्थ। पुरु वंश में उत्पन्न—पौरव। पय धारण करनेवाला—पयोधर (मेघ)। पिता की हत्या करनेवाला—पितृहन्ता। पुत्रवधू की माता—समधिन। पढ़नेवाला—पाठक। पृथ्वी से उत्पन्न—पार्थिव। पण्डितों का राजा—पण्डितराज। पढ़ने के लिये घर—पाठागार। प्रतिदिन अग्निहोम करनेवाला—अग्निहोत्री। प्रातःकाल का सूर्य—बालारुण, बालतपन। पीछे-पीछे चलनेवाला—अनुयायी, अनुचर। पंक में जन्म लेनेवाला—पंकज, कमल।

फारसी जाननेवाला—फारसीदाँ। बढ़ा-चढ़ाकर कहा हुआ—अतिरंजित। पृथ्वी भेदकर निकलनेवाला—उद्भिद्। पृथ्वी (भूमि) पर चलनेवाला—भूचर, थलचर। पथ को छोड़कर चलनेवाला—पथभ्रष्ट। पहले पवित्र न रहने पर अब पवित्र हो जाना—पवित्रीभूत। बचपन से ब्रह्मचर्य रखनेवाला—बालब्रह्मचारी। बिना परिणाम सोचे काम करनेवाला—अपरिणामदर्शी। बहुत कम जाननेवाला—स्वल्पज्ञ। बहुत दिन पहले ब्याही हुई स्त्री—प्रौढ़ा। बार-बार जो कहा जाय—पुनरुक्ति। बोलनेवाला—वक्ता। बिना पलक गिराये एकटक देखना—निर्निमेषदृष्टि। बोलने की इच्छा—विवक्षा। बिना परिश्रम के—अनायास। बाजार में बैठनेवाली स्त्री—वारांगना (वेश्या)। बिना वेतन लिये काम करनेवाला—अवैतनिक। ब्रह्मा की पत्नी—ब्रह्माणी। भिक्षासमूह—भैक्ष। भव (शिव) की पत्नी—भवानी। भरत-वंश में उत्पन्न—भारत। भूमि पर लगनेवाला कर—भूमिकर। भाई के साथ रहनेवाला—सभ्रातृक। भार्या के साथ रहनेवाला—सभार्य। भुजा के बल चलनेवाला—भुजग, भुजंग, भुजंगम। मेघ की तरह गरजनेवाला—मेघनाद, घननाद। महान् आत्मा है जिसकी—महात्मा। माता के साथ रहनेवाला—समातृक। मार्ग को छोड़कर चलनेवाला—उन्मार्गगामी। मत्स्य-मांस नहीं खानेवाला—निरामिषाशी। मत्स्य मांस खानेवाला—मांसाहारी। मर्म को कष्ट पहुँचानेवाला—मर्मन्तुद। मर्म को भेदनेवाला—मर्मभेदी। मरण के समय तक—आमरण। मुट्ठी में लेकर जिसका परिमाण देखा जाय—मुष्टिमेय, मुट्ठी भर। मही को धारण करनेवाला—महीधर, भूधर। माता की हत्या करनेवाला—मातृहन्ता। मन, वचन और कर्म से—मनसा-वाचा-कर्मणा। मतानुसार चलनेवाला—मतानुयायी। मद्यपीनेवाला—मद्यप, पियक्कड़। मधुपीनेवाला—मधुप (भ्रमर)। मन्त्रणा के लिये बना हुआ घर—मंत्रणागृह। महल के भीतर का भाग—अन्तःपुर। मनुष्यों से रहित—निर्जन। मुक्ति की इच्छा करनेवाला—मुमुक्षु। मुरली धारण करनेवाला—मुरलीधर। मुर्दों के गाड़ने की भूमि—समाधिभूमि, कब्रगाह। मुख हाथी जैसा है जिसका—गजानन (गणेश)। यवनों की लिपि—यवनानी, अरबी, फारसी। यवन की स्त्री—यवनी। युगों से होनेवाला—सनातन। युधिष्ठिर का पुत्र—यौधिष्ठिर। यदुवंश में उत्पन्न—यादव। रात में विचरण करनेवाला—रात्रिचर, निशिचर, रजनीचर। रघुवंश में उत्पन्न—रघुवंशी,

राघव। राधा का पालित पुत्र—राधेय (कर्ण)। रंग-मंच के पीछे का स्थान—नेपथ्य। रुद्र की पत्नी—रुद्राणी। राजनीति जाननेवाला—राजनीतिज्ञ। राजा का दण्ड—राजदण्ड। लहू से रँगा हुआ—रक्तरंजित, लोहू-लुहान। वारि-दान करने वाला—वारिद। विदेश से आया हुआ—वैदेशिक। विदेश से आनेवाली वस्तु—विदेशी। विपथ पर चलनेवाली—विपथगा, पथभ्रष्टा। विनय के साथ—सविनय। वन में रहनेवाला—वनवासी। वन में जन्म लेनेवाला—वनज (कमल)। बेला-भूमि (समुद्र-तीर की भूमि) को अतिक्रमण करनेवाला—उद्वेल। विश्व को जीतनेवाला—विश्वजित्। विदेह की कन्या—वैदेही। वमन करने की इच्छा—विवमिषा। व्यास का पुत्र—वैयासिक (शुकदेव)। विनता के पुत्र—वैनतेय (गरुड़)। वज्र को धारण करनेवाला—वज्रधर (इन्द्र)। विश्व का भरण करनेवाली—विश्वम्भरा (पृथ्वी)। विवाह द्वारा जिस स्त्री का हाथ पकड़े—पाणिगृहीता। वह सामग्री जिससे कोई वस्तु बने—उपादान। वर को अपने चुननेवाली—स्वयंवरा। वाक्य द्वारा प्रकट न किया जा सके—अनिर्वचनीय। वह पदार्थ जो चाट कर खाया जाय—लेह्य। वह पदार्थ जो चूसकर खाया जाय—चोष्य। वह पदार्थ जो चबाकर खाया जाय—चर्व्य, भक्ष्य, भोज्य। वह पदार्थ जो पिया जाय—पेय। मरने के बाद की जानेवाली क्रिया—अन्त्येष्टि। विशेष जाननेवाला—विशेषज्ञ। विदेश का वास—प्रवास। शीघ्र पचनेवाला—लघुपाक। शीघ्र गमन करनेवाला—तुरग, तरंग तुरंगम (घोड़ा)। शिव का दिया हुआ अर्जुन का अस्त्र—पाशुपतास्त्र। श्रम के साथ जेल की सजा—सश्रम कारावास। शिला (चट्टान) पर सोनेवाला—शिलाशायी, (महादेव)। शाक खानेवाला—शाकाहारी। शब्द को लक्ष्य कर भेदनेवाला—शब्दवेधी, शब्दभेदी। शक्ति के अनुसार—यथाशक्ति। शीघ्र चलनेवाला—द्रुतगमी, शीघ्रगामी। सब कुछ जाननेवाला—सर्वज्ञ। समय पर सोचनेवाला—प्रत्युत्पन्नमति। सुख देनेवाला—सुखद, सुखदायी। संस्कृत जाननेवाला—संस्कृतज्ञ। सर से जन्म लेनेवाला—सरोज (कमल)। सब कुछ खो देनेवाला—सर्वहारा। सबको जीतनेवाला—सर्वजीत, सर्वजित्। सबका स्वामी—सर्वेश। सबके हृदय का जाननेवाला—सर्वान्तर्यामी। सिर से पैर तक—आपादमस्तक। सोने के लिये बना हुआ घर—शयनागार। सोचे समझे बिना कर्म करने का भाव—अविमृश्यकारिता। साध्य के अनुसार—यथासाध्य। स्त्री के

साथ रहनेवाला—सस्त्रीक। सूई से भेदने योग्य—सूचिभेद्य। सात ऋषियों का समाहार—सप्तर्षि। सात पैर गिनकर वेदी के चारों ओर का घुमाव—सप्तपदी। सात सौ का समाहार—सप्तशती, सतसई। साहित्यिक के गुण-दोष की विवेचना करनेवाला—समालोचक। स्वयं उत्पन्न होनेवाला—स्वयम्भू। सुमित्रा के पुत्र—सौमित्र। सुभद्रा के पुत्र—सौभद्रेय। स्त्री की बहन के पति—साढ़ू। सोम रस पीनेवाला—सोमपा। स्तन-पान करनेवाला—स्तनपायी। स्नान के लिये बना हुआ घर—स्नानागार। स्त्री के वश में रहनेवाला—स्त्रैण। हर्ष के साथ—सहर्ष। हृदय को विदीर्ण करनेवाला—हृदय-विदारक। हिमालय से लेकर समुद्र तक—आहिमालय-समुद्र। हिंसक जीव-जन्तुओं से भरा हुआ—श्वापद-संकुल।

विशेष्य विशेषण

(पटना और कलकत्ता विश्वविद्यालयों के प्रश्नों से १९४४-से अब तक)

इच्छा—इच्छित, ऐच्छिक। आराधना—आराध्य, आराधित। अपेक्षा—अपेक्षित आपेक्षिक। उपार्जन—उपार्जित। अभिषेक—अभिषिक्त, अभिषेचनीय। अन्त—अन्त्य, अन्तिम। आश्रय—आश्रित। उत्कर्ष—उत्कृष्ट। उपेक्षा—उपेक्षित, उपेक्षणीय। अमृत—अमर। ऋषि—आर्ष। क्षण—क्षणिक। करुणा—कारुणिक। केन्द्र—केन्द्रित, केन्द्रीय। कुसुम—कुसुमित। ग्राम—ग्राम्य। गंगा—गांगेय। चिन्ता—चिन्तित। चक्षु—चक्षुष्मान, चाक्षुस। त्याग—त्यागी, त्यक्त, त्याज्य। तिरस्कार—तिरस्कृत। निर्वासन—निर्वासित। नीति—नैतिक। दिल—दिली। धर्म—धार्मिक, धर्मी। पिता—पैत्रिक। प्रमाण—प्रामाणिक, प्रमाणित। प्रसंग—प्रासंगिक। भूगोल—भौगोलिक। मूल—मौलिक। पश्चिम—पश्चिमीय, पाश्चात्य। मृत्यु—मर्त्य, मृत। मनस—मनस्वी, मानसिक। मुख—मौखिक, मुखर। पृथ्वी—पार्थिव। बृहद्रथ—बृहद्रथी। पृथा—पार्थ। मूल्य—मूल्यवान्। मंगल—मांगलिक। प्रथम—प्राथमिक। भोजन—भुक्त, भोजित। विश्वास—विश्वस्त, विश्वसनीय, विश्वासी। स्तुति—स्तुत्य, स्तुत। श्रद्धा—श्रद्धेय, श्रद्धावान्, श्रद्धालु। स्वभाव—स्वाभाविक। वेद—वैदिक। स्त्री—स्त्रैण। शान्ति—शान्त। विष्णु—वैष्णव। हृदय—हार्दिक। शोभन—शोभित। समय—सामयिक। लोक—लौकिक। विपत्ति—विपन्न। विधान—विहित, वैधानिक। वाञ्छा—वाञ्छित। संध्याकाल—संध्याकालिक। संयम—संयत, संयमी।

पदोपयोगी विशेषण

नीचे कुछ ऐसे पद दिये जाते हैं, जिनमें लगे विशेषणों पर विचार करने से ऐसा लगता है कि उनके बदले उन्हीं अर्थों के अन्य प्रतिशब्द रखने से वे पद कर्ण मधुर नहीं लगते; साथ ही मात्रा सौष्ठव में कुछ कमी सी जान पड़ती है ।

असूर्यम्पश्यानारी, अभ्रभेदी पर्वत (गगनचुम्बी पर्वत), करुणक्रन्दन, प्रचण्डमार्तण्ड, रक्तरञ्जितभूमि, लोमहर्षणकाण्ड, उद्वेलितसमुद्र, कलकण्ठ-कोकिल, दुग्धफेन शय्या, आलुलायित केशपाश, इन्दुतिलका यामिनी, निर्निमेष दृष्टि, अप्रत्याशित घटना, सूचिभेद्य अन्धकार, आप्यायित हृदय, शस्यश्यामला भूमि, निविड़तम, निर्जलाएकादशी, छलनामयी प्रेमिका, पाञ्चभौतिक शरीर, वात्सल्यमयी जननी, मृगमरीचिका, अनुप्राणित हृदय, स्मितवदन, इत्यादि ।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे प्रत्येक पद को वाक्यांश में परिवर्तित करो—

सादर, अलौकिक, संन्यासी, नास्तिक, आपादमस्तक ।

२. नीचे लिखे प्रत्येक खण्डवाक्य को पद में परिवर्तित करो—

जो की हुई भलाई को नहीं मानता । जिस स्त्री का पति नहीं है ।

जिसको सुख हो । जो दुःख देनेवाला हो ।

३. नीचे लिखे प्रत्येक खण्डवाक्य को वाक्यांश में परिवर्तित करो—

जब मेरी गाय आती है । जिनकी प्रशंसा सभी करते हैं । जो गणित अच्छा जानता है । जिसपर दया की जाय । जो सुख देनेवाला हो ।

४. नीचे लिखे प्रत्येक संज्ञाशब्द को संज्ञावाक्य (Noun clause) में बदलो—जलज, पतङ्ग, निशाचर, वासुदेव, चक्रपाणि ।

५. नीचे लिखे प्रत्येक विशेषण-वाक्य (Adjective clause) को विशेषण-शब्द में परिवर्तित करो —जो कभी नहीं सुना गया । पुनः-पुनः जो दीप्त होता है । जो दीर्घकाल तक जीवे । जिसकी तुलना नहीं है । ईश्वर में जिसका विश्वास हो । जो पहले कभी न देखा गया हो । जो कहने के योग्य न होवे ।

एकार्थबोधक वाक्य

(Expression of a Sentence in Different ways)

अर्थ को बिना बदले एक वाक्य को **भिन्न-भिन्न वाक्यों में** बदल सकते हैं। इससे रचना में मधुरता आती है और लेखक की पटुता और अभिज्ञता प्रकट होती है।

ऐसा करने में यह ध्यान रहे कि **वाक्य** मुहावरेदार और रोजमर्रे के अनुसार हों, अर्थ न बदल जायँ और भद्दे भी न हो जायँ। इसके लिये 'परिवर्त्तन' के पाठों का लक्ष्य रहे। नीचे कुछ **उदाहरण** दिये जाते हैं—

(१) उसने जन्म लिया। वह संसार में आया। उसका जन्म हुआ। उसका अवतार हुआ। उसका प्रादुर्भाव हुआ।

(२) कुछ भी स्थायी नहीं है। सभी वस्तुएँ क्षणिक हैं। सभी नाशवान् हैं। सभी क्षणभंगुर हैं। संसार ही नश्वर है। ध्वंस ही संसार का नियम है। सभी विदा हो जायँगे। कोई पदार्थ चिरकाल तक नहीं रहेगा।

(३) वह शोक से कातर है। वह शोकार्त्त है। उसका हृदय शोक से जर्जर है। वह वियोग के दुःख से कष्ट पा रहा है। शोक से उसका हृदय दुखता है। वह शोक में डूबा हुआ है।

(४) वह मर गया। उसने इस लोक को छोड़ दिया। उसने परलोक-गमन किया। उसके प्राण निकल गये। उसकी मौत हो गई। उसका परलोक हो गया। उसने शरीर त्याग दिया। उसने प्राण छोड़ दिये। उसने संसार को त्याग दिया। उसने संसार-यात्रा समाप्त की। उसकी प्राणवायु निकल गई। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसकी संसारलीला समाप्त हुई। उसका संसार से नाता टूट गया। उसको गङ्गा लाभ हुआ। उसका स्वर्गवास हो गया। वह पंचत्व को प्राप्त हुआ। उसका जीवनप्रदीप बुझ गया। वह कालकवलित हुआ। वह काल के मुख में पड़ गया। वह काल के गाल में जा पड़ा। उसने स्वर्गा-रोहण किया। वह संसार से चल बसा। उसकी मानवलीला समाप्त हुई।

अभ्यास (Exercise)

बिना अर्थ में भेद डाले नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य को भिन्न-भिन्न वाक्यों में बदल दो—

मनुष्य मरणशील है। साँझ हुई। सूर्योदय हुआ। आप कहाँ रहते हैं? सत्य की जय अवश्य होती है। कालिदास अद्वितीय कवि थे। संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है।

वाक्यसंकोचन और वाक्यसम्प्रसारण

(Contraction and Expansion of Sentences)

अर्थ में बिना कुछ भेद डाले अनेक पदों के किसी वाक्य को थोड़े पदों में प्रकाशित करने को **वाक्यसंकोचन** और थोड़े पदों के वाक्य को अनेक पदों में प्रकाशित करने को **वाक्यसम्प्रसारण** कहते हैं।

वाक्यसंकोचन का उलटा वाक्यसम्प्रसारण है, इसलिये संकोचन के नियमों को विपरीत भाव से काम में लाकर सम्प्रसारण करते हैं।

समापिका क्रिया को **असमापिका**[1] में तथा अंगवाक्य, वाक्यांश या कई पदों को **सामासिक**[2], **प्रत्ययान्त**[3] या **अल्पपदों**[4] में बदलने से बड़ा वाक्य छोटा हो जाता है। जैसे—

प्रसारित वाक्य	संक्षिप्त वाक्य
१. शिक्षक ने विद्यार्थी को पढ़ते देखा और उसे पारितोषिक देने का वचन दिया।	१. शिक्षक ने विद्यार्थी को पढ़ते देख पारितोषिक देने का वचन दिया।
२. मोहन परदेश से लौट आये और अपने घर के लोगों का प्रेम से पालन किया।	२. मोहन ने परदेश से लौट परिवार का प्रेम से पालन किया।
३. देव और असुर का संग्राम हुआ।	३. देवासुर संग्राम हुआ।
४. जानकी का मुख चन्द्र के समान है।	४. जानकी चन्द्रमुखी है।
५. जिसको दुःख हो, उसका दुःख हटाओ।	५. दुःखी का दुःख हटाओ।

संक्षिप्त वाक्य	प्रसारित वाक्य
१. आकाश अनन्त है।	१. आकाश का अन्त नहीं है।
२. रामचन्द्र शैव हैं।	२. रामचन्द्र शिव के उपासक हैं।
३. यह कार्य अनिवार्य है।	३. इस कार्य का निवारण नहीं किया जा सकता।

४. राम ने चिट्ठी पढ़ते ही प्रसन्न होकर कहा—"पुस्तक ले आओ।"	४. राम ने चिट्ठी पढ़ी, पढ़कर प्रसन्न हुए और कहा कि पुस्तक ले आओ।
५. भीम हनुमान-सा बलवान् पुरुष था।	५. जैसा हनुमान बलवान् पुरुष था, वैसा भीम भी था।

नोट—(१) एक वाक्य में दो या अधिक पूर्वकालिक क्रियाओं का एक साथ आना उचित नहीं। यदि अधिक पूर्वकालिक क्रियाओं की आवश्यकता पड़ने लगे तो वाक्य बाँट देना चाहिये। जैसे—"शिक्षक ने विद्यार्थी को पढ़ते देखकर बड़े आनन्दित होकर और पारितोषिक देकर उसका साहस बढ़ाया।" यह वाक्य मधुर नहीं जान पड़ता। इसके बदले नीचे का वाक्य उचित है—"शिक्षक विद्यार्थी को पढ़ते देख बड़े आनन्दित हुए और पारितोषिक देकर उसका साहस बढ़ाया।"

(२) सर्वनाम वाक्य की मधुरता को बढ़ा देता है। यदि सर्वनाम न हो तो बराबर संज्ञाओं के प्रयोग से एक तो वाक्य भद्दा जान पड़ेगा और दूसरे बढ़ भी जायगा। जैसे—

अप्रयुक्त वाक्य	**प्रयुक्त वाक्य**
मोहन कल घर गया, वहाँ जाकर मोहन ने मोहन की माता से कहा कि मोहन को भूख लगी है, भोजन दो। माता ने कहा कि हे मोहन, मोहन के पिताजी फल लाते होंगे, फल खाकर मोहन की भूख शान्त कर लेना।	मोहन कल घर गया, वहाँ जाकर उसने अपनी माता से कहा—मुझे भूख लगी है, भोजन दो। उसने कहा—हे बेटा, तुम्हारे पिताजी फल लाते होंगे, उसे खाकर अपनी भूख शान्त कर लेना।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य का संकोचन करो—

तुम न्यायपथ से बिचलित होकर चलते हो, इससे तुम कभी सुखी नहीं हो सकते। श्याम शक्ति का उपासक है। इस प्रकार की घटना पहले कभी नहीं सुनी गई थी। इस प्रकार का व्यापार पूर्व में कभी नहीं देखा गया था। तुमने जिस व्यक्ति को अपने आश्रम में रक्खा है, वह कहाँ है? जिसकी सब निन्दा करते हैं, वह हतभाग्य है। जिस स्थान में ठाकुरजी की पूजा होती है, वहाँ जूता

पहनकर मत जाओ। जो लिखना-पढ़ना जानता है, उसे सब प्यार करते हैं। जिसको परलोक में विश्वास नहीं, वह पाप-पुण्य को नहीं मानता। गुरुजी दौड़ने लगे और उनके साथ विद्यार्थी भी दौड़ने लगे।

२. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य का सम्प्रसारण करो—

सभी को कायिक और मानसिक परिश्रम करना उचित है। दरिद्र से घृणा मत करो। वह निर्जीव है। अश्रुतपूर्व घटना के श्रवणमात्र से रोमांच हो जाते हैं। अभिलषित वस्तु सर्वदा नहीं मिलती। ऊसर में बीज बोना व्यर्थ है। श्रीमैथिलीशरण गुप्त की पुस्तकें अच्छी होती हैं। अभागे की सभी निन्दा करते हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र बाल्यावस्था ही से कविता करते थे। शरीर क्षण-भंगुर है। पार्थिव सुख क्षणस्थायी है।

कई वाक्यों के बदले एक वाक्य

(वाक्य-संयोजन)

(Combination of Sentences)

(क) नियम—समापिका क्रिया को असमापिका में बदलने, मिलते हुए अंशों को एक ही बार रखने और अव्ययों के प्रयोग से कई वाक्य एक वाक्य में बदल जाते हैं। जैसे—

कई वाक्य।	एक वाक्य।
१. राम ने रोटी खाई। राम ने पुस्तक पढ़ी।	१. राम ने रोटी खाकर पुस्तक पढ़ी।
२. श्याम रोटी खाता है। श्याम दाल खाता है। श्याम तरकारी खाता है। श्याम पानी पीता है।	२. श्याम रोटी, दाल और तरकारी खाकर पानी पीता है।
३. मोहन गरीब है। मोहन सन्तोषी है। मोहन सुखी है।	३. यद्यपि मोहन गरीब है, तथापि सन्तोषी होने से सुखी है।

(ख) नियम—यदि अर्थ में बाधा न पड़े तो वाक्यों के शब्दों को कुछ उलटफेर करके कम कर देते हैं। कतिपय वाक्यों को पद, वाक्यांश और अङ्गवाक्य भी बना दे सकते हैं। जैसे—

कई वाक्य ।	एक वाक्य ।
१. अर्जुन धनुर्धर थे । उन्होंने लड़ाई में आश्चर्यजनक काम किये । लड़ाई कुरुक्षेत्र में हुई ।	१. धनुर्धर अर्जुन ने कुरुक्षेत्र की लड़ाई में आश्चर्यजनक काम किये ।
२. गंगाप्रसाद रामपुर गये हैं । वे मोहनलाल के भाई हैं । मोहनलाल मेरे स्कूल के शिक्षक हैं ।	२. मेरे स्कूल के शिक्षक मोहनलाल के भाई गंगाप्रसाद रामपुर गये हैं ।
३. वैदहीशरण राधाउर में रहता है । वह विद्यार्थी है । राधाउर सुरसण्ड के समीप है । राधाउर एक ग्राम है ।	३. वैदहीशरण विद्यार्थी सुरसण्ड के समीप राधाउर ग्राम में रहता है ।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे प्रत्येक वाक्यसमूह को एक वाक्य में बदलो—

१. रामलाल एक प्रसिद्ध पुरुष है । उसकी प्रशंसा सब करते हैं । रामलाल मोहनपुर का रहनेवाला है । मोहनपुर गंगा के किनारे है । प्रशंसा करनेवाले लोग सारे बिहार में रहते हैं । रामलाल राजेन्द्रप्रसाद का भाई है ।

२. रामायण हिन्दी-साहित्य का एक महाकाव्य है । गोस्वामी तुलसीदास इसके रचयिता हैं । उन्होंने इस काव्य को लिखकर हिन्दी-साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया है ।

३. राधाउर एक ग्राम का नाम है, वह अत्यन्त ही प्रसिद्ध ग्राम है । वह मिथिला देश में है । महँगूसाहु वहाँ के एक प्रतिष्ठित गृहस्थ हैं । वे उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं ।

४. ध्रुव भक्तों का शिरोमणि था । उसने पाँच वर्ष की अवस्था में संसार-त्याग किया । वह जंगल में गया । वहाँ उसने भगवान् की खोज में कठोर तपस्या की ।

एक वाक्य के बदले कई वाक्य

(वाक्यवियोजन)

(Resolution of sentences)

वाक्यसंयोजन का उल्टा वाक्यवियोजन है, इसलिये संयोजन के नियमों को विपरीत भाव से काम में लाकर वियोजन करते हैं । जैसे—

एक वाक्य ।	कई वाक्य ।
१. रात बीतते ही चिड़ियाँ चहचहाने लगी ।	१. रात बीत गई । चिड़ियाँ चहचहाने लगीं ।
२. सवेरा होते ही ठंढी हवा बहने लगी ।	२. सवेरा हो गया । ठंढी हवा बहने लगी ।
३. साहसी राम ने एक बाघ को मारा ।	३. राम साहसी है । उसने एक बाघ को मारा ।
४. परीक्षा समाप्त होने पर मुझे रखके समय क्यों खराब करते हैं ?	४. परीक्षा समाप्त हो गई । अब मुझे मत रखिये । मेरा समय खराब जाता है ।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे प्रत्येक वाक्य को कई मधुर वाक्यों में बदलो—

इस संकट में सिवा भगवान् के मेरी सहायता कोई नहीं कर सकता। अयोध्यापति दशरथ के पुत्र रामचन्द्र ने अश्वमेध-यज्ञ किया। मुझे रखकर समय खराब करने के बदले जाने की आज्ञा दीजिये ।

एक समय प्रातःकाल जब चन्द्रमा अस्त हो गया और पक्षी सब चहचहा रहे थे और सूर्य के उदय से गगनमंडल रक्तवर्ण हो गया था और आकाशस्थित अंधकाररूपी धूल सूर्य की किरणरूपी झाड़ू से परिष्कृत हो गई और सप्त-ऋषि लोग स्नानादि के निमित्त मानसरोवर के तट पर उतरे; उसी समय उस वृक्ष में रहनेवाले पक्षी भी सब अपने-अपने इच्छानुसार देशदेशान्तर को चले ।

(कादम्बरी)

नवाँ अध्याय

Sentences (Continued)

वाक्यपरिवर्त्तन

(Interchange of Sentences)

अमिश्र, संकीर्ण और संसृष्ट वाक्य—

(१) अमिश्र से संकीर्ण और संकीर्ण से अमिश्र वाक्य—

नियम—(क) अमिश्रवाक्य के एक या अधिक पदों को अङ्गवाक्य में बदल देने से वह संकीर्णवाक्य बन जाता है। जैसे—

अमिश्र (Simple)	संकीर्ण (Complex)
१. सुशील बालक बड़ों की आज्ञा मानते हैं।	१. जो बालक सुशील होते हैं वे बड़ों की आज्ञा मानते हैं।
२. चोर ने अपने बचाव का कोई उपाय नहीं देखा।	२. चोर ने देखा कि मेरे बचाव का कोई उपाय नहीं है।
३. मेरे बैल के आते ही काली गाय चली जाती है।	३. जब मेरा बैल आता है तब काली गाय चली जाती है।

(ख) संकीर्णवाक्य के अङ्गवाक्य को पद या वाक्यांश में बदल देने से वह अमिश्र वाक्य बन जाता है। जैसे—

संकीर्ण (Complex)	अमिश्र (Simple)
१. जो प्राणी रात्रि में विचरण करते हैं, वे दिन में प्रायः छिपे रहते हैं।	१. रात्रिचर प्राणी दिन में प्रायः छिपे रहते हैं।
२. जब विपद् आवे तब धैर्य रक्खो।	२. विपद् में धैर्य रक्खो।
३. जिसे दया नहीं वह पशु है।	३. दयाहीन व्यक्ति पशु है।

अभ्यास (Exercise)

१. अमिश्रवाक्यों को संकीर्ण (Complex) में बदलो—

रामजी का जन्म अयोध्या में हुआ था। अन्याय का धन शीघ्र नष्ट होता है। सब कोई विद्वान् का आदर करते हैं। अपने कर्त्तव्य को मत भूलो। उसके

आने का समय हमें मालूम नहीं। परिश्रमी विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। इस पुस्तक के लेखक का वासस्थान कहाँ है ? इस समाचारपत्र के सम्पादक कहाँ रहते हैं ? सूर्योदय होते ही पक्षी बोलने लगे।

२. नीचे के संकीर्णवाक्यों को अमिश्र (Simple) में बदलो—

तुम परीक्षोत्तीर्ण हुए, यह हमें क्यों नहीं कहा ? जिसको बुद्धि है, वही इस कार्य को करेगा। हमने उसको जिस प्रकार कहा, उसने वैसा ही किया। हमें बताइये, आपका जन्मस्थान कहाँ है। राम ने हमारा जो उपकार किया है, उसे जन्मभर नहीं भूलेंगे। जहाँ रामजी का अवतार हुआ था, उसे अयोध्या कहते हैं। पटने में गोलघर है, उसे अंगरेजों ने बनवाया।

(२) अमिश्र से संसृष्ट और संसृष्ट से अमिश्रवाक्य—

नियम—(क) अमिश्रवाक्य के किसी वाक्यांश को एक अपेक्षारहित वाक्य में बदल देने से वह **संसृष्टवाक्य** बन जाता है। ऐसी अवस्था में योजक अव्यय का प्रयोग होता है। यदि वाक्यांश में कोई असमापिका क्रिया हो तो उसे समापिका में बदलकर निरपेक्षवाक्य बनाना चाहिये।

अमिश्र (Simple)	संसृष्ट (Compound)
१. आगे बढ़कर शत्रुओं का सामना करो। शत्रुओं का सामना करने के लिये आगे बढ़ो।	१. आगे बढ़ो और शत्रुओं का सामना करो।
२. बिल्ली के पंजों में नख होते हैं।	२. बिल्ली के पंजे होते हैं और उनमें नख होते हैं।
३. सूर्योदय होते ही हम अपने कार्य में लगे।	३. सूर्योदय हुआ और हम अपने कार्य में लगे।

(ख) संसृष्टवाक्य में एक निरपेक्षवाक्य को छोड़ शेष को पदों या वाक्यांशों में बदल देने से वह अमिश्रवाक्य बन जाता है। कभी-कभी समापिका क्रिया को पूर्वकालिक में बदलकर अमिश्रवाक्य बनाते हैं। अमिश्र-वाक्य बनाने पर योजक अव्यय छूट जाता है।

संसृष्ट (Compound)	अमिश्र (Simple)
१. आप उसे बहुत चाहते थे, इसलिये वह नष्ट हुआ।	१. आपके चाहने के कारण वह नष्ट हुआ।

२. आपसे आशा थी, परन्तु वह पूरी न हुई। | २. आपसे मेरी आशा पूरी न हुई।

३. मुझे सत्य बोलना उचित है, परन्तु वह अप्रिय न हो। | ३. मुझे अप्रिय सत्य बोलना उचित नहीं।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे के अमिश्रवाक्यों को संसृष्ट (Compound) में बदलो—

दुर्बलता के कारण वह स्कूल नहीं जा सका। गङ्गा गङ्गोत्तरी से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। परिश्रमी विद्यार्थी परीक्षोत्तीर्ण होते हैं। मैंने पुस्तक खरीदकर पढ़ी। संध्या होते ही वह लौट आता है। दरिद्रता से किसी कार्य में भली-भाँति उन्नति नहीं होती। परिश्रम करने से उसकी उन्नति हुई।

२. नीचे के संसृष्टवाक्यों को अमिश्र (Simple) में बदलो—

वस्त्र केवल शोभा ही के लिये नहीं है, परन्तु उनसे स्वास्थ्य की रक्षा भी होती है। राजा प्रजा का रक्षक है, भक्षक नहीं। गुरुजी बीमार हैं, इसलिये पढ़ाने नहीं आये। ईश्वर पर भरोसा रक्खो, तुम्हारी भलाई होगी। श्याम माखनचोर है, इसलिये जब मैं ढूँढ़ती हूँ, वह छिप जाता है। हिमालय पर्वत परम रमणीय है, क्योंकि वहाँ प्रकृति के वास्तविक दर्शन होते हैं।

---

(३) संकीर्ण से संसृष्ट और संसृष्ट से संकीर्णवाक्य—

नियम—संकीर्णवाक्य के अङ्गवाक्य को प्रधान में बदल देने से वह संसृष्टवाक्य बन जाता है। ऐसी अवस्था में संकीर्ण के नित्य सम्बन्धी अव्यय इत्यादि शब्दों और 'कि' के बदले योजक या विभाजक अव्यय लाते हैं। जैसे—

संकीर्ण (Complex)	संसृष्ट (Compound)
१. यद्यपि तू धनी है, तथापि सुखी नहीं है।	१. तू धनी है, परन्तु सुखी नहीं है।
२. तू जानता है कि वह खराब लड़का है।	२. वह खराब लड़का है और तू यह जानता है।
३. यदि अकाल पड़ेगा तो मरेंगे।	३. अकाल पड़ेगा और मरेंगे।

संसृष्टवाक्य के एक निरपेक्षवाक्य को छोड़ शेष को अप्रधान में बदलने से

वह **संकीर्णवाक्य** बन जाता है। ऐसी अवस्था में योजक और विभाजक अव्ययों के बदले नित्य सम्बन्धी शब्दों और 'कि' का प्रयोग होता है। जैसे—

संसृष्ट (Compound)	संकीर्ण (Complex)
१. वह मूर्ख है, परन्तु उसे धर्मज्ञान है।	१. यद्यपि वह मूर्ख है तथापि उसे धर्मज्ञान है।
२. चेष्टा मत करो, कोई फल नहीं मिलेगा।	२. यदि तुम चेष्टा करोगे, तो भी कोई फल नहीं मिलेगा।
३. तुमने झूठ कहा है, तुम्हारा छुटकारा नहीं।	३. तुमने झूठ कहा है, तब तुम्हारा छुटकारा नहीं।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे के संकीर्ण वाक्यों को संसृष्ट (Compound) में बदलो—

यदि मन से विद्या पढ़ोगे तो सुखी होगे। यदि उनकी दुर्दशा देखोगे तो तुम्हें अवश्य दया होगी। जो चले गये थे, वे फिर आये हैं। यदि पढ़ने न जाओगे तो दण्ड मिलेगा। जो पुस्तक हमसे खरीदी है, उसका मोल एक रुपया है। मैं समझता हूँ कि आप अच्छे हैं। यदि तुम जाओगे तो कुछ नहीं मिलेगा।

२. नीचे के संसृष्टवाक्यों को संकीर्ण (Complex) में बदलो—

वह ज्ञानी है, किन्तु उसको इसके लिये गर्व है। वह धनी है, परन्तु उसको अहंकार नहीं। सच्ची बात कहो, कोई डर नहीं। चुनार में एक किला है, वह आर्यों का बनाया हुआ है। हमने बहुत वृक्ष लगाये हैं, वे फल देते हैं। वर्षा हुई है, परन्तु धान होने की आशा बहुत ही कम है।

प्रकृतिभेद से वाक्य-परिवर्तन

(Different forms of sentences)

१. विधानार्थक[1] (Affirmative)	निषेधार्थक[2] (Negative)
यह गृह लोकशून्य है।	इस गृह में कोई नहीं है।
वह अन्यायी मनुष्य है।	उस मनुष्य में न्याय नहीं है।

---

१. विधानार्थक = विधिवाचक, सम्मतिसूचक, निश्चयार्थक।

२. निषेधार्थक = असम्मतिसूचक।

यह निर्विवाद है।	इसमें कोई विवाद नहीं है।
कायर कार्य से भागते हैं।	कायर के सिवा और कोई कार्य से नहीं भागता।

२. निषेधार्थक (Negative) — विधानार्थक (Affirmative)

तुम 'न' नहीं कहो।	तुम 'हाँ' कहो।
झूठ मत बोलो।	सच बोलो।
परिश्रम व्यर्थ नहीं हुआ।	परिश्रम सफल हुआ।
तुम्हें रोग नहीं है।	तुम नीरोग हो।

३. प्रश्नार्थक[1] (Interrogative) — निषेधार्थक (Negative)

क्या उसका जाना उचित है ?	उसका जाना उचित नहीं।
क्या तुम इसे जानते हो ?	तुम इसे नहीं जानते।

४. ज्ञापक (Assertive) — भिन्न-भिन्न वाक्य

(क) हम तुम्हें घर जाने को कहते हैं।	(क) तुम घर जाओ। (आज्ञार्थक—Imperative)
(ख) भगवान् से आपका भला चाहते हैं।	(ख) भगवान् आपका भला करें। (इच्छार्थक—Optative)
(ग) गुसाँईजी की रामायण अवर्णनीय है।	(ग) अहा ! गुसाँईजी की कैसी अच्छी रामायण है ! (विस्मयसूचक[2] Exclamatory)
(घ) शिवजी बड़े दयालु हैं।	(घ) क्या शिवजी बड़े दयालु नहीं हैं ? (प्रश्नार्थक Interrogative)

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे के वाक्यों को निषेधार्थक (Negative) में बदलो—

राम बुद्धिमान् है। रुपये से सभी पदार्थ मिलते हैं। मन से पढ़ने से विद्या आती है। वह अद्वितीय पण्डित है। लड़के चंचल होते हैं। शिवाजी कर्मवीर पुरुष थे।

२. नीचे के वाक्यों को विधानार्थक (Affirmative) में बदलो—

इस समय मोहन घर पर नहीं हैं। कर्मचारियों ने आपकी आज्ञा के बिना

---

१. प्रश्नार्थक = जिज्ञासक, २. विस्मयसूचक = क्रोशार्थक।

कोई कार्य नहीं किया है। ग्रीष्मऋतु में रात्रि को नींद नहीं आती। बिना परिश्रम के कोई कार्य नहीं होता।

३. नीचे के वाक्यों को प्रश्नार्थक (Interrogative) में बदलो—

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। उसको अपना भेद कहना उचित नहीं। अपनी जन्मभूमि की सब प्रशंसा करते हैं। इस अवस्था में उसे सुधारना कठिन है। चोर को घर में आने देना उचित नहीं। छात्रों को अच्छी पुस्तक पढ़नी चाहिये।

४. नीचे लिखे वाक्यों को ज्ञापक (Assertive) में बदलो—

सर्वदा सच्ची बातें बोलो। भगवान् तुम्हें दीर्घायु करें। तुम्हारा क्या नाम है? अहा! कैसी सुन्दर मूर्त्ति है! तुम्हारी मंगलकामना पूर्ण हो। सर्वदा नम्र बने रहो। बड़ों का कहना मानो।

वाच्यपरिवर्तन (Change of voice)

क्रिया में वाच्यकृत तीन भेद होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। कर्तृवाच्य क्रिया के वचन आदि कर्त्ता के अनुसार होते हैं। कर्मवाच्य क्रिया के वचन आदि कर्म के अनुसार होते हैं और भाववाच्य क्रिया सदा एकवचन पुँल्लिङ्ग रहती है। वाच्य का भेद केवल भूतकालिक क्रिया में होता है। कर्तृवाच्य के कर्त्ता में कोई चिह्न नहीं रहता। कर्मवाच्य के कर्म में कोई चिह्न नहीं रहता और भाववाच्य के कर्त्ता में 'ने' * चिह्न और कर्म में 'को' चिह्न रहता है। जैसे—राम गया (कर्तृवाच्य)। मैंने रोटी खाई (कर्मवाच्य) सीता ने सखियों को बुलाया (भाववाच्य)।

उपर्युक्त उद्धरण पण्डित रामावतार शर्मा कृत व्याकरण से लिया गया है, परन्तु पण्डित कामताप्रसाद गुरु अपने ग्रन्थ में यह लिखते हैं—

---

* कर्मवाच्य और भाववाच्य के कर्त्ता में सदा 'ने' चिह्न आता है, परन्तु इसका अपवाद 'खा जा' इत्यादि 'जा' धातु से युक्त समस्त धातुओं के प्रयोग में पाया जाता है। ऐसे धातुओं के साथ कर्त्ता में 'ने' अव्यय के बदले 'से' अव्यय लगता है। जैसे—'मैं खा गया' इसका कर्मवाच्य 'मुझसे खाया गया' है। न कि 'मुझ ने खाया' गया। 'खाया' 'गया' 'खा जा' इस संयुक्त धातु का कर्म-वाच्य है, रूढ़ धातु 'खा' का नहीं है।

—पं० रामावतार शर्मा।

'कर्तृवाच्य' क्रिया के उस रूपान्तर को कहते हैं, जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य (Subject) क्रिया का कर्त्ता है। कर्मवाच्य क्रिया उस रूपान्तर को कहते हैं, जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य (Subject) क्रिया का कर्म है। 'भाववाच्य' क्रिया के उस रूपान्तर को कहते हैं जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य (Subject) क्रिया का कर्त्ता या कर्म कोई नहीं है। जैसे—

कर्तृवाच्य—लड़का दौड़ता है। लड़का पुस्तक पढ़ता है। लड़के ने पुस्तक पढ़ी। रानी ने सहेलियों को बुलाया। हमने नहाया।

कर्मवाच्य—कपड़ा सिया जाता है। चिट्ठी भेजी गई। मुझे यह बोझ न उठाया जायगा। उसे उतरवा लिया जाय।

भाववाच्य—यहाँ कैसे बैठा जायगा? धूप में चला नहीं जाता।

उपर्युक्त दोनों उद्धरण कुछ अंशों में परस्पर विरोधी हैं, परन्तु यह झगड़ा व्याकरण का है, रचना का नहीं। अतः, नीचे वाच्यपरिवर्तन के केवल उदाहरण दिये जाते हैं। जो विद्वान् जिस उद्धरण के पक्ष में हों वे उसके अनुसार कृपा कर थोड़ा-सा फेर-फार कर लेंगे—

१. कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।	मुझसे पुस्तक पढ़ी जाती है।
राम पुस्तक देगा।	राम से पुस्तक दी जायगी।
२. कर्तृवाच्य	**भाववाच्य**
तू बैठता है!	तुझसे बैठा जाता है।
आइये।	आया जाय।
वह सोवे।	उससे सोया जाय।

'मैं ग्रन्थ पढ़ जाता हूँ। राम पुस्तक दे जायगा। तू बैठ जाता है। जाइये। वह सो जावे।' इन वाक्यों के 'कर्म और भाववाच्य' भी क्रमशः ऊपर ही के अनुसार होते हैं, परन्तु कहीं-कहीं अर्थों में कुछ भेद हो जाता है। इसी प्रकार 'मैं रोटी' खा गया' का कर्मवाच्य है, 'मुझसे रोटी खाई गई'।

शर्माजी के नियम से 'मैंने रोटी खाई' यह वाक्य कर्मवाच्य है इसके कर्म में 'को' लाने से 'मैंने रोटी को खाया' भावप्रधान वाक्य बन जाता है। ये

दोनों वाक्य गुरुजी के नियम से कर्तृवाच्य हैं और वाच्यपरिवर्तन में इनके बदले 'मुझसे रोटी खाई गई' कर्मवाच्य है।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे वाक्यों का वाच्य के अनुसार परिवर्तन करो—

मनुष्य जो कुछ काम करते हैं, सुख के लिये ही करते हैं। आइये, आप ही का घर है, कोई संकोचन मत कीजिये। तारापद ने स्थिर किया था कि वह रुपये को लौटा देगा। भगवन्! तूने भी मुझे यों ही त्याग दिया। यह भी आशीर्वाद दीजिये कि मैं सच्चरित्र पुरुषों के पदाङ्कों का अनुसरण कर सकूँ। रानी ने सहेलियों को बुलाया

उक्तिभेद् (Reported speech)

जब किसीकी कही हुई बात को दूसरे से कहते हैं तब उसे या तो वक्ता ही की उक्ति में प्रकट करते हैं या अपनी उक्ति में।

जब वक्ता के वाक्य को ठीक-ठीक उसीके शब्दों में प्रकट करें तब उसे प्रत्यक्ष वा साक्षात् उक्ति और जब अपने शब्दों में प्रकट करें तब उसे परोक्ष उक्ति कहते हैं।

प्रत्यक्ष उक्ति को "............ " के बीच में रखते हैं।

प्रत्यक्ष (Direct form)	परोक्ष (Indirect form)
१. राम ने कहा था—"मैं जाऊँगा।"	१. राम ने अपने आने की बात कही थी।
२. पिता ने मुझे कहा—"राम की पुस्तक पढ़ो।"	२. पिता ने मुझे राम की पुस्तक पढ़ने को कहा।
३. ब्राह्मण ने आशीर्वाद दिया—"कल्याण हो।"	३. ब्राह्मण ने कल्याण होने के लिये आशीर्वाद दिया।
४. मैंने पूछा—"आप कहाँ जाते हैं?"	४. मैंने उनके जाने के बारे में पूछा।
५. गुरुजी ने कहा—"पृथ्वी चलती है।"	५. गुरुजी ने कहा कि पृथ्वी चलती है।

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे वाक्यों में उक्तिभेद के अनुसार परिवर्तन करो—

कुछ देर तक चुप रहकर तारापद ने कहा—'अच्छा, आइये।" राम ने कहा—"कुछ नहीं।" श्याम ने बहुत देर के बाद मुझसे पूछा—"आप कहाँ

जाते हैं !" कातरता से और कुछ दिन ठहरने के लिये कहा । गुरुजी ने घर जाने के लिये कहा ।

अनुक्त पदों की पूर्त्ति
(Filling up of Ellipses.)

अनुक्त पदों की पूर्त्ति के लिये कोई विशेष नियम नहीं दिया जा सकता। शब्द-प्रकरण के भिन्न-भिन्न प्रयोगों और वाक्यरचना के नियमों पर ध्यान रखकर वाक्यार्थबोध के अनुसार शब्दों की पूर्त्ति करनी चाहिये ।

प्रत्येक रिक्त स्थान के लिये केवल एक शब्द या एक पद को चुनना चाहिये । दो-तीन पदों को रखना अनुचित है ।

(१) आदर्श—

—किताब लिखी । उसने—पढ़ीं । राम ने राटी— ।

श्याम ने किताब लिखी । उसने पुस्तकें पढ़ीं । राम ने रोटी खाई ।

अनुक्त पदों की पूर्त्ति करो—

(१)—पत्र लिखा है ।—आम दिये हैं ।—बातें कही हैं ।—मछली मारी थी ।—फल खाये होंगे ।—किताब पढ़ी होगी ।

(२) राम ने—मारे । लड़की ने—लिखे हैं । कौओं ने—खा डाले हैं। विद्यार्थी ने—लिखी होंगी। सीता ने—सुनी थी।

(३) आपने ग्रंथ—। सीता ने चिट्ठियाँ—। व्याध ने चिड़ियाँ—। मोहन ने दूध—। श्याम ने मक्खन— ।

(२) आदर्श—

मोहन—सोहन—। गाय—बकरी— ।

मोहन और सोहन जाते हैं। गाय या बकरी बिकेगी ।

राम—का घोड़ा—आता है । तुम्हारी—पुस्तक—है ।

राम का लाल घोड़ा धीरे-धीरे आता है । तुम्हारी यह पुस्तक अच्छी है ।

यदि—पढ़ोगे—बुद्धि—और—रहोगे ।

यदि विद्या पढ़ोगे तो बुद्धि होगी और सुखी रहोगे ।

अनुक्त पदों की पूर्त्ति करो—

(१) सीता——राम को भेज——। तेरा——उसका——घर——, भाई——। गाय——बकरी का——दूध——।

(२) सीता की——बेटी——चली गई । मेरा—विद्यार्थी—पढ़ता है । —घर की—दीवार पर——बिल्ली बैठी है ।

(३)—वह—तथापि—बुद्धि—। जब—दुष्ट—आता है—राम का—चुपचाप—।—लाठी—भैंस ।

(३) आदर्श—

इस········जो········सुखी····चाहता हो···क्रोध···प्रयत्न·· चाहिये ।······क्रोध को······वश में······रख सकता वह·········· वस्तुओं के ·····हुए·····सुख······भोग सकता ।

इस संसार में जो मनुष्य सुखी रहना चाहता हो उसे क्रोध छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये । जो क्रोध को अपने वश में नहीं रख सकता, वह सुख की वस्तुओं के रहते हुए भी सुख नहीं भोग सकता ।

अनुक्त पदों की पूर्त्ति करो—

मनुष्य ··कुछ···करते हैं, सुख के लिये···करते हैं ।···पीने की···सब को···। उद्देश्य···रहता है··हमको···मिले,···गला···सुख···चिल्लाने···सुख·· मिल सकता ।

मिश्रित अभ्यास (Miscellaneous Exercise)

१. नीचे लिखे प्रत्येक अंश को विधेय का विस्तार मानकर वाक्य बनाओ—

इन्द्र के वज्र को भूल । उसके सम्मुख, पाँव में काँटा लगने का मिस करके । किस मिस से इस आश्रम में । तपस्वियों के आश्रम में । अंग-भंग करके मुझी पर स्नेह की दृष्टि । प्यारी की सहवासिनी हरिणियों पर ।

नीचे लिखे प्रत्येक वाक्यांश से मिश्र (Complex) वाक्य बनाओ—

तब मेढ़क बोलते हैं । साधु कहता है । बुरी संगति का फल बुरा होता है । जो लड़के अच्छे होते हैं । ऐसा शब्द हो रहा था । वह धर्म की मूल बात है । मानो शिवजी शूकर के पीछे जाते हैं । दिखाई भी सहज नहीं पड़ता ।

नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

किसने आज रात में चिल्लाया कि मेरी नींद ने टूट गई । मैं तो तुमसे कहा ही था कि मेरी कान में आज बड़ी खुजलाहट है । उसका विषय में आप क्या जानते हो ?

(से० डी० परीक्षा)

(Specimen Copy 1958

एक राजा जब नींद में पड़ा था कि उसका परम भक्त सेवक एक बानर उन्हें पंखा झल रहा था। एक मक्खी को बार-बार उसके छाती पर बैठता देख बानर तलवार चलाया। राजा मर गया। मक्खी तो पहले ही उड़ गई।

(फ० डि० परीक्षा)

४. नीचे के शब्दों को इस प्रकार बैठाओ कि एक पूर्ण वाक्य बन जाय—

छोटी, दूर, पहले, होने के, कारण, वस्तु, दिखाई, जो, देती थी सो, बड़ी, अब, जान पड़ती है। मिली, और, जो, हुई, सो, थी, निकली, अलग, अलग।

५. इन वाक्यों को नियम-प्रदर्शनपूर्वक शुद्ध करो—

आये हुए रविवार को स्त्रीलोग अकेले जायँगे। वह पानी लगाकर तेल से नहा लिया। मान्यनीय गुरुजी यद्यपी भी शान्त थे। क्षत्रि को सापराधी होने से दंड दिया।

६. नीचे लिखे वाक्यों का विभाजन करो—

हिमालय पर्वत रमणीय है, क्योंकि वहाँ प्रकृति के वास्तविक दर्शन होते हैं। अब वह राजर्षि के नाम से नहीं, वरन् ब्रह्मर्षि के नाम से प्रसिद्ध हो गये। मेरे मित्र ने कहा—"अब मुझे इसकी आवश्यकता नहीं।" हे चकई, अब चकवा से न्यारी हो, रात आई। तुम मुझसे इस दशा में हँसी करती हो।

७. छठे प्रश्न के अन्तिम दो वाक्यों के प्रत्येक पद का पदनिर्देश (Parsing) करो।

८. नीचे लिखे प्रत्येक वाक्यांश को शब्द में बदलो—

जो गोपन करने के योग्य है। जितनी आशा की थी उससे अधिक। जिस स्त्री का पति मर गया। नगर में जो उत्पन्न हो। जो पहले कभी न देखा गया हो। जिसने प्रतिष्ठा पाई है।

९. नीचे लिखे वाक्यों के बदले एक वाक्य दो—

यही छड़ी है। इससे मैं काम भुगताता था। काम द्वारपाली का था। यह काम रनवास में था। यह काम आगे करता था। अब बुढ़ापा आया है। बुढ़ापे में मैं चलता हूँ। इसमें यही छड़ी सहारा बनी है।

१०. नीचे लिखे अमिश्र, संकीर्ण और संसृष्ट वाक्यों का परस्पर परिवर्तन करो—

मनुष्य-समाज को सुखी बनाने के हेतु कितने ही उपाय हैं। मनुष्य जो कुछ

काम करते हैं, सुख के लिये करते हैं । इस पवित्र विशाल भारतवर्ष में आदर्श पुरुषों का बिलकुल अभाव हो जाना क्या कभी संभव है ? इस वर्त्तमान भारत में भी अनेक महापुरुषों ने जन्म-ग्रहण करके अपने उदार चरित्रों से लोगों को अनेक उपदेश दिये हैं। आदर्श पुरुष उच्च हृदय के हुए तो जाति उन्नत होती और आदर्श नीच प्रकृति हुए तो जाति की अवनति होती है।

११. नीचे के वाक्यों में अनुक्त पदों की पूर्त्ति करो—

समय अमूल्य जीवन—है, अतएव एक—भी नष्ट नहीं—चाहिये।

बुद्धिमान—समय—उत्तम—से उपयोग करना—है और उसको सुख के—या—लाभ—काम—लगाते हैं । वे सुस्त—नहीं रहते, पर विद्याभ्यास विनोद में सतत—रहते हैं । आलस्य दुर्गुणों की—है । यह—संसार है और यह भी है कि आलस्य मूर्खों—ही पैतृक— है ।

(B. A. Examination)

दसवाँ अध्याय

चिह्नविचार (Punctuation)

वाक्यों में कुछ चिह्न लगाये जाते हैं जो ठीक-ठीक ठहराव के साथ उनके बोलने में सहायक होते, उनके पदों, वाक्यांशों और खण्डवाक्यों में परस्पर सम्बन्ध सूचित करते तथा उनके अर्थों को भली-भाँति स्पष्ट करते हैं।

१. विराम या ठहराव के चिह्न (Stops)

अल्पविराम (Comma)

जहाँ यह चिह्न (,) रहे वहाँ उतने समय तक ठहरना चाहिये जितना 'एक' के बोलने में लगता है।

नियम—१. यदि कई शब्द, वाक्यांश या खण्डवाक्य एक ही दशा में हों तो अन्तिम शब्द या पद इत्यादि को छोड़ शेष के आगे अल्प विराम लाते हैं, परन्तु अन्तिम शब्द या पद के पहले प्रायः और, या इत्यादि समुच्चायक लाते हैं । जैसे—राम, श्याम और मोहन ने यह कार्य किया । धर्म और विद्या की शिक्षा प्राप्त कर उस समय के शिष्य जितेन्द्रिय,

सत्यवादी, परोपकारी, दयालु और विवेकी हो जाते थे। उनका यहाँ रहना, लोगों से प्रेमपूर्वक मिलना, बड़ों का आदर करना और सीधी-सादी चाल सबों को पसन्द है। यदि आप अपने पुत्र के पढ़ाने का समुचित प्रबन्ध न करेंगे तो वह आलसी बन जायगा, उसका समय व्यर्थ जायगा, उसकी उन्नति के स्थान में अवनति होगी और वह समाज में मूर्ख गिना जायगा। प्रायः इस बात को सभी जानते हैं कि माता, पिता, गुरु आदि बड़े सभी पूज्य हैं।

२. जहाँ अर्थ में बाधा पड़े वहाँ भी अल्पविराम [,] दिया जाता है। जैसे—राजा स्वदेशी हो या विदेशी, राजा का प्रधान कर्त्तव्य है कि प्रजा में विद्या का प्रचार करे।

३. सम्बोधन के परे अल्पविराम (,) लाते हैं और यदि सम्बोधन-पद वाक्य के बीच में पड़ जाय तो उसके पहले भी। जैसे—बालको, परिश्रम करो। सुनो, बच्चो, जंगल में मत जाओ। (आगे विस्मयादिबोधक चिह्न देखो)।

४. यदि दो परस्पर अन्वित पदों को पद, वाक्यांश या खण्ड-वाक्य, बीच में आकर अलग-अलग कर दे तो उनके दोनों ओर अल्प-विराम (,) लाते हैं। जैसे—राम, जिसे सब जानते हैं, बड़ा नेक है। मेरी, आपके परिवार से, कौन बात छिपी है ? मेरा घर, आपकी दुहाई, कभी नहीं बिक सकता। वह ग्रन्थ, जो खरीदा है, जरा ले तो आओ। उन दिन, जब मैं पुस्तक लिख रहा था, आपसे भेंट हुई। (आगे निर्देशक चिह्न का तीसरा नियम देखो।)

५. नित्य सम्बन्धी शब्दों के प्रत्येक जोड़े का दूसरा शब्द लुप्त रहे तो वहाँ अल्पविराम (,) लाते हैं। जैसे—यदि आप आवें, मेरे लिये कुछ फल लाइयेगा। वह जहाँ जाता है, बैठ रहता है। यदि पढ़ना है, पढ़ो, नहीं तो घर जाओ।

६. 'वह, यह' जब लुप्त हों तब अल्पविराम (,) लाते हैं। जैसे—कब छुट्टी मिलेगी, मैं कह नहीं सकता। राम कब आवेगा, हम नहीं जानते। मनुष्य जो कुछ करते हैं, सुख के लिये करते हैं।

७. किसीकी उक्ति के पहले अल्पविराम (,) लाते हैं। जैसे राम ने कहा, "मैं परसों जाऊँगा।" ऐसी जगह अल्पविराम के बदले निर्देशक चिह्न (—) भी लगाते हैं।

८. यदि कोई खण्डवाक्य 'वरन्, पर, परन्तु, किन्तु, लेकिन, क्योंकि, इसलिये, तोभी, कारण' या इसी प्रकार के किसी अन्य शब्द या संस्कार से आरम्भ हो तो उसके पहले अल्पविराम (,) लाते हैं। जैसे—माँ उसे व्याकरण का नियम नहीं समझाती, वरन् शुद्ध बात बता देती है। पहले-पहल केवल बोली हुई भाषा का प्रचार था, पर पीछे से विचारों को स्थायी रूप देने के लिये कई प्रकार की लिपियाँ निकाली गईं। लिखित प्राकृत का विकास रुक गया, परन्तु कथित प्राकृत विकसित अर्थात् परिवर्तित होती गई। उसका यह रूप नया नहीं है, किन्तु उतना ही पुराना है जितने कि उसके दूसरे रूप। खाने में तो अच्छा है, लेकिन वह स्वास्थ्य बिगाड़ देता है। आजकल इस काव्य की मूलभाषा का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लेखकों और गवैयों ने इसे अपनी-अपनी बोलियों का रूप दे दिया है। वह बीमार है, इसलिये नहीं आया। स्वच्छ वायु आवश्यक है, कारण मैली वायु से रोग होते हैं। दिखलाई नहीं देते, तोभी ये पानी में अवश्य मिले रहते हैं। यह रुपया मेरा न था, मेरे मालिक का था। राम रो रहा है, कोई नहीं सुनता। आप दौड़-धूप न करें, कुछ फल नहीं मिलेगा (अर्द्धविराम का नोट देखो)।

९. वाक्य के आरम्भ में आनेवाले पद या वाक्यांश में पूर्व के किसी विषय के सम्बन्ध की कुछ भी गन्ध हो तो उसके आगे अल्पविराम (,) लाते हैं। जैसे—हाँ, एक-एक गुण का अभ्यास करके लोग गुणों से अपने को अलंकृत कर सकते हैं। बस, एक सत्य का आश्रय ग्रहण करने से और जितने गुण हैं, आप-से-आप आकर तुम्हारा हाथ पकड़ेंगे। प्रथम, नागर अपभ्रंश और द्वितीय, अर्द्ध मागधी। अन्यथा, प्राकृत भाषा का व्यवहार भारत में उस समय से चला होगा।

१०. अन्य स्थानों में भी ठहराव के कारण यदि अल्पविराम (,) देने की आवश्यकता हो तो दे सकते हैं। जैसे—क, थ, म, इत्यादि। बालक, वर्ष २७, बारहवाँ अङ्क (पौष, २०१०), प्रकाशक, पुस्तक-भंडार, बाँकीपुर, पटना।

(;) अर्द्धविराम (Semicolon)

जहाँ यह चिह्न (;) रहे वहाँ अल्पविराम की अपेक्षा कुछ अधिक काल तक ठहरना चाहिये।

नियम—जहाँ अल्पविराम की अपेक्षा कुछ अधिक काल तक ठहरने की आवश्यकता हो तथा एक वाक्य या वाक्यांश के साथ दूसरे का, दूर का सम्बन्ध बताना हो, वहाँ अर्द्ध-विराम लाते हैं। जैसे—व्यवसाय बन्द है; वाणिज्य बन्द है; कृषिकार्य बन्द है; चारों ओर हाहाकार-रव उत्थित हो रहा है। पृष्ठ संख्या ३००; आकार मझोला; छपाई और कागज उत्तम; जिल्द बँधी हुई; मूल्य ३) रुपया। वे हमारी चिट्ठी साफ हजम कर गये; डकार तक न ली।

नोट—(१) बहुत-से विद्वान् अर्द्धविराम की जगह अल्पविराम या पूर्ण-विराम ही से काम लेते हैं। हमने भी ऐसा ही किया है।

(२) कोई-कोई 'पर, परन्तु, इसलिये, किन्तु, क्योंकि, लेकिन, तो भी, कारण' इत्यादि के पहले भी अर्द्धविराम लाते हैं (देखो, अल्पविराम का आठवाँ नियम।)

(:) अपूर्णविराम (Colon)

जहाँ यह (:) चिह्न रहे वहाँ अर्द्धविराम की अपेक्षा कुछ अधिक काल तक ठहरना चाहिये।

नोट—अकेले अपूर्णविराम से विसर्ग का भ्रम होता है, इसलिये उसके आगे एक छोटी लकीर लगाकर इस (:—) रूप में लिखते हैं।

नियम—किसी वक्तव्य को कुछ अलग करके बताना या गिनाना हो तो उसके पहले अपूर्णविराम (:—) लाते हैं। ऐसी जगह केवल एक लकीर (—) से भी काम चलाते हैं।

जैसे—नीचे के वाक्यों को शुद्ध करो :—

नीचे के वाक्यों को शुद्ध करो—

नोट—आगे निर्देशक चिह्न देखो।

(।) पूर्णविराम (Full stop)

जहाँ यह चिह्न (।) रहे वहाँ भलीभाँति ठहरना चाहिये।

नियम—प्रत्येक वाक्य की समाप्ति पर पूर्णविराम (।) आता है। जैसे—हिन्दी हमारी मातृभाषा है।

नोट—(१) परिभाषा का सूत्र लिखकर उदाहरण दिखाने में 'जैसे,

इत्यादि' शब्दों के पहले अर्द्धविराम देने से वाक्य की जटिलता दूर हो जाती है। अन्यथा, उनके पहले पूर्णविराम भी ला सकते हैं।

(२) नीचे के दो चिह्न (? !) पूर्णविराम के अपवाद में हैं।

(?) प्रश्नबोधक (Note of Interrogation)

प्रश्नबोधक वाक्य के आगे पूर्णविराम के बदले यह (?) चिह्न आता है। जैसे—तुम कहाँ जाते हो ?

नोट—जिस शब्द के शुद्ध या उचित प्रयोग होने में लेखक को सन्देह होता है उसके आगे कोष्ठ में प्रश्न का चिह्न लिखा जाता है। जैसे—सच बोलना कितना आवश्यकीय (?) है, सच बोलने में कितनी बड़ी वीरता है—मैं सब कुछ दिखा चुका।

(!) विस्मयादिबोधक (Note of Admiration)

नियम—(१) विस्मय, शोक, करुणा आदि चित्तवृत्तियाँ जतानेवाले शब्द, पद, वाक्यांश या वाक्य के आगे विस्मयादिबोधक चिह्न (!) लाते हैं। जैसे—हाय ! ऐसा अन्धेर ! यदि मैं परिश्रम करता तो मैं भी न आज गुलछर्रे उड़ाता ! "अहा ! ओहो !! हुर्रे हुर्रे ! ! !...उड़ गये धुर्रे !"

(२) यदि किसी वाक्य में प्रश्न की झलक रहने पर भी उत्तर की आकांक्षा न हो तो उसके आगे भी विस्मयादिबोधक चिह्न (!) लाते हैं। जैसे—बुढ़ापे पर दया मेरे जो करते, तो वन की ओर क्यों तुम पैर धरते !

(३) जिस संबोधन से विस्मय, शोक, आनन्द इत्यादि भाव प्रकाशित करें उसके आगे विस्मयादिबोधक चिह्न (!) लाते हैं। जैसे—छिपे हो कौन से पर्दे में बेटा ! प्यारे ! अब फिर कब दर्शन होंगे ? भाग्य ! तेरी भी क्या प्रशंसा करें।

नोट—जो शब्द, पद, वाक्यांश या वाक्य किसी असम्भव बात का सूचक हो और उसपर विस्मय भी प्रकाश किया जाय तो उसके आगे कोष्ठ में यह चिह्न (!) लाते हैं। जैसे—त्रिकालदर्शी (!) लेडवीटर।

(—) निर्देशक (Dash)

नियम—(१) जहाँ वाक्य एकाएक टूट गया हो, जहाँ कोई पद या वाक्यांश किसी कारण से लिखने योग्य न हो और जहाँ किसी पद या

वाक्य का, भूल सुधारने या उसपर अधिक प्रकाश डालने के लिये, विवरण करना हो; वहाँ निर्देशक चिह्न लाते हैं। जैसे—जिनके ऐश्वर्य का मद—हाँ, हाँ, मैं सुन रहा हूँ, मुझी को कहते हो* ! गत परीक्षा में तुमने—की थी, यह बात सब जान गये। तुम्हारी बात—बात नहीं करामात है।

(२) विषय-विभाग सम्बन्धी प्रत्येक शीर्षक के आगे तथा वार्त्तालापविषयक लेखों में वक्ता के आगे निर्देशक चिह्न (—) लगाते हैं। जैसे—राजभक्ति के लाभ—राजा की भक्ति से...... । शकुन्तला—"मैं बड़ों का अपराध न लूँगी"

(३) यदि वाक्य के बीच में कोई स्वतन्त्र पद, वाक्यांश या वाक्य आ जाय तो इसके दोनों ओर निर्देशक चिह्न (—) लाते हैं। जैसे—मेरे पति ने—परमात्मा उनकी रक्षा करे !—विदेशयात्रा की है।'

(४) कोष्ठ और विराम के बदले भी निर्देशक चिह्न (—) कभी-कभी लाते हैं। जैसे—अपना जीवन—अपनी जिन्दगी—भली-भाँति सार्थक करो।

तेरी उल्फत की चिनगारी ने, जालिम, एक जहाँ फूँका—
इधर चमकी—उधर सुलगी—यहाँ फूँका—वहाँ फूँका—

(५) यदि बोलने में ठिठकना पड़े तो निर्देशक चिह्न लाते हैं। जैसे—'हमें चिन्ता है—कि—आपके दर्शन नहीं होंगे।'

नोट—अल्पविराम का सातवाँ नियम देखो।

२. अन्य चिह्न (Other Signs)

[{ ( ) }] कोष्ठ-चिह्न (Brackets)

नियम—(१) किसी पद, वाक्यांश या वाक्य को, अथवा किसी अन्य वाक्य वाक्यांश या पद को कोष्ठ चिह्नों के भीतर रखते हैं। जैसे—बातों का क्रम (सिलसिला) ठीक है। सरस्वती (प्रयाग) के पाँचवें अङ्क में छपा था।

---

* वक्ता के मुँह से 'जिनको ऐश्वर्य का मद' यह वाक्यांश सुनते ही बात काटकर श्रोता ने कहा—हाँ, हाँ, मैं सुन रहा हूँ, मुझी को कहते हो।'

(२) यदि कई पद, वाक्यांश या वाक्य ऊपर-नीचे लिखकर घेरे जायँ तो इन [{ }] चिह्नों से घेरते हैं।

नोट—कोष्ठ के चिह्न-गणित में अधिकता से आते हैं।

" " उद्धरण चिह्न (Inverted comma)

नियम—दूसरे की जिस उक्ति को अविकल उद्धृत करना हो या लेख के जिस छोटे वा बड़े अंश पर विशेष ध्यान की आवश्यकता हो उसे इन " " के भीतर रखते हैं। जैसे—शिक्षक ने कहा—"बालको, ध्यानपूर्वक सुनो।" "ने चिह्न के प्रयोग" भली-भाँति सीखो।

नोट—यदि दूसरे की उक्ति के भीतर तीसरे की उक्ति आ जाय तो उसे एकहरे उद्धरण चिह्नों (' ') के भीतर रखते हैं। जैसे—गुसाँईजी ने लिखा है—"रामजी ने ब्राह्मण को प्रणाम किया। उन्होंने 'दीर्घजीवी हो' कहकर आशीर्वाद दिया।"

(-) योजक (Hyphen)

नियम—(१) लिखते समय यदि कोई शब्द पंक्ति के अन्त में समूचा न लिखा जा सके तो उसके एक वा अधिक खंडों को उस पंक्ति में लिखकर योजक चिह्न (—) लगाते हैं, और शेष दूसरी पंक्ति के आरम्भ में लिखते हैं। जैसे—

दिनभर में पेटभर भोजन भी कठिन- ता से मिलता था।

नोट—उच्चारण के अनुसार प्रत्येक शब्द में एक, दो या अधिक खंड हो सकते हैं। जैसे—श्री-मान्, कला-धर। यदि ये दोनों शब्द बाँटकर लिखे जायँ तो ठीक ऊपर लिखे अनुसार बाँटना चाहिये, उन्हें श्रीमा-न् और 'कलाध-र' में बाँटना उच्चारणविरुद्ध होगा। पुस्तकों में प्रेसों की असावधानी से शब्दों के खंड प्रायः ठीक-ठीक अलगाये नहीं रहते। प्रेसवालों को इस भूल पर ध्यान देना चाहिये।

२. आजकल दो-चार को छोड़ शेष सभी विद्वान् 'न, से, का, में' इत्यादि

चिह्नों को शब्दों से अलग * ही लिखते हैं। इसी परिपाटी के अनुसार हमने भी इन्हें अलग ही लिखा है, परन्तु जो साथ लिखनेवाले हैं वे ऊपर लिखी अवस्था में बिलगाने के समय योजक चिह्न लगाते हैं।

(पीछे कारकान्त प्रत्यय देखो।)

३. आजकल कोई-कोई विद्वान् समस्त शब्दों के मूल खंडों को अलग-अलग लिखने लगे हैं। ऐसी अवस्था में योजक चिह्नों से काम लेते हैं। जैसे—

जयति मनुज-कुल दया-द्रवित, दुखियन-दुख-भंजन।

जय भारत-निज प्रजा-प्रणय-भाजन, जन-रंजन। —(पंडित श्रीधरपाठक)

(————) (······) (× × ×) इत्यादि।

वर्जन या लोपचिह्न—

नियम—(१) लेख में जब एक या अधिक वाक्य, शब्द या अक्षर अप्रकाशित रखना चाहें तब वर्जन चिह्न लाते हैं। जैसे—उसने—कहकर गाली दीं।

(२) यदि किसी वर्णन का कुछ अंश लिखने से सम्पूर्ण का बोध हो जाय तो शेष के लिये वर्जन चिह्न लाते हैं।

जैसे—आगे चले बहुरि······परबत नियराई।

(० , ·) लाघव चिह्न—

नियम—जो शब्द बहुत प्रसिद्ध हो या जिसे बार-बार लिखना पड़े उसका प्रायः पहला अक्षर लिखते हैं, और आगे लाघव चिह्न लाते हैं। जैसे—तारीख के लिये 'ता०', मिति के लिये 'मि०' इत्यादि (पीछे 'लाघव का पाठ' देखो।)

(‸) त्रुटिचिह्न—

नियम—यदि लेख के बीच में कोई अक्षर, शब्द, पद, वाक्यांश या वाक्य लिखने से छूट जाय तो वहाँ त्रुटिचिह्न लगाकर छूटे हुए अंश को किनारे पर लिख देते हैं। जैसे—

बाजार से आटा‸ और चीनी लाना। ‸, दाल

---

* ने, को, से, में इत्यादि चिह्नों को अलग लिखना चाहिये, या साथ? इस प्रश्न के उत्तरके लिये पं० श्रीअम्बिकादत्त व्यास कृत **'विभक्ति-विभाग'** और पं० श्रीगोविन्दनारायण मिश्र कृत **'विभक्ति विचार'** नाम की पुस्तकें पढ़ो। (संक्षिप्त वर्णन पीछे दिया गया है।)

हस्त-चिह्न—

नियम—किसी प्रधान बात को लक्षित करना हो तो हस्तचिह्न लगाते हैं। जैसे—

☞ ने चिह्न पर ध्यान रक्खो।

*, †, ‡, §, £, (इत्यादि तारक)—

नियम—किसी अक्षर, शब्द, पद, वाक्यांश या वाक्य के सम्बन्ध में कुछ अन्यत्र लिखना हो तो उसके आगे तारक चिह्न लगाते हैं और पृष्ठ के अधोभाग में रेखा के नीचे फिर वैसा ही चिह्न लगाकर तत्सम्बन्धी बातें लिखते हैं (उदाहरण इसी पुस्तक में अन्यत्र देखो।)

३. अनुच्छेद (Paragraph.)

जब कई वाक्यों में किसी विषय का एक भाग वा खंड समाप्त होता है और उसपर लेखक को कुछ कहना शेष नहीं रहता तब उसका विच्छेद किया जाता है और दूसरा खंड नई पंक्ति से आरम्भ होता है।

नोट—(१) लघुता और गुरुता के विचार से एक भाव कई खंडों में लिखा जा सकता है, परन्तु एक खंड में कई भावों का समावेश करना अनुचित है।

(२) कथोपकथन (Dialogue)—परस्पर वार्त्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। इसमें प्रत्येक की उक्ति को अलग-अलग एक-एक अनुच्छेद में रखना चाहिये।

(३) यदि रचना के बीच-बीच में कहा, बोला इत्यादि क्रियाएँ आवें तो समूचे कथोपकथन को एक ही अनुच्छेद में रखना उचित है।

अभ्यास (Exercise)

नीचे जहाँ-जहाँ उचित हो, विरामादि चिह्नों को लगाओ और अनुच्छेदों को अलग करो—

उनकी मुद्रा भी देखने ही योग्य थी वह पद्य इस भाँति पढ़ते कि आप आशय का रूप बन जाते थे और लोग भी नकल उतारते थे पर वह बात कहाँ वह पढ़ने में अङ्गों से भी काम लेते थे जैसे प्रदीप का विषय बाँधते तो पढ़ते समय एक हाथ से प्रदीप और दूसरे हाथ की ओर वहीं फानूस बनाकर बताते

क्रोध या अप्रसन्नता का विषय होता तो आप भी त्योरी चढ़ाकर वहीं बिगड़ जाते कहकहों के शब्द आते हैं देखना कवियों का झुंड आन पहुँचा इनका आना गजब का आना है ये ऐसे खुले चौड़े होंगे कि इनकी ढिठाई गम्भीरता से जरा न छिपेगी इतना हँसे और हँसायेंगे कि मुँह थक जायँगे पर न उन्नति के डेग आगे बढ़ायँगे न अगली अटारियों को ऊँचा उठायँगे उन्हीं कोठों पर कूदते-फाँदते फिरेंगे इन भाग्यवानों को पठंगा भी अच्छा मिलेगा ऐसे ग्राहक हाथ आयँगे कि एक एक फूल इनका केसर की क्यारी के मोल बिकेगा देवबाला क्या मैं तुमको भूल सकता हूँ पर क्या करूँ आज गुरुजी ने छुट्टी सूरज डूबने पर दी इसीसे यहाँ आने में कुछ अबेर हो गई क्या मैं थोड़ी देर और न आता तो तू यहाँ से चली जाती हाँ भाई क्या करती अँधेरा होने पर यहाँ ठहर तो नहीं सकती माँ जो कुढ़ने लगती है देवनन्दन तो फिर हमसे तुमसे आज भेंट कैसे होती दे० बा० कैसे होती इसी से तो कहती हूँ तुम जैसे पहले मेरे घर आया करते थे उसी भाँति अब भी आया करो माँ भी एक दिन कहती थी बहुत दिन हुए देवनन्दन को मैंने नहीं देखा दे० न० तुम्हारे घर आने में मुझे कौन अटक है पर देखो ये ही दिन पढ़ने लिखने के हैं जो इधर उधर घूम फिरकर इनको बिता दूँगा तो फिर पढ़ना लिखना कैसे आवेगा देवबाला ने रूठकर कहा क्या हमारे घर आना इधर-उधर घूमना है हमारे घर घड़ी आध घड़ी के लिये आओगे तो क्या इसीमें तुम्हारा पढ़ना लिखना न हो सकेगा देवनन्दन ने हँसकर कहा अच्छा अब मैं फिर तुम्हारे घर कभी-कभी आया करूँगा।

ग्यारहवाँ अध्याय

भाषा-व्यवहार

लाघव (Abbreviation)

१. कोई आशय जितने ही थोड़े पदों से प्रकाशित किया जाय उतना ही वह उत्कृष्ट समझा जाता है। जैसे—'हम तो यहाँ अब बैठ गये, अब हम यहाँ से उठनेवाले नहीं। जो लोग उठा देने से उठ जाते हैं वे हमारे सदृश नहीं।' लाघव के विचार से इसकी जगह यों बोलना चाहिये—'हम जहाँ बैठ गये, बैठ गये, उठनेवाले कोई और होंगे।'

लाघव करने में इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि अर्थ भ्रष्ट न होने पावे।

निश्चय, आवश्यकता आदि के कारण किसी विभाग को जोर देकर कहना हो तो वहाँ लाघव का विचार नहीं किया जाता। जैसे—'सच बोलना कितना अच्छा है, सच बोलना कितना आवश्यक है, सच बोलने में कितनी बड़ी वीरता है—मैं सब कुछ दिखा चुका। उस लड़के में कौन-सा दोष नहीं है? झूठ वह बोलता है, चोरी वह करता है, जूआ वह खेलता है।'

गम दिया, रंज दिया, दाग़ दिया, जहर दिया—
खूब बीमारे * मुहब्बत की दवा तुमने तो की।

३. (क) जो शब्द बहुत प्रसिद्ध हो या जिसे बार-बार लिखना पड़े उसका अक्सर पहला अक्षर लिखते हैं। जैसे—सन् के लिये स०, तारीख के लिये ता०, मिति के लिये मि०, नम्बर के लिये नं०। नाटक आदि में राम, कृष्ण, शकुन्तला या और कोई नाम बार-बार न लिखकर रा०, कृ०, श० आदि लिखते हैं।

(ख) पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, इत्यादि क्रम से '१ ला, २रा, ३रा, ४था, ५वाँ, ६ठा आदि से लिखते हैं।

(ग) किसी शब्द को दो बार लिखना हो तो अक्सर उसे एक बार लिखकर उसके परे (२) अंक लिख देते हैं, पर यह चाल अच्छी नहीं †।

—पं केशवरामभट्ट।

रोजमर्रा (Common use)

१. हिन्दी जिनकी मातृभाषा है वे अपनी नित्य की बोलचाल में वाक्य-रचना जिस रीति से करते हैं, उसे रोजमर्रा कहते हैं। जैसे—'कलकत्ते से पेशावर तक सात-आठ कोस पर पक्की सराय और एक कोस पर चबूतरा बना हुआ था।' वह वाक्य रोजमर्रे के अनुसार नहीं है। इसकी जगह यों होना चाहिये—'कलकत्ते से पेशावर तक सात-सात आठ-आठ कोस पर एक-एक पक्की सराय और कोस-कोस भर पर एक-एक चबूतरा बना हुआ था।'

---

* बीमारे मुहब्बत—यह रीति उर्दू की है, हिन्दी की नहीं।

† उस वर्ग के अच्छे २ लड़कों को पुस्तकें दी गईं। ऊपर की रीति से इस वाक्य के आगे दो अर्थ होते हैं। (क) अच्छे दो लड़कों को और (ख) अच्छे-अच्छे लड़कों को।

२. बोलने और लिखने में यथा-सम्भव रोजमर्रे का विचार रखना बहुत ही आवश्यक है। बिना इसके लिखना या बोलना कौड़ी काम का नहीं।

३. रोजमर्रे के प्रयोग का ऐसा कुछ नियम नहीं बन सकता। अच्छे-अच्छे लेखकों के लेख बराबर ध्यान देकर पढ़ना और अच्छे-अच्छे बोलनेवालों की बातचीत ध्यान देकर सुनना—सिवाय इसके कदाचित् और कोई उपाय नहीं।

४. बोल-चाल का रोजमर्रा नया गढ़ा नहीं जा सकता। जैसे—पाँच-सात' 'सात-आठ' या 'आठ-सात' पर अनुमान करके 'छ-आठ' 'आठ-छ' या 'सात-नौ' बोला जाय तो उसे रोजमर्रा नहीं कहेंगे। क्योंकि भाषा में कभी ऐसा नहीं बोलते। —पं० केशवरामभट्ट

लेखक को उचित है कि वाक्यों में एक ही ढंग के शब्द प्रयोग करें। उच्च भाषा के शब्दों के साथ साधारण भाषा के शब्द रहने से वाक्य मधुर नहीं हो सकते। यदि अन्यान्य भाषाओं के शब्दों की आवश्यकता हो तो उन्हीं को लाना चाहिये जो प्रयोग में भली-भाँति आ गये हों। वाक्यों में सन्दिग्ध शब्दों को लाना उचित नहीं। अतः, "उसने मेरा हस्त पकड़ा। मैंने राम का हाथ धारण किया। यह काव्य उच्च दर्जे का है। अभी इक्जामिनेशन के फिफ्टीन डेज हैं। शायद मॉर्निंग ट्रेन से टुमॉरो स्टार्ट हो जाऊँ। इस सोसाइटी में पब्लिक का क्या ओपिनियन है?" इत्यादि वाक्य हिन्दी के लिये योग्य नहीं।

अध्याहार

वाक्य-रचना में बहुधा ऐसे शब्दों को छोड़ देते हैं, जिनके न रहते हुए भी अर्थ समझने में कोई बाधा नहीं हो। इस प्रयोग का नाम अध्याहार है। जैसे—"तुम अपनी ही [ ] ओटने लगते हो"—इस वाक्य में 'अपनी ही' के बाद 'बात' शब्द गुप्त है।

अध्याहार से मुख्य दो लाभ हैं—

(१) थोड़े ही में वक्ता का आशय प्रकट हो जाता है।

(२) रचना मुहावरेदार हो जाती है।

अध्याहार तीन तरह के होते हैं—

(१) सम्बद्ध—जिसमें अध्याहार किया हुआ शब्द वा शब्दसमूह पहले

आ चुका रहता है। जैसे—**मैं धन का उतना आदर नहीं करता, जितना विद्या का [आदर करता हूँ]।**

(२) **मुक्त**—जिसमें अध्याहार किया हुआ शब्द पहले नहीं आया रहता है। जैसे—"**मैं तुम्हारी [ ] एक नहीं सुनूँगा।**"

(३) **विवक्षित**—जिसमें अध्याहार किया हुआ शब्द वा शब्दसमूह वक्ता के आकार-प्रकार से अनुमान-गम्य हो जाता है। जैसे—**आप तो यहाँ सैर कर रहे हैं मगर घर पर [ ] ?**"

सम्बद्ध अध्याहार के प्रयोग

(१) जब अनेक कर्त्ताओं की एक समापिका क्रिया रहे, तब उसे सब कर्त्ताओं के साथ नहीं जोड़कर सिर्फ अन्तिम कर्त्ता के साथ जोड़ते हैं। जैसे—

"**व्यायाम शरीर को सबल, मस्तिष्क को पुष्ट और हृदय को प्रफुल्ल बनाता है।**"

(२) संयुक्त वाक्य के पूर्वार्द्ध में यदि 'ने' चिह्नसहित कर्त्ता आवे और उत्तरार्द्ध में 'ने' चिह्नरहित तो पिछले कर्त्ता की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

जैसे—"**उसने सांसारिक विषयों को छोड़ दिया और [ ] विरक्त हो ईश्वर-भजन करने लगा।**"

(३) संयुक्त वाक्य के पूर्वार्द्ध में यदि 'ने' चिह्न रहित कर्त्ता आवे और उत्तरार्द्ध में 'ने' चिह्न सहित, तो पिछला कर्त्ता देने की कोई आवश्यकता नहीं। जैसे—"**एकलव्य वन में चला गया और वहाँ [ ] धनुर्विद्या का अभ्यास प्रारम्भ किया।**"

(४) उपमावाचक वाक्यों में उपमान के विधेयार्थक पद प्रायः लुप्त रहते हैं। जैसे—**वह इतना सीधा है जैसे गौ [ ]।**

(५) मिश्र वाक्य के उत्तरार्द्ध में प्रायः कई पदों का अध्याहार रहता है। जैसे—"**यदि आपको सफलता मिलेगी तो मुझको भी [ ]।**"

(६) प्रश्नवाचक वाक्य के उत्तर में भी अध्याहार से काम लिया जाता है। जैसे—**आप क्या खाइयेगा ? "रोटी।" आप क्या कर रहे हैं ? "पढ़ रहे हैं।"**

मुक्त अध्याहार के प्रयोग

(१) कहना, सुनना और देखना क्रियाओं के सामान्य वर्त्तमान और आसन्नभूत में बहुधा कर्त्ता का अध्याहार होता है। जैसे—

कहते हैं कि चन्द्रलोक में बड़े-बड़े पहाड़ हैं।

सुनते हैं, वह लड़ाई में मारा गया।

देखते हैं, देश में जागृति फैल रही है।

कहा है, बूढ़ों की बात माननी चाहिये।

सुना है, तुमने कोई पुस्तक लिखी है।

नोट—उक्त क्रियाओं के भाववाच्य में भी कर्त्ता का अध्याहार रहता है। जैसे—"देखा गया है कि खास-खास पौधों पर जहर का असर पड़ जाता है।"

(२) 'जानना' क्रिया के सम्भाव्य भविष्यत् में (यदि अनिश्चय का बोध हो तो) कर्त्ता का अध्याहार हो जाता है। जैसे—"[ ] **न जाने वह कहाँ चला गया।**"

(३) 'काटना, बीतना, गुजरना' आदि क्रियाओं के साथ यदि समय अथवा अवस्थासूचक कर्त्ता हो तो बहुधा उसका लोप कर दिया जाता है। जैसे—"**न जाने, मुझपर कैसी** [ ] बीतती है। **कहो यार, कैसी** [ ] कटती **है**?"

(४) क्रिया-विशेषण और समुच्चयबोधक अव्ययों के साथ यदि होना, बनना आदि क्रियाएँ हों तो उनका कर्त्ता बहुधा लुप्त रहता है। जैसे—"**जहाँ तक** [ ] **हो सके परिश्रम से मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। जैसे बने** [ ] **आप इस काम को पूरा कीजिये।**"

(५) विधि-क्रिया में कर्त्ता बहुधा लुप्त रहता है। जैसे—'**जरा** [ ] **इधर तो आइये।** [ ] **कुछ कहिये भी तो सही।**"

(६) मिश्रवाक्य में सामान्यतः 'कि' शब्द छोड़ देते हैं और बदले में (,) चिह्न लगाते हैं। जैसे—**तुम जानते हो,** [ ] **पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है।**"

(६) निषेधवाचक विधेय में प्रायः सहायक क्रिया 'होना' का सामान्य वर्त्तमानकालिक रूप लुप्त रहा करता है। जैसे—**मैं अँगरेजी नहीं जानता** [ ] **वह झूठ नहीं बोलता** [ ]।

(८) लोकोक्ति में तथा उद्‌गार में 'होना' क्रिया का वर्त्तमानकालिक रूप प्रायः लुप्त कर देते हैं । जैसे—घर का योगी जोगड़ा [ ] । भारत माता की जाय [ ] ।

(९) नीचे मुक्त अध्याहार के कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं—

आजकल तुम्हारी उनकी [ ] कैसी पटती है ?

तुम्हारी [ ] चली बनी है ।

मेरी उनकी [ ] निभ नहीं सकती ।

उसकी [ ] क्या पूछनी है ।

विवक्षित

वक्ता यदि संकोचवश अथवा किसी करण से आगे का शब्द न कहे और वह श्रोता की समझ में आ जाय तो उसे विवक्षित अध्याहार कहते हैं । इसके प्रयोग के लिये कोई खास नियम नहीं दिया जा सकता ।

नोट—ऊपर जो-जो नियम दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त और भी कितने ही स्थलों पर अध्याहार का प्रयोग किया जाता है, जिनका प्रसंग स्थान-स्थान पर व्याकरण में मिल सकता है । ऊपर विषय का कुछ दिग्दर्शन-मात्र कराया गया है ।

वाग्धारा या मुहावरा (Idiom)

१. कोई वाक्य या वाक्यांश अपना सामान्य अर्थ न जताकर कुछ और ही विलक्षण अर्थ जताये तो उसे 'वाग्धारा' कहते हैं । जैसे—रणजीत सिंह ने पठानों के **'दाँत खट्टे'** कर दिये । घर में बैठे हुए यों **'पाँव निकाले'** तुमने । इतना कहते ही वह **'पानी-पानी हो गया'** । उसे अच्छे से पाला पड़ा' है । इस बात के सुनते ही उसके **पेट में घोड़ा कूदने लगा** ।'

''रोजमर्रे की पाबन्दी जहाँ तक सम्भव हो लिखने और बोलने में जरूरी समझी गई है । यहाँ तक कि वाक्य में जितनी रोजमर्रे की पाबन्दी कम होगी उतना ही उसमें लालित्य कम होगा, परन्तु मुहावरे के लिये यह बात नहीं है । मुहावरा जो उत्कृष्ट रीति से बाँधा जाय तो निस्सन्देह निकृष्ट आशय को उत्कृष्ट और उत्कृष्ट को उत्कृष्टतर कर देता है, पर हर जगह मुहावरे का बाँधना ऐसा कुछ आवश्यक नहीं । बिना मुहावरे के भी ओजस्वी वाक्य हो सकते हैं । मुहावरा मानो मनुष्य के शरीर में कोई सुन्दर अंग है और रोजमर्रे को ऐसा

जानना चाहिये जैसे अंगों का तारतम्य मनुष्य के शरीर में। लोग साधारणतः उसी लेख को बहुत पसन्द करते हैं जो रोजमर्रे पर ध्यान देकर लिखा गया हो। और, जो रोजमर्रे के साथ मुहावरे की भी चाशनी हो तो वह उनको और भी अधिक स्वाद देता है।"

—पं० केशवरामभट्ट

अभ्यास (Exercise)

नीचे लिखे वाक्यों को लाघव, रोजमर्रे और मुहावरे पर ध्यान रखकर ठीक करो—

वे इतना हँसेंगे और इतना हँसायेंगे कि सबके मुँह थक जायँगे, पर वे न उन्नति के डेगों को आगे की ओर बढ़ायँगे और न वे आगेवाली अटारियों को ऊँचे उठायँगे। मेरे पास चार करोड़, चौरासी लाख, सतावन हजार, पाँच सौ बयालिस रुपये, चौदह आने और तीन पैसे निकले। गर्दा उड़-उड़ कर पड़ जाने से सड़क पर के मकान ठीक नहीं। कई दिनों के बाद आज दो चावल भात खाया है। राम ने मुझे चरण से सिर तक देखा। आठ बारह दिनों में हम शरीर को आपके यहाँ लावेंगे। उसने आपके मन को सैंतालीसों बार कहा, परन्तु आपके मन ने उस काम में ध्यान नहीं दिया। राइस का मार्केट भाव साढ़े फाइव सेर्स है। इस बात को कान में लेते ही उसकी अँतड़ी में गवा कूदने लगा। इतना कहते ही वह लाज से दूध-दूध हो गया। बादल की आड़ में सूर्य बैठा था। ऐसे-ऐसे गाँहक सब हाथ में मिल जायँगे कि उनका एक-एक फूल केसर की क्यारी के मोल बिक जाया करेगा।

कुछ मुहावरेदार शब्द, वाक्यांश इत्यादि

(Some Idiomatic words, Phrases, etc.)

१. संज्ञा

अड़ोसपड़ोस, अदलबदल, आगापीछा, आन्दोलन, उलछकूद, कथोपकथन, काट-छाँट, कानाफूसी, कूपमण्डूक, कोहराम, खरीदबिक्री, गुलगपाड़ा, गोलमाल, चमकदमक, चलताहिसाब, चिन्तास्रोत, छक्कापंजा, छलप्रपंच, छलबल, छान-बीन, जोड़तोड़, तीनतेरह, दानापानी, धर्म्माधर्म, धूमधाम, नीचऊँच, नोकझोंक, पर्वतश्रेणी, पुष्पाञ्जलि, फलाफल, मरुभूमि, मतामत, मारपीट, मुक्तकण्ठ, मेला-ठेला, लगावबझाव, लड़काबाला, शैवसम्प्रदाय, षड्यन्त्र, सभासमाज, सर्वस्व-हरण, सुखदुःख, स्त्रीपुरुष, हस्तामलक, हाथपाँव, हिताहित, इत्यादि।

तीन दिन की छुट्टी, चार सेर का आटा, गाड़ी-गाड़ी लकड़ी, पाँचों टुक कपड़े, टिड्डियों का झुण्ड, एक जोड़ा बैल, अंगूरों का गुच्छा, लकड़ी का टाल, इत्यादि ।

प्रयोग—कोहराम मचा हुआ है । थोड़ी देर पीछे बन्दरों के गुल-गपाड़े की आवाज सुनाई पड़ी । उसने मुक्तकण्ठ से आपकी प्रशंसा की । उस खिलाड़ी के लिये 'हस्तामलक' हैं वे सभी । चार सेर का आटा बिका ।

२. सर्वनाम—

हमारे में, हमसब, हमलोग, तेरे में, आपसब, आपलोग, आपका, कोई-कोई, निज, स्वतः, स्वयं, एक, एक दूसरा, दोनों, जो कोई, जो-सो, जो-वह, जौन-जौन, जौन-तौन, तौन-तौन, कोई और, आप, कौन-कौन, कई-एक इत्यादि ।

आप-ही-आप, एक-आध, एक यह-तो-एक वह, कोई कुछ-तो-कोई कुछ, किसी-किसी, चाहे वह-चाहे यह, जो हो-सो हो, जिस-तिसका,कोई-न-कोई, किसी-न-किसीका, इत्यादि ।

प्रयोग—भगवान् जाने हमारे में यह सुमति कब आयगी । (प्रताप) किसी-किसी को यह रीति पसन्द नहीं । हम तुम्हें अपने निज के काम से भेजा चाहते हैं । हम आज अपने आपको भी हैं स्वयं भूले हुए । दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम । सभा में एक आता है तो एक जाता है (पीछे 'सर्वनाम-प्रयोग' देखो) ।

२. विशेषण—

अजरअमर, अदृष्टपूर्व, अधमुआ, अनगढ़ी, अनगिनत, अनपढ़, अनसूँघा, अनिर्वचनीय, अर्थलोलुप, अश्रुतपूर्व, असाधारण, असूर्यम्पश्या, अभूतपूर्व, अपरिमित, कलमुँहा, किंकर्तव्यविमूढ़, कृतकार्य, खुल्लमखुल्ला, घनघोर, घटाटोप, घमासान, चमत्कारिक, चित्तचोर, जीवनमृत, डाँवाडोल, धपाधप, नंगधड़ंग, न्यूनाधिक, पकापकाया, बनाबनाया, बहुसंख्यक, भग्नहृदय, भूतपूर्व, भोलाभाला, मनमाना, मूसलधार, लालबुझक्कड़, लोहूलुहान, लोमहर्षण, विलक्षण, शृङ्खलाबद्ध, सर्वसाधारण, सर्वसम्मत, साफसुथरा, सायंकालीन, स्वार्थशून्य, हस्तान्तरित, हृदयविदारक, इत्यादि ।

प्रयोग—असूर्यम्पश्या नारी । बीभत्स उपचार। अभूतपूर्व आनन्द। दुर्लंघ्य पर्वत । लोमहर्षण हत्याकांड । सायंकालीन शोभा । अपरिमित ऐश्वर्य, इत्यादि ।

४. क्रिया—

उ—वह एकदम उखड़ गया। तुम क्यों उबल पड़े ?

क—सूअर किकियाता है । मुर्गा कुरकुराती है। लड़के कनमनाते हैं। दाँत कटकटाता है । आसमान कड़कड़ा रहा है । नदी कलकल करके बहती है । आदमी कुड़कुड़ा रहा है । मोर कूकता है । पेट में कलछुल फिरने लगी । ख— पत्ते खड़खड़ाते हैं । खिलखिला कर हँस पड़ा। किवाड़ खटखटाता है। दाँत खट्टे हो गये। ग—बादल गड़गड़ा रहा है। गुस्से में गड़गड़ाने लगा । लड़की गिड़गिड़ा रही है । बाघ गुर्राने लगा। भौंरे गुंजार करते हैं । घ—गला घड़घड़ाता है । जी घिनघिनाता है। कबूतर घुटकता है।

च—चिड़िया चहचहाती हैं। चढ़ चलो । चढ़ धाओ। चढ़ बैठो। चबाचबा कर बातें मत करो। हाथी चिंघाड़ने लगा। क्या अक्ल चरने गई थी। छ—घी छनछनाता है । आँसू छलछला आये। भूख से छटपटा रहा है। झ—पानी बरसे झमझमझम । चील झपट्टा मारती है । हथियार झनझनाते हैं। आँखें झिलमिलाती हैं । नौबत झरने लगी।

ट—बेंग टरटराता है । तुम क्यों टर्रा रहे हो। बगुले टक लगाये बैठे हैं । ठ—ठठाकर मत हँसो । तबला ठनठनाने लगा । इस वंश का चिराग ठंढा हो गया । ड—आँखें डबडबा गईं । ढ—घाव ढलढला रहा है।

त—आँखें तिरमिरा गईं । थ—वह थरथरा गया। मैं थर्रा गया। द—कुल में दाग मत लगाओ । ध—छत धमधमाने लगी। छाती धक-धकाती है। न—नाकों दम आ गया।

प—क्या खोजते हो, पार हो गया। फ—साँप फुफकारता है। पंख फरफराने लगे । ब—ऊँट बलबलाता है । आप ही की तो बन आई है। उसीकी तो बन पड़ी है। आप क्यों बिगड़े पड़े । भ—मक्खियाँ भनभनाती हैं। मिट्टी भुरभुरा गई। वहाँ से भाग निकले। कहो, भंडाफोड़ कर दूँ ?

म—घर मरमराता है। चील मँड़राती है। क्यों मुह चलाते हो? बकरी मेमियाती है।

ल—पाँव लटपटाते हैं। वह लड़खड़ा गया। जो मन आया, लिख मारा। स हवा सनसनाती है। वह सिटपिटा गई। ह—लम्बी-चौड़ी हाँक रहे थे। घोड़ा हिनहिनाता है। सियार हुआँ-हुआँ करता है।

५. अव्यय

अंधाधुन्ध, अनुग्रहपूर्वक, अबतक, आगापीछा, आपादमस्तक, आमने-सामने, आजकल करके, आठोपहर। इधर-उधर, इतने ही में। एक-ब-एक, एक-एक करके, एक ही बार, एक-न-एक दिन। कबकब, किसी-न-किसी दिन, कौड़ी-कौड़ी, कर्त्तव्यानुरोध से, कभी-कभी, कुछ-न-कुछ, कबतक, कहाँ-तक, कहाँ-कहाँ, क्या-क्या, कानाकानी, कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ। खींचाखींची, गुत्थमगुत्था, गद्गद वचन से। घरघर। चुपचाप। छीनाछीनी। ज्यों-त्यों करके, जैसे-का-तैसा, जब-कभी, जबतक, जहाँ-कहीं से, जब-न-तब, जभी-तभी, जहाँ-तहाँ, जो कुछ, जब-तब, ज्यों-त्यों करके, ज्यों-का-त्यों, जिधर-तिधर। टकटकी बाँधे। दैवक्रम से, दिन-दिन, दौड़ा-दौड़ी, दौड़ते-दौड़ते। धीमे-धीमे। न-न। पलक मारते, पाँव-पाँव, पुङ्खानुपुङ्ख रूप से, पीड़ावशतः। बालबाल करके, बूँद-बूँद करके, बाहर-भीतर, बैठे-बैठे। भाँति-भाँति। मुँहा-मुँही, मन-ही-मन, मुँह-ही-मुँह, मुक्तहस्त से, मुश्किल, जबरन। यावज्जीवन, यथाशक्ति, यहाँ-वहाँ से, यहाँ तक, यहीं-वहीं का, यद्यपि-तथापि या तौभी, यदि तो। रातोरात। सचमुच, सुचारु रूप से, स्वेच्छानुसार, सब कुछ, सोचते-विचारते, सोते-जागते। हाथों-हाथ।

प्रयोग—सोते-जागते टोका सबको, उठते-बैठते रोका सबको। आठो पहर उसी धुन में रहते हो। कौड़ी-कौड़ी चुका दो। वह रातोंरात काशी चला गया। (पीछे 'अव्यय' देखो)।

अंगसम्बन्धी मुहावरे

मुँह—

१. मुँह खुलना (उद्दंडतापूर्वक बातें करने की आदत पड़ना)—आजकल तुम्हारा मुँह बहुत खुल गया है, किसी दिन धोखा खाओगे। २. मुँह चढ़ाना (किसीको बहुत उद्दंड बनाना)—आपने इस नौकर को बहुत मुँह चढ़ा

रक्खा है । ३. मुँह छूना (मन से नहीं, बल्कि ऊपर से कहना)—मुँह छूने के लिये वे मुझे भी निमन्त्रण दे गये थे । ४. मुँह देना (किसी पशु का मुँह डालना)—इस दूध में बिल्ली मुँह दे गई है । ५. मुँह पर न रखना (जरा भी न खाना)—लड़के ने कल से एक दाना भी मुँह पर नहीं रक्खा । ६. मुँह पर लाना (वर्णन करना)—अपनी की हुई नेकी मुँह पर नहीं लानी चाहिये । ७. मुँह फाड़कर कहना (निर्लज्ज होकर कहना)—हमने उनसे मुँह फाड़कर कहा भी, पर उन्होंने कुछ ध्यान ही न दिया । ८. मुँह बन्द होना (चुप होना)—तुम्हारा भी मुँह कभी बन्द नहीं होता । ९. मुँह भर के (जितना जी चाहे)—जो कुछ माँगना हो मुँह भर के माँग लो । १०. मुँह मारना (कान काटना)—यह कपड़ा रेशम का मुँह मारता है । ११. मुँह में खून या लहू लगना (चसका पड़ना)—एक दिन तुम्हें रुपये क्या मिल गये तुम्हारे मुँह में खून लग गया । १२. मुँह में पानी भर आना (बहुत ललचाना)—चटनी का नाम सुनते ही तुम्हारे मुँह में पानी भर आता है । १३. मुँह से दूध टपकना (बहुत ही अनजान वा बालक होना, परिहास)—आप इन बातों को क्यों जानने लगे आपके मुँह से तो अभी दूध टपक रहा है । १४. मुँह से फूटना (बोलना, उपेक्षा या व्यंग्य)—आखिर तुम भी तो कुछ मुँह से फूटो । १५. मुँह से लार टपकना (कोई चीज प्राप्त करने के लिये अत्यन्त लालच होना)—जहाँ तुमने कोई अच्छी पुस्तक देखी, तुम्हारे मुँह से लार टपकने लगी । १६. मुँह काला होना (कलंक लगना)—अपनी करनी से तुम्हारा मुँह काला हुआ है । १७. मुँह धो रखना (आशा न रखना, व्यंग्य)—आपको यह पुस्तक मिल चुकी, मुँह धो रखिये । १८. मुँह पर नाक न होना (निर्लज्ज होना)— तुम्हारे मुँह पर नाक तो है ही नहीं, तुमसे कोई क्या बात करे । १९. मुँह से बरसना (चेहरे से जाहिर होना)—पाजीपन तो तुम्हारे मुँह पर बरस रहा है । २०. मुँह पर हवाई उड़ना या छूटना, मुँह फक होना, मुँह पीला होना (भय या लज्जा के कारण चेहरा पीला पड़ जाना, घबराना)—मुझे देखते ही उनके मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं । २१. मुँह फुलाना या फुलाकर बैठना (अप्रसन्नता प्रकट करना)—तुम जरा-सी बात पर मुँह फुलाकर बैठ जाते हो । २२. मुँह फूलना (अप्रसन्न होना)—मैं कुछ कहूँगा तो अभी तुम्हारा मुँह फूल जायगा ।

२३. मुँह बनना या बन जाना (असन्तुष्ट होना)—मेरी बात सुनते ही उनका मुँह बन गया। २४. मुँह मोड़ना (ध्यान न देना, हारना)—हम कभी किसी बात से मुँह नहीं मोड़ते। २५. मुँह लगाना (सिर चढ़ाना)—तुमने भी लड़कों को मुँह लगा रक्खा है। २६. मुँह करना (खयाल करना)—धनवानों का तो सभी मुँह करते हैं, पर गरीबों को कोई नहीं पूछता। २७. मुँह पर जाना (लिहाज करना)—मैं तुम्हारे मुँह पर जाता हूँ, नहीं तो अभी इसकी गत बनाकर रख देता। २८. मुँह रखना (लिहाज रखना)—आप इतनी दूर से चल कर आये हैं, आपका मुँह रक्खो। २९. मुँह देखे का (जो दिखौआ हो, जो मुरौअत का हो)—आपका प्रेम तो मुँह-देखे का है। ये सारी बातें मुँह-देखे की हैं। ३०. मुँहकी खाना (बेइज्जत होना, मुँह तोड़ उत्तर सुनाना)—उसे मुँहकी खानी पड़ी। ३१. मुँह चलाना (बोलना, दुर्वचन कहना)—प्रत्येक बैठक में तुम व्यर्थ ही मुँह चलाया करते हो, यह ठीक नहीं। ३२. मुँह फिरना (घमंड होना, स्वाद उतरना)—इन दिनों उनका मुँह फिरा रहता है। मीठा खाते-खाते मुँह फिर गया है। ३३. मुँह-फट (जिसकी वाणी संयत न हो)—सभा में मुँह-फट की प्रतिष्ठा नहीं होती। ३४. मुँह-ही-मुँह देना (जवाब पर जवाब)—बड़ों को मुँह-ही-मुँह देना उचित नहीं। ३५. मुँह माँगा मिलना (इच्छापूर्ण होना)—मुँह माँगा इनाम किसीको नहीं मिलता। ३६. मुँह बिगाड़ना (उलटा उत्तर देना)—उसको जवाब क्या दिया, मुँह बिगाड़ दिया। ३७. मुँह देखना (पक्षपात करना)—तुम मुँह देखकर बाँटते हो। ३८. मुँह चुराना (संकोच करना, बोलने से डरना)—जो कुछ कहना हो साफ कहो—मुँह न चुराओ।

हाथ—

१. हाथ आना, हाथ पड़ना, हाथ चढ़ना (अधिकार में आना)—अब तो वह हमारे हाथ में है, जैसा कहेंगे वैसा करेगा। २. हाथ उठाना (सलाम करना, मारना)। ३. हाथ ऊँचा होना (दान देने में प्रवृत्त होना)। ४. हाथ कटा देना (बँध जाना)। ५. हाथ का सच्चा (ईमानदार)। ६. हाथ की मैल (तुच्छ वस्तु)—रुपया-पैसा हाथ की मैल है। ७. हाथ के नीचे आना या हाथ तले आना (काबू में आना)। ८. हाथ खुजलाना (मिलने का आगम होना) । ९. हाथ खींचना (किसी काम से अलग हो जाना, देना बन्द कर

देना)। १०. हाथ गरम करना (धन देना)। ११. हाथ चूमना (किसी की कला-निपुणता पर मुग्ध होकर उसके हाथों को प्यार करना)—इस चित्र को देखकर जी चाहता है कि चित्रकार के हाथ चूम लूँ । १२. हाथ चाटना (सब खाकर भी न तृप्त होना)। १३. हाथ जोड़ना (प्रणाम करना, पीछा छुड़ाना)—ऐसे आदमियों को हम दूर ही से हाथ जोड़ते हैं। १४. हाथ लगाना (किसी काम में हाथ लगाना, लूटना) १५. हाथ देखना (नाड़ी देखना)। १६. हाथ धरना (कोई काम करने से रोकना, अपनी रक्षा में लेना, आशीर्वाद देना)। १७. हाथ धोकर पीछे पड़ना (किसी काम में जीजान से लग जाना)—न जाने क्यों वह आजकल हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ा है। १८. हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना (खाली बैठे रहना)। १६. हाथ पसारना या फैलाना (याचना करना)—हम गरीब हैं तो क्या, किसीके आगे हाथ फैलाने थोड़े ही जाते हैं। २०. हाथ-पैर जोड़ना (अनुनय-विनय करना)। २१. हाथ फेरना (प्यार करना, उड़ा लेना)। २२. हाथ बँटाना (शामिल होना)। २३. हाथ मँजना (अभ्यास होना)। २४. हाथ मलना (बहुत पछताना, निराश और दुःखी होना)। २५. हाथ मारना। (बात पक्की करना, बाजी लगाना, उड़ा लेना, खूब खाना)। २६. हाथ में होना (अधीन होना, पास में होना)। २७. हाथ साफ करना (किसीको मारना, उड़ा लेना, खूब खाना)। २८. हाथों में चाँद आना (पुत्र उत्पन्न होना, कोई बड़ी चीज मिलना)। २६. हाथों पर रखना (आदर-सम्मान से रखना)। ३०. हाथ धो बैठना (खो देना)। ३१. हथियाना (लेना) ३२. हाथापाई (मुठभेड़)। ३३. हाथ ऊपर होना (आगे रहना)।

आँख—

आँख आना (आँख में रोग होना), आँख उठाना (बुरी नजर से देखना)—हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई आँख उठा सकता है ? आँखों का तारा (बहुत प्यारा व्यक्ति, संतति)। आँखों का पुतला होना, आँख दिखाना, आँख आना, आँख से पानी गिरना, आँखें चार होना, चार आँखें होना (देखादेखी होना, प्रेम का होना, ज्ञानी होना)—आँखें चार होते ही वे एक दूसरे पर मरने लगे। हम तो अपढ़ हैं, पर तुम्हें तो चार आँखें हैं, तुम ऐसी भूल क्यों करते हो ? आँखें ठंढी होना (इच्छा पूरी होना)—अब तो उसने मार खाई,

तुम्हारी आँखें ठंढी हुईं ? आँखें दिखाना (कोप जनाना)—सुनि सरोष भृगुनायक आये। बहुत भाँति तिन आँख दिखाये। आँखों पर बिठाना (बहुत आदर-सत्कार करना)—वह हमारे घर तो आवें, हम उन्हें आँखों पर बिठावेंगे। आँख फेरना (नजर बदलना, प्रतिकूल होना)। आँख बचाना (नजर बचाना)—रुपया लेने को तो ले लिया, अब आँख बचाते फिरते हो। आँखें बदल जाना (वर्त्ताव में रूखापन आना)। आँख बिछाना (प्रेम से स्वागत करना)—वे यदि मेरे घर पर उतरें, तो मैं अपनी आँखें बिछाऊँ। आँख भर आना (आँख में आँसू आना)। आँख मूँदना (आँख बंद करना, ध्यान न देना)—सब कुछ उनके दम तक है, जिस दिन वे आँख मूँदेंगे, सब जहाँ-का-तहाँ रह जायगा। मूँदहु आँख कतहुँ कोउ नाहीं। आँख में धूल देना या डालना (धोखा देना, भ्रम में डालना) अभी तुम किताब ले गये हो, अब हमारी आँखों में धूल डालते हो। आँख लगाना (नेह जोड़ना, टकटकी बाँधकर देखना)। आँख लड़ाना (देखादेखी होना, प्रेम होना)। आँख लाल करना। (क्रोध की दृष्टि से देखना)। आँख से खून उतरना (अत्यन्त क्रुद्ध होना)—झूठे को देखते ही उसकी आँख से खून उतर आया। आँख की ओट होना (ओझल होना)—आँख की ओट होते ही तुम मुझे भूल गये। फूटी आँख (कुछ भी नहीं सुहाना)—तुम उसे फूटी आँख नहीं सुहाते। आँखें थकना (निराश होना)—राह देखते-देखते आँखें थक गईं। आँख मारना (इशारा करना)—वह तो रुपये दे रहा था, पर सोहन ने आँख मार दी। आँख मीचना (मरना)। आँख खुलना (समझ में आना)। आँखों में चर्बी छाना (घमंड, बेपरवाही)—हम समझते हैं, तुम्हारी आँखों में चर्बी छाई हुई है। आखें नीलीपीली करना (नाराज होना)।

नाक—

नाक कटना (प्रतिष्ठा नष्ट होना)। नाक काटना (प्रतिष्ठा नष्ट करना)। नाक का बाल (प्रिय वस्तु)। नाक काटकर चूतरों तले रख लेना (लोक-लाज छोड़ देना)। नाक की सीध में (ठीक सामने)। नाक चढ़ना (क्रोध आना)। नाक चढ़ाना (क्रोध करना, घिन खाना)। नाकों चने चबवाना (खूब तंग करना)। नाक तक खाना (ठूँसकर खाना)। नाकोंदम करना (तंग करना)। नाक दबाना (दबाव डालना)। नाक पर गुस्सा होना (चिड़-

चिड़ा स्वभाव होना)। नाक पर मक्खी न बैठने देना (बहुत ही खरे स्वभाव का होना। नाक मारना (घिन करना)। नाक रखना (प्रतिष्ठा बचाना)। नाक सिकोड़ना (घिनाना)—सुनि अघ नरकहुँ नाक सिकोरी।

सिर—

सिर आँखों पर होना (सहर्ष स्वीकार होना)—आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर है। सिर आँखों पर बैठाना (बहुत आदर-सत्कार करना)। सर उठाना (कुछ फुरसत पाना, विरोध में खड़ा होना, लज्जित न होना)—जबसे बच्चा पड़ा है तबसे सिर नहीं उठाया है। बागियों ने फिर सिर उठाया। ऊँची-नीची सुनता रहा पर सिर नहीं उठाया। सिर उठाकर चलना (घमंड करना)। सिर ऊँचा करना (सम्मान का पात्र)। सिर करना (बाल सँवारना, गले मढ़ना)। सिर का बोझ टालना (बेगार टालना)। सिर के बल चलना (अधिक आदरपूर्वक किसीके पास जाना)। सिर खाली करना (माथापच्ची करना)। सिर खाना (बकवाद करके जी उबाना)। सिर चढ़ाना (पूज्य भाव दिखाना, गुस्ताख बनाना)। सिर झुकाना (नमस्कार करना, चुपचाप मान लेना)। सिर नीचा करना (प्रतिष्ठा खोना)। सिर पर पाँव रखना (बहुत जल्द भाग जाना)। सिर पर पृथ्वी उठाना (बहुत उत्पात करना)। सिर पर खेलना (जान को जोखिम में डालना)। सिर पर होना (थोड़े ही दिन रह जाना)। सिर मूँड़ना (ठगना)। सिर मुँड़ाते ही ओले पड़ना (प्रारम्भ में ही कार्य बिगड़ना)। सिर लेना (जिम्मा लेना)। सिर पर सेहरा होना (किसी कार्य का श्रेय प्राप्त होना)। सिर से पैर तक आग लगना (अत्यन्त क्रोध चढ़ना)। सिर का पसीना पैर तक आना (बहुत परिश्रम होना)। सिर हिलाना (मना करना, मान लेना)। सिर देना (बलिदान होना)। सिर चिराना (हठात् किसीसे कुछ लेना)। सिर कटाना (मारा जाना)। सिर पड़ना (नाम लगना)। सिर डालना (हठात् सौंपना)। सिर पर पटकना (किसी दूसरे पर डालना)।

उँगली—

उँगली उठना (निंदा आना)। उँगली उठाना (दोषी बताना, टेढ़ी नजर से देखना)। उँगली करना (हैरान करना)—जितना काम करो उतना

ही वे और उँगली किये जाते हैं। उँगली पकड़ते पहुँचा पकड़ना (थोड़ा-सा सहारा पाकर विशेष की प्राप्ति के लिये उत्साहित होना)—"मैंने तुम्हें बरामदे में जगह दी, अब तुम कोठरी में भी अपना असबाव फैला रहे हो। भाई, उँगली पकड़ते पहुँचा पकड़ना ठीक नहीं है।" उँगलियों पर नचाना (अपने वश में रखना)—अजी तुम्हारे ऐसों को तो मैं उँगलियों पर नचाता हूँ। उँगली रखना (दोष दिखलाना)—भला, आपकी कविता पर कोई उँगली रख सकता है? उँगली लगाना। (छूना, किसी कार्य में हाथ लगाना)। कानों में उँगली देना (किसी विषय को न सुनने का प्रयत्न करना)—हमने तो अब कानों में उँगली दे ली है, जो चाहे सो हो। दाँतों में उँगली देना वा दबाना, दाँतों तले उँगली दबाना। (अचंभे से आना)—उस लड़के का साहस देख लोग दाँतों में उँगली दबाकर रह गये। पाँचों उँगलियाँ घी में होना (सब प्रकार से लाभ-ही-लाभ होना)। सीधी उँगलियों से घी न निकलना (भलमनसाहत से कार्य सिद्ध न होना)। हलक में उँगली देकर निकालना (बड़ी छान-बीन और कड़ाई के साथ किसी हजम की हुई वस्तु को प्राप्त करना)—वे रुपये मिलनेवाले नहीं थे, मैंने हलक में उँगली देकर उन्हें निकाला।

कान—

कान उठाना (होशियार होना)। कान उमेठना, कान ऐंठना (कोई काम न करने की शपथ करना)—लो भाई, कान उमेठता हूँ, अब ऐसा कभी न करूँगा। कान काटना (मात करना)—बालक शिवाजी होशियारी और जवाँमर्दी में बड़े-बड़े जवानों के कान काटता था। कान का कच्चा (शीघ्र विश्वासी)। कान खड़े करना (सचेत होना)—बहुत कुछ खो चुके, अब तो कान खड़े करो। कान खड़े होना (चेत होना)—इतनी हानि तो उठा चुके, पर अब भी उसके कान नहीं खड़े होते। कान खाना (शोरगुल करना)। कान खोलना (सजग कर देना)। कान-पूँछ दबाकर चला जाना (चुपचाप चला जाना)। कान दबाना (विरोध न करना)—उनसे लोग कान दबाते हैं। कान देना (ध्यान देना)। कान धरना (ध्यान से सुनना, बाज आना)। कान पकड़ना (अपनी भूल स्वीकार करना, किसी बात को न करने की प्रतिज्ञा करना)। कान पकड़ कर निकाल देना (अनादर के साथ बाहर कर देना)। कान पर जूँ न रेंगना (बेखबर रहना)। कान-पूँछ फटकारना (सजग होना)।

कान फूँकना या भरना (किसीके विरुद्ध किसीके मन में कोई बात बैठा देना)। कान भर जाना (सुनते-सुनते जी ऊब जाना)। कान में तेल डालकर बैठना (बात सुनकर भी ध्यान न देना)। कान लगना (गुप्त रीति से मंत्रणा देना)। कान होना (चेत होना) जब तक उन्होंने हानि न उठाई, तब तक उन्हें कान न हुए। कानों पर हाथ धरना या रखना (बिल्कुल इन्कार करना)। कान में रखना (याद रखना)।

गाल—

गाल फुलाना (अभिमान प्रकट करना, रूठना)—जो भलु मनु न खाब हम भाई, बैचन कहहिं सब गाल फुलाई। दोउ एक संग न होइ भुआलू, हँसब ठठाइ फुलाउब गालू। गाल बजाना (डींग मारना, व्यर्थ बकवाद करना)—बृथा मरहु जनि गाल बजाई, मनमोदक नहिं भूख बुझाई। काम पड़ा हुआ है और तुम गाल बजाने में दिन काटते हो। काल के गाल में जाना (मृत्यु के मुख में पड़ना)। गाल मारना (डींग हाँकना, व्यर्थ बकवाद करना)—मूढ़ मृषा जनि मारेसि गाला, राम बैर होइहैं अस हाला। क्यों न मारे गाल, बैठे काल डाढ़न बीच। गाल करना (मुँह-जोरी करना)—कत सिख देइ हमहिं कोउ माई, गालु करब केहि कर बल पाई।

दाँत—

दाँतकाटी रोटी (गहरी दोस्ती)—राम और श्याम की तो दाँतकटी रोटी है। दाँत खट्टे करना (पस्त करना)—मरहठों ने मुगलों के दाँत खट्टे कर दिये। दाँतों तले उँगली दबाना (दंग रहना, अफसोस करना, इशारे से मना करना)। दाँत तोड़ना—(परास्त करना)—अलाउद्दीन के दाँत तोड़ निज धर्म बचाया। दाँत दिखाना (लाचारी दिखाना)। दाँत पर मैल न होना (अत्यन्त निर्धन होना)—उसके तो दाँत पर मैल भी नहीं, वह तुम्हें देगा क्या! दाँतों पसीना आना (कठिन परिश्रम करना)—इस काम में दाँतों पसीना आवेगा। दाँतों में तिनका लेना (दया के लिये विनय करना)। किसी पर दाँत होना (गहरी चाह होना)—जिस वस्तु पर तुम्हारा दाँत है वह कब तक रह सकती है? दाँत मारना (कौर मारना)। तालू में दाँत जमना (बुरे दिन आना)—किस के तालू में दाँत जमे हैं जो ऐसी बात मुँह से निकाल सके!

बाल—

बाल बाँका न होना, बाल न बाँकना (कुछ भी कष्ट वा हानि न पहुँचना)—होय न बाँको बार भक्त को जो कोउ कोटि उपाय करै। जेहि जिय मनहि होय सत भारू—परे पहाड़ न बाँके बारू। बाल पकाना (बूढ़ा हो जाना, बहुत दिनों का अनुभव प्राप्त करना)—मैंने भी पुलिस की नौकरी में ही बाल पकाये हैं। बाल बराबर—(बहुत सूक्ष्म)। बाल बराबर न समझना (कुछ भी परवा न करना) । बाल-बाल बचना (हानि पहुँचने में बहुत थोड़ी कसर रह जाना)—पत्थर आया, पर वह बाल-बाल बच गया। हथेली पर बाल जमाना (असम्भव अर्थ में)—यह काम करना हथेली पर बाल जमाना है।

ओंठ—

ओंठ उखाड़ना (परती खेत को पहले-पहल जोतना) ओंठ चबाना (क्रोध और दुःख प्रकट करना)। ओंठ चाटना (स्वाद की लालसा रखना)—उस दिन कैसी अच्छी मिठाई खाई थी, अब तक ओंठ चाटते होगे। ओंठों पर (कुछ-कुछ स्मरण आने के कारण मुँह से निकलने पर)—उनका नाम ओंठों ही पर है, मैं याद करके बतलाता हूँ। ओंठ फड़कना (क्रोध के कारण ओंठ काँपना)। ओंठ मलना (कड़वी बात कहनेवाले को दण्ड देना)—अब ऐसी बात कहोगे तो ओंठ मल देंगे। ओंठों में कहना (धीमे स्वर में कहना)।

खून—

खून उबलना या खौलना (गुस्सा चढ़ना)। आँखों में खून उतरना (अत्यन्त क्रोध के कारण आँख लाल हो जाना) । खून का प्यासा (बध का इच्छुक)। खून खुश्क होना या सूखना (अत्यन्त भयभीत होना)। खून सफेद हो जाना (सुजनता या स्नेह आदि का नष्ट हो जाना)। खून सिर पर चढ़ना या सवार होना (किसीको मार डालने या इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट करने पर उद्यत होना)। खून बिगड़ना (खून का रोग होना)। खून का जोश (वंश या कुल का प्रेम)। खून बहाना (मार डालना)। खून पीना (मार डालना, सताना, बहुत दुःख सहना)।

पानी—

पानी करना (सरल कर देना)—मैंने इस काम को पानी कर दिया।

पानी का बुलबुला (नाशवान्) । पानी की तरह बहाना (अन्धाधुन्ध खर्च करना)—उन्होंने लाखों रुपये पानी की तरह बहा दिये । पानी देना (तर्पण करना)—उसके कुल में कोई पानी देनेवाला भी नहीं रह गया । पानी न माँगना (तत्क्षण मर जाना)—विष ऐसा चढ़ गया था कि उसने पानी तक नहीं माँगा । पानी पर नींव डालना (ऐसा काम आरम्भ करना, जो टिकाऊ न हो) । पानी-पानी करना (लज्जित करना) । पानी-पानी होना (लज्जित होना) । पानी फिरना या फिर जाना (बरबाद हो जाना) । पानी भरना (दास के बराबर ठहरना) । पानी में आग लगाना (असम्भव को सम्भव करना) । पानी लगना (स्थान-विशेष की परिस्थिति के अनुकूल हो जाना) । पानी से पतला (अत्यन्त तुच्छ) । पानी उतरना (अंडवृद्धि, अपमानित होना) । पानी देना (चमकाना) । पानी उतारना (अपमानित करना) । पानी जाना (प्रतिष्ठा नष्ट होना) । पानी लेना (अप्रतिष्ठित करना) । पानी ढलना (बेशर्म होना) । पानी उड़ना (इज्जत बिगड़ना) । पानी पड़ना (शर्म आना) ।

खाक—

खाक उड़ना (बरबाद होना)—अब वहाँ पर खाक उड़ रही है । खाक उड़ाना (मारा-मारा फिरना)—वह इधर-उधर खाक उड़ाता फिरता है । किसीकी खाक उड़ाना (उपहास करना)—लोगों ने उसकी खूब खाक उड़ाई । खाक छानना (बहुत ढूँढ़ना, मारा-मारा फिरना)—कहाँ-कहाँ की खाक छानी, पर वह नहीं मिला । वह नौकरी के लिये चारों ओर खाक छानता फिरा । खाक डालना (छिपाना, भूल जाना)—ऐबों पर कहाँ तक खाक डाली जाय । पुरानी बातों पर खाक डालकर अब मेल कर लो । खाक में मिलाना (बिगाड़ना)—उसने सारी आबरू खाक में मिला दी । खाक चाटना (सिर नवाना) । खाक बरसना (नष्ट-भ्रष्ट हो जाना) ।

(२) कुछ मुहावरेदार वाक्य—

अपना पचड़ा सुनाने लग जायँगे । अपने दिनों का फेर है । अब क्या, बस पौ बाहर है । अपने चंगुल में फँसा लिया । अभी लम्बी-चौड़ी ही हाँक रहा था । आफत-पर-आफत आई । आँखों में सूरत समा गई । आप भी क्यों लाल-पीले हो रहे हैं ? आप भी उपमा की टाँग तोड़ने लगे । आन-की-आन में आन पहुँची । आज दिन भर एकादशी है । आजकल खुशामद का

बाजार गर्म है । अंगरेजी विचार की गन्ध छू तक नहीं गई । इज्जत मिट्टी में मिल गई । इस काम से कान ऐंठते हैं । उसकी खूब खबर ली गई । उसका पिंड कभी न छोड़ेंगे । उसका माथा ठनका । एकदम फूल से लद गई । एक-पर-एक टूट पड़ता था । और चार बातें सुनाईं । कुल में दाग लगाया । कविता समुद्र के पार हो गई । काम में बहुत फँसे हैं । क्या उनकी हँसी उड़ाते हो ? खैर, जाय यह झंझट । खूब कस-कस कर खा लिया । घर नीलाम पर चढ़ गया । गाड़ी-गाड़ी चावल आया । धूमधाम कर लौट आये । जहाँ राज-रजनी वहाँ भीख नहीं माँगनी । जड़ में कुल्हाड़ी क्यों लगाते हो ? जान लो, कि बात क्या है ! जान हथेली पर रख कर खेल गया । जाओ तो जा सकते हो । जाओ या न जाओ, वह तो जायगा जरूर । जी में एक न समाई । झगड़ा मोल लेना उचित नहीं । ठहाका क्यों लगाते हो ? डेरा जमता ही जाता है । तुम मुँह दिखाने योग्य नहीं । तुम छीना-छीनी कर रहे हो । दिन कटे तो कैसे कटे ? देखकर भी नहीं देखा । देह में आग-सी लग गई । भूषणों से नख-सिख लदी है । नौ-दो ग्यारह हुए । पर ऐसा होना ही क्यों था ? पहाड़ फूँककर उड़ाना चाहता है । पागल हो और क्या ? पिलू राग का पितृ-श्राद्ध होता था । पीछे पैर नहीं देना । पेट भर के पी लो । प्राण मुँह को चले आते हैं । प्रेम छलक पड़ा । फिर हमसे दाँत खटाखट क्यों करते हैं ? वर्षा-काल मुँह पर आया । बड़े टिमाक रच रहे हैं । बात बढ़ गई । बात-ही-बात में, यह बात निकली । बुद्धि में बृहस्पति का कान काटता है । भले ही लोग टें-टें पों-पों किया करें । मन रनवास में धरा होगा । मनलड्डू से भूख बुझा लो । माल चला दिया । मुकदमा दायर करो । मुहब्बत की बला सिर पर सवार हुई । मेरी समझ पर पत्थर पड़ गये । मेरे पंजे में आये । मेरे माथे मत ठोको । रक्खी-रक्खी तलवार जंग खा गई । रुपये फूँक दिये । रूप उछल पड़ता था ।

हिन्दी में प्रचलित मुहावरे

(अ-आ)

अी गणेश होना (प्रारम्भ होना, शुरू होना) । अंधे की लाठी या लकड़ी (सहारा होना) । अक्ल का दुश्मन (मूर्ख, बेवकूफ) । अक्ल पर पत्थर पड़ जाना (मोटी बुद्धि होना) अक्ल चरने जाना (बुद्ध की कमी) । अन्न-जल उठना (जीविका छिन जाना) । अन्नकूट होना (खाने-पीने की खूब सुविधा) ।

अंगारे बरसना (खूब गर्मी पड़ना) अंगारों पर लोटना (खूब क्रोधित होना) । अंगारे पर पैर रखना (जोखिम में पड़ना, खतरे का काम करना) । आड़े हाथों लेना (खूब झिड़कना, खरीखोटी सुनाना) । अंधा बनाना (बेवकूफ बनाकर ठगना) । अपना उल्लू सीधा करना (बेवकूफ बनाकर अपना काम निकालना) । अपने पाँव पर खड़ा होना (स्वावलंबी होना, अपने ऊपर निर्भर होना) । अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारना (अपनी बुराई करना) । अपना-सा मुँह लेकर रह जाना (असफलता पर लज्जित होना) । अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना (अपनी प्रशंसा आप करना) । अपना ही ओटना (अपनी बात कहते समय किसी दूसरे की बातों को न सुनना) । अगिया-बैताल बनना (दुस्साहस का काम करना) । अंडा सेना (निकम्मा होकर बैठा रहना) । अटकलपच्ची (अन्दाज से काम लेना) । अड़ियल टट्टू (बड़ा ही हठी) । अन्धाधुन्ध मचना (मनमाना काम होना) । अंक देना (हृदय से लगाना) । अंधेरे घर का उजाला (कुल-दीपक पुत्र) । अपनी डफली आप बजाना (अपने मन के अनुसार काम करना) । अपनी बंदरिया आप नचाना (अपना अभ्यस्त काम करना) । आटे-दाल का भाव मालूम करना (अपनी कठिनाइयों का पता चल जाना) । आटा गीला करना (धन बर्बाद करना) । आड़े आना (सहायक बनना) । आन-की- आन में (तुरत) । आग में घी डालना (क्रोध बढ़ाना) । आकाश-पाताल एक करना (भारी परिश्रम करना) । आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाना (कठिन-से-कठिन काम कर दिखाना) । आकाश-पाताल का अन्तर (बहुत बड़ा फर्क) । आग लगने पर कुआँ खोदना कठिन कार्य के उपस्थित हो जाने पर उपाय सोचना) । आठ-आठ आँसू रोना (बहुत विलाप कर रोना) । आकाश से बातें करना (बहुत ऊँचा होना) । आधा-तीतर आधा बटेर (कुछ एक तरह का और कुछ दूसरी तरह का) । आन जाना (प्रतिष्ठा जाना) । आन रखना (प्रतिष्ठा रखना) । आपे से बाहर होना (बहुत गुस्सा करना) । आसन जमाना (अधिकार कर लेना) । आसन डिगना या हिलना (पदच्युत होना) । आसमान पर चढ़ाना (खूब तारीफ करना) । आसमान सिर पर उठाना (खूब उपद्रव मचाना) । आस्तीन का साँप (मित्र होकर शत्रु का काम करना) ।

(इ–ई)

इधर-उधर करना (टालमटोल करना) । इधर की दुनिया उधर होना

(अनहोनी बात का होना)। इन्द्र का अखाड़ा (खूब सुन्दर मकान)। ईंट का जवाब पत्थर से देना (जबर्दस्त बदला लेना)। ईंट से ईंट बजना (नष्ट होना, सत्यानाश होना)।

(उ–ऊ)

उड़ती चिड़िया पहचानना (खूब चालाक)। उड़ती खबर (बेबुनियाद की बात)। उदय से अस्त तक (समूची पृथ्वी पर)। उल्टे छुरे से मूँड़ना (बेवकूफ बना कर काम निकालना)। उन्नीस-बीस होना (थोड़ा अन्तर होना)। उधार खाये बैठना (अपनी बात बनाने के लिये उत्सुक होना)। उल्टी गंगा बहना (अनहोनी बात होना)। ऊँचा-नीचा सुनाना (भला-बुरा कहना)। ऊँचा सुनना (कम सुनना, बहरेपन की बीमारी)।

(ए–ऐ)

एक ही घाघ (बेहद चालाक, खूब धूर्त्त)। एक आँख न भाना (जरा भी अच्छा न लगना)। एक न चलना (एक उपाय न सूझना)। एँड़ी–चोटी का पसीना एक करना (खूब परिश्रम करना)।

(ओ–औ)

ओस का मोती होना (नश्वर, क्षण-भंगुर होना)। ओखल में सिर डालना (जानबूझकर खतरे में पड़ना)। अहसान भूलना (कृतघ्न होना, उपकारों को भुला देना)।

(क)

कलई खुलना (भेद खुलना) कुएँ में भंग पड़ना (सबकी बुद्धि मारी जाना)। कुआँ खोदना (बुराई करना)। कुआँ खोदकर प्यास बुझाना (अपनी मिहनत के पैसे पर जीना)। काँटा बोना (बुराई करना)। काँटों में घसीटना (अपमानित करना)। काठ मार जाना (भौंचक होना)। काम तमाम करना (जान से मार डालना, पूरा करना)। किनारा कसना (अलग हो जाना)। कोल्हू का बैल होना (दिन-रात खटते रहना)। कौड़ी के मोल विकाना (खूब सस्ता होना)। कागजी घोड़े दौड़ाना (केवल लिखा-पढ़ी करना)। काफिया तंग करना (खूब परेशान करना)। कब्र के मुर्दे उखाड़ना (पुरानी बातों को निकालना)। किताब का कीड़ा (बहुत पढ़नेवाला)। किरकिरा होना

(फीका होना)। कुत्ते की मौत मरना (बुरी तरह मरना)। कपास ओटना (दुनियावी कामधंधों में फँसा रहना)।

(ख)

खटाई में फूलना (काम में व्यर्थ की देर होना)। खरी-खोटी सुनाना (झिड़कना)। खरा जवाब देना (तुरत अस्वीकार कर देना)। खटिया सेना (बीमार होना)। खोगीर की भर्त्ती (अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह)। खार खाना (डाह करना)। खेत आना (युद्ध में मारा जाना)। खाले का घर (आसान काम)।

(ग)

गिरगिट की तरह रंग बदलना (तुरत-तुरत बदलते रहना)। गुड़गोबर करना (बना-बनाया काम बिगाड़ना)। गंगा लाभ होना (मृत्यु होना)। गुड़ियों का खेल (आसान काम)। गोबरगणेश (खूब बेवकूफ)। गत्ताल खाते में पड़ना (कहीं-से-कहीं चला जाना) गुरुघंटाल (बहुत चालाक)। गुदड़ी का लाल (गरीब किन्तु गुणवान्)। गुल खिलना (बखेड़ा पैदा होना)। गुलछर्रे उड़ाना (मजे उड़ाना)।

(घ)

घर का न घाट का (निकम्मा होना)। घर का उजाला (कुलदीपक बेटा)। घी का चिराग जलाना (खूब मजे उड़ाना)।

(च)

चिराग तले अँधेरा होना (जहाँ गुण हो वहीं अवगुण होना)। चक्की पीसना (कठिन परिश्रम करना)। चाँद का टुकड़ा (खूब सुन्दर)। चाँद पर थूकना (किसी महापुरुष को कलंकित करना)। चार चाँद लगाना (चतुर्गुण शोभा-वृद्धि)। चोली-दामन-सा (खूब घनिष्ठता)। चाँदी की जूतियाँ (घूस के रुपये)। चुनौती देना (ललकारना)। चौकड़ी भूल जाना (सिट-पिटा जाना)। चंडूखाने की गप्प (झूठी खबरें)। चींटी के पर निकल आना (विनाश के पथ पर जाना)। चम्पत होना (गायब होना)।

(छ)

छक्कापंजा जानना (कपट-फरेब रखना)। छठी का दूध याद आना (सारी-खुशी भूल जाना)। छक्के छुड़ाना (खूब परेशान करना)। छापा मारना (हमला करना)। छठे-छमासे (जब-तब)। छाती का पीपल होना (सताने

के लिये लगा रहना)। छाती पर मूँग दलना (कष्ट देना)। छाती पर साँप लोटना (ईर्ष्या से दुःखी होना)। छींटा कसना (व्यंग्य करना)।

(ज)

जड़ जमाना (मजबूत होना)। जड़ उखाड़ना (पूर्ण विनाश कर देना)। जबान देना (वचन देना, प्रतिज्ञा करना)। जंगल में मंगल होना (शून्य-स्थान का आनन्दमय हो जाना)। जमाना बदलना (समय का परिवर्तन)। जबान में लगाम न होना (बिना सोचे-विचारे बोल देना)। जमीन चूमने लगना (गिर जाना)।

(झ)

झाड़ू फेर देना (सफाई कर देना, निर्मूल कर देना) झंडा फहराना (अधिकार होना)।

(ट)

टका-सा मुँह लेकर रह जाना (खूब लज्जित होना)। टका-सा जवाब (सूखा जवाब)। टकसाली होना (खूब प्रचलित)। टकसाल का खोटा (खूब बदमाश)। टट्टी की ओट शिकार (छिपाकर बुरा काम करना)। टाँय-टाँय फिस होना (निष्फल होना)। टें-टें, पों-पों करना (व्यर्थ हल्ला मचाना)। टेढ़ी खीर (कठिन बात)। टाँग अड़ाना (काम में बाधा पहुँचाना)। टर-टराना (व्यर्थ का बकना)। टक-टकी लग जाना (निर्निमेष दृष्टि से देखते रह जाना, आश्चर्यित होना)।

(ठ)

ठकुरसुहाती बात करना (खुशामद करना)। ठंढी आहें लेना (दुःखी होना)। ठनठन गोपाल (अभाव)।

(ड)

डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना (अलग रहना, पाखंड दिखाना)। डूबते को तिनके का सहारा (विपत्ति में थोड़ा सहारा)। डींगें हाँकना (शेखी बघारना, बढ़ाचढ़ाकर बातें करना)।

(ढ)

ढेर होना (मर जाना)। ढोल पीटना (प्रकट करना)। ढाक के सदा तीन पात होना (सदा एक-सी अवस्था में होना)।

(त)

तलवे सहलाना या चाटना (खूब खुशामद करना)। तह देना (ख्याल न करना)। तारे गिनना (बेचैनी से समय काटना)। तवे की बूँद (क्षण-स्थायी)। तवा-सा जलना (खूब गर्म होना)। तिल का ताड़ करना (छोटी बात को खूब बढ़ा देना)। तीन-तेरह होना (तितर-बितर होना)। तोताचश्म होना (कृतघ्न होना)। तूती बोलना (धाक जमाना, खूब जमाना)। तेवर बदलना (क्रोध करना)। तार-तार होना (बिलकुल फट जाना, रद्दी हो जाना)।

(थ)

थाली या डगरे का बैंगन (इधर-उधर होनेवाला, चंचल आदमी)। थूक चाटना (फिर न करने का वादा करना)।

(द)

दम भरना (तारीफ करना)। दम मारना (विश्राम करना) दाल में काला होना (संदेह होना)। दूज का चाँद होना (कम दिखाई पड़ना)। दूध की मक्खी (तुच्छ वस्तु)। दाँव खेलना (धोखा देना)। दिनों का फेर (बुरे दिन)। दुम दबाकर भागना (डर से खिसक जाना)। दूर की कौड़ी भाँजना (दूर की बात सोचना)। दूध-का-दूध (सच्चा न्याय)। दो कौड़ियों का आदमी (तुच्छ आदमी)।

(ध)

धाक जमाना (प्रभाव होना, जड़ जमाना)। धुआँ देखना (मृत्यु देखना)। धूप में बाल सुखाना (अनुभव हीन वृद्ध)। धोबी का कुत्ता (निकम्मा आदमी)।

(न)

नजर पर चढ़ना (पसन्द आ जाना, खटक जाना)। निनानबे का फेर (अर्थ बढ़ाने की चिन्ता)। नमक मिर्च मिलाना (बढ़ाचढ़ाकर कहना)। नसीब का मारा (अभागा मनुष्य)। नसीब चमकना (भाग्य-चमकना)। नानी याद आना (एकदम घबरा जाना)। नुक्ता-चीनी करना (दोष निकालना)। नौ-दो-ग्यारह होना (भाग जाना)।

(प)

पगड़ी रखना (इज्जत रखना)। पगड़ी उतारना (इज्जत बर्बाद करना)। पहाड़ टूटना (अचानक विपत्ति में पड़ जाना)। पाँचों-उँगलियाँ घी में होना

(लाभ ही लाभ)। पंच परमेश्वर (पाँच मनुष्यों का किया हुआ ईश्वरीय निर्णय है)। पेट में पाँव होना (खूब कपटी होना)। पेट में चूहा कूदना (भूख लगना)। लकीर का फकीर होना (पुरानी बात चलाना)। पौ-बारह होना (जीत-ही-जीत)।

(फ)

फूट बोना (अलग करना)। फूल सूँघना (बहुत थोड़ा खाना)। फटकने न देना (निकट आने नहीं देना)। फूटी आँखों न सुहाना (बहुत खटकना)। फूट-फूट कर रोना (खूब रोना)। फेन फोड़ना (नियमित परिश्रम से भागना)।

(ब)

बगुला भगत (बहुत कपटी)। बगलें झाँकना (बचने का रास्ता ढूँढ़ना)। बहती गंगा में हाथ नहीं धोना (ऐसी मौका छोड़ना जिससे सभी लाभ उठा रहे हों)। बालू की भीत (शीघ्र नष्ट होनेवाला)। बाजार गर्म होना (दर बढ़ जाना)। बाग-बाग होना (खूब खुश होना)। बाछें खिलना (खूब प्रसन्न होना)। बेड़ा पार होना (काम पूरा होना)। बन्दर-घुड़की दिखाना (झूठमूठ धमकाना)। बाल बाँका न होना (कुछ नुकसान न होना) बीड़ा उठाना (किसी काम के करने की प्रतिज्ञा करना)।

(भ)

भूत चढ़ना (जिद सवार होना)। भंडा फूटना (भेद खुल जाना)। भींगी बिल्ली बनना (लाचार होना)। भाड़े का टट्टू (बेगारी जैसा करनेवाला)। भेड़ियाधसान होना (देखा-देखी काम करना)। भाड़ झोंकना (समय नष्ट करना)।

(म)

मिजाज गर्म होना (क्रोधित होना)। मिजाज न मिलना (किसी को न लगाना)। मुँह में खून लगना (चस्का लग जाना)। मुट्ठी गरम होना (लाभ होना)। माई का लाल (साहसी)। मिट्टी में मिलाना (नष्ट-भ्रष्ट करना)। मिट्टी देना (कब्र में गाड़ना)। मकदूर से पाँव बाहर करना (अपनी ताकत से बाहर काम करना)। मिट्टी पलीद करना (इज्जत में बट्टा लगाना, अस्तित्व मिटाना)। मैदान साफ होना (रास्ता बिना रुकावट का साफ होना)। मैदान मारना (विजय प्राप्त करना)। मुठभेड़ होना (लड़ाई होना, सामना होना)।

(र)

रंग बदलना (अपने को समय देखकर बदल देना)। रंग जमाना (धाक जमाना)। रफूचक्कर होना (भाग जाना)। रंग में भंग होना (आनन्द के कार्य में विघ्न होना)। रँगे हाथों पकड़ना (अपराध करते हुए पकड़ना)। रँगा सियार (ढोंगी आदमी)। रोटियाँ तोड़ना (निठल्ला पड़े-पड़े खाना)।

(ल)

लंगोट का पक्का (जितेन्द्रिय मनुष्य)। लकीर पीटना (पुरानी प्रथा का अनुसरण करना, काम में व्यर्थ समय नष्ट करना)। लाले पड़ना (मुँहताज-होना)। लंगोटिया यार (पक्का दोस्त)। लट्टू होना (मोहित होना)। लोहा लेना (लड़ाई करना, सामना करना)। लोहे के चने चबाना (कड़ी मिहनत करना)। लंकाकाण्ड होना (अग्निकाण्ड होना, युद्ध या झगड़ा होना)। लम्बी-चौड़ी हाँकना (गप्प मारना)। लल्लो-चप्पो करना (खुशामद करना)। लाल-पीला होना (क्रोधित होना)। लोहा मानना (श्रेष्ठता को स्वीकार कर लेना)।

(व)

वचन देना (प्रतिज्ञा करना)। वक्त पर काम आना (विपत्तिकाल में सहायता करना)।

(स)

सिर उठाना (विरोध में खड़ा होना)। सिक्का जमाना (अधिकार जमा लेना)। सितारा चमकना (भाग्य चमकना)। सन्नाटे में आ जाना (सिटपिटा जाना, चकित होना)।

(ह)

हक्का-बक्का होना (घबरा जाना)। हजामत बनाना (ठग लेना)। हवा लग जाना (किसीके बुरे प्रभाव में आ जाना)। हवा खिलाना (कहीं बाहर भेजकर परेशान करना)। हुक्कापानी बन्द करना (जातिच्युत करना)। हल्का होना (तुच्छ होना)। होश उड़ना (घबरा जाना)। होश हिरन होना (बेहद घबरा जाना)। हड़प लेना (दखल कर लेना, जबरदस्ती ले लेना)। हवा पर उड़ना (घमण्ड में फूल जाना)। हाथ धोकर पीछे पड़ना (किसी काम में तन-मन से लग जाना)।

बारहवाँ अध्याय

भाषा-व्यवहार

कहावत (Proverb)

'कहावत' मौके पर कही जाती है और इससे घटना का फल निकाला जाता है। यह मुहावरे के समान वाक्य का कोई अंग नहीं, बल्कि एक स्वतन्त्र वाक्य है। कहावत बोलचाल में नमक और लेखों की भाषा में जीवन डाल देती है। यह एक ओर सचाई रखती है और दूसरी ओर तीव्र आलोचना चाहती है। इससे सांसारिक कार्यों का बहुत बड़ा लगाव है। जिस रचना में उचित स्थान पर एक-दो कहावतों का प्रयोग हो, वह बड़ी सुन्दर हो जाती है।

'कहावत' को लोकोक्तियाँ या प्रवादवाक्य भी कहते हैं। नीचे थोड़ी-सी प्रचलित कहावतें दी जाती हैं—

कहावतें

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता (अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता)। अशर्फी की लूट कोयले पर छाप (बहुमूल्य वस्तुओं को नष्ट करना और तुच्छ वस्तुओं को बचाये रखना)। अपनी डफली अपना राग (संगठन का अभाव, जिसकी जैसी इच्छा हो करे)। अंधों के आगे रोना, अपना दीदा खोना (कठोर आदमी को अपना दुखड़ा सुनाना व्यर्थ है)। अनदेख चोर राजा बराबर (जब तक पाप छिपा रहता है पापी भी धर्मात्मा कहलाता है)। अधजल गगरी छलकत जाय (थोड़ी विद्या या धन पाकर इतराना)। आगे नाथ न पीछे पगहा (बिल्कुल स्वतंत्र, मनमाना करनेवाला, कोई रोकटोक करनेवाला नहीं)। आँखों के अंधे नाम नैनसुख (गुणविरुद्ध नाम)। आप डूबे तो जग डूबा (बुरा आदमी सभी को बुरा समझता है, दुनिया को अपनी नजर से देखना) आगे दौड़ पीछे चौड़ (किसीको बढ़ावा देकर खतरे में झोंक देना और पीछे उसका मजाक उड़ाना)। आग लगन्ते झोपड़ा जो निकले सो लाभ (जाते-जाते जो बच जाय वही बड़ा लाभ है)। आम का आम, गुठली का दाम (दूना लाभ उठाना)। उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना (धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ाना)। उधार का खाना, फूस का तापना (ऐसा

काम करना, जिससे कोई स्थायी लाभ न हो)। अपनी करनी पार उतरनी (जैसा करो वैसा पाओ)। आग लगाकर जमालो दूर खड़ी (लड़ाई लगाकर अलग हो जाना)। आधा तीतर आधा बटेर (खिचड़ी, दोनों में से एक भी नहीं)। आप भला तो जग भला (आदमी आप अच्छा हो तो संसार अच्छा है)। आसमान का थूका अपने ऊपर आता है (महापुरुष को कलंकित करनेवाला अपना ही बिगाड़ता है)। आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास (करना चाहिये कुछ, करने लगे कुछ)। इतनी-सी जान गजभर की जबान (देखने में छोटा, बात करने में बड़ा ही खोटा)। ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया, (कहीं सुख कहीं दुःख)। इस हाथ से करोगे, उस हाथ से पाओगे (कर्मों का फल शीघ्र ही भोगना पड़ता है)। उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे (अपराध करनेवाला आदमी अपराध पकड़नेवाले को ही डाँट बतावे)। ऊँट के मुँह में जीरा (जरूरत से बहुत ही कम)। ऊँट चढ़े पर कुत्ता काटे (विपत्ति कहाँ नहीं है)। ऊँट किस करवट बैठता है (किसकी जीत होती है)। ऊँट पहाड़ के सामने चल रहा है (बहुत बड़े विद्वान् के निकट अपनी योग्यता का पता चल जाता है)। ऊँची दूकान, फीका पकवान (सिर्फ तड़क-भड़क, वास्तविकता नहीं)। ऊँट बहे और गदहा पूछे कितना पानी (जहाँ बड़ों की बुद्धि काम नहीं आती, वहाँ छोटों की क्या गिनती)। न ऊधो का लेना न माधो का देना (कोई लटपट नहीं)। एक म्यान में दो तलवारें (एक जगह उग्रप्रकृति के दो मनुष्य मिलकर नहीं रह सकते)। एक से इक्कीस होते हैं (एक से ही अनेक पैदा होते हैं)। एक पंथ दो काज (एक साथ दो काज, एक समय दो लाभ)। एक तो करेला दूजे नीम चढ़ी (बुरे को बुरे का साथ मिल गया)। एक तो चोरी दूसरे सीनाजोरी (अपराध को स्वीकार नहीं करना)। ओछे की प्रीत, बालू की भीत (नीच मनुष्य का प्रेम टिकाऊ नहीं होता)। ओस चाटे प्यास नहीं बुझती (अधिक कृपणता से काम नहीं चलता)। ओखली में सिर दिया तो मूसलों से डर क्या ? (विपत्ति में धैर्य से काम लेना)। अंधों में काना राजा (जहाँ ढेर मूर्ख हों वहाँ थोड़ा पढ़ा-लिखा भी पंडित समझा जाता है)। कबीरदास की उल्टी बानी, बरसे कम्बल भीजे पानी (उल्टा काम)। करघा छोड़ तमाशा जाय, नाहक मार जुलाहा खाय (अपना काम छोड़कर दूसरे का काम करनेवाला हानि उठाता है)। कभी

नाव पर गाड़ी और कभी गाड़ी पर नाव (परस्पर सहानुभूति से ही काम निकलता है, समय का परिवर्त्तन)। कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा (कोई मौलिकता नहीं, इधर-उधर से लेकर कोई चीज तैयार करना)। कहाँ राजा भोज, कहाँ भोजवा तेली (छोटे का बड़े के साथ मिलान नहीं किया जा सकता)। काजल की कोठरी में धब्बे का डर (बदनाम लोगों के साथ अच्छे भी बदनाम हो जाते हैं)। काला अक्षर भैंस बराबर (बिलकुल अनपढ़)। काम जो आवै कामरी, का ले करै कमाच (जिस चीज से काम निकलता हो वही रखना चाहिये)। काठ की हाँड़ी दूसरी बार नहीं चढ़ती (सर्वदा कपट से काम नहीं पूरा हुआ करता)। काबुल में क्या गधे नहीं होते ? (अच्छे-बुरे हर जगह होते हैं)। का बरखा जब कृषी सुखाने (अवसर बीत जाने पर काम बेकार हो जाता है)। कोयले की दलाली में हाथ काले (बुराई के पास रहने से बुराई का कुछ असर पड़ ही जाता है)। खरी मजूरी चोखा काम (पूरा देना और पूरा काम लेना)। खेत खाय गदहा मार खाय जुलाहा (कसूर किसीका, सजा किसीको)। खरा खेल फर्रुखाबादी (पक्का काम)। खोदा पहाड़, निकली चुहिया (कठिन परिश्रम स्वल्प लाभ)। खग जाने खग ही की भाषा (जो जिसके साथ रहता है, वही उसका हाल जानता है)। गुरु गुड़, चेला चीनी (गुरु से शिष्य का बढ़ जाना)। गुड़ खाय गुलगुले से परहेज (बनावटी परहेज, दिखावट)। गरजै सो बरसे नहीं (बकवादी से कुछ नहीं हो सकता)। गाछे कटहल ओठे तेल (काम करने से पहले ही फल की चाह)। गोद में लड़का, नगर में ढिंढोरा (पास ही जो मिल सकता है, उसे ढूँढ़ने दूर जाना)। गाँव का जोगी जोगड़ा बाहर का जोगी सिद्ध (बाहरवाले की हर जगह कदर होती है)। गुरु कीजै जान, पानी पीजै छान (खूब अच्छी तरह जाँच पड़ताल करके कुछ खरीदना)। गये थे रोजा छुड़ाने, नमाज गले पड़ी (सुख के बदले दुःख)। गवाह चुस्त, मुद्दई सुस्त (जिसका काम हो वह तो निश्चिन्त है, दूसरा चिन्तित हो रहा है)। घर की मुर्गी दाल बराबर (घर की वस्तु सस्ती समझी जाती है)। घर का भेदिया लंका दाह (आपसी फूट से बहुत बड़ी हानि होती है)। घर पर फूस नहीं, नाम धनपत (गुण कुछ नहीं, पर गुणवान कहलानेवाला) घड़ी में घर जलै नौ घड़ी भद्रा (बड़ी हानि के समय कुसमय का विचार नहीं करना चाहिये)। घर में दिया जलाकर मस्जिद में जलाया जाता है (दूसरों को सुधारने से पहले

अपना ही सुधार करना चाहिये)। घी कहाँ गिरा ?—खिचड़ी में (अपनी चीज अपने ही काम आई)। घी का लड्डू टेढ़ा भी भला (लाभकारी वस्तु किसी तरह की भी अच्छी होती है)। घर में भूँजी भाँग नहीं, नगर में निमंत्रण (दुस्साहस और मूर्खता का काम)। चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय (बड़ी चीज खोकर छोटी बचाने की कोशिश)। चोर की दाढ़ी में तिनका (दोषी स्वयं डरता रहता है)। चोर-चोर मौसेरे भाई (एक तरह के पेशेवाले झटपट मिल जाते हैं)। चले न जाने आँगन टेढ़ा (अपनी भूल दूसरे के सिर पर मढ़ना)। चूहे के चाम से नगाड़ा नहीं मढ़ा जा सकता (छोटे से बड़ा काम नहीं हो सकता)। चौबे गये छब्बे होने, दुब्बे बन के आये (लाभ के बदले हानि)। चूहे घर में डंड पेलते हैं (अभाव ही अभाव)। चूहे की मौत, बिल्ली का खेल (दूसरों को दुखी देखकर खुश होना)। छठी का दूध जबान पर आना (घोर परिश्रम करना, परेशानियाँ बढ़ जाना)। छोटा मुँह बड़ी बात (बढ़-चढ़ कर बातें करना)। छप्पर पर फूस नहीं, ड्योढ़ी पर नाच (आडम्बर)। छोटे मियाँ तो छोटे मियाँ, बड़े मियाँ सुभान अल्लाह (छोटे से बड़े में अधिक बुराई होना)। छुछुन्दर के सिर में चमेली का तेल (अयोग्य के हाथ अच्छी वस्तु दे देना)। जब तक साँस, तब तक आस (आशा अन्तिम समय तक बनी रहती है)। जहाँ मुर्गा नहीं बोलता, वहाँ क्या सबेरा नहीं होता (किसी के बिना कोई काम नहीं रुकता है)। जिसकी लाठी उसकी भैंस (बलवान सब कुछ कर सकता है)। जंगल में मंगल (शून्य स्थान को आनन्दमय बना देना)। जंगल में मोर नाचा, किसने देखा (बिना दिखाये कोई नहीं देखता है)। जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि (कवि की नजर बड़ी पैनी होती है)। जहाँ गाछ न बिरिछ, वहाँ रेंड़ परधान (बड़ी वस्तु जहाँ नहीं मिलती, वहाँ छोटी वस्तु प्रधान हो जाती है)। जान है, तो जहान है (जीवन सबसे बहुमूल्य है)। जैसा देश, वैसा भेष (जो जहाँ रहता है वह वहीं के अनुकूल रहने में अच्छा लगता है)। जिसको पिया चाहे वही सुहागिन (भाग्य से ही सम्मान मिलता है)। जैसा राजा, वैसी प्रजा (अयोग्य के हाथ में योग्य वस्तु भी अयोग्य हो जाती है)। जैसी करनी, वैसी भरनी (जैसा करोगे, वैसा पाओगे)। जल में रहे मगर से बैर (जिसके अधीन रहना, उसीसे वैर करना)। जैसी बहै बयारि, पीठ तब तैसी दीजै (समय देखकर काम करना चाहिये)। जो बोले सो किवाड़

खोले (अगुआ बननेवाले को अधिक श्रम करना पड़ता है)। जो चढ़ेगा वह गिरेगा (दुस्साहसी मारा जाता है)। जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेश (निठल्ले आदमी की कहीं पूछ नहीं होती)। जैसा गुरु वैसा चेला, माँगे गुड़ लावे ढेला (गुणहीन के साथ गुणहीन हो जाना पड़ता है)। जाके पाँव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई (अपने ऊपर बीते बिना दूसरे के कष्ट का अन्दाजा नहीं लगता है)। जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना। (मेल में सुख और फूट में दुःख है) । जहाँ गुड़ होगा, वहाँ मक्खियाँ जरूर आयँगी (धनवालों के पास सभी जाते हैं)। जेहिपर जेहिकर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू। (सच्चे प्रेम से सभी कुछ मिल सकता है)। जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ (परिश्रम करनेवाले को फल मिल ही जाता है)। जस दूलह तस बनी बराता (अपने जैसे सभी साथी)। जैसे मुर्दे पर सौ मन वैसे हजार मन (असहायों को कोई जितना चाहे सता ले)। जिस पत्तल में खाना उसीमें छेद करना (कृतघ्न हो जाना)। जान बची लाखों पाये (जान सबसे बढ़कर प्यारी होती है)। जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी। (अपनी नजर से देखने से सब कोई अपने ही जैसे लगते हैं) । झोपड़ी में रहना और महल का सपना देखना (असम्भव बातों को सोचते रहना)। झटपट की घानी, आधा तेल आधा पानी (जल्दीबाजी का किया हुआ काम बुरा होता है)। ठठेरे ठठेरे का बदलौअल (धूर्त्त से धूर्त्तता नहीं चल सकती)। टट्टी की ओट शिकार (छिपे-छिपे बुरा काम करना)। डूबते को तिनके का सहारा (असहाय को थोड़ा सहारा भी बहुत होता है)। डूबा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल (अच्छे घर में बुरे का पैदा होना)। तीन बुलाये तेरह आये (बिना बुलाये आ जाना बुरा है)। तन पर नहीं लत्ता, पान खाय अलबत्ता (झूठी शोखी)। तीन लोकों से मथुरा न्यारी (विचित्र ढंग)। तीन कनौजिया तेरहा चूल्हा (व्यर्थ का बखेड़ा, ढकोसला)। तुख्मतासीर सुहबते असर (संग का प्रभाव सबपर पड़ता है)। तुम डाल-डाल, मैं पात-पात (किसीकी चालों को खूब पहचानना)। तीन में न तेरह में (बिल्कुल अलग)। तेली का तेल जले, मशालची का सर दुखे (खर्च कोई करे, बुरा कोई माने)। थूक-कर नहीं चाटा जाता (देकर ले लेना अनुचित है)। थूक में सत्तू नहीं सनता (आवश्यकता से अत्यन्त कम खर्च में काम नहीं होता)। दस की लाठी एक का बोझ (कई आदमियों

की मदद से भारी काम आसान हो जाता है) । दमड़ी की हँड़िया गई, कुत्ते की जात पहचानी गई (थोड़े ही में बेईमानी का पता चल गया) । दूध का जला मठा भी फूँक-फूँक कर पीता है (एक बार धोखा खाकर आदमी होशियार हो जाता है) । दुधार गाय की लात भी भली (जिससे लाभ हो, उसकी झिड़कियाँ भी सहनी पड़ती हैं) । दूर के ढोल सुहावने (दूर से कोई भी चीज अच्छी मालूम देती है) । दाल-भात में मूसलचन्द (बेकार दखल देना) । देशी मुर्गी विलायती बोल (बेमेल काम, बेढंगा काम) । दादा कहे बनिया गुड़ न दे (आसानी से काम न होगा, चालाक आदमी को केवल मीठी बोली से वश में नहीं किया जा सकता) । दुविधा में दोनों गये, माया मिली, न राम (एक साथ दो काम नहीं होते) । दोनों हाथ लड्डू (प्रत्येक दृष्टि से लाभ) । धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का (इधर-उधर भटकना) । नदी नाव संयोग (संयोग से मिलाप होना) । न देने के तेरह बहाने (बहानेबाजी से काम निकाल लेना) । नक्कारखाने में तूती की आवाज (सुनवाई न होना) । नदी में रहे मगर से बैर (जिसकी अधीनता में रहे उससे बैर करे) । न रहे बाँस, न बाजे बाँसुरी (निर्मूल कर देना) । नेकी और पूछ-पूछ (भलाई बिना कहे भी की जाती है) । न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी (न बड़ा प्रबन्ध होगा, न बड़ा काम होगा) । नौ की लकड़ी, नब्बे खर्च (थोड़े से फायदे के लिये बहुत ज्यादा खर्च करना) । नौ नगद न तेरह उधार (अधिक उधार लगाने से थोड़ा ही नगद लाभदायक होता है) । नंगा क्या नहाय क्या निचोड़े (गरीबी में लाज बचाना कठिन होता है) । नीम हकीम खतरे जान (अयोग्य व्यक्ति से हानि जरूर होगी) । नाम बड़े दर्शन थोड़े (गुण से अधिक प्रशंसा) । नौ जानते हैं, छः नहीं (बिलकुल सीधा) । नानी के आगे ननिहाल की बातें (अपने से अधिक जाननेवालों के सामने बढ़बढ़ कर बोलना) । पहले भीतर, तब देवतापितर (पेट भरना सबसे पहले) । पढ़े फारसी बेचे तेल, यह देखो किस्मत का खेल (भाग्य बलवान होता है) । पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं (पराधीनता सबसे बड़ा दुःख है) ! पानी पीकर जात पूछना (काम करके परिणाम सोचना) । पञ्चपरमेश्वर (पाँच आदमियों की राय माननी चाहिये) । प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः (यात्रा ही बिगड़ गई) । प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं (दौलत पाकर नशा चढ़ जाता है) । पूछे न आछे मैं दुलहिन की चाची (बिना बुलाये किसी

काम में दखल देना। बन्दर क्या जाने अादी का स्वाद (मूर्ख विद्वान् का आदर करना क्या जाने)। बिल्ली के भाग से छीका टूटा (संयोग अच्छा मिल गया)। बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख (भाग्य सबसे बलवान है)। बकरे की माँ कबतक खैर मनाये (हमेशा खतरे में रहना)। बाँझ क्या जाने प्रसव की पीड़ा (जिसे कष्ट नहीं हुआ, वह दूसरे का कष्ट क्या समझे)। बैल का बैल गया, नौ हाथ का पगहा गया (बहुत घाटा)। बैल न कूदे कूदे तंगी (मालिक के बल पर ही नौकर हिम्मत करता है)। भरी जवानी माँझा ढीला (जवानी में ही तन्दुरुस्ती का बिगड़ जाना)। भइ गति साँप छुछुन्दर केरी (दुविधा में पड़ना)। भागते भूत की लंगोटी भली (जाते हुए धन से जो बच जाय वही बहुत है)। भैंस के आगे बीन बजाये, वह भैंस बैठि पगुराय (मूर्ख के आगे गुण-प्रकाश नहीं करना चाहिये)। माल मुफ्त दिल बेरहम (दूसरे की कमाई खर्च करने में ममता नहीं होती)। मियाँ की दौड़ मस्जिद तक (संकुचित क्षेत्र तक प्रवेश)। मियाँ की दाढ़ी वाह-वाही में गई (झूठी प्रशंसा के पीछे तबाही)। मन चंगा तो कठौती में गंगा (मन शुद्ध है तो सब ठीक है)। मुख में राम बगल में छुरी (कपटी आदमी)। मान न मान मैं तेरा मेहमान (जबर्दस्ती किसीपर बोझा डालना)। मेढ़क को जुकाम (छोटे आदमियों का मान रखना, असंभव बात का होना)। मियाँजी की जूती मियाँजी के सिर (जिसका पाप उसीके सिर)। मानो तो देव न तो पत्थर (विश्वास से फल मिलता है)। मार-मार कर हकीम (जबर्दस्ती आगे बढ़ाना)। मँगनी के बैल के दाँत नहीं देखे जाते (मुफ्त में मिली वस्तु पर तर्क करना बेकार है)। रोग का घर खाँसी, झगड़े का घर हाँसी (अधिक दिल्लगी बुरी होती है)। रस्सी जल गई, पर ऐंठन न गई (बुरी हालत होने पर भी घमंड करना)। रुपया परखै बार-बार, आदमी परखै एक बार (भले-बुरे की पहचान एक ही बार में हो जाती है)। लूट में चर्खा नफा (लूट में जो भी मिल गया अच्छा है)। लश्कर में ऊँट बदनाम (दोष किसी-का, बदनामी किसीकी)। शठै: शाठ्यं समाचरेत् (बुरे के साथ बुरी तरह से पेश आना चाहिये)। सन्तोषं परमं सुखम् (सन्तोष से बढ़कर कुछ नहीं है)। संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति (जैसी संगति होगी वैसा ही गुण होगा)। शौकीन बुढ़िया, चटाई का लहँगा (बुरी तरह का शौक)। सब धान बाइस पसेरी (अच्छे-बुरे सबको एक समझना)। फुन्सी से भगन्दर हो गया (छोटी-सी

भूल के पीछे चलकर बहुत बड़ी हानि होती है)। सौ सयाने एक मत (चतुर आदमी मिलजुलकर काम पूरी कर लेते हैं)। साँप मरे लाठी न टूटे (बिना किसीको नुकसान पहुँचाये अपना काम निकल जाय)। सीधी उँगली से घी नहीं निकलता (सिधाई से काम नहीं चलता)। सत्तर चूहे खाय के बिल्ली चली हज को (सारी जिन्दगी पाप कमाकर अंत में भक्त बनना)। सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है (पैसावाला सबको पैसा ही वाला समझता है)। सारी रमायण पढ़ गये, सीता किसकी जोय (अधिक प्रसिद्ध बात नहीं समझना)। हाथ कंगन को आरसी क्या (प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या) ? हाथी चले बाजार, कुत्ता भुके हजार (सच्चे काम करनेवाले दूसरों की निन्दा की परवाह नहीं करते)। हमतुम राजी, क्या करेगा काजी (दो आदमी मिले रहें तो तीसरा कुछ नहीं कर सकता)। हाथी के दाँत दिखाने के और हैं, खाने के और (कहना कुछ, करना कुछ)। होनहार विरवान के होत चीकने पात (होनहार के लक्षण बचपन से ही दीखने लगते हैं)। हलुआई की दूकान दादा का फतिहा (दूसरे का अन्न खूब खाया जाता है)। हाजिर में हुज्जत नहीं (मुस्तैद आदमी का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता)। हाथ सुमरनी, बगल कतरनी (ऊपर से भगत, भीतर से ठग)। हँसुए के ब्याह में खुरपे का गीत (अनमेल काम)।

नोट—किसी कथन की पुष्टि के लिये अथवा भाव को और विशुद्ध बनाने के लिये नीति-विषयक पद या पद्यांश भी कहावत की भाँति प्रयुक्त होते हैं। जैसे—साईं घोड़न के अछत गदहन पायो राज। चार दिनों की चाँदनी फेर अँधेरो पाख। पराधीन सपने सुख नाहीं। सुर्खरू होते हैं इन्साँ ठोकरें खाने के बाद। अँधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा। मन पछतैहैं अवसर बीते। तिरिया तैल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार। जातपाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि को होई। रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून। पानी गये न ऊबरे, मोती मानुष चून, इत्यादि।

कहावत का प्रयोग—

(१) हमलोगों को उचित है कि सदा दूसरों की भलाई किया करें। जो तन, मन, धन से परोपकार करते हैं वे ही धन्य हैं। यदि अपने ही लिये जन्म गँवा दिया तो क्या किया ? **अपना पेट तो गधा भी भर लेता है !**

(२) भाई, क्या कहें ! ड्योढ़ी की गति बड़ी बुरी है। पुराने और तजुर्बेकार लोगों की वहाँ कुछ भी पूछ नहीं। कुछ चालबाज लोगों ने ऐसा प्रपंच रच रक्खा है कि उनके सामने किसीकी नहीं चलती। बेचारे सच्चे और सीधे-सादे मारे-मारे फिरते हैं। अफसोस है—**साईं घोड़न के अछत गदहन पायो राज।**

(३) हमारे देश के अमीरों की बात ही न्यारी है। वे सदा खुशामदी लोगों के हाथ के खिलौने बने रहते हैं। इन्हींके कहने पर वे चला करते हैं और खुद कुछ भी नहीं सोचते-विचारते। यदि वे अपनी आँखों सभी काम देखा करें तो किसी प्रकार की भूल नहीं हो, परन्तु यह कभी नहीं होने का। उनको क्या कमी है जो इन झंझटों में पड़ें। जो कुछ खुशामदी लोगों ने समझा दिया उसीके अनुसार बेपेंदी के लोटे की तरह इधर-उधर लुढ़कते फिरे। ठीक है—**बड़े लोगों के आँखें नहीं होतीं, कान होते हैं।**

(४) संसार में किसीके दिन एक से नहीं जाते। एक समय था, जब आर्य-जाति की चर्चा सारे संसार में थी। सभी इसकी सभ्यता के आगे सिर झुकाते थे। आज वही अज्ञान, द्वेष, कलह और फूट के कारण अवनति के गढ़े में गिर गई है। ठीक है—**फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।**

(५) मुख में चारि वेद की बातें, मन परधन परतिय की घातें।
धनि बगुला भगतन की करनी; **हाथ सुमरनी बगल कतरनी।**

(६) बिन समरथि झूठी आशा दै, काहुहिं कर न खराब।
उस दाता से सूम भला, जो जल्दी देइ जवाब॥

(७) अथिर अपव्यय जनित जस अवसि नसाइहि साख।
चार दिना की चाँदनी, फेर अंधेरो पाख।

(८) जहँ राखन चाहहुँ व्यवहार, अधिक रखहुँ तहँ न्याय विचार।
लेहु न भूलि सकुच कर नाम, **खरी मजूरी चोखा काम॥**

(९) इष्ट सिद्धि में परै जु विघ्न, तबहू मन न करो उद्विग्न।
होइहि अवसि अटूट श्रम करो, **सतुआ बाँधि के पीछे परो॥**

अभ्यास (Exercise)

१. निम्नलिखित प्रत्येक कहावत का अभिप्राय (Significance) प्रयोग द्वारा दिखाओ।

मन चंगा कठौती में गंगा। टाट पर रेशम की बखिया। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

(I. A. &. I. Sc. Examination)

मोहरों की लूट और कोयलों पर छाप। अपनी डफली आप बजाना। मियाँ की दौड़ मसजिद तक।

(I. A. &. I Sc. Examination)

२. नीचे लिखे प्रत्येक अभिप्राय को कहावत में बदलो।

घर की वस्तु की कदर नहीं। बुरे काम से बुराई ही मिलती है। किसी बड़े काम का थोड़ा प्रबन्ध। अपनी चीज को कोई बुरा नहीं कहता। कपट से एक ही बार काम होता है। थोड़े से क्या होता है? एक ही जगह दो का अधिकार नहीं हो सकता। बहुत परिश्रम का थोड़ा फल। दोषी बिना पूछे ही बोल उठता है। कहे सो करे। सबसे अलग ढंग। जड़ से मिटा देना। किसी काम के लिये ऐसा प्रबन्ध करना जो न हो सके।

तेरहवाँ अध्याय

भाषा-व्यवहार

भाषा की शैली (Style)

"भाषाओं के तीन विभाग होते हैं। यथा—घराऊ भाषा, गद्य की भाषा और पद्य की भाषा।"

—भारतेन्दु।

घराऊ भाषा में प्रान्त-भेद से भिन्नता रहती है। एक ही शब्द भिन्न-भिन्न प्रान्त में भिन्न-भिन्न प्रकार से बोला जाता है। साहित्य की भाषा में यह भेदभाव नहीं। अब इसी भाषा का व्यवहार घर में भी होना चाहिये, जैसा कि होता जा रहा है। यह वही भाषा है जिसमें सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ निकाली जा रही हैं। इसको साधुभाषा या परिष्कृत भाषा भी कह सकते हैं। ऐसी भाषा लिखने में भाषारीति अर्थात् शब्दयोजना के प्रकार को पूर्ण रीति से निबाहना चाहिये। "हिन्दी जिनकी मातृभाषा है वे लिङ्ग, वचन, विभक्ति, क्रियाओं के रूप, रोजमर्रे और मुहावरे (वाग्धारा) आदि का बर्ताव

जैसा करते हैं उसको ठीक मान करके उसका अनुसरण 'साधुभाषा' में यथासम्भव सब किसीको करना चाहिये।" —पं० केशवराम भट्ट।

नीचे हमने व्यवहार की हिन्दी, विशुद्ध हिन्दी और ठेठ हिन्दी के आदर्श दिखाये हैं। ये वर्त्तमान हिन्दी के अच्छे उदाहरण हैं। लोगों को उचित है कि इन्हीं आदर्शों पर ध्यान रखकर विषय की गम्भीरता में तारतम्य के अनुसार अपने वक्तव्य को सरल और सुबोध बनावें। उन्हें वागाडम्बरों द्वारा पाठकों पर यह प्रकट करने की चेष्टा न करनी चाहिये कि वे कोई बड़ी ही गम्भीर और बड़ी ही अलौकिक बात कह रहे हैं। इस प्रकार की जटिल भाषा को अनेक पाठक और समालोचक उच्च श्रेणी की भाषा कहते हैं। जिस रचना में संस्कृत के सैकड़ों क्लिष्ट शब्द हों, जिसमें संस्कृत के अनेकानेक वचन और श्लोक उद्धृत हों, जिसमें यूरोप तथा अमेरिका के अनेक देशों, पंडितों और लेखकों के नाम हों, जिसमें अंगरेजी नाम, शब्द और वाक्य अंगरेजी ही में लिखे हों उस रचना को लोग बहुधा पांडित्यपूर्ण समझते हैं, परन्तु यह गुण नहीं, दोष है। हिन्दी में यदि कुछ लिखना हो तो भाषा ऐसी लिखनी चाहिये जिसे केवल हिन्दी जाननेवाले भी सहज ही में समझ जायँ। संस्कृत और अंगरेजी शब्दों से लदी हुई भाषा से पाण्डित्य चाहे भले ही प्रकट हो, पर उससे ज्ञान और आनन्द दान का उद्देश्य अधिक नहीं सिद्ध हो सकता। यदि एकमात्र पाण्डित्य दिखाने के उद्देश्य से किसी लेख या पुस्तक की रचना की गई हो तो भी ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिये जिसमें अधिकांश पाठक समझ सकें तभी रचना का उद्येश्य सफल होगा—तभी उससे पढ़नेवालों के ज्ञान और आनन्द की वृद्धि होगी। —पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी।

यदि कोई विवादग्रस्त विषय लिखना होवे, किंवा कोई गूढ़ मीमांसा करनी हो, अथवा मनोभावव्यञ्जक कोई उपयुक्त शब्द भाषा में न प्रात होता होवे तो हम संस्कृत शब्दों से हिन्दी लिखने के समय अवश्य काम ले सकते हैं—ऐसी अवस्था में हमको कोई दोष-भागी भी न बनावेगा। किन्तु, यदि हम कोई साधारण बात लिखना चाहते हैं और भाषा के भण्डार से आवश्यकतानुसार शब्द प्रात हो सकने पर भी संस्कृत शब्दों की तृष्णा नहीं त्यागते हैं और दौड़कर भाषा के चिकने कोमल शब्दों को संस्कृत का पूर्व रूप देने का ही आग्रह करते हैं, तो हम दोषभागी हैं। —पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय।

नोट—भारतेन्दुजी की राय में कविता की भाषा दूसरी ही है परन्तु आजकल सभी विद्वान् इसी साधुभाषा (खड़ी बोली) को कविता की भाषा बनाने में लगे हुए हैं। जो समय के अनुसार बहुत ही उचित है। इस भाषा में 'प्रियप्रवास, भारत-भारती, वीरपंचरत्न, मराली, रेणुका, एकलव्य' इत्यादि बहुत ही उत्तम काव्य-ग्रन्थ निकल चुके और आगे भी निकलने की सम्भावना है।

१ व्यवहार की हिन्दी—

"...बोलचाल में संस्कृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्द ऐसे घुल-मिल गये हैं जैसे दूध में मीठा। उन्हें भी अब हिन्दी का अङ्ग समझकर बेखटके बरतना चाहिये। फारसी, अरबी होने के कारण नित्य की बोलचाल में प्रचलित शब्दों को हिन्दी में नहीं आने देना भाषा को अस्वाभाविक, कृत्रिम, नीरस और दरिद्र बनाना है।"

—**पं० केशवराम भट्ट।**

"संस्कृत, फारसी, अंगरेजी आदि भाषाओं के जो शब्द प्रचलित हो गये हैं, उनका प्रयोग हिन्दी में होना ही चाहिये। वे सब अब हिन्दी के शब्द बन गये हैं। उनसे घृणा करना उचित नहीं।"

—**पं० केशवराम भट्ट।**

उदाहरण—

"महाराज, फिर सन्तोष ने बड़ा काम किया, राजा-प्रजा सबको अपना चेला बना लिया। अब हिन्दुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। रोजगार न रहा तो सूद ही सही; वह भी नहीं तो घर ही का सही। रोटी ही को सराह-सराह कर खाते हैं, उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्य-मता ने भी सन्तोष को बड़ी सहायता दी। व्यापार को इन्होंने मार भगाया। फिर महाराज, अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किये।"

—**भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।**

चारो लड़के ऐसे सुन्दर थे कि मानों विधाता ने सारी सुन्दरता उन्हींमें खर्च कर दी हो। वे ज्यों-ज्यों बड़े होने लगे त्यों-त्यों उन्होंने सब तरह की विद्याएँ सीख लीं। लिखना, पढ़ना, कुश्ती लड़ना, तीर चलना, घोड़े की सवारी, शिकार खेलना, सभी बातें उन्होंने जल्द सीख डालीं। चारो राजकुमार अपने से बड़े लोगों की इज्जत करते थे। उनके सामने लड़ते-झगड़ते न थे। ऐसे अच्छे लड़के पाकर राजा और रानियाँ, सब बहुत खुश हुए।

—**पं० रामजी लाल शर्मा**

२. विशुद्ध हिन्दी—

हमारे मत में हिन्दी और उर्दू * दो न्यारी-न्यारी भाषाएँ हैं। हिन्दी इस देश के हम बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमान और फारसी पढ़े-लिखे हुए हिन्दुओं की बोल-चाल है। हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी-फारसी के। परन्तु, कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी, फारसी के शब्दों बिना हिन्दी न बोली जाय और, न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी, फारसी के शब्द भरे हों।

—राजा लक्ष्मणसिंह

उदाहरण—

कण्व की बेटी शकुन्तला यही है। उस ऋषि का हृदय बड़ा कठोर होगा जिसने ऐसी सुकुमारी को ऐसा कठिन काम सौंपा है और वृक्षों की छाल के वस्त्र पहराये हैं। इस सुन्दरी को जिसके देखते ही मन हाथ से निकल जाता है, तपस्विनी बनाना ऐसा है जैसे नील-कमल की पंखुरी से सूखा छोंकर काटना। बकले की कंचुकी इसको शोभा नहीं देती है जैसे नये फूल को पुराने पत्ते से ढाँकना मेल नहीं खाता। नहीं-नहीं, बकले का वस्त्र इस मोहिनी के गात को शोभा देता ही है। यह मैंने भूल के कहा कि नहीं देता, क्योंकि कमल के फूल पर काई भी अच्छी लगती है और पूर्णचन्द्र में काली रेखा भी खुलती है। ऐसे ही इस पद्मिनी का अंग बकले पहरने से भी मनोहर दिखाई देता है। सत्य है, रूपवती को सभी सोहता है।

—शकुन्तला

३. ठेठ हिन्दी—

"जैसे शिक्षित लोग आपस में बोलते-चालते हैं, भाषा वैसी ही हो, गँवारी न होने पावे, उसमें दूसरी भाषा अरबी, फारसी, तुर्की, अंगरेजी इत्यादि का कोई शब्द शुद्ध रूप या अपभ्रंश रूप से न हो, भाषा-अपभ्रंश संस्कृत शब्दों से प्रयुक्त हो और यदि कोई संस्कृत शब्द उसमें आये भी तो वही जो अत्यन्त प्रचलित हो और जिसको एक साधारण जन भी बोलता हो। जहाँ तक मैं समझता हूँ ठेठ हिन्दी की परिभाषा भी यही हो सकती है।

—पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय।

---

* उर्दू—"ख्वाब में तसवीर का बोसा लेने से साहबे तसवीर के होठों का नीला पड़ जाना बजाय इसके कि साहबे तसवीर की नजाकत साबित करे बोसा लेनेवाले का जादूगर होना साबित करता है।"

—अलताफ हुसैन हाली

उदाहरण—

एक ग्यारह बरस की लड़की अपने घर के पास की फुलवारी में खड़ी हुई किसीकी बाट देख रही है। सूरज डूबने पर है, बादल में लाली छाई है, बयार जी को ठंडा करती हुई धीरे-धीरे चल रही है। थोड़ी देर में सूरज डूबा, कुछ झुटपुटा-सा हो गया फुलवारी की एक ओर से कोई उसी ओर आता दीख पड़ा जिस ओर वह लड़की खड़ी थी। कुछ देर में वह आकर उस लड़की के पास खड़ा हो गया, लड़की ने देखकर कहा—"देवनन्दन ! अब तक कहाँ थे ? मैं बहुत देर से यहाँ खड़ी बाट जोह रही हूँ।"

—ठेठ हिन्दी का ठाट

नोट—अलंकार के विचार से भाषा के दो भेद हैं। अलंकृत और अनलंकृत। अलंकृत भाषा में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों * का विधिपूर्वक प्रयोग होता है, परन्तु अनलंकृत में इन सबोंकी आवश्यकता नहीं। अलंकृत भाषा उच्च श्रेणी के सिद्धहस्त लेखक ही लिख सकते हैं। विद्यार्थियों को उचित है कि वे एक-ब-एक इस बखेड़े में नहीं पड़ें। उन्हें समझ लेना चाहिये कि अनलंकृत भाषा में भी रचना मधुर, सुन्दर और ओजस्विनी हो सकती है। जब सरल रचना करते-करते बुद्धि परिष्कृत हो जाती है तब आप-ही-आप वह प्रौढ़, परिमार्जित और अलंकृत होने लगती है। नीचे दोनों प्रकार की रचनाओं से उदाहरण दिये जाते हैं—

अनलंकृत—सूर्यास्त हुआ। चारों ओर अन्धकार छा गया। नलिनी मुरझा गई। पक्षी बोलने लगे। राजभवन में दीप जलाये गये।

अलंकृत—सूर्यरूपी सिंह के विवरस्थ होने से अन्धकाररूपी छोटे जीवों ने देश को आक्रमण किया। नलिनी को अपने वल्लभ तमारि के विरह से भ्रमररूपी आँसू ढरकर कमलरूपी नेत्रों को बन्द करते देख पक्षी भी समवेदना प्रकट करने लगे। इसके अनन्तर प्रज्वलित दीपशिखा और मणि की ज्योति से राजभवन में अप्रकाश का नाश हुआ।

(कादम्बरी)

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे अनुच्छेद को विशुद्ध हिन्दी में लिखो—

इसके बाद वे आप भी गद्दी से उठकर महल में गये, खाना खाकर सोने

* इसका पूर्ण वर्णन हमारे 'अलंकार चन्द्रोदय' में मिलेगा।

के कमरे में बिस्तरे पर लेटे और ड्योढ़ीदार को वैशम्पायन के लाने का हुक्म दिया, ड्योढ़ीदार जल्दी से वैशम्पायन को सोने के कमरे में ले आया।

२. नीचे लिखे अनुच्छेद को ठेठ हिन्दी में लिखो—

इसे श्रवणकर वाटिका की एक ओर से देवबाला ने अपने महल को प्रस्थान किया। पश्चात् देवनन्दन भी चिन्ता करते-करते वाटिका से बहिर्गत हुआ।

३. नीचे लिखे अनुच्छेद को व्यवहार की हिन्दी में लिखो—

अब वर्षा विगत शरद ऋतु आई। मेघदल दूर हुआ और सूर्य ने अपने तेज से पंकमय मार्ग को शुष्क किया। नदी और सरोवर इत्यादि का पानी निर्मल हुआ। राजहंस नदी के तीर पर मधुर सुर से कलरव करने लगे। यात्री लोगों का कष्ट दूर हुआ और चतुर्दिक धान की मञ्जरी दिखाई देने लगी और जल से प्रीति हटने लगी। (कादम्बरी)

४. नीचे लिखे अनुच्छेद को अलंकृत हिन्दी में लिखो—

वर्षाकाल का समय आ पहुँचा। नीले बादल से आकाश छिप गया। सूर्य के दर्शन दुर्लभ हुए। चारों ओर अन्धकार छा गया। मेघ के गर्जन और बिजली की चमक से हृदय कम्पायमान होने लगा। (कादम्बरी)

५. नीचे लिखे अनुच्छेद को अनलंकृत हिन्दी में लिखो—

तिमिरनाशक के भय से छिपा हुआ तिमिर प्रकट हुआ। सन्ध्या के क्षय होने से शोक से दुःखित रात्रि अन्धकाररूपी मलिन वस्त्र धारण करके दृष्टिगोचर हुई। ग्रहरूपी चोर भी जो सूर्य के प्रताप से छिपे थे, बाहर निकले। (कादम्री)

चौदहवाँ अध्याय

अशुद्धियाँ और भ्रम

हमने नीचे 'अपप्रयोग' की बातें लिखी हैं इनके प्रमाण स्वरूप प्रायः नीचे के पाठ हैं। यहाँ केवल विद्यार्थियों के लाभ के लिये ऐसा किया गया है।

१. उच्चारण, संयोग और अक्षर सम्बन्धी अशुद्धियाँ--

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अनिष्ठ	अनिष्ट	उपरोक्त	उपर्युक्त
अभ्यस्थ	अभ्यस्त	उच्छ्वास	उच्छ्वास
अमदी	आदमी	उरु	ऊरु
अस्थान	स्थान	कचित	क्वचित्
अमधुर, अरमुद	अमरूद	कुशाशन	कुशासन
		कौतुहल	कौतूहल
अर्च्चणा	अर्चना	कलस	कलश
अर्थात	अर्थात्	गर्द्दव	गर्दभ
अहिल्या	अहल्या	गडुर	गरुड़
अक्षोहिनी	अक्षौहिणी	गर्जण	गर्जन
स्पष्ठ	स्पष्ट	गगण	गगन
अगामी	आगामी	गनित	गणित
अनुकुल	अनुकूल	गनना	गणना
आर्र	आर्द्र	गुणि	गुणी
आधीन	अधीन	गृहीता	ग्रहीता
आमावश्या	अमावास्या	गृहीत	ग्रहीत
आशिर्वाद	आशीर्वाद	घनिष्ट	घनिष्ठ
आकांछा	आकांक्षा	च्युत्	च्युत
उचित्	उचित	चहुँपना	पहुँचना
उपर	ऊपर	छात्र	छात्र
उत्पात्	उत्पात	जागृत	जाग्रत्, जागरित
उनमीलीत	उन्मीलित		

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
त्याज	त्याज्य	प्रतिकुल	प्रतिकूल
तड़ित	ताड़ित	प्रत्युत्	प्रत्युत
तालाव	तालाब	ब्रिहस्पति	बृहस्पति
दधिची	दधीचि	चात्र	छात्र
दशहारा	दशहरा	बेराम	बीमार
दर्शण	दर्शन	बुढ़ा	बूढ़ा
दिपिका	दीपिका	भविष्यत	भविष्यत्
दुर्णाम	दुर्नाम	भवीतव्यता	भवितव्यता
देहिक	दैहिक	भीस्म	भीष्म
द्वारिका	द्वारका	भरथ	भरत
नरायन	नारायण	भागवत्	भागवत
निसित	निशित	भागिरथी	भागीरथी
निमिलित	निमीलित	भुधर	भूधर
निरिह	निरीह	मिमांसा	मीमांसा
नीरक्षन	निरीक्षण	मतबल	मतलब
निसाफ	इन्साफ	मठ्ठी	मट्ठी
नुपुर	नूपुर	महत्व	महत्त्व
पुष्टी	पुष्टि	मूहुर्त	मुहूर्त्त
पुष्कर्नी	पुष्करिणी	मुमुषु	मुमूर्षु
पूराय	पुराय	मध्याह्ण	मध्याह्न
प्रत्यूस	प्रत्यूष	यथेष्ठ	यथेष्ट
पुस्प	पुष्प	रसायण	रसायन
परिक्षन	परीक्षण	रमायन	रामायण
पक्क	पक्व	लक्ष्मीमान्	लक्ष्मीवान्
प्रांगन	प्रांगण	लछिमन	लक्ष्मण
पैत्रिक	पैतृक	बृजभाषा	ब्रजभाषा
पिसाच	पिशाच	वाहनी	वाहिनी
प्रवर्त	प्रवृत्त	विभिषिका	विभीषिका
प्रन्तु	परन्तु	वेस्त	व्यस्त

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
विष्मर्न	विस्मरण	सरवर	सरोवर
विषयिनी	विषयिणी	सिन्घ	सिंह
व्योहार	व्यवहार	शान्तवना	सान्त्वना
शसि	शशि	स्वरस्वती	सरस्वती
शत्रुह्न	शत्रुघ्न	श्रद्धाभाजनीय	श्रद्धाभाजन
शारिरिक	शारीरिक	स्वास्थ	स्वास्थ्य
शोनित	शोणित	सक्षम	क्षम
शिवी	शिवि	स्त्रवण	श्रवण
श्राप	शाप	सन्तुष्ठ	सन्तुष्ट
सन्मान	सम्मान	हरीशचन्द्र	हरिश्चन्द्र
स्मर्ण	स्मरण	हिन्दूस्तान	हिन्दुस्तान
सिन्दुर	सिन्दूर	हिन्दु	हिन्दू
सुर्य	सूर्य	हिरणमयी	हिरण्मयी
सुश्रुषा	शुश्रूषा		

२. प्रत्यय-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

(क) तद्धित

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
उदासीन्यता	उदासीनता	द्रविभूत	द्रवीभूत
	औदासिन्य	धैर्यता	धैर्य
उत्कर्षता	उत्कृष्टता, उत्कर्ष	निश्चयता	निश्चय
ऐक्यता	ऐक्य, एकता	पैत्रिक	पैतृक
कौशलता	कौशल	पर्वतीय	पार्वत्य, पार्वतीय
गौरवत्व	गौरव, गुरुत्व	पौर्वात्य	प्राच्य
ज्ञानमान्	ज्ञानवान	बुद्धिमानता	बुद्धिमत्ता
त्रिवार्षिक	त्रैवार्षिक	बुद्धिवान्	बुद्धिमान्
दाशरथी	दाशरथि	बाल्मिकी	बाल्मीकि
दंशित	दंष्ट्र	बाहुल्यता	बहुलता, बाहुल्य
दारिद्रता	दरिद्रता, दारिद्र्य	भाग्यमान	भाग्यवान्
द्वैवार्षिक	द्विवार्षिक	भास्मिभूत	भस्मीभूत
दाइत्व	दायित्व	भागिरथी	भागीरथी

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
महिमामय	महिममय	साम्यत्व	साम्य
महानता	महत्ता	स्वास्थ	स्वास्थ्य
मैत्रता	मित्रता	सौजन्यता	सौजन्य, सुजनता
यावदीय	यावतीय	सौन्दर्यता	सौन्दर्य
राजनैतिक	राजनीतिक	सख्यता	सख्य
रक्तिमामय	रक्तिममय	सौहृयता	सौहार्द सोहार्द्य
राशिकृत	राशीकृत	सप्ताहिक	साप्ताहिक
लघुकरण	लघूकरण	सौकार्य	सौकर्य
लघूतम	लघुतम	सतता	सत्ता
बाह्यिक	बाह्य	सर्वजनिन	सार्वजनीन
वैधव्यता	वैधव्य	स्थायीत्व	स्थायित्व
विद्यामान्	विद्यावान	समिचिन	समीचीन
श्रीवान्	श्रीमान्	सम्बन्धीय	साबन्धी
षष्टम	षष्ठ	सम्भ्रान्तशाली	सम्भ्रान्त, सम्भ्रमशाली

(ख) कृत्

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
असह्यनीय	असह्य, असहनीय	ध्वंश	ध्वंस
अश्रुवती	अश्रुमति	निशिथ	निशीथ
अजानित	अज्ञात	नमित	नत
अस्तमान	अस्तायमान	पौरुषत्व	पौरुष
आवश्यकीय	आवश्यक	प्रसारण	प्रसार
अधीनस्थ	अधीन	पूज्यास्पद	पूजास्पद
अकाट्य	अखण्डनीय	भाग्यमन्त	भाग्यवन्त
आलस्यता	आलस्य	भिज्ञ	अभिज्ञ
उच्छन्न	उत्सन्न	मान्यनीय	मान्य, माननीय
ग्राहनीय	ग्राह्य, ग्रहणीय	मज्जित	मग्न
गृहीता	ग्रहीता	मृत्यमान	म्रियमाण
जागरुक	जागरूक	मुखस्त	मुखस्थ
दोषणीय	दूष्य, दूषणीय	लक्ष्मीमान्	लक्ष्मीवान्
धैर्यता	धैर्य	लक्ष्यणीय	लक्षणीय

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
विकिर्ण	विकीर्ण	सृजन	सर्जन
वीभिषिका	विभीषिका	स्वातंत्र	स्वातंत्र्य
विकीरण	विकिरण	सौन्दर्यता	सौन्दर्य
व्यवहारित	व्यवहृत	सम्भ्रान्तशाली	सम्भ्रान्त
व्याकुलित	व्याकुल	सिञ्चित	सिक्त
श्रीवान्	श्रीमान्	सराहनीय	श्लाघनीय
सौजन्यता	सौजन्य	सिञ्चन	सेचन

नोट—हमने ऊपर जिन शब्दों को अशुद्ध बताया है, वे संस्कृत प्रणाली के अनुसार अशुद्ध हैं, परन्तु उनमें से कई को हिन्दी के विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। जैसे—

१. हिन्दुओं का **साम्यत्व** निश्चय करके धीरे से कहते हैं—(भारतेन्दु)

२. बिना विचारे **अकाट्य** सिद्धान्त न मान लें (विभक्तिविचार)

३. हिन्दुजाति की **महानता** के प्राण हिन्दी भाषा ही हैं। (प्रभा)

४. विचार रखना बहुत ही **आवश्यकीय** है। (पं० केशवराम भट्ट)

(३) समास सम्बन्धी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
आत्मापुरुष	आत्मपुरुष	जगधात्री	जगद्धात्री
अधिकारी-वर्ग	अधिकारि-वर्ग	जगदम्बे	जगदम्ब
अहिर्निश	अहर्निश	दुरात्मागण	दुरात्मगण
आधिक्यता	आधिक्य	देवीदास	देविदास
अकाट्य	अखंडनीय	दिवारात्री	दिवारात्र
अष्टवक्र	अष्टावक्र	निर्दोषी	निर्दोष
अहोरात्रि	अहोरात्र	निर्गुणी	निर्गुण
एकत्रित	एकत्र	निर्लज्जा	निर्लज्ज
कृतघ्नी	कृतघ्न	निशिशेष	निशाशेष
कालीदास	कालिदास	नीरोगी	नीरोग
कर्त्तागण	कर्तृगण	निर्धनी	निर्धन
गुणीगण	गुणिगण	निरपराधी	निरपराध
चंडीदास	चंडिदास	नेतागण	नेतृगण

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
पक्षीगण	पक्षिगण	विद्यार्थीगण	विद्यार्थिगण
पक्षीराज	पक्षिराज	बारम्बार	बारंबार
पिताभक्ति	पितृभक्ति	शिक्षार्थीगण	शिक्षार्थिगण
पक्षीशावक	पक्षिशावक	शिरोपीड़ा	शिरःपीड़ा
प्रफुल्लित	प्रफुल्ल	शशीभूषण	शशिभूषण
पितादत्त	पितृदत्त	सापराधी	सापराध
प्राणीवृन्द	प्राणिवृन्द	सकुशलपूर्वक	सकुशल
पिता-माता	माता-पिता	सानन्दित	सानन्द
पूज्यास्पद	पूजास्पद	सकृतज्ञ	कृतज्ञ
मातदेव	मातृदेव	सचेष्टि	सचेष्ट
मनान्तर	मतान्तर	स्वामी-भक्त	स्वामिभक्त
मंत्रीवर	मंत्रिवर	सदोपदेश	सदुपदेश
माताहीन	मातृहीन	सन्मुख	सम्मुख
भ्राताद्वय	भ्रातृद्वय	सक्षम	क्षम
भ्रातागण	भ्रातृगण	सतोगुण	सत्वगुण
भ्रातृपुत्र	भ्रातुःपुत्र	सशंकित	सशङ्क, शङ्कित
महात्मागण	महात्मगण	सलज्जित	सलज्ज, लज्जित
महाराजा	महाराज	सविनयपूर्वक	सविनय
मनीषीगण	मनीषिगण	सावधानतापूर्वक	सावधान, अवधानपूर्वक
योगीवर	योगिवर	सुकेशिनी	सुकेशी
वक्तागण	वक्तृगण	सुगन्धी	सुगन्ध
रोगी-सेवा	रोगि-सेवा	हस्ताक्षेप	हस्तक्षेप
राजापथ	राजपथ	हंसराज	राजहंस
राजागण	राजगण	हस्तीयूथ	हस्तियूथ

नोट—मातृ-पितृ-हीन = माता और पिता से रहित । माता-पितृहीन = माता के पिता से रहित ।

(४) सन्धि सम्बंधी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अत्याधिक	अत्यधिक	अधतल	अधस्तल
अत्योक्ति	अत्युक्ति	अधगति	अधोगति

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अद्यपि	अद्यापि	नमष्कार	नमस्कार
अनुमत्यानुसार	अनुमत्यनुसार	निरस	नीरस
अविस्कार	आविष्कार	निरवान	निर्वाण
अक्षोहिणी	अक्षौहिणी	निरोग	नीरोग
अधस्पतन	अधःपतन	पश्वाधम	पश्वधम
अन्तस्पुर	अन्तःपुर	पयोपान	पयःपान
अन्तष्करण	अन्तःकरण	पित्रीण	पितृण
आष्पद	आस्पद	प्रोढ़	प्रौढ़
इतिपूर्व	इतःपूर्व	पुनरचना	पुनारचना
उज्वल	उज्जवल	पुरष्कार	पुरस्कार
उपरोक्त	उपर्युक्त	पुनराभिनय	पुनरभिनय
किम्बदन्ती	किंवदन्ती	बारम्बार	बारंबार
गमनान्तर	गमनानन्तर	भाष्कर	भास्कर
चक्षुरोग	चक्षूरोग	भूम्याधिकारी	भूम्यधिकारी
जगबन्धु	जगद्बन्धु	भविष्यत्वाणी	भविष्यद्वाणी
जगधात्री	जगद्धात्री	मनान्तर	मनोन्तर
जगतेश	जगदीश	मनोकष्ट	मनःकष्ट
जात्याभिमान	जात्यभिमान	महदुपकार	महोपकार
जाग्रतावस्था	जाग्रदवस्था	मरुद्यान	मरूद्यान
जगरनाथ	जगन्नाथ	मनहर	मनोहर
ज्योतिन्द्र	ज्योतिरिन्द्र	मनमोहन	मनोमोहन
तरुछाया	तरुच्छाया	मनयोग	मनोयोग
तिरिष्कार	तिरस्कार	मनोसाधना	मनःसाधना
तदोपरान्त	पदुपरान्त	मनष्काम	मनस्काम
		यशोइच्छा	यशःइच्छा
दुस्कर	दुष्कर	यशलाभ	यशोलाभ
द्वीपानतर	द्वीपान्तर	रजोतम	रजस्तम
दुरावस्था	दुरवस्था	वशम्वद	वशंवद
नभमंडल	नभोमंडल	वयक्रम	वयःक्रम

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
वयवृद्ध	वयोवृद्ध	सन्मत	सम्मत
वयोप्राप्त	वयःप्राप्त	सम्बाद	संवाद
विपद्पात	विपत्पात	सम्बरण	संवरण
विछेद	विच्छेद	सन्यासी	संन्यासी
शिरोपीड़ा	शिरःपीड़ा	सद्यजात	सद्योजात
शिरछेद	शिरच्छेद	सरवर	सरोवर
शिरोपरि	शिरउपरि	स्वयम्बर	स्वयंवर
शिरमणि	शिरोमणि	सम्मिलन	सम्मेलन
सदोपदेश	सदुपदेश	हस्ताक्षेप	हस्तक्षेप
सन्मान	सम्मान, संमान	हृद्कम्प	हृत्कम्प
सन्मुख	सम्मुख	हृतपिन्ड	हृत्पिण्ड

(५) पुनरुक्ति सम्बन्धी अशुद्धियाँ

असंख्य प्राणिगण	असंख्यप्राणी, प्राणिगण	पूज्यनीय	पूज्य, पूजनीय
		पुज्यास्पद	पूजास्पद
आकण्ठपर्यन्त	आकण्ठ, कण्ठपर्यन्त	यौवनावस्था	यौवन, युवावस्था
अपने स्वाधीन	स्वाधीन	समतुल्य	सम, तुल्य
अधीनस्थ	अधीन	सुगन्धसौरभ	सुगन्ध, सौरभ
केवलमात्र	केवल, मात्र	स्वत्वाधिकार	स्वत्व, अधिकार
गोपनीय	गोप्य, गोपनीय	समस्तछात्रवृन्द	समस्तछात्र, छात्रवृन्द
ग्राह्ययोग्य	ग्रहणयोग्य	सदासर्वदा	सदा, सर्वदा
ताण्डवनृत्य	ताण्डव	सर्वस्वधन	सर्वस्व, धन
निजस्वधन	निजस्व, निजधन	हस्तियूथ समूह	हस्तियूथ

(६) णत्व और षत्व सम्बन्धी अशुद्धियाँ

अग्रहायन	अग्रहायण	आविस्कार	आविष्कार
अभिसेक	अभिषेक	आनुसङ्गिक	आनुषङ्गिक
अभिभासन	अभिभाषण	कंकन	कंकण
अनुसङ्ग	अनुषङ्ग	गगण	गगन
अपरान्ह	अपराह्न	चतुस्पार्श्व	चतुष्पार्श्व
आन्हिक	आह्निक	चिन्ह	चिह्न

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
तिरष्कार	तिरस्कार	मध्यान्ह	मध्याह्न
दुर्णाम	दुर्नाम	मृन्मय	मृण्मय
निसाद	निषाद	रामायन	रामायण
निपुन	निपुण	वर्न	वर्ण
प्रान्ह	प्राह्ण	वर्निक	वर्णिक
पूर्वान्ह	पूर्वाह्ण	वहि्ण	वह्नि
पितृस्वासा	पितृष्वसा	वानी	वाणी
पुन्य	पुण्य	वास्प	वाष्प
पुरष्कार	पुरस्कार	वारानसी	वाराणसी
परिस्कार	परिष्कार	विसन्न	विषण्ण
प्रनाम	प्रणाम	विसाद	विषाद
प्रनिपात	प्रणिपात	विसमता	विषमता
प्रनय	प्रणय	वानिज्य	वाणिज्य
फाल्गुण	फाल्गुन	शोनित	शोणित
ब्राह्मन	ब्राह्मण	सुसुप्ति	सुषुप्ति
बहिस्कार	बहिष्कार	सुसमा	सुषमा
भष्म	भस्म	सूर्पनखा	सूर्पणखा
मनि	मणि		

(७) विशेषण और विशेष्य सम्बन्धी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
आश्चर्यदृश्य	आश्चर्यजनक	सन्तोषचित्त	सन्तुष्टचित्त
गोपन कथा	गोपनीय कथा	साध्य को प्रमाण किया	साध्य को प्रमाणित किया
निश्चयपदार्थ	निश्चितपदार्थ		
लब्धप्रतिष्ठित	लब्धप्रतिष्ठ	सावकाश नहीं है	अवकाश नहीं है
लाचारवश	लाचारीवश	सविनयपूर्वक	विनयपूर्वक, सविनय
वास्तविक में	वास्तव में	सावधानपूर्वक	सावधान, अवधानपूर्वक
वह खुशी हुआ	खुश हुआ	सकुशलपूर्वक	कुशलपूर्वक, सकुशल

(८) लिङ्ग-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

हिन्दी में सबसे बड़ा झगड़ा लिङ्ग-भेद का है। हिन्दी में निर्जीव पदार्थों के सूचक शब्द भी पुँल्लिङ्ग अथवा स्त्रीलिङ्ग ही के अन्तर्गत माने गये हैं। इसके कोई भी स्थिर नियम नहीं हैं, केवल बोलचाल और मुहावरे के अनुसार इस पर कारँवाई की जाती है। यही कारण है कि अंगरेज एवं अन्य बिदेशियों को हिन्दी सिखाने में सबसे अधिक उलझन लिङ्ग-भेद में ही पड़ती है और प्राय: आजन्म उन्हें इस बाधा से छुटकारा नहीं मिलता। इतना ही नहीं वरन् हमारे यहाँ के वे समालोचक, जो ईर्ष्या-द्वेषवश आलोच्य लेखों एवं लेखकों का खण्डन करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं, हिन्दी में प्रसिद्ध लेखकों तक की ऐसी ही भूलें खोज निकालने के लिये बड़े उत्सुक रहा करते हैं। वे इतना तक नहीं विचारते कि यदि हमारे नामी लेखकगण भी इस लिङ्गभेद को नहीं समझ सकते तो इसमें किसका दोष है। वह देखने के लिये कि ऐसी भूलें हमारे जैसे अल्पज्ञ ही किया करते हैं या भाषा के मर्मज्ञ लेखकों के विषय में भी यह कहा जा सकता है, हमने "सरस्वती" पत्रिका के प्रथम भाग के पृष्ठों को उलट-पुलट कर देखा तो एक, दो, तीन की बात नहीं; वरन् एकदम सभी लेखकों के लेखों में वैसे प्रयोग पाये गये............। हमारा तो मत है कि जहाँ तक कोई नपुंसक लिङ्गवाला प्रयोग स्पष्ट और निर्विवाद रूप से अशुद्ध न ठहर जावे, वहाँ तक उसमें लिङ्ग-भेद विषयक 'अशुद्धियाँ' स्थापित न करनी चाहिये।

—मिश्र बन्धु विनोद

लिङ्ग सम्बन्धी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
अश्वी	अश्वा	दिगम्बरी	दिगम्बरा
अनाथिनी	अनाथा	ननदिनी	ननद
अप्सरी	अप्सरा	पिशाचिनी	पिशाची
कुरंगिनी	कुरंगी	विहंगिनी	विहंगी
कृशांगिनी	कृशांगी	श्वेतांगिनी	श्वेतांगी
गायकी	गायिका	सिंहिनी	सिंही
गोपिनी	गोपी	सुलोचनी	सुलोचना
चातकिनी	चातकी	मातङ्गिनी	मातङ्गी
त्रिनयनी	त्रिनयना	भुजङ्गिनी	भुजङ्गी

विशेषण में लिङ्ग-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
श्रीमान् रानी	श्रीमती रानी	बुद्धिमान बालिका	बुद्धिमती बालिका
गुणवान स्त्री	गुणवती स्त्री	मूर्त्तिमय करुणा	मूर्त्तिमयी करुणा
जलवाही नदी	जलवाहिनी नदी		

नोट—सुन्दर स्त्री या सुन्दरी स्त्री, चंचल नारी वा चंचला नारी, शोभित लता या शोभिता लता इत्यादि प्रयोगों के देखने से जान पड़ता है कि संस्कृत मूल विशेषण स्त्रीलिङ्ग में अविकृत भी लिखे जाते हैं।

(८) अर्थ और रोजमर्रे इत्यादि की अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
(१) गत वर्ष वह कलकत्ते जायगा।	गतवर्ष वह कलकत्ते गया था।
आगामी वर्ष वह कलकत्ते गया था।	आगामी वर्ष वह कलकत्ते जायगा।
(२) उसने मेरा हस्त पकड़ा।	उसने मेरा हस्त धारण किया।
उसने मेरा हाथ धारण किया।	उसने मेरा हाथ पकड़ा।
(३) यह काव्य उच्च दर्जे का है।	यह काव्य उच्च कोटि का है।
(४) अभी इक्जामिनेशन के फिफटीन डेज हैं।	अभी परीक्षा के १५ दिन हैं।
(५) इस सोसाइटी में पब्लिक का क्या ओपिनियन है ?	इस सभा के सम्बन्ध में जनसमाज का क्या विचार है ?

क्या गद्य और क्या खड़ी बोली की कविता—दोनों में व्याकरण और रचना-सम्बन्धी नियमों का विशेष ध्यान रखना चाहिये। शब्द-विन्यास में तोड़-मरोड़ कभी नहीं करना चाहिये। कुछ विद्वानों का हठ है कि इससे खड़ी बोली की कविता में सरसता नहीं आती। परन्तु, हमारी समझ में भावुक कवि किसी प्रकार की भाषा में सरस और भावमयी कविता कर सकता है।

अभ्यास (Exercise)

१. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

इतने ही से हमारी अभिष्ट सिद्धि न होगी। इस कारण से भूलकर भी शैथिलयता न की जाय। भविष्यत में इतने ही से काम नहीं चलेगा। सम्मेलन को इनकी ओर विशेष ध्यान देना आवश्यकीय है। इनको कुछ भी सावकाश नहीं है। मैं आपसे सविनयपूर्वक निवेदन करता हूँ। यह त्रवार्षिक परीक्षा में उतरीन हुआ। आज जगधात्री देवी की पूजा है। उनके भ्रातागण की आजकल

दुरावस्था है। बालि की सौजन्यता से राम को बड़ा ही प्रमोद हुआ। वह धैर्य नहीं हुआ। बुद्धिमान् मनुष्य विद्यमान होते हैं। उसने सादरपूर्वक राम को आशा दिलवाई। सभी विद्वान् लोग हिन्दी से प्रेम नहीं करते। दुष्टों का वाह्यिक भाव समझना कठिन है। भगवान् जगबन्धु कहलाते हैं। आपका दर्शन कब होगा? उसकी पैत्रिक सम्पत्ति अच्छी है। ग्रन्थकर्त्ता ने सब अधिकार अपने स्वाधिन रक्खे हैं। सावधानधूर्वक जाओ। महात्मागण अपने सदोपदेश से मनुष्यों को मुग्ध करते हैं। बुद्धिवान् बालिका ने श्रीमान् सीता देवी की कथा बड़े प्रेम से सुना।

२. नीचे लिखे वाक्यों को शुद्ध करो—

वह आरोग्य हुआ। सूर्य पूर्व में उदय है। तुम्हारे आने से गाँव चमत्कार हो गया। वे अन्तर्धान हो गये। तुम बहुत अपमान हुए हो। तुमको मुझसे साक्षात नहीं मिला। सभा में यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ। वे इस मामले में साक्षी देगें। मुझको सावकाश नहीं है। तुमको एक गोपन सम्बाद देता हूँ। इस युक्ति को मैं प्रमाण नहीं करूँगा। राम अत्यन्त आश्चर्य हुआ। पहले यहाँ गाँव-गाँव में तालाव और विद्यालय प्रतिष्ठित थे। मेरे हृदय-मन्दिर में शोक की आग प्रवाहित है। दाता और गृहीता दोनों उपस्थि हैं। भारतीय द्वीप पुंजों में बहुत से नारिकेल वृक्ष-समूह हैं। अब भारत का गौरव लोप नहीं होगा।

पन्द्रहवाँ अध्याय

अर्थप्रकाश (Expression of Meanings)

१. व्याख्या या टीका * (**Explanation**)

व्याख्या में किसी वाक्य वा विषय की पूरी ज्ञातव्य बातें दी जाती हैं जिसमें अबूझ व्यक्ति भी उसका पूर्ण जानकार हो जाय। अतः

---

* पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्योजनम्।
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पञ्चधा स्मृतम्॥

पदों को अलग-अलग करना, पदों के अर्थ करना, समस्त पदों का विग्रह करना, वाक्ययोजना, अर्थात् पदों का क्रम-स्थापन करना और आक्षेपों का समाधान करना—व्याख्या की यही पाँच रीतियाँ हैं।

जिस गद्य या पद्य की व्याख्या करो, पूर्वापर प्रसंग (Context) से उसका सम्बन्ध बताते हुए पद्योजना पर ध्यान रखकर उसके प्रत्येक पद पर प्रकाश डालो, जटिल और संकुचित अंशों को भलीभाँति खोल दो और इसके पीछे उसका भाव लिखो। आवश्यकतानुसार आक्षेपों का समाधान करो, दृष्टान्तों से उसकी पुष्टि करो तथा अलङ्कार इत्यादि विशेषताओं पर दृष्टि डालो। यदि पद्य हो तो उसके पदों को अलगाओ, सामासिक शब्दों को बिलगाओ और अन्वय के अनुसार गद्य क्रम को ठीक करो।

नोट—कविता के सभी पद गद्य के क्रम से नहीं रहते। जब उसके पदों को गद्य के नियमानुसार रखते हैं और स्पष्टता के निमित्त अनुक्त पदों की पूर्ति करते हैं तब उसे अन्वय अर्थात् पद्य को गद्य में बदलना (Prose Order) कहते हैं।

उदाहरण—

(१) जे पुर ग्राम बसहिं मगमाहीं। तिनहिं नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृति केहि घरी बसाये। धन्य पुण्यमय परम सुहाये॥
जहँ-जहँ रामचरन चलि जाहीं। तहँ समान अमरावति नाहीं॥
परसि राम पदपदुमपरागा। मानति भूरि भूमि निज भागा॥

अन्वय—(राम) मगमाहीं (मार्ग में) जे (जो) पुरग्राम बसहिं (बसते हैं) तिनहिं (उन्हें) (देखकर) नाग (नगर और) सुर नगर सिहाहीं (सिहाते हैं) केहि (किसी) सुकृति (ने) केहिं (किसी) (शुभ) घड़ी (घड़ी में) बसाये (उन्हें बसाया है) (जिससे वे) धन्य पुण्यमय (पुण्यमय) (और) परम सुहाये (शोभायमान हो गये हैं) जहँ-जहँ (जहाँ-जहाँ) रामचरन (रामचरण) चलि जाहीं (चले जाते हैं)तहँ (उनके) समान अमरावति (अमरावती भी) नाहीं (नहीं है)। रामपद पदुमपरागा (पद्मपराग को) परसि (स्पर्श कर) भूमि निजभागा (अपने भाग्य का) भूरि मानति (बड़ा मानती है)।

अन्वय के अनुसार कविता का गद्य—

राम-मार्ग में जो पुर-ग्राम बसते हैं उन्हें देखकर नागनगर, सुरनगर सिहाते हैं। किसी सुकृत ने किसी शुभ घड़ी में उन्हें बसाया है जिससे वे धन्य, पुण्यमय और परम शोभायमान हो गये हैं। जहाँ-जहाँ रामचरण चले जाते

हैं उनके समान अमरावती भी नहीं है। रामपदपद्मपराग को स्पर्श कर भूमि अपने भाग्य को बड़ा मानती है।

व्याख्या—यह प्रसंग गोस्वामी तुलसीकृत रामायण के अयोध्याकाण्ड में रामवनवास के समय का है। रामजी सीता और लक्ष्मण समेत भारद्वाजजी से विदा हो चुके हैं और यमुना पार उतरकर वन में चले जा रहे हैं। राह में अनेक बटोही मिलते हैं जो इनकी सुकुमारता देख और वनवास सुन आहें भरते हैं और साथी होकर पहुँचाने के लिये आज्ञा माँगते हैं, परन्तु रामजी विनती कर-करके उन्हें लौटाते जाते हैं। कवि की यह उक्ति (चौपाइयाँ) इसी समय की है—रामजी, सीता और लक्ष्मण समेत रास्ता पकड़े जा रहे हैं, राह में कई बसे हुए पुर और गाँव पड़ते जाते हैं, जिनमें (भगवान् की राह में पड़ने के कारण) गौरव आ गया है इसलिये उन्हें देख-देखकर नागलोग (जो अपने को बहुत ही गौरवशाली समझते थे) सिहाते हैं और यही नहीं सिहाते, वरन् इनसे श्रेष्ठतर स्वर्ग भी (जो देवताओं के वास के कारण अपने को श्रेष्ठ समझते थे) अपने भाग्य को कोसते हुए (यह कोसते हुए कि हम क्यों नहीं भगवान् की राह में पड़े! हममें किस पुण्य की कमी थी, इत्यादि) सिहाते हैं—जान पड़ता है कि किसी सुकार्य करनेवाले पुण्यात्मा ने (पुण्यात्मा धन्य है कि उनके कार्य भगवान् के कारण गौरवान्वित हुए) ग्रह, नक्षत्र आदि के विचार के साथ कुग्रहों को शान्त कराके किसी शुभ मुहूर्त्त में (उस मुहूर्त्त का भी भाग्य खुल गया—यह खुला कि अन्य लोग भी ज्योतिषी से वही मुहूर्त्त का निश्चय कराके किसी कार्य की नींव इस आशा से रक्खेंगे कि वह भगवान् से आदर पावे) उन अल्पपुर ग्रामों को बसाया है जिससे वे धन्य-धन्य हो रहे हैं अर्थात् उनका बखान हो रहा है, पुण्यमय हुए हैं अर्थात् उन्हें पुण्य मिला है और अत्यन्त ही शोभावाले हो गये हैं—रामजी की राह में पड़ने के कारण क्षुद्रपुरग्रामों को ये बातें नसीब हुईं। जहाँ-जहाँ अर्थात् जिन-जिन पुरग्रामों की सीमाओं के भीतर होकर (रास्ते में पड़ने के कारण) रामजी के चरण चले जाते हैं उनकी बराबरी करनेवाला स्वर्ग (जो इन्द्र की राजधानी होने और देवताओं का वास होने के कारण फूला रहता है) भी नहीं है। पद-रज के पड़ने से प्रत्येक स्थान ऐसा होता जाता है कि उससे अमरावती भी बराबरी नहीं कर सकती। इतना ही नहीं, बल्कि रामजी के चरण-कमलों (रामजी के चरणों की उपमा कमल से दी गई है, अर्थात्

रामजी के चरणकमल के समान कोमल हैं) के पराग अर्थात् रज के स्पर्श से भूमि भी अपने भाग्य को बड़ा मानती है। यह समझती है कि रामजी ने अपने चरण से छूकर मेरे भाग्य को, जो कभी भी नहीं खुलनेवाला था, बढ़ा दिया जिससे मैं गौरव-शालिनी बन गई। सार यह निकला कि रामजी जिन-जिन पुर-ग्रामों और भूमि में होकर जाते हैं वे सब-के-सब उनके पदरज के कारण पुण्यमय हो जाते हैं और उनके आगे पाताल, स्वर्ग सभी तुच्छ हुए जाते हैं। यहाँ रामजी की सीधी बड़ाई न करके कवि ने मार्गस्थ ग्रामों आदि के यश गाने के बहाने 'राममहत्त्व' गाया है।

व्याख्यासम्बन्धी बातें—'व्याख्येयविषय' चौपाई छन्द में है। गो० तुलसीदास की चौपाइयों में दस पन्द्रह छन्द निकलते हैं, परन्तु उन्होंने इन सबको 'चौपाई' कहा है; परन्तु यहाँ का छन्द 'पादाकुलक' है। *

पुर कहिये छोटो नगर राजनगर के तीर।
बन में जे लघुपुर बसें तिनकों कहियत ग्राम ॥

नगर पुर से भी बहुत बड़ा होता है। कवि ने यहाँ लिखा है इन ग्रामों और पुरों से न केवल साधारण नगर; वरन् नाग एवं सुरनगर सिहाते हैं सो यहाँ अयोग्य के योग्य वर्णन से सबन्धातिशयोक्ति अलङ्कार † पूरा हुआ। पुरग्राम में स्वयं बड़ाई नहीं है, परन्तु रामजी के रास्ते में पड़ने से उनमें गौरव आया है जिससे द्वितीय अर्थान्तरन्यासालंकार होता है। पहले नागनगर सिहाये और फिर उनसे भी श्रेष्ठतर सुरनगर सिहाये, सो उत्तरोत्तर महत्त्ववृद्धि से सारालंकार वर्णन में आया। 'केहि सुकृति केहि घरी बसाये' में 'केहि' उत्तमतापूर्वक दो बार आने से पदार्थवृत्त दीपक अलंकार है। ऐसे स्थानों पर वर्ण्य एवं अवर्ण्य का एक धर्म प्रायः नहीं होता, परन्तु आचार्यों ने फिर भी यह अलंकार माना है। इन दोनों प्रश्नों से कवि का कुछ पूछने का प्रयोजन नहीं है। वरन् इनसे वह प्रकट करता है कि किसी बड़े सुकृत ने उन्हें किसी अच्छी घड़ी में बसाया। इस प्रकार काकु अलंकार हुआ। इन दोनों प्रश्नों एवं 'धन्य पुण्यमय परम सुहाये' से उनके माहात्म्य का बड़ा भारी गौरव दिखलाया गया है, जिससे उदात्त अलंकार होता है। 'धन्य पुण्य' में छेकानुप्रास है। किसी सुकृत ने

* देखिये "पिंगल प्रबोध या छन्दचन्द्रिका"
† देखिये "अलङ्कारचन्द्रोदय"

अच्छे समय पर ग्राम बसाया, जिसके योग में अल्पग्राम ने भी इतनी बड़ाई पाई कि उसमें रामचरण गये। यहाँ द्वितीय अर्थान्तरन्यासालंकार है। 'जहँ-जहँ' में दीत्सालंकार है और 'रामचरण चलि जाही' में उपादान लक्षणा है, क्योंकि चरण राम के चलाने से चलते हैं। "तहँ समान अमरावति नाहीं" में चतुर्थ प्रतीपालंकार है, क्योंकि यहाँ उपमेय से उपमान का निरादर हुआ है। यहाँ द्वितीय अर्थान्तरन्यासालङ्कार एवं सम्बन्धातिशयोक्ति भी है। 'परसि···पदपदुम-परागा' में आदिवर्ण वृत्त्यनुप्रास आया है। इन दोनों में अधिक अभेदक रूपक है पराग के कारण परिणाम नहीं होने पाया। 'भूरि, भूमि, भागा' में भी वृत्त्यनु-प्रास है। राम-पदरज के स्पर्श से भूमि के भूरि भाग्यवर्द्धन से उसमें शलाध्य चरित्र का महत्त्व प्रकट हुआ, जिससे उदात्तालंकार आया। यहाँ ऋद्धि से भी उदात्त हो सकता है, परन्तु आचार्यों ने ऋद्धिवाले उदात्त का धन से ही रूढ़ि कर लिया है। पुरग्राम धन्य, पुण्यमय तथा शोभायमान हैं। यहाँ समुच्चय अलंकार हुआ। प्रथम दो पदों में विशेष वर्णन, द्वितीय दो में सामान्य और तृतीय दो में फिर विशेष है, सो यहाँ विकस्वर अलंकार हुआ। कुल अलंकारों में अप्रस्तुत प्रशंसा मुख्य है क्योंकि प्रस्तुत राम की सीधी, इन छन्दों में बड़ाई न करके कवि ने मार्गस्थ ग्रामों आदि का यश गाया है, जिससे रामयश निकलता है। छन्दों में यद्यपि लाक्षणिक पद आते हैं, तथापि वाचक पात्र है और उसीका सर्वत्र प्राधान्य है। यहाँ अर्थाभिव्यक्ति प्रधान गुण है, परन्तु समता, समाधि, उदारता प्रसाद और कान्ति भी हैं। सो इन दो छन्दों में साहित्य के १० गुणों में से श्लेष, माधुर्य और ओज छोड़कर सभी वर्तमान हैं इतने गुणों का एक स्थान पर मिलना प्रायः असम्भव है। इनमें भारतीय और सात्विकी वृत्तियाँ हैं। दोषों में यहाँ 'भूरि' शब्द पर ध्यान जाता है, जोकि भाग और भूमि दोनों की ओर जा सकने से सन्दिग्ध हुआ जाता है, परन्तु वह भी भाग के प्राबल्य से विशेषण होता है सो दोषोद्धार हो जाता है। वर्णन नगर है, क्योंकि पदरज पड़ने से प्रति स्थान ऐसा हो जाता है कि उससे अमरावती भी शरमाती है। यहाँ अद्भुत रस का समावेश है। इसके आलम्बन 'रामचरण एवं मार्गस्थ पुरग्राम' हैं और स्थायी यह आश्चर्य है कि मार्गस्थ पुरग्रामों के महत्त्व से नाग तथा सुरनगर सिहाते हैं एवं अमरावती उनकी समता नहीं कर पाती।' उद्दीपन यहाँ 'रामगवन का समय' है। 'रामचरण का चलना' 'भूमि द्वारा रामपद का स्पर्श होना' तथा 'अपना भूरि भाग माना जाना' संचारी है। 'केहि

सुकृति केहि घरी बसाये, धन्य पुन्यमय परम सुहाये' और तहँ समान अमरावति नाहीं' अनुभाव हैं। चलने में उग्रता संचारी है, जो शृंगाररस में उचित है, किन्तु इतर रसों में नहीं। अद्भुत् रस पूर्ण है। यह रस यहाँ प्रच्छन्न है।

सब बातों के ऊपर यहाँ रामचन्द्र का महत्त्व और कवि की उनमें प्रगाढ़ भक्ति मुख्य है, यों तात्पर्य्याख्यावृत्ति सर्व प्रधान है। कुल बातों पर ध्यान देने से प्रकट है कि यह उत्तम काव्य है...

(३) सारा संसार अहल्याबाई की वन्दना करता है। मयूर कवि उसकी वन्दना क्यों नहीं करेगा ? (अहल्याबाई)

व्याख्या—यह अंश इन्दौर की प्रातः स्मरणीया रानी अहल्याबाई के सम-कालीन राजकवि ब्राह्मणवंशोद्भव मयूरकविविरचित महाराष्ट्रीय कविता का अनु-वाद है। 'रानी अहल्या' मल्हारराव होलकर के पुत्र खंडेराव की पत्नी थीं। वे बाल्यावस्था ही में विधवा हो गईं; जिससे उन्हें राज्य-भार अपने हाथ में लेना पड़ा। उन्होंने अल्पकाल में ही अपनी राज्य-शासनदक्षता और धर्मशीलता का परिचय दे दिया। अनेक धर्म-कार्य किये। प्रजा की भलाई की। गया में विष्णुपद और काशी में विश्वनाथ के मन्दिर इन्हींके बनवाये हुए हैं। ऐसे-ऐसे कार्यों से यह सारे भारत की श्रद्धापात्री बन गईं। अभी भी इनके नाम के उच्चारण से श्रोताओं के हृदय में एक अभूतपूर्व आनन्द का प्रवाह होने लगता है। भक्ति-परायणा अहल्या की, देवताओं और ब्रह्मणों में असीम श्रद्धा थी। यद्यपि वे शूद्री थीं तथापि उपर्युक्त गुणों के कारण वे अपने जीवन-काल में ही ब्राह्मण-गणों से वन्दनीया हो गईं थीं। अतः, जब सब कोई महारानी अहल्या को देवता समझ कर पूजते हैं, तब यह ब्राह्मण मयूरकवि उनकी पूजा करे इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

२. अर्थ (Paraphrase)

अर्थ को पद-परिवर्तन या अनुवाद भी कहते हैं। अर्थ लिखने में कठिन शब्दों को सरल और मधुर शब्दों में तथा जटिल और संकुचित अंशों को विस्तार के साथ सरल भाषा में स्पष्टतापूर्वक बदलना चाहिये। शब्दों और वाक्यांशों के भाव लेकर स्वतन्त्र वाक्य-रचना द्वारा भी अर्थ कर सकते हैं जिसको भावानुवाद और कोई-कोई भावार्थ

भी कहते हैं; यदि पूर्व-प्रसङ्ग से लगाव हो तो उसे भी लिखना उचित है। जैसे—

(१) व्याख्यावाले 'चौपाई छन्द' का अर्थ—

वन में रामजी सीता और लक्ष्मण समेत यमुना पार हो रास्ता पकड़े जा रहे हैं। (उनकी) राह में जो पुर और गाँव बसते हैं, उनको (भगवान् की राह में पड़ने से गौरवान्वित होते) देखकर नागलोक और (उनसे भी श्रेष्ठतर) देवलोक सिहाते हैं कि किसी सुकार्य करनेवाले पुण्यात्मा ने ग्रह, नक्षत्र इत्यादि के विचार के साथ कुग्रहों की शान्ति कराके किसी शुभ मुहूर्त्त में (उन अल्पपुर-ग्रामों को) बसाया है जिससे वे धन्य-धन्य हो रहे हैं अर्थात् उनका बखान हो रहा है, पुण्यमय हुए हैं अर्थात् उनको पुण्य मिला है और अत्यन्त ही शोभावाले हो गये हैं—रामजी की राह में पड़ने के कारण क्षुद्रपुर-ग्रामों को यह बातें नसीब हुईं। जहाँ-जहाँ अर्थात् जिन पुरग्रामों की सीमाओं के भीतर होकर (रास्ते में पड़ने के कारण) रामजी के चरण चले जाते हैं उनकी बराबरी करनेवाला स्वर्ग भी नहीं है– पद-रज के पड़ने से प्रत्येक स्थान ऐसा होता जाता है कि उससे अमरावती भी शरमाती है। (इतना ही नहीं बलिक) रामजी के चरण-कमलों के पराग अर्थात् रज के स्पर्श से भूमि भी अपने भाग्य को बड़ा मानती है—वह समझती है कि रामजी ने अपने चरण से छूकर मेरे भाग्य को बढ़ा दिया, जिससे मैं गौरव से भर गई।

(२) औंधाई[५] सीसी[४] सुलखि[३], बिरह बरति[१] बिललात[२]।
बीचहि[२] सूखि[३] गुलाब[१], गौ[४] छींटौ[६] छुई[८] न[७] गात[५]॥

अर्थ—नायिका को विरहाग्नि से जलती और विलाप करती हुई छटपटाती देखकर, ताप-शान्ति के लिये उसके ऊपर गुलाब की शीशी उलटी की, परन्तु शरीर से जो विरहाग्नि की लपटें निकल रही थीं, उनसे गुलाबजल बीच ही में सूख गया, शरीर तक एक भी बूँद न पहुँची।

—बिहारी की सतसई (प० पद्मसिंह शर्मा)

(३) आज जो समाज सुखी और समृद्धिशाली बना है; सम्भव है कल उसे औरों की जूतियाँ उठानी पड़ें, इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा है।

अर्थ—इतिहास में ऐसी सैकड़ों मिसालें मौजूद हैं जिनसे सिद्ध होता है कि हमेशा एक-सी दशा किसीकी नहीं रहती। यदि इस समय कोई देश, जाति

या समाज, धन और सुख से पूर्ण अर्थात् स्वतन्त्र हो तो यह निश्चय नहीं है कि हमेशा वह स्वतन्त्र ही बना रहे—मुमकिन है, उसे कल दूसरी जातियों का गुलाम बनना पड़े (अर्थात् अच्छी अवस्था में कभी किसीको स्वार्थी और पागल न होना चाहिये ।

३. सरलार्थ (Clear meaning.)

मूल को बिना बढ़ाये या घटाये साफ-साफ सरल शब्दों और छोटे-छोटे वाक्यों में प्रकाश करना—यही 'सरलार्थ' कहलाता है। यदि अर्थ का क्रम न बैठे तो कभी-कभी दो-एक शब्द बाहर से ले सकते हैं। यदि पद्य का सरलार्थ लिखना हो तो उसे पहले अन्वय के अनुसार गद्य में बदल दो तब उसी गद्य का सरलार्थ लिखो।

(१) व्याख्यावाले चौपाई छन्द का सरलार्थ—

रामजी की राह में जो पुर और गाँव बसते हैं उन्हें देखकर नागलोक और देवलोक भी सिहाते हैं। किसी पुण्यात्मा ने किसी शुभ मुहूर्त्त में उन्हें बसाया है जिससे वे धन्य, पुण्यशाली और अत्यन्त शोभायमान हो गये हैं। जहाँ-जहाँ रामजी के चरण चले जाते हैं उन स्थानों की बराबरी करनेवाला स्वर्ग भी नहीं है। रामजी के चरणकमलों के रज को छूकर भूमि भी अपने भाग्य को बड़ा मानती है।

(२) हौं ही[२] बौरी[३] विरह[१] बस, कै[४] बौरो[६] सब गाम[५]।
कहा जानि[१] ये[२] कहत[४] हैं, ससिहि सीतकर नाम[३] ॥

विरह के कारण मैं ही बावली हूँ, या सारा गाँव ही बावला है। क्या समझकर ये लोग चन्द्रमा को शीतकर (ठंढी किरणोंवाला) कहते हैं?

—बिहारी सतसई (पं० पद्मसिंह शर्मा)

४. अनलंकृत अर्थ (Simple meaning)

अलंकारों को छोड़कर जो अर्थ किया जाता है उसे अनलंकृत अर्थ (साधारणतः अर्थ प्रकाश करना) कहते हैं।

(१) व्याख्यावाले 'चौपाई छन्द' का अनलंकृत अर्थ—

रामजी की राह में बसनेवाले पुरों और गाँवों को देखकर पाताल और स्वर्ग भी सिहाते हैं। किसी पुण्यात्मा के किसी शुभ मुहूर्त्त में बसाने से वे इस समय धन्य-धन्य, पुण्यवान और सुहावने हो गये हैं। जहाँ-जहाँ रामजी

जाते हैं उनकी बराबरी करनेवाला स्वर्ग भी नहीं है। भूमि भी रामजी के चरणों को छूकर अपने भाग्य को सराहती है।

(२) श्रीगुरु चरण सरोज रज, निजमन मुकुर सुधारि।
बरणौं रघुवर विमल जस, जो दायक फलचारि॥

गुरुजी के चरणों की धूलि से अपने मन को पवित्र कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के देनेवाले रामयश का वर्णन करता हूँ।

५. संक्षिप्तार्थ (Summary)

मूल के अर्थ को समझकर उसपर स्वतन्त्र वाक्य रचना करके बहुत थोड़े वाक्यों में जो अर्थ प्रकाशित किया जाता है उसे संक्षिप्तार्थ कहते हैं।

(१) व्याख्यावाले 'चौपाई छन्द' का संक्षिप्तार्थ—

पुण्यात्मा के हाथ से शुभ मुहूर्त्त में बसे हुए पुर और गाँव सब रामजी की राह में पड़ने से, अत्यन्त ही भाग्यशाली हो गये हैं, जिन्हें देखकर पाताल और स्वर्ग सिहाते हैं तथा उनकी बराबरी नहीं कर सकते।

(२) वर्षा ही से सब पेड़-पौधे, घास-फूस हरे और जीवित रहते हैं। इसीसे जीवधारी अपने-अपने भोजन पा जाते हैं। खेती करनेवाले देशों में एक ही साल की अनावृष्टि से सत्यानाश हो जाता है, क्योंकि अनाज पैदा ही नहीं होता तो लोग क्या खाकर जियें! इस महालाभ के अतिरिक्त वर्षा से हमारा चित्त प्रफुल्लि रहता है और स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है।

संक्षेप—चर और अचर सब जीव वर्षा से ही हरे-भरे और जीवित रहते हैं। एक ही साल वर्षा न होने से घोर अकाल पड़ जाता है तथा मनुष्य और पशु भूख से तड़पने लगते हैं। वर्षा से चित्त और स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

—पं० रामरत्न शर्मा।

६. सारार्थ (Substance.)

सारार्थ में विषय का सारमर्म दिया जाता है। जैसे—

(१) व्याख्यावाले 'चौपाई' छन्द' का सारार्थ—

रामजी जिन पुरग्रामों और भूमि पर होकर जा रहे हैं वे सब-के-सब उनके

पद-रज के महत्त्व के कारण पुण्यमय हो गये हैं और उनके आगे पाताल और स्वर्ग सभी तुच्छ हो गये हैं।

(२) भौंरा ये दिन कठिन हैं, दुख-सुख सहो सरीर।
जब लगि फुले न केतकी, तब लगि बिलम करीर॥

कवि किसी विपद्ग्रस्त मनुष्य को ओर संकेत करके कहता है—

कठिन दिन आ पड़ने पर उस समय तक दुख-सुख सहते रहो जब तक अच्छे दिन न आ जायँ।

७. तात्पर्य (Purport)

"वक्तुरिच्छा तात्पर्यम्" वक्ता की इच्छा का नाम तात्पर्य है। तात्पर्य में यह लिखा है कि 'मूल' में कौन मुख्य बात लेखक दिखलाना चाहता है। 'तात्पर्य' और 'सार' में बहुत कम भेद है।

(१) व्याख्यावाले 'चौपाई छन्द' का तात्पर्य—

जो पुर और गाँव रामजी की राह में पड़े हैं, जिन स्थानों पर वे गये हैं और जिस भूमि ने उनके चरणरज का स्पर्श किया है, सबों में उनके महत्त्व के कारण गौरव आ गया है।

(२) सारार्थवाले दूसरे पद्य का तात्पर्य—

ये विपत्ति के दिन गम्भीरता से काट लो, जबतक अच्छा दिन फिर न आवे।

(३) आपके हाथ कमल के तुल्य हैं।

तात्पर्य—आपके हाथ कोमल और सुन्दर हैं।

८. भाव (Sense)

लेखक मूल में जो कुछ दिखाना चाहता है उसे भाव में लिखते हैं। यह तात्पर्य का सार अंश है। जैसे—

(१) व्याख्यावाले 'चौपाई छन्द' का भाव—

कवि ने पुरग्रामों इत्यादि के महत्त्व गाने के बहाने रामजी का महत्त्व गाया है।

(२) सारार्थवाले दूसरे पद्य का भाव—

समझदार मनुष्य को बुरे दिनों में घबराना न चाहिये।

(३) अनलंकृत अर्थवाले दूसरे पद्य का भाव—

सद्गुरु के चरणों के ध्यान से विघ्न-बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं, कार्य पूरा हो जाता है।

—पं० रामरत्न शर्मा

अभ्यास (Exercise)

(१) नीचे लिखे अनुच्छेदों की व्याख्या करो—

(क) अनसूया—सखी, तू अपने गुणों को घटाकर कहती है, नहीं तो ऐसा मूर्ख कौन होगा जो सूर्य का ताप मिटानेवाली शीतल शरद चाँदनी को रोकने के लिये अपने सिर पर कपड़ा ताने ? (शकुन्तला)

(ख) दुष्यन्त—जो आपने कृपा की है तो इससे अधिक और आशीर्वाद दें कि राजाओं की बुद्धि प्रजा का सुख बढ़ाने में प्रवृत्त रहे और वेदपाठी सरस्वती के पूजन में चित्त लगावें और नीलकण्ठ लोहितजटा स्वयंभू सदाशिव मुझे इस संसार के आवागमन से छुड़ावें।

(Test Examination,)

२. नीचे लिखे पद्यों की व्याख्या करो—

(क) क्षुद्र वारीश्वर ! तुझे धिक्कार सौ-सौ बार है।
जो न तुझसे स्वल्प भी संसार का उपकार है।
क्या कभी तूने बुझाई है किसीकी प्यास भी,
व्यर्थ तो सबसे बड़ा है विश्व में आकाश भी॥

(I. A. & I. Sc. Examination,)

(ख) कोटि यतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहि बीच।
नल-बल-जल, ऊँचो चढ़ै, अन्त नीच को नीच।
गुनी-गुनी सबही कहे, निगुनी गुनी न होत।
सुन्यौ कहूँ तरु अर्क ते, अर्क समान उदोत।

(B. A. & B Sc. Examination,)

३. नीचे लिखे पद्य का अर्थ लिखो—

निश्चेष्ट होकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।
इस तत्त्व पर ही कौरवों से पाण्डवों का रण हुआ,
जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ।

(Matriculation Test Examination)

४. नीचे लिखे अनुच्छेद का संक्षिप्तार्थ (Summary) लिखो—

कितनी बेर हमने नगर की स्त्रियों को उड़ते भौंरे से कटाक्ष करके मुख मोड़ते देखा है, परन्तु सदा बनावट ही पाई। इस भोरी के भौंह मरोड़ने और

आँखें तिरछी करने में कैसा सीधापन है ! हे भौंरे, तू बड़भागी है कि इन चंचल नेत्रों का कोर स्पर्श करता है और कानों के निकट ऐसा जाता है मानो कुछ रहस्य का संदेशा सुनावेगा। जबतक वह हाथ उठाती है तू अमृत भरे ओठों से रस ले जाता है। (शकुन्तला)

५. नीचे लिखे अनुच्छेद का सारार्थ (Substance) लिखो—

निश्चय यह ऋषि की बेटी सजातीय स्त्री से तो नहीं है। पर यह सन्देह वृथा है, क्योंकि इस पर जो मेरा चित्त ऐसा लगा है तो अवश्य यह क्षत्री के व्याहने योग्य होगी, क्योंकि सज्जनों के हृदय में जो कभी कुछ सम्भ्रम उपजता है तुरन्त ही वह अन्तःकरण की भावना से मिट जाता है। मेरा मन इसके वश हुआ, इसलिये निश्चय यह ब्राह्मण की बेटी नहीं है जो मेरे व्याहने योग्य न हो। भला हो सो हो, इसका सत्य वृत्तान्त तो खोजना चाहिये। (शकुन्तला)

६. नीचे लिखे अनुच्छेद का तात्पर्य (Purport) लिखो—

दुष्यन्त (कान पर हाथ धरकर)—क्या तू मुझ निर्दोषी को कलंक लगाने के लिये छल करती है ? देख, जो नदी मरजाद छोड़कर चलती है वह अपना ही तट खसकाकर गँदली होती है और तट के वृक्षों को गिराकर अपनी शोभा बिगाड़ती है।

७. इसका भाव (Sense) बताओ—

[नेपथ्य में] हे चकई, अब चकवा से न्यारी हो, रात आई।

(Test Examination.)

सोलहवाँ अध्याय

पत्र-रचना (Letter-Writing)

पत्र में ध्यान देने योग्य बातें

१. पत्र बातचीत के ढंग पर लिखना चाहिये। लिखनेवाले को ऐसा समझना चाहिये कि हम जिसके पास पत्र लिखते हैं उससे बातें कर रहे हैं। ऐसे पत्र के पढ़ने से पढ़नेवाले का जी आनन्द से भर जाता है।

२. पत्र उस समय लिखना चाहिये जब मन चंचल न हो। यदि क्रोध चढ़ा हो तो उस समय पत्र लिखने से पीछे पछताना पड़ता है। यदि किसीके पत्र का उत्तर देना हो तो पत्र को सामने रखकर ठीक उसीके अनुसार उत्तर दो।

३. पत्र को अच्छी तरह सोच-विचार कर लिखना चाहिये। पत्र में केवल काम की बातें हों, सो भी छोटे-छोटे वाक्यों में और मधुर शब्दों में। पत्र की भाषा पढ़नेवाले की योग्यता के अनुसार होनी चाहिये।

४. जान-पहचानवाले के पत्र में प्रेम और घरेलूपन दिखाना उचित है, परन्तु अनजान मनुष्यों के पास पत्र भेजने में इसकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उन्हें केवल काम-काज के पत्र भेजे जाते हैं।

५. कोई पत्र क्यों न हो, ऐसा न होना चाहिये कि उससे घमण्ड झलके।

१. आधुनिक प्रथा

पत्र के मुख्य ६ अंश होते हैं—

१. इष्टदेव या गुरु इत्यादि का स्मरण करना। *

२. जहाँ से पत्र जाय उस स्थान का नाम और तारीख।

३. प्रशस्ति अर्थात् आदर के शब्द और वाक्य।

४. प्रणाम, आशीर्वाद इत्यादि शब्द।

५. काम की बातें (हाल-समाचार)

६. उचित विशेषण के साथ लिखनेवाले का नाम।

नोट—(१) काम-काज के पत्रों में पहले और चौथे अंश छोड़ दिये जाते हैं और प्रशस्ति के शब्द भी साधारण रहते हैं।

२. आधुनिक पत्रों की प्रशस्ति और समाप्ति के शब्द नीचे दिये जाते हैं—

पिता के लिये— (१) मान्यवर (पूज्यतम) पिताजी।
(२) आपका दास, चरणसेवक।

माता के लिये— (१) महामान्या माताजी।
(२) आपका दास, चरणसेवक।

मामा के लिये— (१) महानुभाव।
(२) आपका (भवदीय) सेवक।

फूफा के लिये— (१) परम मान्य।
(२) आपका (भवदीय) सेवक।

बड़े भाई के लिये—(१) पूज्यवर भ्राताजी।
(२) आपका स्नेह-भाजन

---

* आजकल लोग प्रायः यह अंश छोड़ देते हैं, परन्तु आस्तिकों के लिये यह उचित नहीं जान पड़ता।

गुरु के लिये—	(१) श्री मान्यवर, पूज्यतम ।
	(२) चरण सेवक, आपका दास ।
पति के लिये—	(१) श्री आर्यपुत्र, प्रिय प्राणनाथ ।
	(२) आपकी दासी ।
प्रतिष्ठा में बड़े भाई के लिये—	(१) मान्यवर, महाशय ।
	(२) आपका कृपापात्र, कृपाकांक्षी, कृपाभिलाषी ।
धर्म-वृद्ध के लिये—	(१) धर्मसर्वस्व, धर्मधुरीण ।
	(२) आपका कृपापात्र, कृपाकांक्षी, कृपाभिलाषी ।
स्वामी के लिये—	(१) प्रभुवर, स्वामिवर, महानुभाव ।
	(२) आपका दास ।
मित्र के लिये—	(१) सुहृद्वर, प्रियवर, प्रियमित्र ।
	(२) आपका प्रियमित्र ।
पुत्र के लिये—	(१) बबुआ, प्रियवत्स, चिरंजीवी (नाम दो) ।
	(२) तुम्हारा शुभचिन्तक ।
छोटे भाई के लिये—	(१) चिरंजीवी [नाम], प्रिय [नाम] ।
	(२) तुम्हारा शुभचिन्तक ।
शिष्य के लिये—	(१) आयुष्मान् [नाम] ।
	(२) तुम्हारा शुभचिन्तक ।
स्त्री के लिये—	(१) प्राणप्रिये ।
	(२) तुम्हारा प्रियतम ।
प्रतिष्ठा में छोटे के लिये—	(१) प्रिय महाशय ।
	(२) आपका शुभचिन्तक ।
नौकर के लिये—	(१) प्रिय (नाम)
	(२) आपका, तुम्हारा ।
दूकानदार के लिये—	(१) महाशय, श्रीमान् ।
	(२) आपका (भवदीय) ।
राजसम्बन्धी अधिकारी के लिये-	(१) महाशय, मान्यवर ।
	(२) प्रार्थी, विश्वासी ।
निमन्त्रण-पत्र में—	(१) श्रीयुक्त, मान्यवर, परमप्रिय, महाशय ।
	(२) दर्शनाभिलाषी, विनयी, कृपाकांक्षी ।

२. प्राचीन प्रथा

पुराने ढंग के पत्रों में प्रशस्ति पर बड़ा ध्यान रक्खा जाता है। उसपर भी श्री की संख्या पर विशेष ध्यान रहता है। 'श्री' लिखने के नियम का एक दोहा नीचे दिया जाता है।

श्री लिखिये षट् गुरुन को, पाँच स्वामि रिपु चारि।
तीन मित्र द्वै भृत्य को, एक शिष्य सुत नारि॥

अर्थात् गुरु [पिता, माता आदि] को ६, मालिक को ५, शत्रु को ४, मित्र को ३, नौकर को २, और शिष्य, पुत्र तथा स्त्री को १ श्री लिखते हैं। ईश्वर या किसी बड़े महाराज के लिये १०८ श्री का प्रयोग होता है।

अपने से छोटे को 'आशीर्वाद', बड़े को 'प्रणाम' और बराबरवालों को 'नमस्कार' के शब्द लिखे जाते हैं। बड़ों के पत्रों में श्री के पहले 'सिद्धि' और छोटों तथा बराबरवालों के पत्रों में श्री के पहले 'स्वस्ति' शब्द लिखते हैं।

पत्रों के नमूने

आधुनिक रीति

श्रीरामजी

लहेरियासराय,
कार्त्तिक शु० ६ संवत् १९७७

पूज्यवर पिताजी,

चरणों में सादर प्रणाम।

मैं परसों परीक्षा देने जाऊँगा। देखें, ईश्वर की दया मेरे ऊपर कैसी है। परीक्षा शुक्र को समाप्त हो जायगी। मेरी इच्छा है कि समाप्त होते ही आपकी सेवा में पहुँचूँ। माताजी से मेरा सविनय प्रणाम कह देंगे। जयी और जानकी को मेरी याद करा देंगे।

चरणसेवक
देवनारायण,

प्राचीन रीति—

सिद्धि श्री गयाजी शुभ स्थान अनेक उपमायोग्य पूज्यवर श्री ६ श्री पिताजी की सेवा में लहेरियासराय से चरणसेवक देवनारायण का प्रणाम पहुँचे। मैं

आपके आशीर्वाद से सकुशल हूँ। आपका कुशल-क्षेम परमेश्वर से चाहता हूँ। समाचार यह है कि…………इति शुभम्।

शुभ मिति कार्तिक शु० ६. संवत् १६७७।

नोट—हमने यहाँ पत्र की थोड़ी-सी बातें दी हैं। हमारी 'पत्र-चन्द्रिका' में इसका विशेष वर्णन है।

मिश्रित प्रश्न

(Miscellaneous Exercise)

१. लिखते समय यदि कोई शब्द समूचा न लिखा जा सके तो क्या करना चाहिये, उदाहरण देकर समझाओ!

२. अनुच्छेद (Paragraph) बनाने में किन-किन बातों पर ध्यान रखना चाहिये?

३. 'राजा स्वदेशी हो या विदेशी, राजा का प्रधान कर्त्तव्य है कि वह प्रजा में विद्या का प्रचार करे। इस वाक्य में 'विदेशी' शब्द के आगे अल्प विराम (,) क्यों दिया गया है?

४. 'उस लड़के में कौन-सा दोष नहीं है? झूठ वह बोलता है, चोरी वह करता है, जुआ वह खेलता है।' इस कथन में लाघव का विचार क्यों नहीं किया गया? अपनी ओर से तुम भी एक ऐसा ही उदाहरण दो।

५. किसी शब्द को दो बार लिखना हो तो अक्सर उसे एक बार लिखकर उसके परे [२] अङ्क लिख देते हैं।' इस नियम के विषय में तुम्हारा क्या विचार है? अपने विचार के लिये प्रमाण भी दो।

६. 'कलकत्ते से पेशावर तक सात-आठ कोस पर एक पक्की सराय और एक कोस पर चबूतरा बना हुआ था', इस वाक्य को रोजमर्रे के अनुसार लिखो।

७. मुहावरे से क्या लाभ है? पाँच मुहावरेदार वाक्य लिखो।

८. नीचे लिखे अंशों का उपयोग अपने वाक्यों में करो।

जँगरैतिन, टोह, तरल, अठखेली, चाल, लटके, नितान्त, उद्धृत, संवाद-दाता, चिट्ठा, तड़ित्-समाचार। (सम्मेलनपरीक्षा)

९. नीचे लिखे प्रत्येक शब्द का क्या आशय है?

आलोचना, समालोचना, प्रत्यालोचना, पण्डिताइन, पंडिता, सठिया जाना, गदहपचीसी, घुणाक्षरन्याय। (सम्मेलनपरीक्षा)

१०. नीचे लिखे हुए मुहावरों और कहावतों की व्याख्या करो—

आँख का पानी ढरक जाना। शरम-हया को पी बैठना। मिट्टी छूते सोना होता था। ग्रन्थचुम्बकों को मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। नौ नकद न तेरह उधार। कोयले के व्यवहार में हाथ काले। (सम्मेलनपरीक्षा)

११. नीचे लिखी हुई कहावतों के अर्थ लिखो और प्रयोग दिखाओ—कालिह के योगी माई-माई। किस बिरते पर तत्ता पानी। नाचे न जाने आँगन टेढ़ा। ऊँट के मुँह में जीरा। दमड़ी की बुलबुल, टका हलाल।

१२. हमलोगों को कैसी भाषा लिखनी चाहिये जिसमें हिन्दी-साहित्य की भलाई हो?

१३. नीचे लिखे शब्दों पर तुम्हारा क्या विचार है—

आवश्यकीय, अकाट्य, सराहनीय, पुज्यास्पद।

१४. लिङ्ग-घटित अशुद्धि के विषय में तुम्हारा क्या विचार है?

१५. 'महानता, महानीयता, महत्त्व और महत्ता,' इनकी अलग-अलग व्याख्या करो और विचार प्रकट करो। (सम्मेलनपरीक्षा)

१६. नीचे लिखे पद्य का सारार्थ (Substance) लिखो—

प्रिय पति! वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है?
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ?
वह हृदय हमारा नयनतारा कहाँ है?

१७. अपनी माता को एक पत्र लिखो जिसमें तुम्हारी गत परीक्षा की बात हो।

१८. तुम्हें अपने भाई के विवाह में जाना है, ३ दिनों की छुट्टी के लिये एक विनय-पत्र लिखो।

१९. तुम्हें किसी पुस्तक-विक्रेता से पुस्तकें डाक द्वारा मँगानी हैं, एक पत्र लिखकर भेजो।

२०. तुम्हारे एक मित्र ने पत्र में तुमसे नीचे के पद्य का अर्थ पूछा है, उत्तर भेजो।

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै, श्याम हरित दुति होय॥

(Test Examination)

———

॥ रामः ॥

निबन्ध-रचना

—:❀:❀:❀:—

पथ-प्रदर्शन (Introduction)

लेख—

किसी विषय पर अपने भावों को पूर्ण रूप से क्रमानुसार लिपिबद्ध करना लेख कहलाता है। प्रबन्ध, निबन्ध आदि लेख ही के नाम हैं।

ध्यान देने योग्य बातें—

किसी लेख के लिखने में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान रक्खो—

१. भाषा—समूचे लेख में एक ही प्रकार की भाषा-शैली हो।

२. शब्द—सहज और मधुर शब्दों के रहते कठिन, अप्रचलित और विदेशी शब्दों का प्रयोग न हो।

३. अक्षर—अक्षर स्वच्छ और सुन्दर रहें।

४ अशुद्धियाँ—व्याकरण, तर्क और विसर्ग आदि की अशुद्धियाँ न रहें।

५. विराम के चिह्नों का उचित प्रयोग हो।

६. अर्थ—लेख इस तरह लिखो कि पढ़ते ही अर्थ झलक जाय और रोचक जान पड़े।

७. आकार—लेख संक्षेप में हो, परन्तु कोई बात छूटने न पावे।

८. आडम्बर—अपना पाण्डित्य दिखाने के लिये भावों को जटिल वाक्यों और शब्दों में लिखना तथा लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधना उचित नहीं।

९. अप्रासंगिक विषय—प्रसंग से बहक कर अनावश्यक, अश्लील और व्यर्थ बातें लिखना उचित नहीं। पुनरुक्ति अर्थात् एक ही बात को घुमा-फिरा कर बार-बार लिखना, लम्बी-चौड़ी भूमिका के साथ केवल एक कथा लिखकर लेख समाप्त करना इत्यादि बातों से बचना चाहिये।

१०. खण्डन—एक बात लिखकर फिर उसके विरुद्ध दूसरी बात उसी लेख में लिखना उचित नहीं।

११. क्रम—लेख के जितने भाव हों, सब एक ओर उचित क्रम से रहें ऊटपटाँग मत लिखा, क्योंकि टोपी की शोभा सिर पर है और जूता पैर ही में अच्छा लगता है।

१२. अनुच्छेद—एक अनुच्छेद में विषय का एक ही भाव हो; यदि भाव बड़ा या गंभीर हो तो उसे अधिक अनुच्छेदों में भी लिख सकते हो।

१३. समय—लिखने के पहले खूब सोचकर भाव स्थिर करो। समय पर ध्यान रक्खो। यह न हो कि एक-ही-दो खंडों का विस्तृत वर्णन करने में नियत समय लग जाय और शेष खण्ड छूट जायँ।

प्रणाली—

लेख लिखने की दो प्रणालियाँ हैं—वैज्ञानिक और साहित्यिक। पहली प्रणाली के अनुसार वर्णित विषय भिन्न-भिन्न भागों में विभक्त होकर प्रत्येक भाग यथानियम और यथाक्रम से विवृत होता है। दूसरे के अनुसार वर्णित विषय की कितनी ही चुनी-चुनी बातें नियम की कड़ाई न कर जिसके बाद जो लिखने में सुभीता हो, उस प्रकार इस कौशल से विवृत करे कि उससे पाठक बिना कष्ट सब बातें, अथवा अन्ततः विवृत विषय में जो कुछ जानने योग्य हो, उसे स्थूलरूप से हृदयंगम कर सके।

विद्यार्थी को उचित है कि वह पहली प्रणाली के अनुसार लेखों को लिखे। दूसरी प्रणाली सिद्धहस्त लेखकों के लिये है, वे ही जहाँ से चाहें आरम्भ कर उत्तम लेख लिख सकते हैं। हाँ, अभ्यास करते-करते जब बुद्धि परिपक्व हो जायगी तब विद्यार्थी भी लिख सकेंगे। हमने इस पुस्तक में दोनों प्रकार के लेख दिये हैं। पहली प्रणाली के अधिकतर लेख अपनी कलम से हैं और दूसरी के प्रसिद्ध विद्वानों की कलम से।

विषय-विभाग करते समय विद्यार्थियों को घबराना उचित नहीं। थोड़ी देर शान्तिपूर्वक सोचने ही से राह दीख पड़ेगी। जो-जो भाव (Points

मिलें, उन्हें क्रम से लिख लो और इसके बाद लेख लिखना आरम्भ करो। प्रत्येक भागवत बातों को एक-एक अनुच्छेद में लिख देने ही से 'लेख' हो जायगा।

लेख-सौन्दर्य के साधन—

"जो अच्छा लेख लिखना चाहे, उसे चाहिये कि अच्छे लेखकों की भिन्न-भिन्न पुस्तकें पढ़कर भावों को सोचा करे, सुयोग्य वक्ताओं की वक्तृताओं को सुना करे और विचार पूर्वक लिखने का खूब ही अभ्यास डाले।"

प्रत्येक विद्यार्थी को उचित है कि ऊपर लिखे कथन पर ध्यान रक्खे। आशा है, चिन्तापूर्वक अभ्यास करते-करते कुछ ही दिनों में अच्छे लेख लिखने के लिये कलम तैयार रहेगी।

लेख-भेद—

विषय के अनुसार प्रायः सभी लेख तीन प्रकार के होते हैं—वर्णनात्मक (Descriptive), विवरणात्मक (Narrative) और विचारात्मक (Reflective)।

किसी सजीव या निर्जीव पदार्थ का वर्णन 'वर्णनात्मक'; किसी ऐतिहासिक, पौराणिक या आकस्मिक घटना का वर्णन 'विवरणात्मक'; और किसी गुण, धर्म, दोष या फलाफल इत्यादि का वर्णन 'विचारात्मक' लेख कहलाता है। विचारात्मक लेख में किसी देखी या सुनी हुई बात का वर्णन नहीं होता, इसमें केवल कल्पना और चिंता-शक्ति से काम लिया जाता है।

वर्णनात्मक लेख से विवरणात्मक कठिन और विवरणात्मक से विचारात्मक कठिन है। इन तीनों की भाषा भी एक-सी नहीं हो सकती।

वर्णनात्मक की भाषा साधारण, विवरणात्मक की कुछ गम्भीर और विचारात्मक को सजीव होनी चाहिये।

विषय-विभाग—

नीचे प्रत्येक प्रकार के लेख के मुख्य-मुख्य विभाग दिखाये जाते हैं। ये उन विद्यार्थियों के लिये पथ-प्रदर्शक होंगे जो घबराकर कहते हैं कि हमें सूझता ही नहीं, क्या लिखें। यदि इन विभागों पर ध्यान रखकर वे प्रत्येक पर कुछ-कुछ लिख देंगे तो अवश्य ही एक छोटा-मोटा लेख हो जायगा।

नीचे प्रत्येक लेख के जो विभाग दिखाये गये हैं, वे लेखकों की इच्छा से घटाये-बढ़ाये भी जा सकते हैं और दो-तीन विभागों को केवल एक ही विभाग में रख सकते हैं।

(क) वर्णनात्मक लेख (Descriptive Essays)

प्राणी—श्रेणी, प्राप्तिस्थान, आकार, प्रकार, स्वभाव, उपकार, विचित्रता, उपसंहार।

मनुष्य—परिचय, प्राचीन इतिहास, वंश-परंपरा, भाषा और धर्म, सामाजिक जीवन, राजनीतिक अवस्था, स्वभाव, विशेषता।

उद्भिद्—परिचय, श्रेणी, स्वाभाविक जन्मस्थान, प्राप्तिस्थान, उपज, पौधे का स्वभाव, तैयार करना, व्यवहार, लाभ, उपसंहार।

स्थान—अवस्थिति, नामकरण, इतिहास, जलवायु, शिल्प, व्यापार, जाति, धर्म, दर्शनीय स्थान, उपसंहार (उत्थान और पतन, शासन)।

वस्तु—उत्पत्ति, प्राकृतिक या कृत्रिम, प्राप्तिस्थान, किस अवस्था में पाई जाती है, कृत्रिम होने पर इतिहास, उपसंहार।

पहाड़—परिचय, पौधे, जीव, वन, गुफाएँ, नदियाँ, झीलें, देश, नगर, तीर्थ, पहाड़ी मनुष्य, उपकार और शोभा।

(ख) विवरणात्मक लेख (Narrative Essays)

ऐतिहासिक—घटना का समय, ऐतिहासिक लगाव, कारण, स्थान, वर्णन, फल, इष्टानिष्ट की समालोचना।

जीवन चरित्र—परिचय, जन्म, वंश, पिता-माता, बचपन, विद्या, कार्यकाल, यश, नौकरी, व्यवसाय, देशहितकर कार्य, गुण-दोष, मृत्यु, उपसंहार।

भ्रमण वृत्तान्त—परिचय, उद्देश्य, समय, आरम्भ, यात्रा, विवरण, अन्त, हानि-लाभ, समालोचना, उपसंहार।

आकस्मिक—परिचय, तारीख, स्थान, कारण, विवरण, अन्त, फल, समालोचना, उपसंहार।

नोट—उपाख्यान, कथा इत्यादि लिखने में विषय-विभाग की आवश्यकता नहीं दीख पड़ती। हाँ, अन्त में शिक्षा (Moral) लिखी जाती है।

(ग) विचारात्मक लेख (Reflective Essays)

विषय-विभाग—अर्थ, परिभाषा, भूमिका या परिचय, सार्वजनिक या सामाजिक, स्वाभाविक या अभ्यासलभ्य, कारण, प्रकार, संचय, तुलना, दोष-गुण, फल, हानि-लाभ, दृष्टान्त, प्रमाण और उपसंहार।

नोट—ऊपर के विषय-विभाग साधारणतः पथ-प्रदर्शन के लिये हैं, परन्तु सभी विचारात्मक लेखों में भली-भाँति नहीं लगते। अभ्यास से स्वयं इस बात की सूझ होती जायगी। इस पुस्तक में जितने लेख दिये गये हैं, उनपर दृष्टि डालने से इसका पता आप ही लग जायगा।

लेख लिखानेवाले शिक्षकों से हमारी राय—

शिक्षकों को उचित है कि वे विद्यार्थियों को हताश न करें, धीरे-धीरे साहस बढ़ाते हुए अभ्यास करावें। पहले वर्णनात्मक, तब विवरणात्मक और सबसे अन्त में विचारात्मक लेख लिखवावें। विषय दो-एक दिन पहले ही निश्चित कर दें। उसी विषय पर विद्यार्थियों से भली-भाँति बातचीत करें। आरम्भ ही से उत्तर पूर्ण वाक्यों में लिया करें। बातचीत द्वारा बालकों ही से विषय-विभाग निश्चित करावें। जब लड़के पूर्ण रीति से समझ जाँय तब लेख लिख लाने को कहें। लेख को शुद्ध कर अपना मन्तव्य मीठे-मीठे शब्दों में प्रगट कर दिया करें। यदि यह राय मानी गई तो देखेंगे कि उनके विद्यार्थी कुछ ही समय में अच्छे लेख लिखने लग जायँगे।

निबन्ध-माला

पहला खंड—वैज्ञानिक प्रणाली से लिखे लेख

वर्णनात्मक लेख (Descriptive Essays)

चेतन पदार्थ (Animate Subjects)

गो-जाति (Cow)

१. जाति। २. आकार। ३. निवासस्थान। ४. स्वभाव और गुण। ५. उपकार। ६. वर्तमानकाल में गाय के साथ हमलोगों का बर्ताव—दुर्दशा-अवनति के कारण। ७. उपसंहार-उन्नति के उपाय।

१. संसार के स्तनपायी चतुष्पद जीवों में गोजाति प्रधान जीव है। गोजाति पागुर करती है और इसे मेरुदण्ड भी होता है।

२. गाय का शरीर गठीला, प्रायः २॥ से ५ हाथ तक लम्बा और २॥—३ हाथ ऊँचा होता है। देश-भेद से इसके आकार में भी भेद पड़ता है। बंगाल की गाय छोटी और पश्चिम की बड़ी होती है। गाय की पूँछ और कान मच्छर, मक्खी इत्यादि दंशक जीवों के आक्रमण को रोकते और सींग इसको बड़े जीवों से बचाते हैं। इसके खुर फटे होते हैं, जो चिकनी और भींगी मिट्टी पर चलने में सहायता देते हैं।

३. गाय पालतू जीव है। यह सारे संसार में मिलती है, परन्तु हमारे देश में इसकी अधिकता है। जङ्गली गाय कम मिलती है।

४. हमलोग कहा करते हैं "तुम्हारी माता बड़ी गौ है।" क्यों? इससे ज्ञान पड़ता है कि गाय का सीधापन अत्यन्त प्रसिद्ध है। सचमुच, गाय किसी को हानि नहीं पहुँचाती। वह घासपात खाती है और दस महीने गर्भ धारण कर एक बच्चा देती है। इसी समय से प्रायः ८—१० महीने दूध देती है। गाय से बैल अधिक बली होता है और साँड़ तो सचमुच बलिष्ठ जीव है। यह जोरों में डँकरता है। इस जाति की आयु प्रायः २५ वर्ष है।

५. गो-जाति के समान गृहस्थ, देश और समाज का उपकार करनेवाला

और कोई जन्तु नहीं। यह बात सही है कि यूरोप में कल के हलों से खेती करते हैं और अरब में ऊँटों से खेती करने में सहायता मिलती है, परन्तु हमारा देश गोवंश ही पर अवलम्बित है। गाय का बेटा हमारा हल जोतता, बोझा ढोता और गाड़ी खींचता है। क्या जाड़ा, क्या गर्मी और क्या वर्षा—सभी ऋतुओं में अनेक कष्ट सहन कर हमारे कार्य चुपचाप किये ही जाता है।

'हमने तुम्हें माँ की तरह दूध पीने को दिया।' सचमुच गाय हमारी माता है। अपनी माँ ता कुछ ही दिनों तक दूध पिलाती है परन्तु गोमाता आजीवन दूध देती है। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या रोगी, क्या नीरोग—सभी इसके दूध से पुष्ट होते और बली बनते हैं। इसका दूध हमारे सभी स्वादिष्ट भोजनों का प्रधान उपादान है इससे दही, घी, मक्खन और नाना प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं। हमारा कोई धार्मिक कार्य ऐसा नहीं जिसमें इसके दूध-घी का प्रयोग न होता हो। यह गाय के दूध ही का प्रभाव है कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि अध्यात्म विद्या में पराकाष्ठा तक पहुँचे थे।

दूध तो दूध ही है, इसके मूत्र और गोबर के उपकार भी अवर्णनीय हैं। मूत्र कई रोगों की मुख्य औषधि है। गोबर स्वास्थ्य के लिये परम हितकर है। जो भूमि इससे पोत दी जाती है, वहाँ अनेक रोगों की पहुँच नहीं होती। हिन्दू अपने सभी शुभ कार्य उसी भूमि में करते हैं, जो गोबर से लीप दी जाती है। गाय का मल-मूत्र खेत में पटाने से उसकी उर्वरा-शक्ति बढ़ती है। गोबर से गोयठा बनाते हैं, जो जलावन के काम में आता है। वैद्य कहते हैं कि जहाँ गाय रहती है, वहाँ की वायु में कई रोगों के कीटाणु नहीं रहने पाते।

ऊपर जितने उपकार लिखे हैं वे तो गाय की जीवित अवस्था के हैं। परन्तु वह मरने पर भी लाभ पहुँचाता है। जिन जूतों को पहन हम बाबू बने फिरते हैं, वे अधिकतर गाय के चमड़े से बनते हैं। घोड़े का साज भी उसीके चमड़े से बनता है। उसके खुर से सरेस बनाते हैं। हड्डियों से बटन, बेंट, पासे और भिन्न-भिन्न खिलौने बनते हैं। हड्डियों का चूर्ण खेत की उपज को बढ़ा देता है।

विद्वानों की राय है कि मनुष्य के जितने प्रयोजनीय पदार्थ हैं सबों में

गोजाति की सहायता लेनी पड़ती है। यदि ईश्वर की रचना में यह जाति नहीं होती तो संसार की स्थिति किसी और ही ढंग की होती। भारत के कई परिवार केवल गोजाति को पालकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनमें यादव मुख्य हैं।

अब इस प्रश्न का उत्तर आप से आप समझ में आ जायगा कि हिन्दू-जाति गाय को देवता क्यों समझती है। भला, जो इतने उपकार करे, जो माता की भाँति पालन करे वह देवता नहीं तो और क्या है! हमलोग इसे 'भगवती समझते हैं और सम्मान के साथ पूजा करते हैं। सभी जातियों की, किसी न किसी रूप में, इस पर श्रद्धा है।

६. ऐसे उपकारी जीव के साथ हम लोगों का बर्ताव उचित नहीं होता। हमलोग उसे भरपेट भोजन नहीं देते। उसे चरने के लिये कहीं परती भूमि नहीं दीख पड़ती। यथेष्ट उत्तम भोजन नहीं मिलने से धीरे-धीरे उसकी अवनति होती जा रही है। वह मृतक-सी जान पड़ती है। इसका फल यह हो रहा है कि जो गाय १५ बच्चे तक दे सकती है वह अब २-४ बच्चे ही देकर अपना-जीवन समाप्त कर डालती है। ये २-४ बच्चे भी बहुत ही खिन्न और छोटे होने लगे हैं। साथ-साथ दूध की भी बुरी गत हुई है। जो गाय १०-१५ सेर दूध देनेवाली है, वह अब कठिनता से एक-दो सेर दूध देती है। हम तो यहाँ तक कहते हैं कि इसी आहार की न्यूनता के कारण बहुत-सी गायों से कितनी ही बकरियाँ अधिक दूध देती हैं।

भोजन तो कम मिलता ही है, साथ-साथ गायों से कहीं-कहीं हल और गाड़ी भी खिंचवाते हैं जिससे उनके बच्चे छोटे, दुर्बल और अल्प-आयु होते जा रहे हैं।। बच्चों के साथ हम लोगों की ओर निर्दयता झलकती है। हम सारा दूध दुह लेते हैं और उनके लिये कुछ भी नहीं छोड़ते।

एक और बात है। हम लोग गायों को अच्छे स्थान में नहीं रखते। वे ऐसी जगह रक्खी जाती हैं जहाँ की भूमि भींगी रहती है और जहाँ वायु और प्रकाश की पहुँच भी नहीं होती। फल यह निकलता है कि वे रोगी होकर मर जाती हैं। इन्हीं उपर्युक्त कारणों से दिनोंदिन इस जाति का ह्रास होता जा रहा है।

७. 'पीछे हुआ सो हो गया अब सामने देखो सभी।' जब यह बात सत्य है कि भारत की उन्नति गोजाति की उन्नति पर ही निर्भर है तब हमलोगों को उचित है कि गायों के चरने के लिये परती भूमि छोड़ दें; उन्हें पेट भर भोजन दें, स्थान-स्थान पर गोशालाएँ स्थापित करें, उन्हें अच्छी जगह में रक्खें, उनके लिये औषधालयों का समुचित प्रबन्ध करें और उनसे अनुचित कार्य न लिये जायँ, इत्यादि। इन बातों पर यदि पूर्ण ध्यान रहा तो फिर भारत में कृषिकार्य भलीभाँति सम्पादित होंगे, बलपौरुष का पूर्ण समावेश हो जायगा और दूध की नदियाँ बहने लगेंगी। और, यदि उसमें प्रतिकूलता रही—

"तो अस्त समझो सूर्य भारतभाग्य के आकाश का।
जो तनिक हरियाली रही वह भी न रहने पायगी।"
यह स्वर्ण भारत भूमि बस मरघट-मही बन जायगी।"

—मैथिलीशरण गुप्त

चींटी (Ant)

१. श्रेणी। २. वासस्थान। ३. आकार। ४. भेद और कार्य। ५. स्वभाव, दाँत और भोजन। ६. उपकार और अपकार। ७. शिक्षा।

१. चींटी एक बहुत ही छोटी कृमिजातीय जीव है। यह अण्डे से पैदा होने के कारण अंडज कहलाती है।

२. चींटियाँ सारे संसार में मिलती हैं। देश-भेद से ये भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। ये मेंड़ों, ऊँची भूमियों, दीवालों और पेड़ों में रहा करती हैं।

३. चींटी का शरीर तीन भागों में बँटा रहता है। इसका सिर कुछ टेढ़ापन लिये गोल, उसमें दो छोटी चमकीली आँखें और दो मजबूत जबड़े होते हैं। इसके छः पैर होते हैं। यह छोटी-बड़ी तथा लाल, काली, भूरी इत्यादि कई रंगों की होती हैं।

४. चींटियाँ झुंड बाँधकर रहती हैं। एक झुंड में रानी, कामकाजू, लड़ाकू, सुस्त, धाय और गुलाम इत्यादि कई प्रकार की चींटियाँ होती हैं।

रानी चींटियाँ अंडे देती हैं। इन अंडों से छोटे-छोटे कीड़े निकल आते हैं। कीड़ों को धाय चींटियाँ पालती हैं, धूप में ले जाती हैं और सर्दी या बदली

से रक्षा करती हैं। कुछ दिनों में ये इतने बड़े हो जाते हैं कि अपने छिलके के भीतर नहीं रह सकते। छिलकों को फोड़कर बाहर निकलने में उन्हें बड़ी कठिनाई होती है। इस काम में बूढ़ी चींटियाँ सहायता करती हैं। छिलकों को फोड़कर धीरे से उनके पैरों को खोल देती हैं। तब ये कीड़े अपनी पूरी हालत पर पहुँच जाते हैं और चींटियों के नाम से पुकारे जाते हैं।

यह सुनकर आश्चर्य होगा कि चींटियाँ भी गायें रखती हैं। जिस प्रकार हमलोग दूध, दही के लिये गाय को पालते हैं उसी प्रकार चींटियाँ भी एक प्रकार के कीड़ों को पालती हैं, जो घासपात खाकर जीते हैं। इन कीड़ों के शरीर में मीठा रस रहता है। जब चींटियाँ रस को पीना चाहती हैं तब वे कीड़ों को ठुकराकर और तमाचे मारकर मीठा रस पीती हैं।

जिस प्रकार हमलोग नौकर रखते हैं, उसी प्रकार चींटियों के भी गुलाम होते हैं ये गुलाम चींटियों को खिलाते-पिलाते तथा उनके बच्चों और खेतों की रखवारी करते हैं। बहुत-सी चींटियाँ गुलाम की पीठ पर चढ़कर हवा खाने निकलती हैं।

५. यदि सच पूछिये तो चींटी से बढ़कर मेहनती कोई जीव नहीं। एक मनुष्य ने एक चींटी को गौर से देखकर यह लिखा है कि वह छः बजे सबेरे से पौने दस बजे रात तक काम करती थी। चींटी की मेहनत के बारे में हमलोगों के यहाँ कहावत चल पड़ी है—"चींटी के घर मातम।" इसका यह अर्थ है कि "चींटी के घर में सदा काम करने की धुन है।"

चींटियाँ अपने रहने के लिये मेंड़ों में या ऊँची जमीन में खोता बनाती हैं, जिसे टील्हा कहते हैं। टील्हों के भीतर छोटी-छोटी कोठरियाँ तथा उनमें द्वार और राहें भी बनाती हैं। सभी कामों में इनकी चतुराई और सफाई देखी जाती है। किसी कोठरी में अण्डे देती हैं, किसी में भोजन रखती हैं और किसी में सोती हैं। इसी प्रकार एक-एक काम के लिये एक-एक कोठरी बनाती हैं। रात को जब सोने लगती हैं तब द्वारों और राहों को खर-पात से बन्द कर देती हैं। टील्हों पर रात-दिन पहरा पड़ता है। जब कभी शत्रुओं के आक्रमण से टील्हे बिगड़ जाते हैं तब शीघ्र ही चींटियाँ लग पड़ती हैं और मरम्मत कर डालती हैं।

भोर होते ही चींटियाँ जागकर बहुत ही शीघ्र अपने काम में लग जाती हैं। यदि कोई नहीं जागती है तो दूसरी चींटियाँ उसे जगा देती हैं, परन्तु जो बहुत सुस्ती करती है उसे डंक खाना पड़ता है। चींटियाँ समय को कभी बरबाद नहीं करतीं। इनका आपस में बहुत मेल रहता है, ये मिलकर काम करती हैं। एक चींटी को जब कहीं भोजन का पता लग जाता है तब वह औरों को खबर दे देती है और तब चींटियाँ झुंडों में आकर उसे ले जाती हैं। यदि कोई चींटी बीमार पड़ जाती है तो अन्य चींटियाँ उसकी सेवा बड़े प्रेम से करती हैं। चींटियाँ मीठी चीजें खाया करती हैं। इनकी घ्राण-शक्ति इतनी तेज होती है कि झट सूँघकर समझ जाती हैं कि हमारा भोजन कहाँ मिलेगा। वे दूसरे कीड़ों को भी खा जाती हैं। वे अपना भोजन सुखार में जमा करती हैं और वर्षा तथा जाड़े में आनन्द से दिन काटती हैं।

६. चींटियाँ हमलोगों को बहुत लाभ पहुँचाती हैं। वे हानिकारक पदार्थों और बीमारी फैलानेवाले जीवों का नाश करती हैं। हाँ, हानि भी पहुँचाती हैं। प्रायः भोजन के पदार्थों को खा जातीं और काठों को बिगाड़ डालती हैं।

७. अध्यवसाय, परिश्रम, एकता, समय का समुचित उपयोग, भविष्यत् का ज्ञान, परस्पर दुःख सुख में सहानुभूति, परिमितव्ययिता और संयमी होना इत्यादि कई गुण हमलोग चींटियों से सीख सकते हैं।

"चींटी सहस होहिं एकसंगा, फाड़ि खाहिं मनिआर भुअंगा।"

उद्भिद् (Vegetables)

पान या ताम्बूली लता—(The Betel Plant)

१. परिचय। २. खेत तैयार करना—रोपना। ३. बरोह, लता की रक्षा। ४. पान के प्रकार। ५. पान की रक्षा। ६. पान लगाना। ७. पान का व्यवहार। ८. लाभ। ९. उपसंहार।

१. संसार में जहाँ जाइये वहीं प्रकृति की विचित्र शोभा एवं विश्वकला के अनन्त रहस्यपूर्ण सृष्टिकौशल के दर्शन आपके नेत्रों और हृदय को आनन्दसे भर देंगे। जिस देश में जिस वस्तु की आवश्यकता समझी है भगवान ने, वहाँ

उसी की व्यवस्था की है। देश-भेद और लोगों की रुचि-भेद के अनुसार जहाँ जो अभाव जान पड़ा है, प्रकृति-देवी ने उसे पूर्ण कर दिया है। हमारे भारत में प्रत्येक ऋतु के अनुसार देवी ने अपनी प्राकृतिक शोभा देकर अनन्त कृपा दिखाई है। वन, उपवन, तड़ाग, जहाँ देखिये वहीं नाना प्रकार की लताएँ, पत्तियाँ और फूल-फल दीख पड़ते हैं, परन्तु प्रकृति-देवी की यह ताम्बूली-लता सभी स्थानों में नहीं दीख पड़ती। जान पड़ता है, देवी ने केवल हमारे ही देश को यह अलभ्य वस्तु भेंट की है।

२. पान को बहुत ही सावधानी से रोपना होता है और सदा उसकी देखभाल करनी होती है, नहीं तो वह सूर्य की प्रखर किरणों, अति वृष्टि और प्रबल वायु को नहीं सह सकने के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसकी खेती किसी जलाशय के किनारे ढालू और ऊँची भूमि में होती है। पहले खेत में खाद पटाकर उसे भलीभाँति जोत डालते हैं और शकरकंद की लता की भाँति इसे क्यारी बनाते हुए रोप डालते हैं। यदि नियमित रूप से जल न पटाया जाय तो पौधे नहीं बढ़ते। प्रत्येक पौधे के पास ४-५ हाथ का बाँस गाड़ देते हैं जिसके अवलम्ब से पौधा ऊपर को बढ़ चलता है। जब बाँस की लम्बाई तक बढ़ चुकता है तब उसे नीचे की ओर घुमा देते हैं। पान की खेती गरमी और बरसात में होती है।

३. पान की खेती को बरेज या बरोह कहते हैं। ऊपर पान का रोपना, खेत का तैयार करना इत्यदि बताये गये हैं, परन्तु बरोह में पान की रक्षा के लिये और कुछ करना होता है। ऊपर लिख आये हैं कि पान के लिये प्रबल वायु, सूर्य की प्रखर किरणें और भारी वर्षा की आवश्यकता नहीं। अतः, इन उत्पातों से बचाने के लिये खेत के चारों ओर झिझरीदार टट्टी और ऊपर पतली छाजनी बना देते हैं। टट्टी में केवल एक मनुष्य के आने-जाने के लिये एक दरवाजा छोड़ दिया जाता है।

४. नया, पुराना, तीता, मीठा, साँची, कपुरिया इत्यादि पान के कई भेद हैं। देश-भेद से बँगला और मगही पान यहाँ मिलते हैं। बरई खेत में जड़ की ओर से पत्तों को तोड़ता है और गिन-गिन कर २००-२०० पान प्रत्येक ढोली में

देता है। पनेरी बरई से पान खरीद कर बाजार में बीड़े बना-बनाकर बेचता है। गिलौरी, सिंहारा इत्यादि बीड़ों के कई भेद हैं।

५. यदि पनेरी पान की रक्षा न करे तो यह बहुत शीघ्र सड़ जाता है। पान को प्रतिदिन फेरते रहना और सड़े-गले भाग को कतरकर फेंक देना चाहिये। केवल इसी काम के लिये बड़े-बड़े पनेरियों और बरइयों के यहाँ चतुर नौकर रक्खे जाते हैं।

६. पान लगाने में चूने, कत्थे, सुपारी इत्यादि कई मसालों की आवश्यकता पड़ती है। पान सावधानी से लगाना चाहिये, क्योंकि चूना अधिक पड़ जाने से जीभ में जलन होने लगती है। जो पनेरी अच्छा पान लगाता है उसकी बिक्री अच्छी होती है। लगाने की चतुराई और मसालों के उचित व्यवहार से पान का एक-एक बीड़ा एक या अधिक रुपयों का भी बिकता है। ऐसे बीड़े काशी में खूब बनते हैं।

७. हमारे भारत में पर्व, विवाह इत्यादि जितने शुभ कार्य हैं सभी में पान का व्यवहार होता है। यदि बड़े आदमी किसी के घर जाते हैं तो उनके आने और लौटने के समय पान दिया जाता है।❀ भैयादूज इत्यादि उत्सव, व्रत और पूजा-पाठ में पान का रहना बहुत आवश्यक है। बड़े लोगों के सामने पान खाना असभ्यता का चिन्ह है। पान सावधानी से खाना चाहिये, नहीं तो व्यर्थ होठ रँगने और कपड़े में पोंछ लेने से खानेवाले का अनाड़ीपन झलकता है।

८ पान खाने से भोजन पचने में सहायता मिलती है। अजीर्ण रोग और अम्लदोष में इससे कुछ-कुछ उपकार होते देखा गया है। पान गले को साफ करता, रूप को सुन्दर बनाता और वाणी में मधुरता लाता है। वह उत्तेजक पदार्थ है, इसलिये अधिक खाना उचित नहीं। अधिक खाने से दाँत की जड़ हिल जाती है। विद्यार्थियों को पान खाना उचित नहीं, क्योंकि इससे जीभ कुछ मोटी हो जाती है। रात को पान खाने के बाद कुल्ली कर लेना उचित है, नहीं तो इससे दन्तरोग होते हैं।

९. पुराणों में लिखा है कि राजा को पान खाना आवश्यक है। मुसलमान

❀ अब तो चाय की चढ़ाई से नाकों दम है !

बहुत ही अधिक पान खाते हैं और हमारे देश में रहने पर भी अँगरेज प्रायः नहीं खाते थे।

अचेतन पदार्थ (Inanimate Objects)

नगर—पटना (Patna)

१. नामकरण। २. इतिहास। ३. वर्तमान पटना। ४. जलवायु। ५. शिल्प और व्यापार। ६. जाति और धर्म। ७. दर्शनीय स्थान। ८. उपसंहार।

१. आजकल 'पटना' बिहार राज्य की राजधानी है। इसका प्राचीन नाम पाटलिपुत्र है। भविष्य, ब्रह्माण्ड और बायुपुराणों में तथा दशकुमारचरित, मुद्राराक्षस, बृहत्कथा, अशोकावदान इत्यादि संस्कृत और महापरिनिर्वाण सूक्त, स्थविरावली इत्यादि पाली ग्रन्थों में पाटलिपुत्र, पुष्पपुर और कुसुमपुर नाम से 'पटने' का उल्लेख मिलता है। ग्रीसवालों ने अपने प्राचीन ग्रंथों में इसका नाम 'पालिब्रोथ' लिखा है। जब औरंगजेब का पोता 'अजीम उश्शान' बिहार का सूबेदार था तब बादशाह ने इसका नाम 'अजीमाबाद' रखना चाहा था। अब सब कोई इसे 'पटना' ही कहा करते हैं।

२. पाली और संस्कृत ग्रंथों से पता लगा है कि ईसा के ४९० वर्ष पहले जहाँ पर गंगा और सोन का संगम था, वहाँ शिशुनागवंशीय राजा अजातशत्रु ने मिथिला की वृज्जि जाति की चढ़ाई को रोकने के लिये एक किला बनवाया था। वहाँ धीरे-धीरे एक गाँव बस गया। ५०-६० वर्ष के पीछे उदयन नामक राजा मगध की राजधानी राजगृह को छोड़ इसी पाटलि गाँव में आ बसे। इनके साथ बहुत से धनीमानी और कर्मचारी लोग भी आये। बस्ती बढ़ती गई, गाँव नगर में बदल गया और राजगृह को उजाड़ कर यह नगर आप मगध की राजधानी बन बैठा। ईसा के ३०० वर्ष पहले मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से 'पाटलिपुत्र' की गद्दी अपने हाथ में कर ली। इन्हीं के दरबार में ग्रीस का दूत मेगास्थनीज आया था। उसके लेखों से पता चला है कि उस समय पाटलिपुत्र ९ मील लम्बा और १॥ मील चौड़ा था। चारों ओर शाल की लकड़ी का घेरा था, जिसमें ५४ फाटक और ५७० मंच बने थे।

घेरे के चारों ओर ४०० हाथ चौड़ी और ३० हाथ गहरी खाई सोन के जल से सदा भरी रहती थी। उद्यानों, तालाबों और फल-फूलों से सुसज्जित कोट का बना राजभवन ईरान के राजभवन से कहीं सुन्दर था। ५०० ई० तक गुप्तवंश का राज और पाटलिपुत्र राजधानी रहा। गुप्तवंश के समय पाटलिपुत्र की उन्नति चरम सीमा तक पहुँच गई थी। इतनी धन-संपत्ति थी जितनी पहले किसी के समय में नहीं रही। देश-देश से यात्री और व्यापारी आते थे जिनकी देखभाल के लिये पाँच निरीक्षक नियुक्त रहते थे।

* ईस्वी सन् के आरम्भ से ३०० ई० तक शकों की चढ़ाइयों से पाटलिपुत्र छोटा होता गया। चौथी शताब्दी में मगध के जमींदार और लिच्छविराज के दामाद चन्द्रगुप्त ने अपना राज्य स्थापित किया। उनके पुत्र समुद्रगुप्त ने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। समुद्रगुप्त के बाद इनके पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम से ४०० ई० में गद्दी पर बैठे। इनके समय में पाटलिपुत्र की फिर से बहुत ही अच्छी उन्नति हुई। इसी पाटलिपुत्र में ४७६ ई० के लगभग आर्यभट्ट ज्योतिषी ने अपना प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ बनाया था।

पाँचवीं शताब्दी के अन्त के साथ पाटलिपुत्र के गौरव का भी अन्त हो चला। छठीं शताब्दी में हूणों ने पाटलिपुत्र को लूट-लूट कर बरबाद कर दिया। चीनी यात्री हुएनसंग ६४० ई० में यहाँ आया था। उसने लिखा है—"पाटलिपुत्र उजाड़ हो गया है, चारों ओर जंगलझाड़ हो गये हैं, केवल गंगा के किनारे प्रायः १००० घरों की एक बस्ती है।" शेरशाह के पहले तक पाटलिपुत्र की दशा नहीं सुधरी। हाँ, नदियों के संगम पर होने के कारण कुछ वाणिज्य-व्यापार होता रहा। शेरशाह ने १५४१ ई० में दिल्ली की राजगद्दी दखल की और पाटलिपुत्र में ईंटों का एक किला बनवाया। मुगल बादशाहों ने पहले इस राज्य की राजधानी बिहार नामक नगर में रक्खी, परन्तु पीछे वह पाटलिपुत्र को चली आई। अब यहाँ मुसलमानों का दबदबा बढ़ा जिसकी कुछ गंध हाल तक

---

* प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० यदुनाथ सरकार कृत एक पुस्तक के आधार पर लिखित।

थी। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में अजीम उश्शान यहाँ का सूबेदार हुआ, तब से यहाँ कुछ लोग पाटलिपुत्र को अजीमाबाद कहने लगे। मुगलों के समय यह प्रदेश मुर्शिदाबाद के नवाबों के हाथ में रक्खा गया था। धीरे-धीरे वे मुगल बादशाहों से स्वतन्त्र रहने लगे, इसलिये उन्होंने मुगलों के आक्रमण से बचने के लिये पाटलिपुत्र के मुख्य भाग को ऊँची और मोटी दीवालों से घिरवा डाला। उसी घेरे के—पूरब दरवाजा और पश्चिम दरवाजा—दोनों द्वार अभी तक प्रसिद्ध हैं। इसके बाद 'पाटलिपुत्र' अंग्रेजी सरकार के हाथ में आया। पहले तो बिहार राज्य बंगाल के साथ मिला हुआ था, परन्तु १९११ ई० से वह अलग कर दिया गया है। पाटलिपुत्र को फिर से बिहार की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

३. वर्तमान पटने के मुख्य तीन भाग हैं—पटना सिटी, बाँकीपुर और दानापुर। 'पटना सिटी' पूरब में है। यह पुराना शहर है और यहीं हिन्दुओं और मुसलमानों के समय में राजधानी थी। अभी भी यहाँ वाणिज्य-व्यवसाय की प्रधानता है। बाँकीपुर अँगरेजी शासन का केन्द्र था। हाल में ही बाँकीपुर और दानापुर के बीच रेलवे लाइन के दोनों ओर हाईकोर्ट का एक नया शहर बसाया गया है, जहाँ राज्यपाल का भवन, हाईकोर्ट, सेक्रेटेरियेट' हाईस्कूल और कर्मचारियों के डेरे बनाये गये हैं। दानापुर पश्चिम में है। वहाँ फौज की छावनी है।

४. गङ्गा के किनारे बसने के कारण पटने के लोगों को पीने के लिये गङ्गाजल मिल जाता है,परन्तु कुँओं का जल इतना खारा है कि पीने योग्य नहीं। बस्ती घनी है, इसलिये बीमारियाँ बहुत ही शीघ्र फूट निकलती हैं। केवल हाईकोर्ट वाले हिस्से की जलवायु अच्छी है, क्योंकि वहाँ की बस्ती घनी नहीं और सभी जगह पानी की कलें लगी हैं। पटना सिटी की जल-वायु और भागों से अधिक बुरी है। सम्भव है, वहाँ वाले इसका अनुभव भरपूर नहीं करते हों, परन्तु बाहरवालों के लिये वहाँ की जलवायु स्वास्थ्य-प्रद नहीं है।

५. गंगा, गंडक और सोन के संगम पर बसने के कारण पटना प्राचीन काल से व्यापार का केन्द्र रहा है। यहाँ अन्न इत्यादि के बड़े-बड़े गोले हैं। पटना

सिटी में शीशा ढाला जाता है तथा चूड़ी, टिकुली इत्यादि स्त्रियों के व्यवहार की चीजें, काठ के खिलौने और दस्तकारी के कई पदार्थ यहाँ से बाहर भेजे जाते हैं।

६. पटने में भारत की भिन्न-भिन्न जातियाँ रहती हैं, जिनमें हिंदू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई मुख्य हैं । यहाँ हिन्दू सबसे अधिक हैं ।

७. पटने में गोलघर, अगमकुआँ, कुम्हड़ार, गुरुगोविन्द सिंह का जन्मस्थान, खुदाबख्श खाँ की लाइब्रेरी, सिनहा लाइब्रेरी, अजायब घर, मानुक साहब की चित्रशाला इत्यादि दर्शनीय स्थान हैं। गोलघर को अँग्रेजों ने १७७६ ई० में अन्न रखने के लिये बनवाया था। गोलघर पर चढ़ने से पटना और गंगा का अच्छा दृश्य दिखाई पड़ता है। लोग कहते हैं कि अगमकुआँ में अथाह जल है। कुम्हड़ार, 'पटना जंक्शन' स्टेशन से प्रायः १॥ कोस पर है। वहाँ प्राचीन नगरका शेषांश दीख पड़ता है। पास ही खुदाई होने से बहुत से ऐतिहासिक पदार्थ मिले हैं। गुरुगोविन्द सिंह का जन्म स्थान पटना सिटी में है। वहाँ अभी तक गुरु महाराज का 'छानाबाना' रखा हुआ है। खुदाबख्श खां की लाइब्रेरी भारत में मुसलमानी ग्रन्थों का सबसे उत्तम संग्रहालय है। इसमें मुसलमानी बादशाहत के समय के प्रचुर ऐतिहासिक साधन हैं। मानुक साहब की चित्रशाला में भारतीय प्राचीन चित्रों का अपूर्व संग्रह है, जिसमें कई चित्र यूरोपीय चित्रों की टक्कर के हैं। ऐसे ही पटनदेवी का मन्दिर, हाईकोर्ट, जाफर खाँ का बाग आदि भी दर्शनीय स्थान हैं।

८. पटना कई बार उठा और कई बार गिरा, परन्तु अब इसके नक्षत्र चमक पड़े हैं। दिनोंदिन इसकी उन्नति होती जा रही है। क्या शिक्षा, क्या शासन, क्या व्यापार—बिहार में सबका यह केन्द्र हो रहा है। शहर में दानापुर, पटना, जंक्शन और पटना सिटी, ईस्टर्न रेलवे के मुख्य स्टेशन बने हैं, जहाँ से शहर-वाले अपनी चीजें बाहर भेजते और बाहरी चीजें मँगाते हैं। जो कुछ हो, ईश्वर करे, पटना अपने प्राचीन गुण-गौरव को फिर प्राप्त करे।

तपोवन-दर्शन

१. वन होम, और अध्ययन। २. तप की सामग्री। ३. तपी के दर्शन। ४. दर्शन के भाव। ५. सन्ध्यावन्दन।

१. तपोवन के निकट पहुँच कर मैंने देखा कि वहाँ के वृक्ष सब कुसुमित और पल्लवित हो रहे थे और फलभार से भूमिस्पर्श करते थे। इलायची और लवंग की सुगंध चारों ओर छा रही थी। मधुप झनकार करते हुए एक पुष्प से दूसरे पुष्पपर भ्रमण कर रहे थे। अशोक, चम्पक, किंशुक, मल्लिका और मालती आदि नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं के एकत्र होने और उनकी डालियों के मिल जाने से स्थान-स्थान पर सुन्दर-सुन्दर रमणीक गृह बन गये थे जिनमें सूर्य की किरणें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। बड़े बड़े ऋषि लोग मन्त्र पढ़-पढ़ कर होम कर रहे थे और अग्नि की ज्वाला से वृक्षों की पत्तियाँ मलीन हो रही थीं और वायु होम गन्धमय होकर धीरे-धीरे बह रही थीं। मुनिकुमार, कोई तो उच्च स्वर से वेद पढ़ रहे थे और कोई तो शान्त भाव से धर्मशास्त्र पढ़ रहे थे।

२. वृक्षों की शाखाओं में मुनियों की छालाएँ, कमण्डल और मालाएँ लटक रही थीं और नीचे बैठने के लिये वेदियाँ बनी थीं मानों सब वृक्ष भी तपस्वी का वेष धारण करके तपस्या करते थे।

३. तपोवन को देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके भीतर मैंने देखा कि रक्तपल्लवसंपन्न रक्तकोश वृक्ष के नीचे एक पवित्र स्थान में बेंत के आसन पर महातपी जाबालि ऋषि बैठे हैं और उनके आसपास और और मुनिलोग हैं। जाबालि ऋषि बड़े बूढ़े थे और उनके बाल और रोयें सब पक गये थे, ललाट में खली पड़ गई थी, सिर नीचा हो गया था, पञ्जर और मस्तक की हड्डियाँ निकल आई थीं और श्रवण सम्पुट लोम से ढँक गये थे।

४. जाबालि ऋषि की मूर्ति देखने से जान पड़ता था कि वे करुणारस के प्रवाह, क्षमा और सन्तोष के आधार, शान्तिरूपी लता के मूल, क्रोधभुजङ्ग के महामन्त्र, सत्पथदर्शक और सत्त्वभाव के आश्रय हैं। उनको देखकर मेरे मन में एक बार भय और विस्मय दोनों उत्पन्न हुए और मैंने कहा कि इनका कैसा प्रभाव है! इनके प्रभाव से वन में हिंसा, द्वेष, बैर और मात्सर्य आदि का नाम भी नहीं है। हिरन के बच्चे सिंह के बच्चों के संग सिंहनी का दूध पीते हैं। हाथी और सिंह परस्पर प्रेम से खेल रहे हैं। मृग सब धीरचित होकर शृगाल के संग चर रहे हैं और सूखे वृक्ष भी कुसुमित हो रहे हैं, मानों सत्ययुग कलियुग के भय से भागकर इसी तपोवन में आ छिपा है।

५. देवार्चन का समय हो गया था। ऋषि और मुनिकुमार सब स्नान, पूजा आदि कर्मों में नियुक्त हुए। अब सन्ध्या हो गई। मुनिकुमारों ने रक्तचन्दन से अर्घ्य दिया था। वह उनके अङ्क में लगाकर कैसी शोभा देता था जैसे लोहितवर्ण सूर्य। मुनि सब हाथ बाँधकर सन्ध्यावन्दन करने लगे। कामधेनु के दुहे जाने का शब्द चारों ओर सुनाई देने लगा। हरी-हरी कुशा अग्निहोत्र वेदी पर बिछाई गई।

पुस्तक (Book)

१. परिचय। २. पुस्तकों का आविर्भाव और प्रचार। ३. पुस्तकों से लाभ। ४. कैसी पुस्तकें पढ़ी जायँ? ५. पुस्तकें किस प्रकार पढ़ी जायँ?

१. जिस बही के लिखे या छपे हुए अक्षरों की सहायता से अपना या दूसरे का मनोगत भाव—चाहे वह आधुनिक हो या प्राचीन—जान सकें या जना सकें उसको 'पुस्तक' कहते हैं।

२. मनुष्य की सृष्टि की बढ़ती के साथ-साथ मनुष्यों को बोलने के सिवा अपने विचार भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाशित करने की आवश्यकता हुई, इसलिये अक्षर बनाये गये और लिखने की प्रथा चली। मनुष्य आवश्यकतानुसार अपने विचार दूसरों के पास लिख-लिख कर भेजने लगे। जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती गई वैसे-वैसे पुस्तकें भी बनने लगीं।

प्राचीन समय में जो पुस्तकें बनती थीं वे ताडपत्र या भोजपत्र पर लिखी जाती थीं और बड़ी कठिनाई से लिख-लिख कर लोग प्रचार करते थे। जब से कागज बनने लगा और छापे का आविष्कार हुआ तब से पुस्तकों के प्रचार में दिनों-दिन उन्नति हो रही है। अब तो पुस्तकें इतनी सुलभ हो रही हैं कि क्या धनी, क्या निर्धन सभी खरीदकर पढ़ने लगे हैं।

३. हम दूसरे देशों में रहनेवाले अथवा मरे हुए सज्जनों से भेंट नहीं कर सकते हैं, परन्तु उनकी सत्संगति पुस्तकों के सहारे हमें प्राप्त होती रहती है। जब हम एकान्त में बैठे हुए पुस्तकें पढ़ते हैं तब कभी हँस पड़ते हैं, कभी मुस्कुरा उठते हैं। अनेक प्रकार के भावों से हमारा हृदय गद्गद हो जाता है। सचमुच शान्ति प्राप्त करने की सबसे उत्तम औषधि पुस्तक ही है। यदि

पुस्तक न होती तो बहुत से देशहितैषी महात्मा और विद्वान्—जो कैद हो गये थे—कारावास ही में मर जाते।

पुस्तकों में बुद्धिमान् लोगों की विचारी हुई अच्छी-अच्छी बातें रहती हैं, जिन्हें जानकर हम विद्या की आशातीत उन्नति कर सकते हैं। यदि पुस्तकें न होतीं तो हम अपने पूर्वजों का वृत्तान्त कुछ भी नहीं जान सकते थे। देखिये, रामायण ने हमारी कितनी भलाई की है। यदि यह न होती तो मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी के विषय में हमलोगों को इतना अधिक ज्ञान नहीं होता और न अपने चरित्र के लिये उनको आदर्श बना सकते।

पुस्तकें संसार में अपने बनानेवालों के नाम अमर कर जाती हैं। "शकुन्तला" इत्यादि पुस्तकों ही के कारण भारत ही क्या सारा संसार कालिदास को जानता है। पुस्तकों से जो लाभ हुए हैं और हो रहे हैं, वे लाख प्रयत्न करने पर भी और साधनों से नहीं प्राप्त हो सकते—"कीर्तिक्षरसम्बद्धा स्थिरा भवति भूतले।"

४. वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न विषयों पर इतनी अधिक पुस्तकें मिलती हैं कि यदि एक मनुष्य सबों को पढ़ना चाहे तो यह एकदम असम्भव होगा। इसके अतिरिक्त बहुत सी पुस्तकें ऐसी बुरी लिखी जाती हैं कि जिनके पढ़ने से चरित्र पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः पुस्तकों के चुनने में बड़ी बुद्धिमानी की आवश्यकता है। जब पुस्तकें पढ़नी हों तब अपने से बड़ों की सम्मति ले लेनी चाहिये। वे ऐसी अच्छी-अच्छी पुस्तकें बता देंगे, जिनसे लाभ अधिक हो और समय कम लगे।

५. प्रत्येक पुस्तक सोच-समझकर पढ़नी चाहिये। एक-एक अध्याय पढ़ कर पुस्तक बन्द कर दे और उसके भाव को सोचे। यदि कोई बात नोट करने योग्य हो तो उसे नोटबुक पर लिख लिया करें। इस प्रकार पढ़ने से पाठक की योग्यता बढ़ती जायगी। जो मनुष्य कोरा एक ही विषय जानता है, उसकी विद्या पूरी नहीं होती। वह प्रकृति को ठीक दृष्टि से नहीं देख सकता, लेकिन सब विषयों का कच्चापन इससे भी अधिक बुरा है। एक विद्वान् का कथन है कि कम-से-कम एक विषय की पूरी जानकारी के साथ-साथ अन्य विषयों की भी थोड़ी-थोड़ी जानकारी रखनी चाहिये। अतः, भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकें

इस ढङ्ग से पढ़नी चाहिये कि उनके विषय में जानकारी उचित परिमाण से बढ़ती जाय।

यही विनय त्रिभुवन के स्वामी ; हे जगदीश्वर अन्तर्यामी।
कबहुँ न होवे मुझसे न्यारी ; मेरी पुस्तक प्राण-पियारी।

लोहा (Iron)

१. परिचय। २. प्राप्तिस्थान। ३. खान में लोहे की अवस्था। ४. लोहे का प्रकार। ५. किस लोहे से कौन-कौन पदार्थ बनते हैं ? ६. उपकार। ७. उपसंहार।

१. सभ्य समाज में ढूँढ़ने से कदाचित ही कोई अक्ल का पुतला मिलेगा जो लोहे से परिचित न हो। यह धातुओं में सबसे अधीक प्रयोजनीय धातु है। लोहा कठिन, धूसरवर्ण और पानी से प्रायः आठ गुना भारी होता है। लोहे में वायु के संयोग से मुर्चा लग जाता है।

२. लोहा पृथ्वी के सभी भागों में किसी-न-किसी परिमाण में पाया जाता है, परन्तु इंगलैंड, फ्रांस, स्वीडन और अमेरिका में यह प्रचुर परिमाण से मिलता है। बिहार के छोटानागपुर में इसकी खानें हैं। इन खानों पर ताता कम्पनी का अधिकार है।

३. चाँदी या सोना, तो खान में विशुद्ध अवस्था में रहता है, परन्तु लोहा विशुद्ध अवस्था में नहीं पाया जाता। खान में लोहे के साथ भिन्न-भिन्न धातुएँ और कई वायवीय पदार्थ मिले रहते हैं। लोहा आग की आँच से विशुद्ध बनाया जाता है।

४. लोहे के तीन प्रकार हैं—गलाया हुआ लोहा (Cast iron), पीटा हुआ लोहा (Wrought iron) और इस्पात (Steel)।

'गलाया हुआ लोहा' विशुद्ध लोहे की पहली अवस्था है। खान से निकले हुए लोहे को आग सहनेवाली धातु की भट्टी में कोयले और काठ के साथ गलाते हैं। भट्टी में दो छेद होते हैं—एक कुछ ऊपर और नीचे। जब पूरी गर्मी पहुँचती है, तब तरल पदार्थ के रूप में नीचे के छेद से एक प्रकार का लोहा निकल आता है यही गलाया हुआ लोहा है। यह लोहा पूर्ण विशुद्ध नहीं होता, इसमें अंगार इत्यादि पदार्थ कुछ-कुछ मिले रहते हैं जिससे यह अधिक चोट में टूक-टूक हो जाता है।

'पीटा हुआ लोहा' विशुद्ध लोहे की दूसरी अवस्था है। गलाये हुए लोहे को यन्त्र द्वारा फिर से गलाकर उसमें के अंगार इत्यादि पदार्थों को निकाल देते हैं और इसके पीछे आग में घिपाकर पीट देते हैं। तब वह पीटा हुआ लोहा हो जाता है। यह लोहा दृढ़ और कठिन नहीं होता।

उत्तम पीटे हुए लोहे को दीर्घ काल तक गर्म करके उसी अवस्था में शीतल जल या तेल में डुबाने से 'इस्पात' नाम का लोहा बनता है। यह लोहा विशेष दृढ़ और कठिन होता है।

५. 'गलाये हुए लोहे' से कड़ाह, पहिये, बटखरे, शहतीर इत्यादि ढालुए पदार्थ; 'पीटे हुए लोहे' से काँटे, तार, खेती करने के औजार इत्यादि और इस्पात से छूरी, बन्दूक, तलवार इत्यादि भिन्न-भिन्न काम की चीजें बनती हैं।

६. लोहे की उपयोगिता का वर्णन नहीं हो सकता। अत्यन्त छोटी सुई से लेकर जहाज इत्यादि बड़े-बड़े पदार्थ लोहे की सहायता से बनाये जाते हैं। वस्त्र बनाना, खेती करना, घर बनाना इत्यादि सभी कार्यों में लोहे की बड़ी आवश्यकता है। लोग सोने-चाँदी को बहुमूल्य समझते हैं। हमारे जानते यह बात ठीक नहीं। यदि सोना-चाँदी नहीं मिले तो हमारी कोई विशेष हानि नहीं, परन्तु लोहे के न रहने से सारा सभ्य संसार अपनी सभ्यता से हाथ धो बैठेगा। सचमुच लोहे के साथ सभ्यता का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राचीन काल में जब तक लोहे का पता नहीं था, लोग असभ्य थे।

यह लोहे ही का प्रभाव है कि हमलोग महीनों की राह दिनों में और दिनों की राह घंटों में तय करते हैं। यह लोहा ही है कि लोहा बजाकर शत्रुओं से हम अपनी रक्षा करते हैं। यह लोहे ही की महिमा है कि विदेशी,शिल्प और व्यापार द्वारा, अपने देश को लक्ष्मी का भण्डार बना रहे हैं। जैसे-जैसे विज्ञान की उन्नति होती जाती है, लोहे की उपयोगिता के प्रभाव से सांसारिक समृद्धि भी बढ़ती जाती है।

लोहा रक्तवर्द्धक है। जिसके शरीर में रक्त का ह्रास हो जाता है, उसके लिये हमारा आयुर्वेदशास्त्र लौहघटित औषधि की व्यवस्था करता है।

७. हमारा भारत प्राचीनकाल से लोहे का उपयोग जानता है। जिस समय अन्य देश असभ्य थे उस समय भी हमारा देश लौहशिल्प में ख्याति पा चुका था। सैकड़ों वर्ष पहले के बने भुवनेश्वर और कनारा के मंदिरों में लोहे की कड़ियाँ और दिल्ली में कुतुबमीनार के समीप का लौहस्तम्भ प्रत्यक्ष इसके प्रमाण हैं। अभी तक उनको मुर्चे ने कुछ भी हानि नहीं पहुँचाई।

भारत में बहुत दिनों से लौहशिल्प मृतप्राय हो गया था। आनन्द की बात है कि जमशेदपुर में ताता कम्पनी ने एक बड़ा कारखाना खोला है। लोहे का ऐसा बड़ा कारखाना एशिया में कहीं नहीं है।

नमक (Salt)

१. परिचय। २. प्रकार। ३. अम्बुज लवण, प्राप्तिस्थान। ४. खनिज लवण, प्राप्तिस्थान। ५. उपकार। ६. कई देशों में बड़ा आदर। ७. उपसंहार।

'लवण बिना बहु व्यञ्जन जैसे।'

१. नमक को सभी जानते हैं, क्योंकि भोजन-सामग्री में इसका सर्वदा प्रयोजन होता है। इसका स्वाद तीव्र और अतृप्तिकर है। हमलोग चावल का, पश्चिम वाले गेहूँ-जौ का और शीतप्रधान देशवाले माँस का आदर करते हैं, परन्तु नमक का आदर सभी करते हैं। इसके बिना भोजन में स्वाद नहीं आता।

नमक दानेदार और उजला होता है परन्तु कोई नमक काला और कोई लाल-उजला मिला हुआ भी होता है। नमक अतिशय द्रवणीय पदार्थ है। ज्योंही यह जल या जलीय वायु का संयोग पाता है, पिघल पड़ता है।

२. नमक का साधारणतः दो प्रकार से संग्रह किया जाता है। कुछ नमक समुद्र, झील इत्यादि के नमकीन जल से पाते हैं और कुछ खानों से मिलता है। समुद्रवाले नमक को अम्बुज और खानेवाले को खनिज लवण कहते हैं।

३. अम्बुज लवण—समुद्र और नमकीन झील इत्यादि के नमकीन जल को कड़ाह में औटाकर जल उड़ा देते हैं और नमक उसमें बच जाता है। फिर उसमें स्वच्छ जल देकर फिर से औटाते हैं, जिससे वह साफ हो जाता है। ऐसा नमक हमारे यहाँ पहले बहुत ही अधिक बनता था। अभी भी राजपुताने में साँभर झील से और मेदनीपुर तथा उड़ीसा राज्य के कई स्थानों में समुद्र से कुछ-कुछ

तैयार होता है, परन्तु लिवरपुल इत्यादि यूरोप के कई स्थानों में यह कलों से बनाया जाता है।

४. खनिज लवण—इस नमक के बीट, खड़िया, सेंधा इत्यादि कई भेद हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के नमक भिन्न-भिन्न खानों में मिलते हैं। इंगलैंड, इटली, पोलैण्ड और पंजाब इत्यादि में इनकी खाने हैं। इनमें पोलैंड की खान जगत्प्रसिद्ध है। वैज्ञानिकों का कहना है कि केवल पोलैंड का पहाड़ संसार को सैकड़ों वर्ष तक नमक देगा और तिसपर भी उसमें कमी नहीं होगी। पोलैंडवालों ने उसी पहाड़ को काट-काट कर अपने अच्छे-अच्छे मकान और मन्दिर इत्यादि बना लिये हैं। ये जब अपने घरों में दीप जलाते हैं। तब उनसे एक अनिर्वचनीय शोभा दिखाई देती है।

५. नमक एक उत्तम रस है। यह हमारे भोजन के स्वाद को सुधारता है। जिस व्यञ्जन में नमक नहीं पड़ता वह किसी को पसंद नहीं आता। ठीक है—'लवण बिना बहुव्यञ्जन जैसे।' नमक रक्तवर्द्धक है और यह पाचनशक्ति को बढ़ाता है। बीट नमक दवा के काम में आता है। कई नमकों के मिलाने से 'पाचक' बनता है। जो पदार्थ नमक में रक्खा जाता है वह जल्दी नहीं बिगड़ता। यही कारण है कि विदेशी मछली, मांस इत्यादि को बहुत दिनों तक नमक में रखते हैं।

६. हमारे भारत में नमक बहुत ही सुलभ है, परन्तु अफ्रीका, अरब और अबीसीनिया इत्यादि देशों में इसका मूल्य और आदर अधिक है। अरब और अबीसीनिया निवासी जब अपने बन्धु-बांधवों से मिलते हैं तब नमक और नमक के शरबत से उनका आदर करते हैं। अरबवाले जल्दी किसी का नमक नहीं खाते। यदि खाते हैं तो उसकी सहायता जी-जान से करते हैं। 'नमक की सरियत देना'—हमारे यहाँ की यह कहावत उपर्युक्त बात को पुष्ट करती है। 'नमकहराम' और 'नमकहलाल' शब्द भी उन्हीं के हैं। अफ्रीकावाले अपने पास सदा नमक रक्खा करते हैं और सूर्य की गर्मी से जब उनके मुँह सूख जाते हैं तब चाट लिया करते हैं।

७. हमारे देश में नमक बनाने का अधिकार सरकार के हाथ में था। बिना उसकी आज्ञा के कोई नमक नहीं बना सकता। यहाँ 'नोनियाँ जाति'

बसती है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि भारत में नमक बहुत दिनों से बनता चला आता है।

पत्थर का कोयला (Coal)

१. परिचय। २. प्राप्तिस्थान। ३. खान में कोयले की स्थिति और आकार। ४. कोयला पहले क्या था? ५. कोयला कैसे निकाला जाता है? उत्पत्ति। ६. उपकार। ७. उपसंहार।

१. पत्थर का कोयला एक प्रकार का खनिज पदार्थ है।

२, पत्थर के कोयले की खानें प्रायः संसार के सभी देशों में हैं। हमारे देश में रानीगंज, आसनसोल, गिरिडीह और छोटानागपुर के कई स्थानों में कोयले की खानें बहुत हैं।

३. कहीं तो थोड़ी मिट्टी के नीचे कोयला मिल जाता है और कहीं १००—२०० गज नीचे खोदने की आवश्यकता होती है। कोयले का स्तम्भ देखने में बड़ा सुन्दर, पत्थर के समान कठिन और खूब काला होता है। खान में यह स्तम्भ बहुत दूर तक एक समान नहीं रहता। कुछ दूर तक थोड़ी ही मिट्टी के नीचे; फिर कुछ दूर तक और नीचे की ओर, और अन्त में बहुत ही नीचे तक चला जाता है। कोयले के स्तम्भों के साथ-साथ दूसरी-दूसरी धातुओं की भी खानें होती हैं, इससे कोयला निकालने में थोड़ी असुविधा होती है। यदि स्तम्भों का समूह बहुत दूर तक समान भाव से फैला रहा तो कोयला निकालने में विशेष अड़चन नहीं होती।

४. 'भूतत्वविद्' पण्डितों ने स्थिर किया है कि भूकम्प इत्यादि नैसर्गिक घटनाओं के द्वारा अत्यन्त प्राचीन समय में पृथ्वी के अन्य अंशों के साथ कई वनमय प्रदेश पृथ्वी-गर्भ में चले गये हैं। उन्हीं वनों के पौधे इत्यादि अब कोयला होकर निकल रहे हैं। कोई-कोई कहते हैं कि उस प्राचीन समय के जीवजन्तु भी कोयला हो गये हैं। खानों से वृक्षों और जीव-जन्तुओं के रूपों में कोयले के स्तम्भों का निकलना उपर्युक्त उक्तियों का पोषक है।

५. अमुक स्थान में कोयले की खान है या नहीं, इसकी जाँच भूतत्वविद् पण्डित करते हैं। भूमि में एक प्रकार का यन्त्र वेधकर स्थान की परीक्षा की जाती है। यदि थोड़ी मिट्टी के नीचे कोयला मिल गया तो कार्य आरम्भ

किया जाता है। सुरंग खोदकर सड़कें तैयार की जाती हैं और स्थान-स्थान पर चढ़ने, उतरने के लिये सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। साथ ही साथ पानी निकाल फेंकने के लिए खाइयाँ भी तैयार की जाती हैं। ऊपर की भूमि नीचे धँस न जाय इसके लिये बीच-बीच में कोयले के खम्भे बना दिये जाते हैं। खान इस प्रकार खोदी जाती है कि काम करनेवाले आवश्यकतानुसार कुछ समय तक उसमें वास भी कर सकें।

खान में घना अन्धकार रहता है, क्योंकि वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता। अतः, कार्य करने के लिये प्रकाश की आवश्यकता होती है। खान में एक प्रकार का दहनशील वाष्प उठता है जो अग्नि के स्पर्शमात्र से जलने लगता है और समूची खान में आग लगा देता है। इस कारण से बहुत-सी खानें नष्ट हो चुकी हैं। एक वैज्ञानिक पण्डित ने एक प्रकार का अद्भुत दीप निकाला है जिससे खान में प्रकाश भी होता है और ऐसी घटना भी नहीं होने पाती।

खान में अग्न्युत्पात की भाँति जलप्लावन भी एक भयंकर विपत्ति है। खान में कभी-कभी झरना फूट पड़ता है और एक-ब-एक बाढ़ आ जाती है। बहुत-सी खानें और बहुत से मनुष्य इस विपत्ति से नष्ट हो गये हैं। इस अचानक विपत्ति से बचने के लिये शिल्पविद्या जाननेवाले एक पण्डित ने एक आश्चर्य-जनक वाष्पयन्त्र निकाला है, जिससे इस प्रकार की घटना में बहुत बड़ी सहायता मिल रही है। आशा है, शिल्प और विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ खान की ऐसी छोटी-बड़ी विपत्तियों का बहुत कुछ निवारण होता रहेगा।

६. कोयले से समाज और देश के बहुत ही उपकार हो रहे हैं। वाष्पयन्त्र और जहाज इत्यादि कोयले से चलाये जाते हैं। सभी कल-कारखानों में कोयला ईंधन का काम देता है। यदि कोयला नहीं होता तो संसार के शिल्प-सम्बन्धी कल-कारखानों का चलना और भाप से चलनेवाली गाड़ियों का दौड़ना असम्भव हो जाता। अब बहुत-से स्थानों में कोयले की आग से रसोई भी बनाई जाती है इन दिनों कोयले से रंग, मक्खन, स्याही, पाउडर, दवा और गैस तैयार करके नित्य के कार्य चला रहे हैं।

७. जो कोयला इतने परिश्रम से निकाला जाता है, जिसके निकालने में बहुत-से मनुष्य अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं, और जो हजारों मील दूर से आता है वह लकड़ी से भी सस्ता बिकता है। क्यों? विज्ञान और शिल्प की यह छोटी करतूत है।

वज्रोत्पात (Thunder-storms)

१. परिचय। २. समय और स्थान। ३. उत्पात से पहले का समय। ४. आरम्भ। ५. अन्त। ६. उत्पात के पीछे प्राकृतिक दर्शन। ७. हानि-लाभ।

१. आँधी-पानी, बिजली-लौका, गर्जन, ठनका इत्यादि का साथ-साथ प्रकोप वज्रोत्पात के नाम से पुकारा जाता है।

२. यह उत्पात प्रायः वर्षाऋतु में हमारे देश में कभी-कभी हुआ करता है, परन्तु बंगाल की खाड़ी के समीप यह बार-बार होता है।

३. जिस दिन यह उत्पात होनेवाला रहता है उसके प्रातःकाल ही से मेघों की गति में तीव्रता दिखाई पड़ती है। रूई के गल्ले सरीखे मेघखंड यत्रतत्र आकाश में बिखरते रहते हैं। सूर्य की प्रखर रश्मियों के संयोग से उनसे रंग-विरंग की प्रभा निकलकर अपूर्व शोभा दिखलाती है। उत्पात के कुछ पूर्व एक प्रकार का सन्नाटा छाया रहता है, परन्तु वायुमण्डल में उष्णता बढ़ जाती है और जीवमात्र का हृदय कुछ व्यग्र जान पड़ता है।

४. वायुमण्डल में ज्योंही उष्णता बढ़ती है, त्यों ही बादलों के दल के दल उमड़-उमड़ कर क्षितिज के पास घनीभूत होने लगते हैं। क्षण-भर में आकाश काली-काली घटाओं से ओतप्रोत हो जाता है। ऐसा अंधकार जान पड़ता है कि पास की वस्तु भी दृष्टिगोचर नहीं होती। ऐसी स्थिति थोड़ी ही देर रहती है कि स्वर्ग टूट पड़ता है और प्रलयकालिक मूसलधार वृष्टि होने लगती है। साथ ही ऐसा अन्धड़-झक्कड़ चलता है कि वह सामने के वृक्षों, घरों इत्यादि को इधर-उधर फेंकता हुआ पृथ्वी को मटियामेट करने के लिये कटिबद्ध हो जाता है। लोग त्राहि-त्राहि कर भगवान भगवान गोहराने लगते हैं। दो-दो, चार-चार सेकेंड़ों के अन्तर पर बिजली ऐसी चमकती है कि ज्ञात होता है कि समग्र भूमि जल उठी और अग्नि की लपटें आकाश तक लपट चलीं। बादलों की गड़गड़ाहट

प्रतिध्वनित हो-हो कर ऐसा अकथनीय दीर्घकाल व्यापी नाद करती है कि मानों देवराज इन्द्र पृथ्वी को छिन्न-भिन्न कर बलि का ध्वंस करेंगे। इसके बन्द होने पर भी कुछ काल तक कानों की श्रवणशक्ति स्तब्ध रहती है। बादलों का ठनकना तो बन्द होता ही नहीं, विदित होता है कि सभी पदार्थों को चूर्ण चूर्ण कर ही वह शान्त होगा। मारे भय के रक्त ठंढा पड़ जाता है, रोमांच हो आते हैं।

५. कुछ काल के अनन्तर जब ईश्वर की दया होती है तब यह भीषण प्रलय स्थगित हो जाता है, मेघमालाएँ तितर-बितर होकर इधर-उधर उड़ने लगती हैं और भगवान भास्कर त्रिभुवन के मुख उज्ज्वल कर देते हैं।

६. संसारचक्र भी क्या ही विचित्र है! रात्रि के अनन्तर दिन, विपत्ति के अनन्तर सम्पत्ति, विषाद के पश्चात् प्रसाद होता ही है। यह नियम सर्वत्र ही देखने में आता है। इसी नियम के अनुसार वज्रोत्पात के कारण जहाँ पहले भीषणता रहती है वहाँ पीछे प्रसन्नता ही प्रसन्नता दिखाई देती है। जलस्नाता प्रकृतिदेवी अपूर्व छटा दरशा देती है। वन-पर्वत जलावगाहन कर हरियाली से लहलहाने लगते हैं। जलबिन्दु चूते हुए लाल, हरे और श्यामवर्ण कोमल पल्लवों पर सूर्यबिम्ब प्रकाश को सहस्रगुणित कर देता है। कहीं-कहीं स्वच्छ लहलहाते दूर्वादलों का हरा फर्श देख जी आनन्द से उमड़ने लगता है। पक्षियों की चहक, कोयलों की कूक और पपीहों की पीक आदि सुश्रव शब्दों से मानो सारी प्रकृति भगवान का गुणानुवाद गाने लगती है। सुस्निग्ध समीर से थोड़े-ही पहले का, भीत-कम्पित कलेवर का खेद प्रशान्त हो जाता है। यदि सूर्यास्त का समय हो तो सारी प्रकृति लाल साड़ी धारण किये रहती है। किरणों के संयोग से मेघ ऐसे रक्तवर्ण हो जाते हैं कि मानों युद्ध-क्षेत्र से क्षतविक्षत योद्धा लोहू में लिथड़े-फिथड़े प्रत्यावर्त्त कर रहे हों। अहा! उस समय का सुन्दर दृश्य अवर्णनीय है।

७. वज्रोत्पात से उपकार अल्प और अपकार बहुत ही होते हैं। घर और वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। नदियों में नावों को और समुद्र में जहाजों की बुरी गति होती है। चारों ओर हाहाकार मच जाता है। भगवान ऐसी आपत्तियों से बचावे।

उल्का (Shooting star)

१. उल्का। २. उल्का का गिरना। ३. कौन उल्का पृथ्वी तक पहुँचाती है? ४. उल्काओं की परीक्षा। ५. उपसंहार।

१. रात को जब आकाश निर्मल रहता है, तब कभी-कभी एकआध तारा टूट कर पृथ्वी की ओर जाता हुआ दिखलाई देता है। ऐसे तारे को उल्का कहते हैं।

२. जितने ग्रह और उपग्रह हैं, उनके सिवा अनेक उल्काएँ आकाश में फिरा करती हैं। आकाश में नये-नये ग्रह उत्पन्न हुआ करते हैं और पुराने ग्रह टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट हो जाया करते हैं। जो ग्रह टूट जाते हैं उनके असंख्य टुकड़े आकाश में सूर्य के चारों ओर ग्रहों के समान घूमा करते हैं। ये टुकड़े एक प्रकार के पत्थर हैं। जब पृथ्वी अपनी कक्षा पर घूमती हुई इन पत्थरों के पास पहुँचती है तब उसकी खिंचावट से ये पत्थर उसकी ओर खिंच आते हैं और कभी-कभी बड़े शब्द के साथ गिरते हैं। इन्हीं के गिरने का नाम उल्कापात है।

३. आकाश में अनेक उल्कापात हुआ करते हैं, परन्तु सब उल्काएँ पृथ्वी तक नहीं पहुँचतीं। यदि वे सब पहुँचतीं तो मनुष्यों को अनेक हानियाँ सहनी पड़तीं। वायुमण्डल से पृथ्वी घिरी हुई है। पृथ्वी से प्रायः २०० मील की ऊँचाई तक वायु है। पृथ्वी के पास वायु घनी है, परन्तु जैसे-जैसे वह दूर होती गई है, वैसे-वैसे पतली होती गई है। आकाश में फिरनेवाली उल्काओं के निकट जब पृथ्वी पहुँचती है तब अपनी आकर्षणशक्ति से वह उन्हें खींचने लगती है। जब वे पृथ्वी की ओर खिंचकर गिरती हैं तब वायुमण्डल तक बड़े वेग के साथ चली आती हैं। वायुमण्डल में आकर उनकी गति कम हो जाती है, क्योंकि वे वायु से रगड़ खाती हुई आगे बढ़ती हैं। इसी रगड़ के कारण उनमें आग उत्पन्न हो जाती है और वे इतनी तप जाती हैं कि पृथ्वी पर पहुँचने के पहले ही उनकी भाप हो जाती है। यदि कोई उल्का गलने से बच जाती है तो वह पृथ्वी तक पहुँचती है।

४. उल्काओं की परीक्षा से जाना गया है कि उनमें लोहा, तांबा और

कोयला इत्यादि धातु मिली रहती हैं। उल्काओं का रंग सफेद होता है। कभी कभी उनका रंग पीला और हरापन लिये हुए भी देखा गया है।

५. १८५१ में कलकत्ते के पास विष्णुपुर में एक बहुत बड़ी उल्का गिरी थी। वह कलकत्ते में अभी तक रक्खी है। विलायत के अजायब घर में इसके कई टुकड़े रक्खे हैं, उनमें कोई-कोई अस्सी-अस्सी मन के हैं। सुनते हैं कि जहाँगीर बादशाह की तलवार का दस्ता इसी प्रकार के पत्थर का था।

दुर्गापूजा (The Durga puja)

विजया दशमी

१. परिचय। २. समय और उत्पत्ति। ३. तातील और व्यापार। ४. प्रतिमा-निर्माण और कारण। ५. पूजन और विसर्जन। ६. विजयादशमी और रामलीला! ७. उपसंहार।

१. हमारे भारत में पूजाओं और पर्वों की कमी नहीं। कदाचित ही कोई महीना ऐसा है जिसमें कोई पूजा या पर्व न पड़ता हो। जिस प्रकार अँगरेजों में 'बड़ा दिन' और मुसलमानों में 'मुहर्रम' ये दो प्रसिद्ध उत्सव हैं उसी प्रकार दुर्गापूजा-विजयादशमी हिन्दुओं का सर्वप्रधान महोत्सव है।

२. यह महोत्सव प्रतिवर्ष दो बार मनाया जाता है। जो पूजा वसन्तऋतु के चैत मास में होती है उसे वासन्ती पूजा कहते हैं। प्राचीन काल में सुरथ राजा ने दुर्दान्त दानवों के अत्याचार को दमन करने के लिये प्रीति के साथ दुर्गाजी की वासंती पूजा की थी। उसी समय से इस पूजा की रीति चली है। जो पूजा शरद्काल में आश्विन मास में होती है उसे शारदी पूजा कहते हैं। त्रेतायुग में रामजी ने रावण पर विजय पाने की इच्छा से दुर्गा देवी की शारदी पूजा की थी। उसी समय से यह पूजा प्रचलित हो रही है। इस समय शारदी पूजा की प्रधानता है।

३. हमारे यहाँ दुर्गापूजा की छुट्टी सभी कचहरियों, कालेजों और स्कूलों में होती है। ज्यों-ज्यों पूजा का दिन समीप आता है, प्रवासवाले घर जाने की धुन में लग जाते हैं। जाने की चर्चा बार-बार हुआ करती है। लोग अपने और अपने परिवार के लिये नये-नये वस्त्र खरीदते और नये-नये पदार्थ एकत्र करते

है। इसी समय बाजार गर्म रहता है। कपड़ेवालों की अच्छी बिक्री होती है। घरवाले भी अपने स्वजनों की भेंट की प्रतीक्षा करने लगते हैं। केवल छुट्टी होने की देर रहती है। जहाँ छुट्टी हुई कि लोग घर पहुँचे और परस्पर मिलकर आनन्द से पूजा की तैयारी में लग पड़े।

४. इस अवसर पर कहीं-कहीं, विशेषकर बंगाल में, दशभुजी भगवती की प्रतिमा बनाई जाती है। बीच में भगवती की मूर्त्ति अपने दसों हाथों में दस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये रहती है और उनका बायाँ चरण महिषासुर के काँधे पर और दाहिना अपने वाहन सिंह पर रहता है। भगवती एक हाथ से महिषासुर को बर्छा मारती रहती हैं। भगवती की दाँई ओर लक्ष्मी और बाईं ओर सरस्वती की मूर्तियाँ रहती हैं। लक्ष्मी की दाईं ओर गणेश और सरस्वती की बाईं ओर सेनापति कर्तिकेय रहते हैं। ऊपर की ओर शिवजी की मूर्ति बनती है।

महिषासुर का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में है। जब देवतागण दानवों से जिनका अगुआ महिषासुर था, सताये गये तब उन्होंने दुर्गाजी की आराधना की और इन्हें अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित किया। भगवती ने दानवों का नाश कर दिया था। आजकल इसी आधार पर दुर्गाजी की प्रतिमा बनाई जाती है।

५. आश्विन अमावस्या को महालया होती है और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को कलशस्थापन के साथ दुर्गापाठ आरम्भ होता है। षष्ठी से पूजा का आरम्भ होता है। तीन दिन खूब धूमधाम रहती है। बलिप्रदान भी होता है। विजया दशमी को प्रतिमा-विसर्जन होता है। लोग धूमधाम और गाजे-बाजे के साथ किसी नदी या तालाब में प्रतिमा का विसर्जन कर देते हैं। विसर्जन के बाद सन्ध्या को समाज के सभी लोग द्वेषभाव छोड़कर परस्पर मिलते-जुलते हैं और नीलकण्ठ के दर्शन करते हैं।

६. इसी दशमी के दिन रामचन्द्रजी ने रावण का नाश करके विजय पाई थी, इसलिये इसे विजयादशमी कहते हैं। इसी आनन्द में अभी भी अवध के आसपास बहुत से ग्रामों और अन्य नगरों में रामलीला होती है और सभी हिन्दू राजा-महाराजा अपने दलबल को साजकर विजयादशमी के दिन बाहर निकलते हैं। विजयादशमी का दिन हिन्दुओं के लिए बहुत ही शुभ समझा जाता है। जमींदारों का कर उगाहना, व्यापारियों का व्यापार करना, घर बनाने की नींव

डालना और किसी के आने-जाने की यात्रा इत्यादि शुभ कार्यों का प्रारम्भ विजयादशमी को करना अच्छा समझा जाता है। इस अवसर पर कई मेले लगते हैं, जहाँ मित्रों का परस्पर मिलन होता है।

७. जो कुछ हो, यह हमारा राष्ट्रीय पर्व है। इसमें सभी को सम्मिलित होना चाहिये। जो इससे अलग रहते हैं उनसे बढ़कर मनहूस कोई नहीं। बहुत-से मनुष्य तो ऐसे शुभ अवसर पर विदेश-यात्रा करते हैं, जो हमारी समझ में उचित नहीं। हाँ, यदि स्वास्थ्य लाभ की इच्छा से जाना चाहें, तो हमें कुछ आपत्ति नहीं।

प्रातः काल

१. स्वाभाविक शोभा। २. सूर्योदय के समय पृथ्वी की अवस्था। ३. प्राणि की अवस्था। ४. मनुष्यों की मानसिक अवस्था (५) समय के व्यवहार से हानि-लाभ।

१. 'प्रातःकाल' अति रमणीय, आह्लादजनक और कार्योपयोगी समय है। इस समय प्रकृति एक अभिनव मूर्ति धारण करती है। शीतल और मन्द प्रभात-वायु सुगन्धित पुष्पों का सौरभ लेकर नाना स्थानों में विकीर्ण कर देता है। फलभार से अवनत वृक्ष-शाखाओं से शिशिर-बिन्दु भूतल पर धीरे-धीरे गिरते हैं। पुष्पभारविनम्र लता समूह प्रभात-पवन से आन्दोलित होकर मनुष्यों के चित्त को आकर्षित कर देता है।

२. इस समय पूर्व दिशा में एक अपूर्व शोभा होती है। दिवाकर की किरणों से आकाश लोहित वर्ण धारण करता है : नवोदित सूर्य की किरणों से आकाश-मण्डल का अपूर्व सौष्ठव सम्पादित होता है। उच्च वृत्त और अत्युन्नत पर्वतशृंग स्वर्णरेणुरञ्जित ज्ञात होते हैं। क्रमशः सूर्यकिरणों से सारी पृथ्वी प्रकाशित हो जाती है और जो स्थान अन्धकारमय थे, वे समुज्वल दीख पड़ते हैं।

३. इस समय पृथ्वी के समस्त जीव जग पड़ते हैं। वृक्ष-शाखाओं पर पक्षिगण कलरव से दिवस के आगमन की घोषणा कर सुप्त प्राणियों को जगाने की चेष्टा करते हैं। तत्पश्चात् नीड़ों को त्याग आहार अन्वेषण के लिये प्रस्थान करते हैं। वन्य जन्तु निद्रोत्थित हो अपने-अपने अभिलषित स्थानों को चल पड़ते हैं। मनुष्यगण शय्या त्याग अपने-अपने कार्यों में दत्तचित्त हो जाते हैं।

ग्रामों में कृषक कृषिकार्यों में नियुक्त होते हैं और उनके बालक गौओं को साथ ले वन को जाते हैं। छात्र भी अपना-अपना पाठ मनोयोगपूर्वक पढ़ते हैं।

४. प्रातःकाल में मनुष्य का मन प्रफुल्लित और प्रशान्त रहता है। निशाकाल की निद्रा जीव की श्रान्ति को दूर करती है। प्रातःकाल निद्रा त्यागने पर शरीर में नूतन बल और अन्तःकरण में नवकार्यानुराग सञ्चारित होता है। इस समय भ्रमण करने से अतिशय आनन्द प्राप्त होता है तथा शरीर और मन में प्रफुल्लता और कार्य क्षमता आती है। इस समय किसी को सोना उचित नहीं। समस्त रात्रि जागरण करके प्रातःकाल जो निद्रा में मग्न रहते हैं उन्हें नाना प्रकार के रोग आक्रमण करते हैं और वे अकाल ही में कालकवलित हो जाते हैं।

रेलगाड़ी (Railway)

१. परिचय। २. आविष्कार और विस्तार का इतिहास। ३. रेलगाड़ी का वर्णन। ४. लाभ। ५. हानि ६. उपसंहार।

१. अब भारत में कदाचित ही कोई ऐसा होगा जिसने रेलगाड़ी न देखी हो या कम से कम जिसने चर्चा न सुनी हो। यात्रा के लिए यह बहुत ही तेज और सुभीते की सवारी है। यह सवारी भाफ के इंजिन के बल से चलती है।

२ प्राचीन काल में यह कदाचित ही कोई जानता था कि भाफ में इतना बड़ा बल है। यह जार्ज स्टीफेन्सन की कृपा है कि अब सारा संसार भाफ के उपकारों का अनुभव कर रहा है। स्टिफेन्सन के आविष्कार से बहुत से भाफ के इंजिन बने, परन्तु उनमें थोड़ी-सी कमी थी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में सर जेम्स वाट ने भाफ की शक्ति का पूर्ण अनुभव प्राप्त कर लिया और अच्छे इञ्जिन बनाये। वे इञ्जिन बहुत दिनों तक अ र-और कार्य करते रहे। १८२० ई० से इङ्गलैंड वालों ने इन्हें सवारी के कार्यों में लगाया। तब से सारे संसार में रेलगाड़ियाँ फैल गई हैं और फैलती जा रही हैं। लार्ड डलहौजी के समय से हमारे देश में रेलगाड़ियाँ दौड़ती हैं।

३. 'डाकगाड़ी' एक्सप्रेस, पसिंजर और मालगाड़ी ये ही चार रेलगाड़ियों के प्रधान भेद हैं। प्रत्येक ट्रेन में ८-१० से लेकर १००-१५० तक गाड़ियाँ रहती हैं। 'मालगाड़ी' माल ढोती है और शेष गाड़ियाँ यात्रियों को ढोती हैं।

प्रत्येक ट्रेन में आगे भाफ का एक इंजिन रहता है। इसकी चाल १० से २५-३० मील तक है। मालगाड़ी और गाड़ियों से कम चलती है।

यात्रियों को ढोनेवाली गाड़ियों के पहला दर्जा, दूसरा दर्जा, ड्योढ़ा दर्जा और तीसरा दर्जा—ये भाग हैं। पहले से दूसरे का, दूसरे से ड्योढ़े का और ड्योढ़े से तीसरे दर्जे का किराया कम है। मालगाड़ी का किराया सब से कम है। गति के अनुसार भी किराये में कमी-बेशी है।

४. जब रेलगाड़ियाँ नहीं दौड़ती थीं, उस समय लम्बी यात्राओं में कठिन आपत्तियों का सामना करना पड़ता था। वे दुःखों और कठिनाइयों से भरी हुई रहती थीं। सड़कों के किनारे चोर-डाकू छिपे रहते थे और यात्रियों के धन-सर्वस्व और प्राण सभी हर लेते थे। कोई मनुष्य तीर्थयात्रा या व्यापार करने के लिये निकलता था तो वह कदाचित ही घर लौटकर अपने प्रिय परिवार से मिल सकता था। आपत्तियाँ रेलगाड़ी के समय से बहुत दूर हो गई हैं। अब किसी के प्राण नहीं जाते, किसी की सम्पत्ति नहीं जाती। यात्रा एकदम सरल और आनन्द देनेवाली हो गई है, इसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं जान पड़ती। हाँ, क्रान्ति की अवधि में थोड़ी गड़बड़ी अवश्य हो जाती है। यात्रा में कोई विशेष खर्च नहीं और न अधिक समय लगता है। गाड़ी पर चढ़िये और सैकड़ों मील जाकर दो ही एक दिन में अपने प्रेमियों से मिल लीजिये, देवताओं के दर्शन कीजिये और प्रकृति अवलोकन का आनन्द लूटिये।

रेलगाड़ी ने व्यापार को बड़ी ही सहायता पहुँचाई है। यदि रेलगाड़ी नहीं होती तो जहाँ जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे वहीं सुलभ मूल्य पर बिकते और दूसरे प्रान्तों में उनकी बड़ी महँगी रहती। इसने विद्या और सभ्यता में भी अच्छा योग दिया है। रेलगाड़ी की कृपा से हमें देश-देश के लोगों से भेंट होती है, जिनकी रीति, रहन-सहन और गुण-अवगुण जानकर हम अपने को सुधारते जाते हैं। यह दूर-दूर देशों से अनाज लाकर अकाल-पीड़ित देशों की सहायता करती है। यह देश को शत्रुओं से बचाती है। यदि कोई शत्रु देश पर चढ़ाई करे तो रेलगाड़ी सेना ले जाकर उसे खदेड़ देती है। सारांश यह है रेलगाड़ी ने संसार में युगान्तर उपस्थित कर दिया है।

५. जिस रेलगाड़ी से इतने लाभ हुए हैं, उसीने देश को हानि भी पहुँचाई है। कभी-कभी संचालकों की असावधानी से रेलगाड़ियाँ आपस में लड़ बैठती हैं,

जिससे सैकड़ों मनुष्यों के प्राण निकल जाते हैं। जहाँ-जहाँ रेल की सड़कें गई हैं वहाँ की अगल-बगल की भूमि की उपज भी कम हो गई है, पानी रुक गया है, जिससे मलेरिया ज्वर फैलता है और वहाँ के लोग आलसी बन चले हैं। इन्हें २-४ मील चलना कठिन हो रहा है। रेलगाड़ी अनाज को इधर से उधर कर देती है जिससे कई अच्छे देश अकाल के मुख में पड़ते जाते हैं और दरिद्र भी हो रहे हैं।

६. हमारे राज्य में एन० ई० आर० और ई० आर० इत्यादि कई नामों की रेलगाड़ियाँ दौड़ती हैं। इधर सरकार इस विचार में लगी हुई है कि कौन-कौन उपाय करें कि देश सदा स्वस्थ बना रहे। जो कुछ हो, रेलगाड़ी से सभ्य समाज को बड़ा लाभ पहुँचा है।

मुद्रण-कला (The Art of Printing)

१. सूचना। २. मुद्रणयन्त्र की सृष्टि और क्रमोन्नति। ३. उपकार। ४. अपकार। ५. उपसंहार।

१. शिक्षाविस्तार के साथ-साथ मानव-जाति की सभ्यता में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। नाना प्रकार के शिल्प-यन्त्रों के आविष्कार से हम लोगों की सुख-स्वच्छन्दता और विलास का पथ दिन-दिन कण्टक रहित होता जाता है। गत दो-तीन शताब्दियों के इतिहास की आलोचना करने से शिल्पोन्नति के नाना आविष्कार हम लोगों को आश्चर्य में डाल देते हैं। इन दिनों जिन यन्त्रों को हम नित्य प्रयोजनीय समझते हैं, दो शताब्दी पूर्व उनके आविष्कार की कल्पना किसी ने की भी नहीं—संदेह है। मुद्रणयन्त्र इस समय मनुष्य का विशेष उपकार करता है, कई शताब्दी पूर्व की उसकी अवस्था पर विचार करने से विस्मित होना पड़ता है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि शिल्प-जगत् के जितने प्रयोजनीय पदार्थ सभ्य जातियों के अभावों को दूर करने के लिये आविष्कृत हुए हैं उनमें मुद्रण-यन्त्र सर्वप्रधान है।

२. ईसा की नवीं शताब्दी में चीन देश में मुद्रणयन्त्र की प्रथम सृष्टि हुई। उस समय काठ के टुकड़ों पर अक्षर खोदकर छापने का काम चलता था। पन्द्रहवीं शताब्दी से पाश्चात्य देश में मुद्रणकार्य आरम्भ हुआ। जर्मनी ने इसकी उन्नति में पहला हाथ लगाया। सुविख्यात शिल्पनिपुण स्टेनहोप ने यन्त्र निर्माण

कर कई पुस्तकें और समाचारपत्र इत्यादि मुद्रित किये। इन्हीं के समय से ज्ञान-प्रचार का पथ बहुत कुछ परिष्कृत हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी में वाष्पीय मुद्रणयन्त्र की सृष्टि हुई। इस समय विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ इसकी भी विलक्षण उन्नति हुई है और दिन-दिन होती जा रही है।

३. लिख आये हैं कि मुद्रणयन्त्र हम लोगों के लिये विशेष प्रयोजनीय और अभावमोचनकारी पदार्थ है। इन दिनों यह ज्ञानविस्तार का प्रधान साधन है। प्राचीनकाल में पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। एक पुस्तक में लिखने में बहुत समय लगता था। मूल्य की अधिकता के कारण इन हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह और प्रचार कठिन था जिससे विद्योपार्जन करने में सभी समर्थ नहीं हो सकते थे। मुद्रणयन्त्र ने इस अभाव को एकदम दूर कर दिया है। अब कुछ ही घंटों में एक पुस्तक की लाखों प्रतियाँ छप जाती हैं और बहुत ही अल्प-मोल पर सभी को सुगमता से मिल जाती हैं।

मुद्रणयन्त्र के पहले किसी को किसी का समाचार कठिनता से मिलता था। समाचारपत्र का कहीं नाम निशान भी नहीं था। देशों को कौन पूछे एक प्रान्तवासी दूसरे प्रान्त के समाचार नहीं पा सकते थे। यह मुद्रणयंत्र ही का प्रभाव है कि सारे संसार की खबरें कोने-कोने तक पहुँचती रहती हैं और इन खबरों को पाकर लोग अपने कल्याण-साधन में लगे रहते हैं।

प्राचीनकाल की बहुत-सी हस्तलिखित पुस्तकें मुद्रणयंत्र के कारण छप गई हैं जिससे उनके लोप होने की शंका ही दूर हो गई। हमारे वेद, पुराण, शास्त्र इत्यादि प्राचीन उपदेशपूर्ण ग्रंथ, जो अभी तक अप्रकाशित थे, छप गये हैं जिनके प्रचार से सारा संसार ज्ञान प्राप्त कर रहा है। सचमुच, मुद्रणयंत्र की सहायता से विज्ञान जगत् में एक नया युग आ पहुँचा है।

४ मुद्रणयंत्र की कृपा से जिस प्रकार देश के अशेष उपकार हुए हैं और ज्ञानविस्तार का पथ सुगम है उसी प्रकार कुछ अनिष्ट भी हुए हैं। कई कुनीतिपूर्ण पुस्तकें छपी हैं जो मनुष्य के चित्त को कलुषित करती हैं, परन्तु यह हानि उपकारों के विचार से बहुत ही थोड़ी है। संसार में ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं, जिसके व्यवहार से अपकार न होता हो। हम समझते हैं कि कभी-कभी अपकार भी उपकार के आदर को बढ़ा देता है।

५. इस मुद्रणयन्त्र ने हमें विद्वानों से परिचय कराया, गुणियों के गुण दिखाये, हमारी धर्म पुस्तकों को नाश होने से बचाया और संसार-यात्रा के पथ को सदा के लिये कंटकहीन कर दिया। सचमुच यह मानव-सभ्यता का श्रेष्ठ स्तम्भ है।

कागज बनाना
(The Manufacture of Paper)

१. परिचय। २. इतिहास। ३. कागज बनाने की रीति। ४. भारत में कागज के कल कारखाने। ५. उपकार। ६. उपसंहार।

१. हमारे भारत में या यों कहिये कि सारे संसार में प्राचीन समय में मनुष्य पत्तों पर और पीछे छालों पर लिखने के कार्य करते थे। अभी भी कई पुस्तकालयों में तालपत्रों और छालों पर प्राचीन समय के लिखे ग्रन्थ दीख पड़ते हैं। हमलोग आजकल भी भूर्जपत्र पर यन्त्रमन्त्र लिखते हैं। प्राचीनकाल में जब मुख्य बातें लिखनी होती थीं तब उन्हें ताम्रपत्र और प्रस्तरखण्ड पर लिख देते थे। वह सारे कार्य अब प्रायः कागज ही पर होते हैं। पुराने संस्कार के कारण अभी भी कोई-कोई कागज को पत्र या दल इत्यादि कहा करते हैं।

२. कागज के इतिहास के विषय में दो मत हैं। कोई इसकी आदि भूमि भारतवर्ष बताते हैं और प्रमाण में संस्कृत ग्रन्थों को सामने रखते हैं और कोई कहते हैं कि ईसा की पहली सदी में चीनवालों ने कागज बनाना आरम्भ किया। जो कुछ हो, इसके बाद से कागज बनाने के ढङ्ग में धीरे-धीरे उन्नति होती गई और तातार, अरब, मिश्र इत्यादि देशों में इसका प्रचार बढ़ता गया। मूर लोगों ने बारहवीं सदी में कागज बनाने की क्रिया स्पेन देश को सिखाई। यूरोप में पहले पहल रोम के बादशाह दूसरे फ्रेडरिक के समय में एक प्रकार का अच्छा कागज बना और इसी समय से सारे यूरोप में इस ढङ्ग का प्रचार हो गया। १८५४ में इङ्गलैण्ड वालों ने कागज बनाना आरम्भ किया, परन्तु पहले-पहल वे अच्छा कागज नहीं बना सके। फ्रांस और स्पेन से कागज लेकर अपने कार्य चलाते रहे। अब अंगरेजों ने यह कला फ्रांसवालों से सीख ली।

३. चिथड़े, सन, काठ और घास इत्यादि को कल की सहायता

से भली-भाँति साफ करके बुकनी बना देते हैं। बुकनी को खास मसालों के सहारे गलाकर माड़ बना डालते हैं। माड़ में चूना मिला देने से वह उजला हो जाता है। इस माड़ को कल के सहारे बड़े-बड़े साँचों में एक ओर से डालते जाते हैं और भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं के बाद सूख कर दूसरी ओर से कागज का थान निकलता जाता है और साथ ही उस पर एक प्रकार के मसाले का पुट चढ़ता जाता है जिससे कागज पर रोशनाई नहीं फैलती। यदि पुट नहीं दिया तो 'ब्लाटिंग पेपर' या स्याही-सोख तैयार हो जाता है। इसके बाद थान को इच्छित लम्बाई चौड़ाई में कल ही के सहारे काटकर और ताव गिन-गिनकर जिस्ता, रीम इत्यादि बना लेते हैं। यदि रंगीन कागज बनाना हुआ तो माड़ में इच्छित रंग मिला देते हैं। मोटा या पतला, हल्का या भारी जितने प्रकार के कागज हैं, सब कल के सहारे बनाते हैं।

४. हमारे भारत में कागज बनाने के कल-कारखाने बहुत ही कम या नाम-मात्र के लिये हैं। डालमिया नगर, टीटागढ़, श्रीरामपुर, लखनऊ और बंगाल की मिलें कुछ-कुछ कागज बनाती हैं, तो भी विदेशी कागज हमारे यहाँ बहुत आता है। इधर लोगों का साहस बढ़ा है और वे कागज बनाने की मिलें खोलने में लग पड़े हैं। आशा है, थोड़े ही दिनों में कुछ मिलें और दीख पड़ेंगी।

५. कागज ने हमारा बड़ा उपकार किया है। इसी की कृपा है कि विद्या, विज्ञान इत्यादि के साधन सुलभ हो रहे हैं और सभ्यता में उत्त-रोत्तर वृद्धि होती जा रही है। सभ्य समाज में ऐसा ही कोई काठ का पुतला होगा जिसने पढ़ने-लिखने में कागज का उपयोग न किया हो। पुस्तकें, समाचार-पत्र इत्यादि तथा अन्य कई पदार्थ कागज ही के कारण हमें सुलभ मूल्य पर मिल रहे हैं। मोटे कागज से बक्स बनाते हैं। जापान में कागज का छाता, दीवाल और कई प्रकार के उपयोगी पदार्थ बनते हैं।

६. हमारे देश में कागजी जाति के भारतीय पहले कागज बनाते थे, परन्तु जब से मिल का कागज सुलभ मूल्यपर मिलने लगा है, उनकी कारीगरी गायब होती जा रही है। नेपाल में 'बसहा' कागज बनाया जाता है। नेपाल-सरकार के सभी काम 'बसहा-कागज' पर होते हैं।

वाष्पयन्त्र
(The Invention of the steam Engine)

१. परिचय। २. इतिहास। ३. वाष्पयन्त्र से लाभ। ४. उपसंहार—भारत में कल-काँटे।

१ हमलोगों ने भाप के बल से चलनेवाला कोई इंजिन अवश्य देखा होगा। रेलगाड़ी इसी इंजिन से चलती है। जहाज चलानेवाला यही इंजिन है। आटे की कल, लोहा ढालने की कल, सड़क बनाने की कल और सूत कातने की कल सभी भाफ के इंजिन के बल से काम करती है। इसी भाफ के इंजिन का दूसरा नाम वाष्पयन्त्र है।

२. ईसा के १३० वर्ष पूर्व सिकन्द्रिया के रहनेवाले हीरो ने भाप की छानबीन की थी। इसी खोज के आधार पर स्पेन देश के एक किसान ने १५१३ ई० में भाफ से चलनेवाला जहाज बनाया। परन्तु वे भली-भाँति सफलीभूत न हो सके। १५१५ ई० में फ्रांस के इंजीनियर ने एक वाष्पयन्त्र कूएँ से जल निकालने के लिये बनाया, परन्तु इसमें भी बहुत कुछ कमी रही। इस कमी को प्रायः ४८ वर्ष बाद मार्क्विस आफ अर्चेस्टर ने सदा के लिये दूर कर दिया। इसी समय से वाष्पयंत्र में धीरे-धीरे उन्नति होने लगी। इसी उन्नति से स्टेवेन्सन साहब ने बहुत कुछ सहायता पहुँचाई और नये ढंग का एक वाष्पयन्त्र बना दिया। यह सब होते हुए भी 'सर जेम्स वाट' ही इस वाष्पयन्त्र के सम्बन्ध में प्रधान पुरुष समझे जाते हैं। एक बार इन्होंने चूल्हे पर चाय की डेकची के ढक्कन को भाफ के बल से ऊपर-नीचे होते देखा। उसी समय से ये वाष्प के बल की जाँच में लग गये। समय पाकर इन्होंने न्यूकसन साहब के इंजिन को देखा और अपनी बुद्धि से एक बहुत ही उत्तम वाष्पयन्त्र बना लिया। इसके पीछे वाल्टन साहब से भी मिलकर एक बहुत ही बड़ा इंजिन बनाया तथा धीरे-धीरे उसमें तरह-तरह के सुधार कर दिये। इस समय से अच्छे इंजिन बनने लगे और अभी तक सुधरते हुए बहुत-से इंजिन बनते चले जा रहे हैं।

३. वाष्पयन्त्र इस समय नाना प्रकार के कार्यों में व्यवहृत होते हैं। आटा पीसना, सुरखी कूटना, टाट बनाना, कपड़ा बुनना, सूत कातना, लोहा ढालना,

पुस्तकें छापना तथा रेलगाड़ी, जहाज और हवाई जहाज का चलना इत्यादि भिन्न-भिन्न कार्य वाष्पयन्त्रों ही के सहारे होते हैं। वाष्पयन्त्र ने शिल्प और वाणिज्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इसने मनुष्य के शारीरिक श्रम और समय को बचाकर बहुत-से पदार्थ बना डाले हैं जो बहुत ही थोड़े मोल पर मिल रहे हैं। बहुत-से लोगों को इसने रोजी दे डाली है। विद्वानों ने कहा है कि ज्यों-ज्यों कल-काँटों का आविष्कार और व्यवहार बढ़ता जायगा, सभ्यता में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायगी। यह बात अक्षर-अक्षर ठीक है। देखिये जिस देश ने कलाकारों को अपनाया है वह सभ्य समझा जाता है।

४. भारत में कल-काँटों के प्रचार होने की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि अन्य देशवालों ने कल-काँटों से बनी भाँति-भाँति की वस्तुएँ भेजकर हमारे देश के प्रायः सभी हस्तनिर्मित शिल्पकार्य नष्ट कर दिये हैं और अब वह समय भी नहीं है कि हाथों से कल-काँटों की बराबरी की जाय। यदि हमारी दृष्टि कल-काँटों की ओर नहीं जाती है तो यह हमारा दुर्भाग्य है। इधर कई युवकों का ध्यान इस ओर गया है और आशा है कि वे इसमें अच्छा योग देंगे।

काँच (Glass)

१. निर्माण-प्रणाली और आविष्कार के विषय में किंवदन्ती। २. साधारण वर्णन। ३. गुण और धर्म। ४. व्यवहार और उपकार। ५. उपसंहार।

१. बालू में आल्कली (Alkali) से बना एक प्रकार का क्षार और थोड़ा चूना मिलाकर कड़ी आँच पर गलाने से काँच बनता है। ऐसा कहा जाता है कि फिनीशिया देश के कतिपय व्यापारी सीरिया के उपकूल में जहाज के डूब जाने के कारण पहुँचे। वहाँ उन्होंने आल्कली नामक वृक्ष की लकड़ी से बालू पर रसोई बनाई। देखा कि चूल्हे में काँच बना हुआ है। इस प्रकार उन लोगों ने काँच बनाना सीख लिया।

२. बाजार में भिन्न भिन्न प्रकार के काँच दीख पड़ते हैं। जब काँच तरल अवस्था में रहता है तब नालियों और साँचे के सहारे जैसी चीज चाहें बना सकते हैं। यदि तरल अवस्था में रंग मिला दें तो काँच रंगीन बन जाता है।

३. काँच स्वच्छ पदार्थ है। यह आलोक को नहीं रोक सकता। यदि इसकी एक पीठ पर पारा लगा दें तो दूसरी ओर सभी पदार्थ भली-भाँति देख

सकते हैं। यद्यपि काँच अत्यन्त कठिन, उज्ज्वल और चिकना पदार्थ है तथापि इसमें एक दोष है। यह बहुत ही तुनुक है और धक्का लगते ही चूर-चूर हो जाता है। टूटने पर यह जोड़ा नहीं जा सकता है और इस पर कोई चिह्न भी नहीं बन सकता। यह हीरे के टुकड़े या गर्म किये लोहे को छोड़ और किसी चीज से सीधा नहीं कट सकता। काँच में एक विशेष गुण यह है कि यह एक ओर की गरमी को दूसरी ओर नहीं जाने देता।

४. काँच से हमारे नित्य व्यवहार की शीशी, बोतल, ग्लास, कटोरा, झाड़, लैम्प, चूड़ी, खिलौना आइना इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनती हैं। इससे चश्मा और भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक यत्र बनाये जाते हैं। पीतल और काँसे के बरतनों में भोजन के पदार्थ अधिक काल तक रहने से बिगड़ जाते हैं, परन्तु काँच के बरतनों में यह विकार नहीं होता। आजकल काँच की इतनी चीजें बनी हैं कि इसके बिना सभ्य समाज का काम ही नहीं चलता।

५. प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में काँच का उल्लेख पाया जाता है। तीन हजार वर्ष पहले मिश्र देश में काँच के बरतनों का व्यवहार था—इसका स्पष्ट प्रमाण मिला है। हिन्दू काँच को अपवित्र मानते हैं और इसके स्थान में पत्थर के बने बरतन काम में लाते हैं, परन्तु अब यह धारणा बदलती जा रही है।

मिश्रित लेख (Miscellaneous Essay.)

डाक-विभाग (The Postal System)

१. परिचय। २. इतिहास। ३. डाक-विभाग की शाखाएँ और कार्य। ४. उपकार। ५. उपसंहार।

१. सारा सभ्य संसार डाक-विभाग का ऋणी है। इससे मनुष्य-समाज की जो भलाइयाँ हुई हैं, वे अकथनीय हैं। डाक केवल उस एकता का नाम है जिसको जनता ने सरकार द्वारा अपने समाचार पहुँचाने के लिये कर लिया है।

२. अति प्राचीन काल से भारत में डाक द्वारा पत्रों के भेजने की प्रथा है, परन्तु आजकल की कार्यप्रणाली से उस समय की प्रणाली बहुत ही भिन्न थी। मुसलमानों के समय में, डाक की व्यवस्था विपत्तियों से भरी और बहुत ही खर्चीली थी। घोड़े पर डाक भेजी जाती थी। कभी-कभी वह रास्ते में लुट जाती थी। लोग एक दूसरे के पत्र पढ़कर छिपी हुई बात जान जाते थे। समय निश्चित

नहीं था। पत्र कभी शीघ्र ही और कभी महीनों में पहुँचता था। खर्च का कोई ठिकाना नहीं था। पुराने समय में इङ्गलैंड में भी प्रायः यही प्रकार था। क्रॉमवेल ने इसमें बहुत कुछ सुधार किया। इस सुधार के अनुसार १४१० ई० तक कार्य होते रहे, तब हिल साहब ने प्रति पत्र १ पेन्स का खर्च ठहराकर डाक-विभाग में उस समय के अनुसार एक अच्छा सुधार कर दिया। आजकल जिस व्यवस्था के अनुसार डाक के कार्य हो रहे हैं, वह सुविख्यात पण्डित पामर साहब की ईजाद की हुई है। इसने अपने परिश्रम और अनुभव से डाक-विभाग के नियम और क्रम ठीक किये। वे ही नियम इस समय अटल सिद्धान्त के समान माने जा रहे हैं। इसी रीति पर लार्ड डलहौजी ने भारत में डाक-विभाग जारी किया। इस समय तक प्रायः ३० हजार से ऊपर डाकघर यहाँ हो गये हैं।

३. भारत का डाक-विभाग कई शाखाओं और प्रशाखाओं में विभक्त है। चिट्ठी-पत्री की जो शाखा है, वह बिना विश्राम लिये सदा कार्य करती है, किसी भी उत्सव या पर्व पर उसे छुट्टी नहीं मिलती। एक शाखा मनिआर्डर विभाग की है इसके द्वारा बिना किसी विपत्ति के अपने आत्मीय बन्धु या किसी दूसरे के पास रुपया-पैसा भेज सकते हैं। यदि हम चाहें कि हमारा पत्र या कोई चीज बिना किसी बाधा के अभिलषित स्थान पर पहुँच जाय तो उसे रजिस्ट्रेशन विभाग द्वारा भेजते हैं। इन्शोरेन्स विभाग बीमा करता है और यह प्रतिज्ञा करता है कि यदि किसी की भेजी हुई वस्तु गुम हो जाय तो डाक-विभाग उसका मोल दे देगा। एक विभाग सेविंग बैंक है, इसमें हम बची-खुची आमदनी जमा करके परिमित-व्ययी बन सकते हैं। यहाँ कुछ सूद भी मिलता है। मुख्य-मुख्य स्थानों में डाक के साथ तार-विभाग भी है, जो हमारी खबर कुछ ही घंटों में हजारों मील पर पहुँचा देता है। कुछ दिनों से डाक-विभाग ने कुनैन बेचने का भी भार लिया है, जिससे यह बहुत ही सुलभ हो गई है और प्रजा मलेरिया ज्वर से बच रही है।

४. डाक विभाग के उपकार और प्रयोजन पर विचार करने से लोगों को अवाक् होना पड़ता है। जब हमारे आत्मीय बन्धु हमसे दूर पड़ जाते हैं तब इसी डाक द्वारा हम उनका कुशल-मंगल जानते हैं और समय पर रुपया-पैसा और अभिलषित वस्तु भेजकर उनकी सहायता करते हैं। यदि

हमारा कोई बन्धु विदेश में विपत्ति में रहता है तो इसी डाक द्वारा हम उसको विपत्ति से बचाने के उपाय करते हैं। केवल तीन पैसे के खर्च में हमारा पत्र सैकड़ों कोस पर हमारे मित्र के पास दो ही चार दिनों के भीतर पहुँच जाता है और कोई हमारा भेद भी नहीं जानने पाता। यदि हम चाहते हैं कि कुछ घंटों में हमारी खबर निश्चित स्थान में पहुँच जाय तो कुछ आने खर्च करके तार दे देते हैं डाक-विभाग ने व्यापार और शिक्षा के प्रचार में बहुत बड़ा योग देकर हमारी सभ्यता को सुधार दिया है। अतः, हम उसके बड़े ऋणी हैं।

डाक से हम एकता की शिक्षा पाते हैं। हमी ने एक-एक पैसे से इतना बड़ा कार्य सँभाला है, कर्मचारियों को लाखों रुपये वेतन देकर रक्खा है और समाज की भलाइयाँ की हैं।

५. डाक विभाग में जाल और असत् कार्य का निर्वाह नहीं। उसपर सरकार की कड़ी नजर रहती है। यदि किसी कर्मचारी का दुर्विचार जान पड़े तो उसे शीघ्र यथोचित दण्ड दिया जाता है। यदि कोई पत्र पते की गड़बड़ी से अभिलषित मनुष्य को नहीं पहुँचाया जा सके तो वह डेड लेटर आफिस को भेज दिया जाता है। वहाँ वह खोलकर पढ़ा जाता है और उसपर उचित विचार होता है। यदि कुछ भी खबर नहीं लगे तो जला दिया जाता है।

समाचार-पत्र (Newspapers)

१. समाचार पत्र क्या है ? २. इसे कौन लिखता है ? ३. इसका जन्म। ४. लाभ। ५. भारत में समाचार-पत्र के कार्य बहुत कठिन हैं। ६. उपसंहार।

१. जो पुस्तकें नियमित तिथियों पर भिन्न-भिन्न देशों के समाचार छाप कर बेची जाती हैं, उन्हें समाचार-पत्र कहते हैं। आजकल पत्रों में केवल समाचार ही नहीं छपते, बल्कि उनमें सुधार की बातें भी रहती हैं तथा उपयोगी विषयों पर निबन्ध भी लिखे रहते हैं। बहुत-से समाचार-पत्र साप्ताहिक हैं जिनमें एक सप्ताह की बातें लिखी रहती हैं। इसी प्रकार दैनिक, अर्द्धसाप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और त्रैमासिक-पत्र भी निकलते जाते हैं।

२. समाचार-पत्र को एक मनुष्य नहीं लिखता, वह बहुत से मनुष्यों का लिखा होता है। हाँ, परन्तु उसका सम्पादन कोई एक प्रधान मनुष्य करता है

जिसको सम्पादक कहते हैं। वही समाचार-पत्र के लिखे विषयों का उत्तरदाता भी होता है।

३ यूरोप में सबसे पहला समाचार-पत्र इटली के वेनिस नगर से निकला था। जब इसके लाभ लोगों को मिलने लगे तब यूरोप के सभी देशवालों ने पत्रों का निकालना आरम्भ कर दिया। महारानी एलिजावेथ के समय में इङ्गलैंड का पहला समाचार-पत्र निकाला गया। हमारे भारत में अंगरेजी सरकार का 'इण्डिया गजट' १७४० ई० में निकला। आजकल तो यहाँ कई हजार पत्र निकल रहे हैं; तो भी अन्य उन्नत देशों की अपेक्षा यह संख्या बहुत ही कम है।

४. भिन्न-भिन्न समाचार-पत्रों के उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। कई पत्र प्रजा और राजा की बातें एक दूसरे को पहुँचाया करते हैं, जिससे आपस का मनोमालिन्य दूर हो जाता है और शासन में पूरी सहायता मिलती है। यह पत्रों ही का काम है कि ये किसी उचित कार्य के लिये देशवासियों को सतर्क करें और अनुचित कार्यों से रोकें। यूरोप में समाचार-पत्रों की शक्ति इतनी प्रबल है कि वे जिस कार्य के लिये कान उठाते हैं, देशवासियों को वही करना पड़ता है।

संसार की उन्नति-सम्बन्धी नई-नई वस्तुएँ विज्ञान के आविष्कार, कांग्रेस-कांफ्रेंस और महामण्डल इत्यादि की करतूतें तथा सामाजिक सुधार की बात समाचार-पत्रों ही के द्वारा हम लोग जानते हैं। संसार के किस भाग में कौन-कौन वस्तुएँ किस भाव से बिकती हैं, व्यापार के लिये कहाँ क्या सुभीता है—इत्यादि विषयों का पता समाचार-पत्र ही बताता है। जब कोई मनुष्य कारण-वश अपने इष्ट-मित्रों से दूर पड़ जाता है तब समाचार-पत्र ही उसका प्यारा मित्र बन जाता है और अपने नये-नये समाचारों से, मनोहारिणी कविताओं से तथा नाना प्रकार की कथा-कहानियों से उसके मुरझाये हुए चित्त को प्रफुल्लित करता है।

५. भारत में समाचार-पत्रों को बहुत ही कठिन कार्य करने पड़ते थे। ये परदेशवासी अंग्रेजी सरकार और उनकी भारतीय प्रजा के मध्यस्थ का काम करते थे। भारतवासियों का परदेशी शासनकर्त्ताओं से प्राकृतिक सम्बन्ध अत्यल्प था। इसी प्रकार हमारे शासनकर्त्ता भी भारतवासियों से दूर-दूर रहते थे। कदाचित् परिचित थे। ऐसी अवस्था में यह समाचार-पत्र ही था कि वह

शासनकर्त्ता और भारतीय प्रजा को आपस की भेंट कराता था और एक दूसरे का भेद-भाव दूर करता था। अब तो पत्र भारत के अपने हैं, वे शासन और जनता दोनों में सन्तोष फैलाते हैं और ऐसा प्रयत्न करते हैं जिसमें किसी से कोई त्रुटि न होने पावे। ऐसी अवस्था में कभी-कभी शासन के कामों पर उन्हें आक्षेप भी करना होता है। यदि असत्य बातें लिखी गईं तो सरकार उनके सम्पादकों को खरी खोटी सुनाती है और कभी-कभी दण्ड भी देती है। अतः, सम्पादकों को उचित है कि वे उचित वक्ता हों, विघ्न-बाधाओं से न डरें और अपने कठिन कर्त्तव्य को उचित रीति से पूर्ण करें।

६. भारत के बहुत से पत्र कुछ प्रधान मनुष्यों के उत्साह पर चलते हैं। जब वे स्वर्गयात्रा कर जाते हैं वा उनका उत्साह घट जाता है तब वे पत्र भी बन्द हो जाते हैं। यही कारण है कि प्रदीप, बिहारबन्धु, हिमालय इत्यादि पत्रों के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। पाश्चात्य देशों में यह बात नहीं है। वहाँ सम्पादक या मैनेजर न भी रहें तो भी पत्रों के निकलने में कोई बाधा नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक पत्र का प्रबन्ध ही उत्तम रहता है और लेखक तथा संवाददाता भरपूर रहते हैं। देखें, भारतवर्ष के ऐसे सुखमय दिन कब आते हैं।

विचारात्मक लेख (Reflective Essays)

गुण विषयक लेख
(Essays on Abstract Subjects)

सत्यवादिता (Truthfulness)

१. प्रारम्भ। २. असत्य बोलने से हानि। ३. सत्य से लाभ। ४. सत्यकथन। ५. उपसंहार।

१. जिस पदार्थ का जैसा ज्ञान मन में हो उसके विषय में ठीक-ठीक उसी प्रकार कहने का नाम सत्य है। यदि हम जानते हैं कि श्याम चार दिनों से पटने में है, चाहे वह पटने से कहीं चला भी गया हो और हम यह कहें कि श्याम आज पटने में है तो हम सत्य बोल रहे हैं। यदि हम जानते हैं कि वह पटने से काशी चला गया है और यह कहें कि वह पटने में है तो यह कहना झूठ होगा। अतः, अपने ज्ञान के अनुकूल कहना ही सत्य हुआ और इसके प्रतिकूल कहना झूठ।

२. झूठ बोलने से विश्वास उठ जाता है। यदि सब लोग झूठ बोलना आरम्भ कर दें तो संसार के सारे काम बन्द हो जायँ। जब हम बाजार में कोई वस्तु मोल लेने जाते हैं तब हमारे विश्वास पर बेचनेवाला वह वस्तु तौल कर दे देता है और पीछे हम उसका मूल्य देते हैं। यदि बेचनेवाले को यह शंका हो जाय कि हम झूठ बोलते हैं या हमें ही शंका हो जाय कि पहले दाम देने से बेचनेवाला झूठ बोलकर हड़प जायगा तो इस प्रकार दोनों पर विपत्तियाँ आ जायँगी। बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी, यहाँ तक कि संसार के सभी कार्य बिगड़ जायँगे।

झूठ बोलनेवाले की बड़ी दुर्गति होती है, क्योंकि झूठी बात बहुत दिनों तक छिप नहीं सकती। जैसे चोर के पाँव नहीं होते, उसी प्रकार झूठ के भी पाँव नहीं होते। जो यह समझता है कि मेरी झूठ बात कोई नहीं जान सकेगा, वह भारी भूल करता है। जहाँ एक बार भी लोगों को झूठ का पता लग गया, बस, समझ लीजिये उसका विश्वास जाता रहा और उसमें तथा कहानी के भेड़ चरानेवाले गड़ेरिये में कुछ भेद न रहा। जैसी गति गड़ेरिये की हुई वैसी ही गति उसकी भी होगी। झूठे को एक झूठ छिपाने के लिये बीसियों झूठी बातें बनानी पड़ती हैं। यदि हम झूठ बोलना छोड़ दें तो चोरी इत्यादि बुरे कर्म हम नहीं कर सकते।

३. मुख का भूषण सत्य है। जो समझते हैं कि पान से मुख की शोभा होती है, वे भूलते हैं। जो साँच बोलता है उसका हृदय पवित्र हो जाता है। सत्य बोलने से साधुता, सरलता इत्यादि सच्चरित होने के जितने गुण हैं वे सब मनुष्य में आ जाते हैं। यदि कदाचित् सत्यवादी का मन किसी बुरे काम की ओर जाय तो उसे सदा यह खटका लगा रहेगा कि कहीं मुझसे कोई पूछ बैठा तो मुझे सच-सच ही कहना पड़ेगा—यह ध्यान में आते ही वह उस काम से अवश्य बच जायगा। अतः, हमलोगों को उचित है कि सदा सच बोलकर अपने को पवित्र बनाये रहें।

४. बहुत से मनुष्य ऊपर से सत्य बोलते जान पड़ते हैं, परन्तु भीतर का भाव दूसरा रहता है। कितने सामने सत्य बोल देते हैं, परन्तु पीछे उसके विरुद्ध बर्ताव करते हैं। इस प्रकार सत्य की खोल में असत्य भाव छिपाना घोर पाप का मूल है।

जो बात समयानुकूल न हो, यदि वह सत्य भी हो तो भी उसे बोलना अनुचित है। यदि हमारे पास कोई आँखवाला मनुष्य आवे और उसको हम 'कनहू भाई कनहू भाई' कहकर पुकारें तो उसका हृदय दुख जायगा और बात अप्रिय होने से एक प्रकार की हिंसा समझी जायगी। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।"

५. यदि हम लोग चाहते हैं कि सदा सच बोलें, झूठ कभी न बोलें तो हमें चाहिये कि ईश्वर पर विश्वास करें, उसे सदा अपने समीप समझें क्योंकि कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ ईश्वर का वास न हो। ईश्वर सर्वान्तिर्यामी है, वह घट-घट की बातें जानता है। वह हम लोगों के झूठ को उसी क्षण जान जायगा और समय पर अवश्य ही दण्ड देगा। जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं वे कभी नहीं झूठ बोल सकते। भला, ऐसा कौन होगा जो एक न्यायी शासक को जानकर अन्याय करे अतः हम लोगों को चाहिये कि ईश्वर से सदा डरते रहें और झूठ कभी न बोलें।

"नहि सत्यात् परो धर्मः"

विद्या

१. प्रारम्भ। २. इससे लाभ। ३. सर्वोत्तम आभूषण। ४. सब धनों से श्रेष्ठ। ५. विद्या-प्राप्ति के उपाय। ६. उपसंहार—विद्या-प्राप्ति के स्थान।

१. ऊपर जो शब्द लिखा गया है वह 'विद्' धातु से निकला है, जिसका अर्थ है—जानना। क्या जानना? सैकड़ों वाक्यों के अर्थ जानना, विज्ञान का कोई प्रयोग जानना या गणित के किसी जटिल प्रश्न का उत्तर जानना विद्या है? हमारे जानते इस शब्द का पूर्ण अभिप्राय इन्हीं इनीगिनी बातों से नहीं निकलता। जो मनुष्य की छिपी हुई स्वाभाविक शक्तियों को विकसित कर दे और जिससे लोक और परलोक का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाय, वस्तुतः उसी का नाम विद्या है।

२. ईश्वर से सारी शक्तियों के बीज मनुष्यों को दे रक्खे हैं। जब इन बीजों की विद्या से भेंट होती है तब ये फट जाते हैं और सारी शक्तियाँ चारों ओर फैलने लगती हैं, जिनसे मनुष्यों का स्वभाव, चरित्र, चालढाल, रहन-सहन, बातचीत सब सुधर जाते हैं। जिन बातों का ज्ञान मूर्ख को स्वप्न में भी नहीं

होता, उन्हीं को विद्वान् प्रत्यक्ष रूप में दिखा देता है। रेल, तार, जहाज, हवाई जहाज, रेडियो और अणुबम इत्यादि वस्तुएँ लोगों ने विद्या ही के बल से बनाई हैं। संसार को जो-जो जातियाँ विद्वान् नहीं हैं वे आज तक जंगलों में नंगी रहतीं और पत्तियाँ पहनती हैं। विद्या ही के बल से मनुष्य पृथ्वी के भीतर से सोना, चाँदी इत्यादि द्रव्य निकालकर धनाढ्य हो जाते हैं। जब परदेश में रहते हैं तब विद्या ही के द्वारा अपने बन्धु-बान्धवों से पत्र-व्यवहार कर अपने को शांत रखते हैं। यह विद्या ही का फल है कि प्राचीन लोगों का इतिहास भी हम लोग जानते जा रहे हैं।

३. जिसने विद्यारूपी आभूषण को धारण किया है उसे दिखावटी आभूषणों के पहनने की भी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार संग-तराश के हाथ में पड़कर पत्थर के बेडौल टुकड़े अनुपम सुन्दर मूर्त्तियाँ बन जाती हैं, उसी प्रकार बेडौल मनुष्य भी विद्या पढ़कर सुडौल बन जाते हैं और उनके सभी गुण प्रकट होने लगते है। यही कारण है कि विद्वानों की प्रतिष्ठा राजाओं से भी बढ़कर होती है। राजा तो केवल अपने देश में मान पाते हैं, परन्तु विद्वान् जहाँ जायँ वहीं उनका मान होता है। विद्वान् मरकर भी जीवित रहते हैं, क्योंकि वे अपनी कीर्ति इस संसार में छोड़ जाते हैं। यह विद्वानों ही की करतूत है कि इस संसार में बड़े-बड़े लोगों के नाम स्थायी रह जाते हैं। कहिये, यदि वाल्मीकीजी रामायण न लिख जाते तो श्रीरामचन्द्रजी को आज कौन जानता ?

४. जिसने विद्या प्राप्त की है वह भूखों नहीं मर सकता, क्योंकि विद्या सदा उनको धन देती रहेगी। विद्या-धन की रक्षा के लिये ईश्वर ने लोगों को हृदयरूपी एक ऐसा सन्दूक दिया है कि न तो इसे कहीं ले जाने में कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं, न इसके लिये ताले रखने पड़ते हैं और न रात भर जगना पड़ता है। जहाँ चाहो लिये फिरो; चोर, डाकू या राजा कोई नहीं छीन सकता और धन तो खर्च करने में घटता है, परन्तु विद्या-धन जितना चाहे खूब खर्च करे, बढ़ता ही चला जायगा। स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव सब स्वार्थ के कारण प्रेमी हैं, परन्तु विद्या निःस्वार्थ प्रेम रखती है, सदा आनन्द देती है और कभी साथ नहीं छोड़ती। अतः प्रमाणित होता है कि विद्या सर्वोत्तम धन है, यह अपनी उपमा नहीं रखती।

५. सदा केवल पुस्तकों ही के कीड़े बने रहने से हम विद्वान् नहीं हो सकते। पुस्तकों का पढ़ना तो केवल अंशमात्र है। यदि हम पूरी विद्या प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि प्रकृत-संसार की वस्तुओं का अवलोकन अच्छी रीति से करें। पुस्तकों को पढ़कर उनपर विचारें कि जो कुछ उनमें लिखा है ठीक है या नहीं। यदि पढ़ने-लिखने से हर वस्तु को ठीक दृष्टि से देख लेने का विवेक नहीं हुआ तो सब व्यर्थ है। यूनान देश का विद्वान् सुकरात बहुत कम पढ़ा हुआ था, परन्तु उसके अपूर्व विवेक के कारण एक बच्चा तक भी उसका नाम जान गया है। पंजाब केसरी महाराज रणजीतसिंह पढ़े-लिखे न थे, परन्तु अच्छे-अच्छे विद्वान् उनसे हार मानते थे।

६. विद्या जहाँ मिल जाय वहीं से सीख लेनी चाहिये। जिस प्रकार अपवित्र स्थान में पड़े हुए सोने को कोई नहीं छोड़ता, उसी प्रकार यदि अपने से नीच के पास भी विद्या हो तो उसे अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये, क्योंकि जो विद्वान् है वही बड़ा है। प्रकृति अवलोकन में भी लगा रहना चाहिये जिससे जीवन की कठिनाइयाँ आप-से-आप हल हो जायँ।

"राजा निज देशहिं पुजे, विदुष पुजै सर्वत्र।"

आशा (Hope)

१. आरम्भ। २. आशा से लाभ। ३. निराशा। ४. आशा बनी रहने के उपाय।

१. मैं विद्यार्थी हूँ। सबेरे ही नित्यकर्म समाप्त कर पढ़ने बैठता हूँ। रात को दीपक के सहारे पुस्तकें पढ़ता हूँ। गर्मी पड़ती है, नींद सताती है, कीड़े दुःख देते हैं, तो भी मैं पढ़ता ही चला जाता हूँ। यदि मुझसे कोई पूछता है कि इतना कठिन परिश्रम क्यों करते हो? मैं उत्तर देता हूँ कि मुझे परीक्षा पास करने की आशा लगी है। कहिये, यदि मुझे यह आशा नहीं रहती तो मैं कभी भी पुस्तकें छूता?

कृषक खेत की कड़ी मालगुजारी देता है। बार-बार ईतिभीति से सताया जाता है। ग्रीष्मकाल में कड़ी धूप सहकर हल चलाता है। उसको आशा लगी है कि इस कठिन परिश्रम से मुझे खेत की उपज मिलेगी। कहिये, यदि उसे यह आशा नहीं रहती तो वह कभी इतना परिश्रम करता?

आशा का क्या अर्थ है, इसका क्या अभिप्राय है—ऊपर की जाँचों से हमलोग समझ गये होंगे।

२. आशा ही पर संसार स्थिर है। जितने कार्य हैं सब आशा ही के सहारे चल रहे हैं। इस संसार में बड़े-बड़े नगर, बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें गगनस्पर्शी स्वर्णजटित मन्दिर, कल कारखाने, तालाब-पोखरे आदि जो दीख पड़ते हैं और चारों ओर चहल-पहल, बाजार-मंडी, मेला उत्सव, धर्म कर्म इत्यादि जितने कार्य देखने में आते हैं, वे सब आशा ही के फल-स्वरूप हैं। 'जब लग साँस तब लग आस'—यदि ऐसा न होवे, यदि मनुष्य निराश हो जाय तो एक पल भी जीना दुर्लभ हो जाय। आशा कार्य में प्रवृत्त करानेवाली एक ऐसी शक्ति है जिससे मृतप्राय शरीर में भी कुछ क्षण के लिये चेतना आ जाती है। यदि ऐसा न होता तो रोगी की चिकित्सा पर कोई क्यों ध्यान देता? बड़े-से-बड़े कार्य का आरम्भ करने और चलानेवाली आशा ही है। यही आशा ही है कि जिससे मनुष्य का सम्बन्ध भविष्यकाल के साथ जुड़ जाता है।

आशा मनुष्य के जीवनरूपी दीये का ढकना है। जिस प्रकार प्रचण्ड वायु के झोंके से दीया बिना ढकने के बुझ जा सकता है, उसी प्रकार बाहरी दुःख और चिन्तारूपी आँधियों से रक्षा करनेवाली आशा है। यदि दुःख में सुख की आशा न होवे तो उस असह्य दुःख से पार पाना कठिन हो जाय।

३. निराशा से जीवन में दुःख होता है। ऐसे तो निराशा मनुष्यों के मन में बहुत समय तक नहीं ठहरती या यों कहिये कि ठहरती ही नहीं। यदि किसी प्रकार की आशा पूरी न होने पर पलमात्र के लिये निराशा उत्पन्न हो भी जाती है तो आशा की चपेट में उसे शीघ्र ही भागना पड़ता है। जिस मनुष्य के मन में आशा चिरकाल के लिये वास कर लेती है वह कार्यसिद्धि की सीमा तक पहुँच सकता है। अतः, व्यवहार में निरत रहनेवाले सांसारिक मनुष्य का 'आशा हि परमं सुखम्' यह मूलमंत्र होना चाहिये।

४. जब यह बात सिद्ध हो गई कि आशा मनुष्य के जीवन के लिये ऐसी सहायक है तब सदा ऐसा प्रबन्ध करते रहना चाहिये कि आशा न टूटने पावे। कभी ऐसी वस्तु की आशा न करे जो सम्भव हो या जो अनिश्चित हो। बहुत-से मनुष्य अनिश्चित आय की आशा करके अपना खर्च बढ़ा देते हैं, पर

जब उनकी वह आशा पूर्ण नहीं होती तब सिर पीट कर रोते हैं। अतः, ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। भला, बादल को देखकर घड़ा फोड़ना मूर्खता नहीं तो और क्या है?

मनुष्य को ऐसा कार्य करना चाहिये, जो उसकी शक्ति के भीतर हो। जो अपनी शक्ति से बाहर काम उठा लेते हैं, उनको सफलता प्राप्त नहीं होती और जब ऐसी अवस्था कई बार होती है तब आशा टूट जाती है और दुःख के ढेर सिर पर आ जाते हैं। यदि सब कार्य पूर्ण होते चले जायँ तो आशा बढ़ती ही जाती है। अतः, हम लोगों को उचित है कि अपनी शक्ति के बाहर कोई काम न करें।

आशा सर्वदा बनी रहने के लिये हम लोगों को ईश्वर पर विश्वास रखना चाहिये। जो ईश्वर पर विश्वास रखता है वह यह समझता है कि मेरी सहायता के लिये एक बड़ी शक्ति उपस्थित है और इस प्रकार उसकी आशा कभी भंग होने ही नहीं पाती। 'दुनिया ब-उम्मेद कायम'।

संगति (Society)

१. प्रारम्भ। २. संग की आवश्यकता। ३. कैसी संगति। ४. सत्संग से लाभ। ५. बुरी संगति। ६. मनुष्य की पहचान संगति से होती है। ७. कुसंग में पड़े हुए का बचाव। ८. सत्संग की आदत।

१. मनुष्य का ऐसा स्वभाव है कि वह सदा समाज में रहना पसन्द करता है, सदा दूसरों का साथ ढूँढ़ता है। इस संसार में कदाचित् ही कोई ऐसा मिलेगा जो अकेला रहता हो। निर्जनवास मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध और कष्टदायक है। यही कारण है कि मनुष्य अपने मन के अनुसार अपना संग पसन्द कर लेता है।

२. मनुष्य अकेले रहकर अपना जीवन शान्तिपूर्वक कभी व्यतीत नहीं कर सकता। जीवन बिताने के लिये बहुत से मनुष्यों की आवश्यकता होती है। जो भात हम खाते हैं उसके प्रस्तुत करने में एक नहीं, दो नहीं—सैकड़ों मनुष्यों के हाथ लगे होंगे। पहले गृहस्थ ने हलवाहे से खेत जुतवाया होगा, जिसमें हल की आवश्यकता पड़ती होगी। हल लकड़ी और लोहे से बनता है, जिसके बनाने में लोहार, बढ़ई इत्यादि कई मनुष्यों के हाथ लगे होंगे। जब खेत तैयार हुआ तब बीज लाने, उसे खेत में डालने, पानी पटाने और उसकी रक्षा करने इत्यादि कामों में कई मनुष्य लग गये होंगे। जब धान पक गया

होगा तब उसे काटकर दौनी (दँवरी) करने तथा चावल बनाने में कई मनुष्यों की आवश्यकता पड़ी होगी। उस चावल को बेचनेवाले से नौकर खरीदकर लाया और रसोइये ने भात बनाया, तब कहीं हमें खाने को मिला। यदि इतने मनुष्यों के हाथ न लगे होते तो वह भात, जिसको हम अपनी कमाई हुई वस्तु समझते हैं, हमारे भाग्य में नहीं होता। केवल भोजन ही नहीं, संसार में जितनी मनुष्य के काम की चीजें हैं, सब संग ही से प्राप्त होती हैं। चरित्र पर शिक्षा की अपेक्षा संगति का प्रभाव अधिक होता है। 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति' अर्थात् संसर्ग से ही मनुष्य के चरित्र सम्बन्धी दोष और गुण उत्पन्न होते हैं। इससे प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि मनुष्य के जीवन-सम्बन्धी सुख-दुःख सब संग ही के ऊपर निर्भर हैं।

३. जब यह जान गये कि हम लोगों को संगति की आवश्यकता है तब यह देख लेना चाहिये कि जिसके संग जीवन बिताना है उसका चरित्र कैसा है, क्योंकि संगी के चरित्र का प्रभाव अलक्षित भाव से हम लोगों के चरित्र पर पड़ता है। जो मनुष्य अच्छे लोगों के बीच में रहता है उसके संस्कार भी अच्छे होते हैं और जो बुरों के साथ रहता है उसके बुरे। अतः, हम लोगों को उचित है कि अच्छों की संगति अर्थात् सत्संग में रहें और कुसंग का नाम तक भी न लें।

४. सत्संग मनुष्य की आत्मा को उच्च बनाता, बुद्धि की जड़ता को हरता, वाणी में सत्यता लाता, प्रतिष्ठा को बढ़ाता, पाप को दूर करता, चित्त को प्रसन्न रखता और चारों दिशाओं में यश को फैला देता है। इससे बुरे मनुष्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, जिससे वे सुधर जाते हैं। यह सत्संग ही का फल है कि फूलों के साथ कीड़े देवता के मस्तक पर पहुँच जाते हैं। काजल आँखों में शोभता है। दूध के साथ पानी भी बिक जाता है। गंगाजी में पड़कर सभी वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं। पान के साथ तुच्छ पत्ते भी बड़ों के कर कमलों में पहुँच जाते हैं। वायु की संगति से अपवित्र वस्तुएँ भी उत्तम स्थानों में जा विराजती हैं। चन्दन की संगति से दूसरे वृक्ष भी सुगन्धित हो जाते हैं। सचमुच, सत्संग का फल बड़ा ही आश्चर्यजनक है। वे पुरुष धन्य हैं जिनको सदा सत्संग ही नसीब है।

५. अपने घोड़े को गधों के घर में बाँध दीजिये और कुछ नहीं तो वह दुलत्ती चलाना अवश्य ही सीख जायगा। कोयले की दलाली कीजिये, हाथ

अवश्य काले हो जायँगे। किसी वस्तु को लेकर नमक के बोरे में रख दें, कुछ दिनों के बाद वह भी नमक हो जायगी। यही अवस्था मनुष्यों की भी है। अच्छे लोग जब बुरों की संगति में रहने लगते हैं तब उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, दुष्ट पुरुषों से रीति-व्यवहार करने लग जाते हैं और अन्त में बुरे ही बन जाते हैं। यदि हमारे पास ऐसे लोग रहते हों जो मद्य पीते, जुआ खेलते और अन्य दुष्ट कर्म करते हैं तो अवश्य ही हम भी वैसे ही हो जायँगे। संभव है कि इस चपेट में आकर हमें कठिन विपत्तियों का सामना करना पड़े। अतः, यदि हमें सज्जन होना हो तो कुसंगति से बचना चाहिये।

६. मनुष्य की पहचान संगति से होती है। यदि वह बुरे की संगति में रहता है तो लोग उसे बुरा समझेंगे। इसी प्रकार अच्छी संगति में रहनेवाले को लोग अच्छा ही समझते हैं। यदि कलाल दूध लिये जा रहा हो तो उसे देखकर सब लोग यही समझेंगे कि वह मदिरा लिये जा रहा है। खर्बूजे को देखकर खर्बूजा रंग बदलता है। इसी प्रकार एक मनुष्य को देखकर दूसरा मनुष्य कार्य करता है। अतः, यदि कोई कहे कि मैं बुरी संगति में रहकर अच्छा बना रहूँगा तो उसका यह कहना वैसा ही असम्भव है, जैसे वायु चलने पर पत्तों का न हिलना।

७. यदि कार्यवश अच्छे लोग बुरी संगति में पड़ जायँ तो उन्हें उचित है कि वे अपनी दृढ़ता को न छोड़ें, अपनी चाल इस प्रकार रक्खें कि बुरों के दुष्ट गुणों का प्रभाव उनपर न पड़े। सदा अच्छे काम करते रहें और बुरों को धीरे-धीरे समझाते रहें। ऐसे-ऐसे कामों में पहले तो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी, परन्तु कुछ ही दिनों में वही कुसंग सत्संग में परिणत हो जायगा।

८ सत्संग का अभ्यास बालकों को बचपन ही से कराना चाहिये। बालकों का हृदय कच्चा होता है, उनपर दूसरों का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है। बुरी संगति में पड़कर बच्चे गालियाँ सीख लेते हैं और अनेक प्रकार की कुचेष्टाओं के वशीभूत हो जाते हैं। ये बुरी आदतें उन्हें जीवन भर दुःख देती हैं और कठिन परिश्रम करने से भी नहीं छूटतीं। अतः, माता-पिता को उचित है कि वे बच्चों पर बाल्यावस्था ही से कड़ी दृष्टि रक्खें, किसी अवस्था में भी उन्हें बुरे मनुष्यों की संगति में न जाने दें।

प्रेम (Love)

१. आरंभ। २. प्रेम का प्रभाव। ३. प्रेम सुख की जड़ है। ४. प्रेम का उपयोग और बुद्धि के साथ उसका सम्बन्ध। ५. प्रेम स्थायी रहने के उपाय। ६. उपसंहार।

१. अनेकों शक्तियाँ मनुष्य के हृदय में भरी हुई हैं। हम लोगों को दृष्टिगोचर नहीं होती, परंतु उनके विकास और अभिभाव का पता ये हमलोग लगा लेते हैं। इन्हीं शक्तियों में से प्रेम भी एक सुमधुर प्रभावकारिणी शक्ति है। जिस कार्य के करने में और शक्तियाँ थक जाती हैं, यह इसके बायें हाथ का खेल है। और-और शक्तियाँ भी प्रेम के अतुल प्रभाव के कारण इसकी अनुगामिनी बन जाती हैं। सारा संसार केवल प्रेम ही की डोरी में बँधा हुआ है।

२. किसी गृहस्थ का घर देखिये, वह क्या है? थोड़े से ऐसे मनुष्यों का समूह है जो आपस में प्रेम रखते हैं। माता-पिता, पुरुष, स्त्री, भाई, बहिन सब प्रेम का ही प्रकाश है। यही प्रेम कहीं माँ का रूप धारण कर अपने बेटे की जुदाई से तड़प रहा है। यही प्रेम था जिसने सीता को राम के साथ वन में भेजा। इस प्रेम ने राजा दशरथ को मार डाला। यही प्रेम मनुष्यों को ईश्वर-भक्ति में लगाता है। संसार में ऐसा कोई धर्म या मत नहीं है जिसमें प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का द्वार न माना हो।

प्रेम से लोहा भी मोम हो जाता है। प्रेमरूपी रस्सी को न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है और न लोहा काट सकता है। बड़े-बड़े वीर जो तलवार से भी वश में नहीं हो सकते—केवल प्रेम से ऐसे वश में हो जाते हैं कि उनको पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। जो वीर एक छोटी-सी गाली के लिये बड़े-से-बड़े मनुष्य का भी सिर काट सकता है, वही अपने छोटे बच्चे को गोद में लिये हुए प्रेम के कारण उसकी तोतली बोली में गालियाँ सुनता रहता है और उसे कुछ भी रंज नहीं होता। निस्सन्देह प्रेम एक अद्भुत शक्ति है। प्रेम हमारे जीवन के आनन्द का कारण है। पुस्तक के सब पृष्ठ जिस प्रकार गोंद से जुड़े रहते हैं उसी प्रकार प्रेम मनुष्य-मात्र के लिये गोंद का काम करता है। यदि प्रेम न हो तो मनुष्य आपस में लड़ कर कट-मर जायँ।

३. प्रेम सबके लिये सुख की जड़ है। जिन मनुष्यों में प्रेम होता है वे

आपस की भलाई के लिये परिश्रम करते हैं; जिससे उन्हें अपूर्व सुख मिलता है; परन्तु फूट रखनेवाले मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। दरिद्र गृहस्थ के घर में यदि प्रेम हो तो वहाँ दुःख का वास नहीं हो सकता, परन्तु जिस घर में प्रेम नहीं, वह धनवान् ही क्यों न हो, वहाँ सुख कभी नहीं ठहर सकता। देखो, प्रेम की कमी के कारण कौरवों और पाण्डवों का नाश हुआ। पृथ्वीराज और जयचंद ने भारतवर्ष की दुर्गति कर दी। अतः, हम लोगों को उचित है कि आपस में प्रेम रक्खें।

४. हम लोगों का जीवन अमूल्य और दुर्लभ है। बहुत से मनुष्य इसका अर्थ नहीं समझते और न इसके कर्तव्य को पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार जो प्रेम हम लोगों की एक बड़ी कल्याणकारी शक्ति है, उसका भी कुछ लोग बहुत बुरा प्रयोग करते हैं। शुद्ध प्रेम वास्तव में सुखदायक है, परन्तु इसके अनुचित उपयोग से मनुष्य भाँति-भाँति के दुःख उठाते हैं। कुछ लोग मौका देखकर किसी धनी के मित्र बन जाते हैं और अपना बुरा उद्देश्य पूर्ण कर वहाँ से चल देते हैं। इन बातों से संसार में अशान्ति फैलती, लोगों का आपस में विश्वास उठ जाता और आनन्द का कहीं नाम भी नहीं रहने पाता है।

प्रेम का उपयोग बुद्धि के साथ साथ होने से 'सोने में सुगन्धि', का फल देता है। जिस कार्य में प्रेम और बुद्धि दोनों लग पड़ते हैं, वह अवश्य सिद्ध होता है। प्रेम हमारे हृदय-सरोवर में आनन्द-रूप कमल खिलाता है और बुद्धि उसपर भौंरे के समान पुष्प-पराग का पान करती है। जहाँ देखो वहीं प्रेम और बुद्धि का सम्मिलित विस्तार है।

५. स्थायी प्रेम की जड़ निष्प्रयोजनता और परोपकार है। हम लोगों को दूसरे की भलाई करनी चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य सदा अपना ही प्रयोजन सिद्ध करने में लगा रहता है वह सच्चा प्रेमी नहीं हो सकता। छली पुरुष दिखलाने के लिये, दूसरों से प्रेम करते हैं, परन्तु कार्य संपन्न होते ही झट दूर हो जाते हैं। इसको प्रेम नहीं कहते, यह तो धोखा है। अतः, ऐसे धोखेबाजों से सदा सावधान रहना चाहिये। सच्चा प्रेम केवल भले और धर्मात्मा पुरुषों से होता है।

६. अतएव, अपने मंगल के लिये, देश को चैतन्य करने के लिये तथा यहाँ की कलाओं की उन्नति के लिये; प्रेम की बड़ी आवश्यकता है। जब हम अपने

भाइयों को प्रेम की दृष्टि से देखेंगे और अनैक्य को दूर कर देंगे तभी हमारा कल्याण होगा; क्योंकि प्रेम ही जाति, देश और समाज का सर्वस्व है।

क्रोध (Anger)

१. क्रोध क्या है? २. क्रोध से हानि। ३. क्रोध के कारण। ४. क्रोध रोकने के उपाय। ५. क्रोध का फल। ७. उपसंहार।

१. अपनी इच्छा के प्रतिकूल कोई कार्य होने पर मन में जो विकृत भाव उत्पन्न होता है उसी का नाम क्रोध है। महात्माओं ने इसे पाप का मूल कहा है। मनुष्य की बुरी आदतों में से यह भी एक है।

२. क्रोध से स्वास्थ्य में बड़ी हानि पहुँचती है। क्रोधी मनुष्य का शरीर दुर्बल, पतला और शुष्क हो जाता है। जब मनुष्य क्रुद्ध हो जाता है तब उसका मुँह तमतमा जाता है, आँखें लाल-लाल हो जाती हैं, साँस शीघ्रता से चलने लगती है और शरीर भी काँपने लगता है। जिसमें सहन-शक्ति नहीं है, वही मनुष्य क्रोध में आपे से बाहर हो जाता है, परन्तु जो धीर-गम्भीर है, जिसके मस्तिष्क में शक्ति और शरीर में बल है वह छोटी-छोटी बातों पर कभी क्रोध नहीं करता। क्रोधी मनुष्य सबको अपना शत्रु बना लेता है और सर्वदा अपनी हानि करता रहता है। सचमुच, क्रोधी स्वभाव का होना बड़े भारी पाप का फल है।

क्रोध एक नशा है। जैसे मद पीकर मनुष्य पागल हो जाता है उसी प्रकार क्रोध में भी मनुष्य पागल हो जाता है। उसकी बुद्धि जाती रहती है, उसे अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझता और बात की बात में अनर्थ कर डालता है। अनर्थ करने के पीछे जब क्रोध उतर जाता है तब अपने किये पर उसे पछताना पड़ता है।

३. जब कोई अपने को दूसरों से बड़ा बुद्धिमान् समझता है तब उसे क्रोध होता है। ऐसा मनुष्य अपनी बातों को अच्छी और दूसरों की बातों को बुरी समझता है। इसलिये जब कोई उसके कथन के विरुद्ध कोई कार्य करता है तब क्रुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी के द्वारा अपनी हानि होती है, तब उसपर लोगों को क्रोध आता है, क्योंकि हानि करनेवाले को वे अपना शत्रु समझने लगते हैं।

४. क्रोध की सबसे अच्छी दवा विचार है। जिस समय क्रोध आवे उस

समय थोड़ी देरके लिये चुप हो जाना चाहिये। यदि हो सके तो वहाँ से अलग होकर विचार करने लग जाय और थोड़ा-सा ठंढा पानी पी ले। जहाँ तक बने क्रोध को पहले ही से रोकने का यत्न करे, कभी प्रकट न होने दे। यदि एक बार क्रोध प्रकट हुआ तो फिर उसे रोकना कठिन है। यदि किसी का अभ्यास ही क्रोध का पड़ गया हो तो वह रात को सोने के पहले थोड़ी देर के लिये उस पर विचार कर ले और भगवान से विनय करे कि वह अभ्यास छूट जाय। यदि किसीसे कुछ अपराध हो जाय तो उसपर क्रोध न करके नरमी के साथ उसका दोष उसे समझा दे। इस समझाने का प्रभाव उसपर अधिक होगा; यहाँ तक कि वह सुधर ही जायगा। खूब याद रहे कि बिना सोचे-समझे कभी क्रोध न करना चाहिये।

५. मनुष्य को थोड़ा-बहुत क्रोध करना स्वाभाविक है, परन्तु जहाँ तक क्रोध कम आवे वही अच्छा है। सब ही उचित कारण से क्रुद्ध हो जाते हैं, परन्तु सदा क्रोध में जलते रहना अच्छा नहीं। कोई-कोई बिना कारण क्रुद्ध होकर अपना बल दूसरों पर दिखाना चाहते हैं, यह बात बहुत ही बुरी है। हाँ, मनुष्य को इतना सीधा भी नहीं होना चाहिये जिससे कोई कुछ न समझे। इसलिये जिसके हाथ में कुछ अधिकार है उसे विचारपूर्वक अपनी बुद्धि से काम लेने की बड़ी आवश्यकता है।

६ संसार में जो सदैव हँसी-खुशी से रहता है, सुख का जीवन उसी का है और वेही संसार में सुख भोग सकते है। और जो ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध से जला करते हैं वे अपने दुस्स्वभाव का आप ही दण्ड भोगा करते हैं।

उद्यम (Industry)

१. उद्यम क्या है? २. आवश्यकता। ३. उद्यमी पुरुष। ४. निरुद्यमी पुरुष। ५. उद्यम में लाभ। ६. प्रकृति और उद्यम। ७. उपसंहार।

१ इन्द्रियों के द्वारा किसी पदार्थ की प्राप्ति से लिये जो प्रयत्न किया जाता है उसीको उद्यम कहते हैं।

२. ईश्वर ने प्राणियों के लिये इस संसार में सभी पदार्थ दे रक्खे हैं, परन्तु मनुष्य के लिये और प्रबन्ध है और अन्य जीवों के लिये और ही। जानवरों के लिये और ही वस्त्र हैं, चारा ही भोजन है और जंगल ही घर है; परन्तु मनुष्य को प्रत्येक वस्तु के लिए उद्यम करना पड़ता है। यदि वह घर न

बनावे तो कहाँ रहे; खेती न करे तो क्या खाय और वस्त्र न बुने तो क्या पहने? इससे स्पष्ट विदित होता है कि इस पृथ्वी पर मनुष्य के लिये उद्यम की बड़ी आवश्यकता है।

३. मैं उद्यम को बहुत प्यार करता हूँ, क्योंकि मुझे फिक्र है कि उद्यम नहीं करूँगा तो कहाँ से खाऊँगा। सबेरे उठकर नित्य-कर्म समाप्त किया और लगा उद्यम करने। इसी धुन में १२ बज गये। भोजन आया, आनन्द से खा रहा हूँ। वाह! खूब ही स्वादिष्ट है। ठीक है, भूख में जो मिला है वही अमृत है। फिर कार्य करने लग गया। जो खाया था, पच गया, उससे लहू बना और शरीर पुष्ट हुआ। सन्ध्या हुई। दिन भर काम करते करते थक गया हूँ। चारपाई पर जाते ही नींद आ गई! करवट फेरते ही भोर हो गया। वाह! कैसा आनन्द है। दण्ड पेलता हूँ और मौज करता हूँ। न दवा की आवश्यकता, न बीमारी की चिन्ता।

४. अच्छा, अब भारत के धनी पुरुषों की अवस्था देखिये। ये लोग बिना हाथ-पाँव डुलाये दाल-रोटी खा सकते हैं। इसलिये, इन्होंने यही ठान लिया है कि हम कुछ नहीं करेंगे। मुँह पर यदि मक्खियाँ भी बैठ जायें तो नहीं उड़ावेंगे। बस, आठ नौ बजे पलँग पर से उतरे। इधर-उधर डोलकर गपाष्टक किया। फिर अच्छे से अच्छा भोजन निगला और गद्दी पर जा डटे। हाय! साँझ होती ही नहीं, दिन नहीं हुआ, शैतान की आँत हो गयी। किसी तरह पड़े-पड़े साँझ हो चली। यदि यार दोस्त आ गये तो ताश हो शतरंज में जी बहला। फिर जा डटे बग्गी पर। बग्गी पर से उतर कर फिर आये गद्दीपर। रात हुई, भोजन किया और लगे नींद की बाट जोहने। हाय नींद आती ही नहीं। भला, नींद कैसे आवे? दिन सोना, रात सोना। किसी तरह पलकें भी लगी तो सपना ही देखते हैं। तिसपर भी शिकायत यह कि भोजन पचता ही नहीं। लगे पाचक और दवाओं की सहायता लेने भला, एक दो दिनों की बात रहे तब न दवा काम करे। बेचारी दवाएँ थक जाती हैं। भला ऐसे रईसों को आनन्द कहाँ? रात-दिन रोगी बने रहते हैं और चिन्ता माथे चढ़ जाती है। समझा आपने कि इसका क्या कारण है! केवल यही न कि उद्यम से भागना!

५. शरीर से, वचन से या मन से हम लोग कोई कार्य सदा करते ही रहते

हैं। जो आलसी है वह भी मन में कुछ-न-कुछ विचारता ही रहता है। "खाली मन पिशाच का कारखाना।" यदि हमारे पास करने के लिये कोई अच्छा कार्य न हो तो शैतान हमें काम दे देगा। हम बुरे कामों को करने लग जायँगे और हमारे मन में बुरे-बुरे भाव उत्पन्न होने लगेंगे। इसलिए यदि हम इन बुराइयों से बचना चाहते हों तो सदा एक-न-एक अच्छा कार्य अपने हाथ में रखना चाहिये। इससे हम सदैव सदाचारी और शीलवान् बने रहेंगे, नहीं तो शतरंज हम ही खेलेंगे, ताश पर हमारा ही मन जायगा। इतना ही नहीं न मालूम हम कौन-कौन से बुरे कार्य न कर डालें!

रोज काम में आनेवाले ताले की ताली में मुर्चा नहीं लगता, सदा चमकती रहता है। बस, यही हालत शरीर की है। यदि हम काम न लेंगे तो बेकार हो जायगा। भगवान् ने हमें यह देह इसलिये नहीं दी है कि इसे कोतल के घोड़े की तरह गद्दी पर डाले रक्खें। यदि ऐसा करेंगे, इससे परिश्रम न लेंगे तो अवश्य यह शरीर हमसे छीन लिया जायगा। काम न करने से शरीर गड़बड़ा जाता है और रोग गले पड़ जाते हैं, जिसमें अकाल-मृत्यु भी हो जाती है। शारीरिक परिश्रम से शरीर का स्वास्थ्य ठीक रहता है और मानसिक श्रम से मन को शान्ति मिलती है। सारांश यह कि हम नित्य उद्यम करते रहें, एक मिनट भी व्यर्थ न जाने दें। इससे हमारे जीवन में सफलता मिलेगी और सारे दुःख कट जायँगे। उद्यम से एक छोटा मनुष्य भी बड़ा हो जाता है और सारे संसार की दृष्टि उसपर पड़ जाती है।

जितने नामी पुरुष इस संसार में हो गये हैं, वे समय को सदुपयोग में लाकर सदा उद्यम में रत रहते थे, इसी से उनके जीवन बहुत बढ़े जान पड़ते हैं। काहिलों ने संसार में कुछ भी नहीं किया, इसलिये उनके जीवन का कुछ भी पता नहीं लगता है। अब यह बात सिद्ध हो गई कि समय का अंदाज भी उद्यम ही से होता है। अतः, यदि अपना जीवन बड़ा बनाना है तो हमें सदा उद्यम में लगा रहना चाहिये।

६. उद्यम के लिये प्रकृति के प्रतिकूल नहीं चलना चाहिये। नदी की धारा छोटे नियम को तोड़ने से उसका बदला बहुत दिनों तक वह लेती रहती है। बहुत से मनुष्य विचारते हैं कि हम जल्दी-जल्दी कार्य करके अथवा निरंतर

काम में लगे रहकर अपना समय बचावेंगे, परन्तु यह एक भारी भूल है। ऐसा करने से कार्य और स्वास्थ्य दोनों बिगड़ जाते हैं। उचित विश्राम लेते हुए धीरे-धीरे दृढ़ता और नियमपूर्वक उद्यम करने से ही सफलता प्राप्त होती है।

७. चाहे हमारा जन्म कैसे ही धनाढ्य और प्रतिष्ठित कुल में क्यों न हुआ हो, चाहे हम बड़े ही बुद्धिमान क्यों न हों, चाहे हमारे कैसे ही हितकारी मित्र और कितने ही ऐश्वर्यवान्, शक्तिवान् सहायक क्यों न हों, परन्तु सदाचार और उद्यम के बिना हमारी उन्नति प्रकृति की दृष्टि में कभी भी नहीं हो सकती। कहा भी है—

"उद्यमेन हि सिद्धयन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥"

नम्रता (Modesty.)

१. परिचय। २. लाभ। ३. नम्रता प्राप्त करना। ४. विनयी पुरुष। ५. नम्रता की मात्रा। ६. उपसंहार।

नानक नन्हें हो रहो, जैसी नन्हीं दूब।
घासपात सब सूखिगो, दूब खूब की खूब॥

१. नम्रता वह गुण है जिसकी कृपा से मनुष्य में सरलता आती और वह संसार का प्यारा बनता है। नम्रता में हठ, अभिमान, दंभ और किसी प्रकार की दिखावट की कुछ भी गंध नहीं। नम्रता हमारे मानस का एक उत्तम भूषण है और अपनी योग्यता के यथार्थ ज्ञान की कसौटी है।

२. नम्रता के बिना हमारा चरित्र और कुछ नहीं, एक निःसार पदार्थ है। जिसमें नम्रता नहीं, जो अपनी प्रशंसा—अपनी शेखी—चारों ओर हाँकता फिरता है, उस पर संसार हँसता है, वह संसार की दृष्टि में तुच्छ गिना जाता है। जो नम्र है, वह वशीकरण मन्त्र जानता है, वह संसार को अपने वश में कर लेता है, उसके सभी अवगुण इसी नम्रता की कृपा से छिप जाते हैं। नम्रता मनुष्य को और ऊँचा बना देती है।

मान लें कि हमारा अफसर किसी अपराध के कारण हमपर अप्रसन्न है और वह सारी शक्ति से हमारी हानि करने के प्रयत्न में लग गया है। ऐसी अवस्था में हमारे पास वह कौन-सा मन्त्र है जिससे वह फिर हमपर प्रसन्न हो जाय? यदि हम उनसे लड़ाई करें, यदि अपनी सफाई के लिये हम दलीलों

और सबूतों के ढेर पेश करें तो क्या फल पायेंगे ? क्या इन कामों में उसका मन फिरेगा और वह हमें क्षमा करेगा ? हम समझते हैं कि हमारी ऐसी चेष्टाएँ निष्फल होंगी। अब यदि हम नम्रतामन्त्र का प्रयोग करें तो उसकी अप्रसन्नता किरकिरी हो जायगी और फिर हम उसके प्यार बन जायँगे। भला ऐसा कौन निठुर होगा जो हमारी झुकाई गर्दन पर अपनी नंगी तलवार चलाये !

३. नम्रता मनुष्यों में अच्छी संगति और पूरी विद्या से आती है। अच्छी चाल-ढाल; उत्तम आचाराव्यवहार और ऊँचे उद्देश्य और विचार से इसकी पुष्टि होती है। देखिये, जब वृक्ष फूलते-फलते हैं तब उनकी शाखाएँ झुक जाती हैं। जब बादल जल से पूर्ण होकर बरसने लगता है तब वह नीचे उतर आता है। समुद्र में मोती नीचे रहते हैं और तृण ऊपर उतर आता है। इसी प्रकार जो सचमुच विद्वान्, गुणी और सज्जन हैं वे सदा नम्र बने रहते हैं, उनमें छिछोरपन कुछ भी नहीं झलकता। वे अपने गुण इधर-उधर गाते नहीं फिरते, परन्तु से आप से आप बिजली की रोशनी की तरह फूट-फूट कर बाहर निकल पड़ते हैं। अतः, हमलोगों को उचित है कि सदा नम्र बनकर समाज के कल्याण में लग पड़ें और किसी प्रकार का द्वेषभाव मन में न रक्खें। जब हम नम्र बनेंगे तब दूसरे भी हमारे आत्मसम्मान में कमी न होने देंगे।

४. इस संसार में जितने बड़े-बड़े पुरुष हो गये हैं उनमें नम्रता का गुण कूट-कूटकर भरा हुआ था। क्या कारण था कि श्रीकृष्ण भगवान् ने युधिष्ठिर की यज्ञ सभा में बड़े कार्यों को छोड़ केवल आगत ब्राह्मणों के पैर धोने का काम स्वीकार किया। आप द्वारका के राजा होकर विदुर के घर रूखा-सूखा साग खाने गये थे, क्यों ? आपने अर्जुन के रथ के सारथी का काम किया, क्यों ? यही न कि नम्रता के कारण ? तब हमलोग क्यों अकड़कर चलते हैं ? यह अभिमान नहीं तो और क्या ? महात्मा न्यूटन को सभी जानते हैं, वे बड़े भारी गणितज्ञ हो गये हैं। इनका यह वाक्य—"हमारे सामने ज्ञान का यह बहुत ही बड़ा सीमा-रहित सागर फैला हुआ है और हम किनारे पर केवल छोटे पत्थर के टुकड़े चुन रहे हैं"—कितनी नम्रता से भरा हुआ है। इन महापुरुषों से हमें नम्रता की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

५. उपर्युक्त कथन से यह तात्पर्य नहीं कि व्यर्थ दूसरों की झूठी बातों पर भी हाँ में हाँ मिलाई जाय। अवश्य ही झूठी बातों का खण्डन और सच्ची बातों का प्रतिपादन युक्ति के साथ हों। परन्तु पहले, कहनेवाले की बातों का यथार्थ तत्त्व समझ लें और उसकी पदवी पर विचार कर लें। यहाँ तक ही विनयी बनना चाहिये जिसमें प्रतिष्ठा भंग न हो, परन्तु अपने मुँह से अपना महत्व स्थापित करना, मियाँ मिट्ठू बनना और अधमता प्रकट करता है।

६. दुख के साथ लिखना पड़ता है कि अँगरेजी पढ़े-लिखे युवकों में नम्रता नाममात्र की पायी जाती है। वे घमण्ड, दम्भ और बाहरी दिखावट के वशीभूत दीख पड़ते हैं और अपने पूर्वजों को बहुत ही नीच समझते हैं। हम आशा करते हैं कि वे—"यदि हम अपने पिता को मूर्ख और अपने को बुद्धिमान समझते हैं तो हमारे पुत्र भी हमको इसी प्रकार समझेंगे।" इस वाक्य के अभिप्राय पर ध्यान देकर अपने आग्रह को छोड़ देंगे। "यथा नवहिं बुध विद्या पाये।"

व्यापार (Trabe)

१. आरम्भ। २. व्यापारी के गुण। ३. लाभ। ४. हमारे व्यापार की उन्नति कैसे हो सकती है? ५. उपसंहार।

१. खरीदने और बेचने के धंधे को अर्थात् एक वस्तु किसी को देकर उससे दूसरी वस्तु लेने को व्यापार कहते हैं। व्यापार शब्द का अर्थ बहुत ही सरल और अत्यन्त तुच्छ जान पड़ता है, किन्तु वह बड़ा ही व्यापक, अत्यन्त गहन और महत्व से परिपूर्ण है। राजकीय विषयों में सार्वभौम सत्ता का जो महत्व है वही महत्व काम-धन्धों में व्यापार का है। सार्वभौम सत्ता की भाँति व्यापार भी सर्व-व्यापक और गहन है।

२. सार्वभौम सत्ता के चलाने में जैसे राजकार्य की निपुणता, गणनकौशल (हिसाबी-चतुराई), लोकव्यवहारज्ञता, तीक्ष्ण-बुद्धि, दूरदर्शिता आदि गुणों की आवश्यकता है, वैसे ही व्यापार में भी है। व्यापार में तो इनका पद-पद पर काम पड़ता है। ये सारे गुण एक व्यक्ति में न हों तो भी राजकार्य चल सकता है। न्यारे-न्यारे काम के लिये उस-उस काम के जाननेवाले मुख्य-मुख्य पुरुष रखकर राजकार्य चलाया जा सकता है, परन्तु व्यापार में यह बात नहीं है। व्यापारी में इन सब गुणों का एकत्र संग्रह होना चाहिये। लोगों की रुचि कैसी है; देश में

कैसे माल की अधिक खपत होती है, देश-विदेश का किस प्रकार का माल किस जगह पर खप जायगा; इत्यादि समस्त बातों की पूरी-पूरी जानकारी व्यापारी को होनी चाहिये। कौन-सी वस्तु कहाँ पर कितनी पैदा होती है, यह जानना व्यापारी का काम है। इस बात को परख लेने का कार्य भी व्यापारी का ही है कि किस किसके पास, कहाँ-कहाँ पर, कितनी-कितनी सम्पत्ति है और देश कितना धनवान् है। जैसे मदारी बीन बजाकर सर्प को अपनी ओर खींच लेता है और उसे मनमाने तौर पर नचाता है, वैसे ही व्यापारी को ऐसी बाँसुरी बजाना याद होना चाहिये कि संसार का प्राणों से भी बढ़कर प्यारा धन खजानों से निकल-निकल कर उसके पास आ जावे और वह उसे इधर-उधर नचाते हुए काम में ला सके। सारांश यह है कि व्यापारी में जिन-जिन मुख्य गुणों का पूर्ण समावेश होना चाहिये, वे ये हैं—

उद्योग, उत्साह, पक्का विचार, कार्यतत्परता, धन्धे का ज्ञान, मनुष्य की परख, पूरी जानकारी, बोलने की चतुराई और स्वावलम्बन।

३. 'लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये'—वाणिज्य में लक्ष्मी वास करती है। सचमुच यह उक्ति बड़े महत्व की है। जो व्यापारी है उसी का घर सम्पत्ति से परिपूर्ण है। व्यापार के द्वारा ही अँगरेज जाति ने भारत के अधीश्वर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था। व्यापार के कारण ही कालीघाट जैसा क्षुद्र ग्राम एक बड़ा सम्पत्तिशाली नगर बन गया है और उसका कलकत्ता नाम पड़ा है। नगरों की पूर्ण उन्नति, परगनों का वैभव, देश की समृद्धि, प्रजा का आनन्द-विकास, निर्धनों की रोजी और सब प्रकार के उद्योग व्यापार से ही उत्पन्न होते हैं।

व्यापार ही अपने पैरों पर खड़ा होने का अर्थात् स्वावलम्बन का गुण मनुष्य में कूट-कूटकर भरता है। दूसरे के बन्धन में रहना और अपने विचार के प्रतिकूल उसी की आज्ञा से सब कार्य सम्पादन करना, मनुष्य क्या पशु-पक्षी भी नहीं चाहते। व्यापारियों को जो स्वतन्त्रता रहती है, वह दूसरों के मुँह ताकनेवाले नौकरों और गुलामों को नहीं प्राप्त हो सकती।

कल-कारखाने और कला-कौशल की वृद्धि करनेवाला भी व्यापार ही है। जब कारीगर लोगों की बनाई हुई वस्तुएँ दूसरे देशों में जाकर प्रतिष्ठा के साथ भरपूर खपती हैं, तब उनका साहस बढ़ जाता है और नये-नये ढंग सोचकर अच्छे से अच्छा माल प्रस्तुत करने में लग पड़ता है। कारीगरों को

स्पर्धा करने का सुयोग भी व्यापार द्वारा प्राप्त होता है। जब भिन्न-भिन्न स्थानों की बनी हुई एक प्रकार की वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती है तब उन सबों के गुण और अवगुण ज्ञात हो जाते हैं और अच्छी से अच्छी वस्तुएं तैयार करने का प्रयत्न होने लगता है।

व्यापार ने मनुष्य-जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है। जो लोग कच्चा मास खाकर और वल्कल पहनकर खोह में रहते हुए अपना जीवन व्यतीत करते थे, इस व्यापार के प्रताप ही से वे सभ्यता धारण कर धनशाली एवं क्षमताशाली बन जाते हैं। व्यापार में देशाटन करना होता है, जिससे भिन्न-भिन्न देशों की रीति, व्यवहार और धर्म-कर्म का पता लगता है। मनुष्य की बुद्धि परिपक्व होकर उसमें सहनशीलता पैदा करती है और कूप-मंडूकता जाती रहती है। वास्तव में सभ्यता फैलानेवाला व्यापार ही है।

व्यापारी कभी निठाला नहीं बैठ सकता, जिससे बुरी-बुरी वासनाएँ उसके मन में नहीं आने पातीं। उसे परिश्रम करने का अभ्यास पड़ जाता है तथा भिन्न-भिन्न देशों में चक्कर लगाना पड़ता है जिससे वह सदा नीरोग और आनन्दित रहा करता है।

व्यापार से देश की बड़ी भलाई होती है। जब अकाल पड़ता है तब व्यापारी लोग ही अन्य देशों से अन्न लाकर देशवालों के प्राण बचाते हैं। व्यापार ही से घर बैठे हम हजारों मील पर की वस्तुएँ प्राप्त कर लेते हैं। काश्मीरी दुशाले, काबुल के मेवे, ढाके की मलमल, धारीवाल के कपड़े और दक्षिण के नारियल हमें व्यापार ही के कारण मिल रहे हैं। लोगों की आवश्यकता को पूर्ण करना और रसिकों के मनोरथ सिद्ध करने की व्यवस्था करना व्यापार ही का काम है।

अतुल सत्ता, असंख्य सैन्य और बड़ी भारी शक्ति के बल से भी जिस काम को सार्वभौम राजा नहीं कर सकता, उस काम को एक व्यापारी अपनी हिम्मत, कल्पना-शक्ति और योजना की सहायता से बात ही में कर डालता है।

४. प्रत्येक मनुष्य को अपने देश के वाणिज्य की उन्नति करने में सहायता करना एक बड़ा भारी कर्तव्य है। प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु खरीदने के समय भी यह सोचना चाहिये कि इससे मेरे देश को क्या लाभ है और क्या हानि। अन्य उन्नत देशों में इसी नीति द्वारा और-और देशों के माल रोकने

को बड़ी चेष्टा की गई है और अभी भी की जा रही है। कला-कौशल की उन्नति तभी होती है जब देशवासी अपने देश की वस्तुओं का मान करते हैं। देशी वस्तुओं को व्यवहार में न लाने के कारण ही इस देश की बची-खुची कारीगरी भी नष्ट होती जा रही है। प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी व्यक्ति दूसरे देशों में रहकर भी अपने ही देश की वस्तुएँ अधिकतर अपने व्यवहार में लाता है। जो यही समझते हैं कि अपने देश की वस्तुएँ बर्तने से वहाँ की सरकार नाराज होगी वे बड़ी ही भूल में हैं।

देश का कच्चा माल विदेश जाकर देश के कारीगरों का उद्योग नष्ट-भ्रष्ट न करने पावे—कच्चे माल से पक्का माल बनाने का धंधा नष्ट न हो जावे, इसके लिये पूरी चेष्टा होनी चाहिये। हम ४) रुपये खेत में लगाकर ५ सेर रूई पैदा करते हैं और अन्य देशवालों के हाथ यह कच्चा माल ५) रुपये को बेच डालते हैं। वे इसे अपने देश में ले जाकर इसकी मलमल बनाकर लाते हैं और हमीं लोगों के हाथ प्रायः ८०) रुपये को बेच जाते हैं जिससे हमलोग अपने देश के ७५) रुपये उन लोगों को दे डालते हैं और उलटे अपनी कारीगरी भी भूल जाते हैं। यही व्यापार-तत्त्व है, जिसे अन्य देशवाले सीख रहे हैं और अपने देश को लक्ष्मी का भंडार बना रहे हैं।

५. हमारे देश के युवकों को चाहिये कि वे विद्या पढ़कर व्यापार में लग पड़ें और अपने देश के कला-कौशल को नवजीवन प्रदान करें। यह ध्यान देने योग्य है।

"उत्तम खेती, मध्यम बान (व्यापार)।
निषिद्ध चाकरी भीख निदान॥"

मितव्ययिता (Thrift)

१. प्रारम्भ। २. लोभ। ३. मितव्ययी बनने के उपाय। ४. फजूलखर्च। ५. कंजूसी।

१. हमलोग 'किफायत' शब्द से अधिक परिचित हैं। मितव्ययिता का अर्थ और कुछ नहीं, बस यही किफायत समझिये। अपनी आय से कम व्यय करना ही मितव्ययिता है।

२. मितव्ययिता ही धनाढ्यता है। मनुष्य अधिक आय से धनी नहीं हो सकता, परन्तु जो कुछ वह कमाता है उसे यदि मितव्ययिता से खर्च करे तो वह धनाढ्य बन सकता है। मितव्ययिता पारस पत्थर है, इसके छूने से धन खूब बढ़ता है। काम करना और चींटी की तरह परिश्रम में दत्तचित्त रहना निस्सन्देह उत्तम है, किन्तु इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि मनुष्य सदा मितव्ययिता का ध्यान रक्खे। जो धन कमाना तो जानता है, परन्तु उसकी रक्षा करना नहीं जानता वह जीवन के थकानेवाले श्रम में व्यस्त रहता है और चलते समय कुछ नहीं छोड़ जाता।

मितव्ययिता स्वतन्त्रता की माता है। जो मितव्ययी है वह किसी के अधीन नहीं रहता। जो फजूल खर्च करता है उसे क्षण-क्षण पर ऋण लेना पड़ता है। वह ऋण लेकर दूसरे के अधीन हो जाता है। ऋण मुहब्बत की कैंची है। अँगरेज कर्ज लेनेवालों को गुलामों की हैसियत से मिलाता है। जो अपनी रूखी-सूखी रोटी खाकर पानी-पीता है उसके आनन्द को ऋणी पुरुष कभी नहीं पा सकता।

जितने बड़े-बड़े विद्यालय, कारखाने, औषधालय, अनाथालय, धर्मशालाएँ, पोखरे, कुएँ इत्यादि हमलोग देखते हैं वे सब मितव्ययी पुरुषों ही के बनाये हुए हैं। बिना मितव्ययी बने न कोई दान-पुण्य कर सकता है और न उदारता तथा सहानुभूति का सच्चा परिचय दे सकता है और न अपने दुर्भिक्ष पीड़ित भाइयों की सहायता कर सकता है।

अकस्मात् खर्च का आ पड़ना, उद्यम का छूट जाना, बीमारी का आ जाना और मर जाना इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं जो मनुष्य के सिर सदा मँडराया करती हैं। विवाह-आदी अटल है, मेहमानों का आना बन्द हो ही नहीं सकता, सम्भव है कि अकाल पड़ जाय और अन्न में दूना-तिगुना खर्च पड़े, यदि वर्षा न हुई तो अनाज नहीं उपजेगा और गाँठ से राज कर देना पड़ेगा। यदि नौकरी करते हैं तो सम्भव है कि कारणवश कुछ दिनों के लिये नौकरी छूट जाय। अब अगर हमारे पास रुपया है तो ठीक, नहीं तो छठी की याद हमी करेंगे। बाल-बच्चों सहित भूखों हमी मरेंगे। बीमार पड़ते ही बिछावन पर पड़े हमीं सड़ते रहेंगे। अगर ऋण कर गये तो सात पीढ़ियों की आँसी ही हमारी ही बँध

जायगी। अतः, हम लोगों को उचित है कि सदा कुछ-न-कुछ पल्ले डालते रहें कि समय पर पछताना न पड़े।

३. जब हम यह जान गये कि बिना मितव्ययी बने संसारयात्रा निर्विघ्न समाप्त नहीं कर सकते तब हमें उसके लिये यत्नशील होना चाहिये। मितव्ययी बनने के कुछ उपदेश नीचे लिखे जाते हैं :—

'जितनी आय हो उससे कम व्यय करे। एक-एक पैसे का ध्यान रक्खे। ऐसा न समझो कि पैसा तुच्छ वस्तु है। यदि हम पैसों की रक्षा करेंगे तो रुपये अपनी फिक्र कर लेंगे इसलिये हमको छोटे-छोटे खर्चों पर भी ध्यान रखना चाहिये। भरे घड़े से यदि एक-एक बूँद पानी चूता रहे तो कुछ ही देर में वह खाली हो जायगा। इसी प्रकार यदि एक-एक पैसा करके तुम्हारी सब आमदनी खर्च हो जाय तो अन्त में सिवा पछताने के और कुछ हाथ नहीं लगेगा।

'उधार कभी कोई वस्तु न खरीदे।' सदा नकद दाम देकर वस्तुएँ खरीदा करे। उधार में अधिक और अनावश्यक वस्तुएँ भी खरीद की जाती हैं। ऋण और उधार में कोई भेद नहीं, दोनों के फल एक ही हैं।

'जिस वस्तु की अधिक आवश्यकता न हो उसे कभी मोल न ले।' बहुत से लोग नीलाम में ऐसी-ऐसी सस्ती चीजें खरीद लेते हैं जिनकी उन्हें कभी आवश्यकता नहीं होती। यह बड़ी भूल है।

'व्यर्थ दिखावट के लिये धन न व्यय करे।' इस देश के माता-पिता अपने बच्चे के विवाह में बहुत-सा धन व्यर्थ खर्च कर देते हैं, परन्तु यदि उन्हें लड़के को पढ़ाने के लिये कहें तो कहते हैं कि हमारे पास धन नहीं, हम गरीब हैं।

'हिसाब रखना मितव्ययी बनने की अक्षरदीपिका है।' अपनी आमदनी और खर्च का ठीक-ठीक हिसाब रक्खे। हिसाब-किताब रखना लोगों को फजूल खर्च करने से बचाता है। मनुष्य यदि किसी काम में व्यर्थ खर्च करे तो हिसाब लिखने पर और सबका जोड़ लगाने पर उसको एक बड़ी रकम के खर्च हो जाने का ध्यान आ जायगा और आगे के लिये वह अवश्य सावधान हो जायगा। जो धनवान् होना चाहे उसके लिये हिसाब-किताब रखना बहुत ही आवश्यक है। जो फजूल खर्च करते हैं उन्हें हिसाब रखते आलस मालूम होता है।

४. जिन्हें उचित शिक्षा नहीं मिलती वे ही फजूल खर्च करते हैं, वे ही बुरे

शौकों में फँसकर व्यर्थ खर्च करते हुए अपने को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं और कंगाल होकर भीख माँगते हैं। अतः अपने बालकों तथा स्त्रियों को इस विषय की उचित शिक्षा देनी चाहिये। छोटे बच्चे को अपने छोटे खजाने का मालिक बनाकर तथा स्त्रियों को घरू प्रबन्ध सौंप कर उन्हें मितव्ययी बनने की शिक्षा देनी चाहिये। हमारे घरों का बहुत-सा आनन्द इसलिये नष्ट हो गया है कि हमारी स्त्रियाँ रुपए-पैसे को खर्च करना नहीं जानतीं। माँ की गोद बच्चों की सच्ची पाठशाला है, इस समय बच्चे बहुत कुछ माँ से सीख लेते हैं यदि माँ मितव्ययी हो तो बच्चे अवश्य मितव्ययी बनेंगे।

५. मितव्ययी का यह अर्थ नहीं कि हम कंजूस-मक्खीचूस बन जायँ। यदि हमारे पास पुष्कल धन हो तो अच्छा पहनें, अच्छा खायँ, किसी उचित खर्च को न रोकें। व्यर्थ करना बुरा है, परन्तु आवश्यक कार्यों में मक्खीचूसी करना उचित नहीं। कहीं ऐसा न हो कि हम प्राप्त करके मिट्टी में गाड़ते जायँ और हमारे माँ-बाप, बाल-बच्चे टुकड़ों के लिये तरसें।

अहंकार (Pride)

१. आरम्भ। २. अहंकारी पुरुष की धारणा। ३. अहंकार से हानि। ४. उपदेश। ५. उपसंहार—आत्मगौरव।

'अकड़कर मत चलो, गिर पड़ोगे'

१. जिससे मनुष्य अपने को बड़ा समझने लगता है, उसी का नाम अभिमान है। कोई मनुष्य गुणी है, कोई धनी है और कोई सुन्दर है। बस, इन बातों में अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा समझना अभिमान हुआ। कोई निर्गुण है या कम गुणी है, वह यदि अपने को सबसे बड़ा गुणी समझने लगे तो यह समझना उसके लिये अहंकार हुआ। अपने को उचित से अधिक समझना अहंकार है।

२. अहंकारी पुरुष की सदा ही यही धारणा रहती है कि मैं सबसे बढ़कर हूँ। दुनिया में डेढ़ अक्ल मेरी और आधी सब लोगों की। वह अपने को सबसे बढ़कर विद्वान् समझता, अपने कर्मों को सबसे उत्तम मानता और अपनी बातों को सबसे बड़ा समझता है! उसको संसार की परवा नहीं रहती। वह अपने से नीचों के साथ बात करने से अपनी मानहानि समझता है जब कि ऊँट पहाड़

तले होकर नहीं निकलता तब तक वह यही समझता है कि मुझसे बड़ा कोई नहीं। इसी प्रकार अहंकारी मनुष्य अपने को सबसे बड़ा समझता है, क्योंकि वह संसार को विचार की दृष्टि से नहीं देखता।

३. अहंकारी पुरुष दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखता है इसलिये दूसरे भी उससे घृणा करने लगते हैं। कोई उसको अपना नहीं समझता, वह सबों की दृष्टि में गिर जाता है। सब कोई इसी घात में लगे रहते हैं कि किस तरह उसका मान-मर्दन करें।

अहंकारी लोगों में बहुत-सी झूठी और बनावटी आदतें पड़ जाती हैं। ये दूसरों को दिखलाने के लिये ऋण लेकर अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते और बन-ठनकर निकला करते हैं। इनकी सभी बातें बढ़ावे की होती हैं, परन्तु कुछ दिन पीछे जब कलई खुल जाती है; इन्हें पछताना और समाज में लज्जित होना पड़ता है।

जब नाश समीप आता है तभी इस दुष्ट अहंकार का आगमन होता है। अहंकारी दूसरों के उपदेश को कुछ नहीं समझता, इसलिये वह आपत्तियों में फँसा रहता है। अहंकारी रावण की जो गति हुई, वह सबको ज्ञात है। क्या आप यह नहीं जानते कि भारतवर्ष अधोगति में पहुँचाने वाला महाभारत क्यों हुआ? अहंकारी दुर्योधन ही के कारण न? उसका श्रीकृष्ण से यह कहना—"सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव"। अर्थात् हे केशव! बिना युद्ध किये पाण्डवों को सूई की नोक बराबर भी भूमि नहीं लौटाऊँगा?" कितना गर्व भरा है? यही कारण है कि भारत के वीरों का नाश होते ही आर्य-जाति एक प्रकार लुप्तप्राय हो गई।

४. काल बड़ा प्रबल है, यह कभी किसी को एक-सा नहीं रहने देता। जो आज राजा है, वह कल भीख माँगता है और कल का भिखमंगा कल राजा हो जाता है। संसार के सभी पदार्थ क्षणकालीन हैं, कोई पदार्थ अनन्तकाल तक नहीं रह सकता। अतः; चार दिनों की चाँदनी में भूलकर जो अहंकार से चूर रहते हैं उनके ऐसा मूर्ख कोई नहीं है।

यदि तुमसे कोई बड़ा काय हो जाय तो उसके लिये भगवान को धन्यवाद दो, जिसने तुम्हें उस कार्य के योग्य बनाया। दूसरे भाइयों को, जो तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकते, कभी नीच न समझो। सम्भव है, कल ईश्वर की कृपा से वे तुमसे

भी बड़े हो जायँ। थोड़ी-सी विद्या पाकर या थोड़ा-सा नाम करके अपने कार्यों को इधर-उधर मत कहते फिरो। बुद्धिमान ऐसे लोगों को मूर्ख समझते हैं और मान भी नहीं करते। खूब याद रक्खो, परमेश्वर का एक नाम अभिमानभंजन भी है।

५. अहंकार तो सर्वथा त्याज्य है और अभिमान भी छोड़ने ही योग्य है, परन्तु अपने को एकदम नीचा गिरा देना भी उचित नहीं। अपनी मानमर्यादा के लिए आत्म-गौरव को कभी नहीं भूलना चाहिये। जिसमें आत्म-गौरव नहीं, उसका न तो आचार-व्यवहार ठीक रह सकता है और न वह किसी उत्तम कार्य को कर सकता है। अपनी इज्जत आपही करने से होती है। अतः, मनुष्य को उचित है कि वह 'अधजल गगरी छलकत जाय' की कहावत को चरितार्थ न करे और सदा अपनी स्थिति के अनुसार कार्य करते हुए आत्मगौरव को न भूले।

समय (Time)

१. आरम्भ। २. वर्त्तमान समय की (आज का दिन)। ३. समय का सदुपयोग। ४. समय बिताने के नियम। ५. एक मिनट भी अमूल्य है। ६. घड़ी। ७. उपसंहार।

'का हानि ? समयच्युतिः।'

[बड़ी हानि क्या है ? समय का चूक जाना]

१. समय परिवर्तनशील है। इसके अदलने-बदलने में कुछ नहीं लगती। दिन निकलने पर प्रभात होता है, फिर देखते ही देखते संध्या हो जाती है। यह अनन्त है, कहाँ से उत्पन्न होकर कहाँ लय होता है, इसका कुछ ठिकाना नहीं। न यह ओर रखता है न छोर। समय बहुत ही शीघ्र निकल जानेवाला है। इसके निकल जाने में कुछ भी विलम्ब नहीं लगता। यह रेलगाड़ी से भी अधिक दौड़नेवाला है। चलती हुई रेलगाड़ी तो स्पष्ट दीख पड़ती है परन्तु जाता हुआ समय नजर नहीं आता। इसकी आहट तक सुनाई नहीं पड़ती और न परछाईं ही नजर आती है। रेलगाड़ी रोकने से रुक जाती है, परन्तु समय की प्रबल गति को रोकनेवाला इस सृष्टि में कोई उत्पन्न नहीं हुआ। समय बड़ा अमूल्य है, द्रव्य से इसकी तुलना नहीं कर सकते। एक पल बढ़ाने के लिये यदि कोई संसार भर की सम्पत्ति लुटा दे तो भी यह नहीं प्राप्त हो सकता। यह सदैव है, परन्तु इसके भूत और भविष्य असीम और वर्त्तमान अत्यन्त ही सूक्ष्म हैं।

सत्यवादी दशरथ और युधिष्ठिर, दाता कर्ण, परोपकारी शिवि, दधीचि, दिलीप, रघु और अज, बालब्रह्मचारी भीष्म पितामह, प्रजावत्सल राम, भ्रातृस्नेही भरत और लक्ष्मण तथा अच्युत महात्मा कृष्णचन्द्र—सबके सब भूतकाल के अक्षय भण्डार में ऐसे विलीन हो गये कि उनका कोई पता नहीं। केवल उनके गुण और कीर्ति पर काल की दाल न अभी तक गली है और न भविष्य में गलेगी।

२. यदि हम चाहते हों कि हमारी कीर्ति पर भी भविष्य की दाल न गले तो जो कुछ कार्य हमें करने हैं, यदि कर सकें तो उन्हें आज ही कर डालें, कल के लिये नहीं छोड़ें। कौन जानता है कि कल क्या होवे? आज का दिन मनुष्य का एक छोटा जीवन है। जागकर मनुष्य जन्म लेता है। वह प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल को बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था के समान व्यतीत करता है। रात को गाढ़ी निद्रा से सोना ही मनुष्य के इस छोटे जीवन (आज) का अन्त है। ऐसे ही छोटे-छोटे जीवनों से तुम्हारा कुछ वर्ष का जीवन बना हुआ है। इससे आज का दिन वृथा खोना पाप है। आज का दिन हमारे काम में हमारी सारी शक्ति, सारी सजीवता और सारा अनुभव मांगता है। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अपनी सारी शक्ति से काम में लग जाना चाहिये। आनेवाले कल तथा जाने वाले कल की परवाह हम न करें। यदि आज हम सावधानी से रहेंगे तो आनेवाला कल मजे में कटेगा।

३. समय को अच्छी तरह व्यय करने ही पर मानव-जीवन की सफलता निर्भर है। जिसने अपने जीवन का एक पल भी व्यर्थ नहीं खोया, वही भाग्यवान है। जिसने बाल्यावस्था में विद्या नहीं पढ़ी वह जवानी में क्या करेगा और जिसने युवावस्था से गृहकार्य को सँवारते हुए धर्म नहीं किया वह बुढ़ापे में सिर धुन-धुनकर पछतावेगा।

४. हर काम के लिये एक समय और समय के लिये एक काम निश्चित कर लेना चाहिये। कोई काम बिना निश्चित समय के करना उचित नहीं। समय न मिलने का कारण यह है कि हमलोग नियम से काम नहीं करते। जब चाहें, खा लेते हैं और जब चाहें सो रहते हैं। इधर बातें कीं, उधर गपशप में लगे और समय चुपके से दबे पाँव निकल गया। हम जो दिन गपाष्टक में उड़ा देते हैं, उसी दिन नियमानुसार काम करनेवाली रेलगाड़ी सैकड़ों मील की राह

तय कर लेती है। इसीलिये लोग कहा करते हैं कि समय रबर के समान है। यदि इसको सिकोड़ो तो छोटा हो जाय और फैलाओ तो बड़ा। जो नियमानुसार काम करते हैं वे कभी निठाला नहीं बैठ सकते। जब नियत समय आवेगा उन्हें अपने कार्य सूझ जायँगे। 'खाली मन पिशाच का कारखाना।' यदि हम नियमानुसार काम नहीं करते हैं तो हम काहिल हो जायँगे और बुरी-बुरी बातें सोचा करेंगे।

५. बहुत-से मनुष्य सदा घंटों के बचाने की चेष्टा में रहते हैं, परन्तु मिनटों की कुछ भी परवा नहीं करते। वे यह नहीं समझते कि मिनट का क्या मोल है। खूब समझ रखना चाहिये कि इसी एक मिनट पर हमारे जीवन की सफलता निर्भर है। यदि हम परीक्षा-भवन में नियत समय से एक मिनट पीछे जायँ तो क्या परीक्षा देने पायेंगे? कारणवश हमें आज कलकत्ते जाना है, स्टेशन पहुँचते-पहुँचते यदि गाड़ी निकल जाय तो क्या गति होगी? यदि हमारा मित्र इस लोक से विदा होने को है और हम एक मिनट देर करके जायँ तो क्या मित्र से हमारी भेंट होगी? सोचने की बात है कि इसी एक मिनट की देर से हमारी कितनी बड़ी हानि हुई। "का बरखा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।"

६. हमारे भारतवासी घड़ी का महत्व कुछ नहीं समझते। आजकल के * 'जेंटलमैन अपनी जाकिट की पाकिट में वाच लटकाने की बहादुरी दिखलाते हैं। इनलोगों ने घड़ी को एक आभूषण समझ रक्खा है। हमारे जानते घड़ी लटकाने का कोई भूषण ही नहीं, यह तो समयदर्शक यन्त्र है। यह समयानुसार काम करनेवाले पुरुषों को सुशोभित करती तथा दूसरों को मूर्ख बनाती और नकलबाज सिद्ध करती है।

७. हम अभागे अपने आलस्य से सब कुछ खो चुके। यदि अब भी न चेतें तो समझ लें कि हमारी और दुर्दशा होना बाकी है। सभ्य और उन्नतिशील देशों में समय का बड़ा विचार रहता है। उनके सब काम समय पर होते हैं और इसी से बड़े-बड़े काम वे थोड़े समय में कर लेते हैं। समय और नियम

* जेंटिलमैन—भद्र पुरुष। जाकिट—फतुही। पाकिट—जेब। वाच—जेबघड़ी। (ये चारों अँगरेजी शब्द हैं।)

का ध्यान रखकर जो काम करते हैं वे ही पूर्ण उन्नति करते हैं और असाधारण सफलता प्राप्त कर आनन्द से अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करते हैं।

व्यायाम (Physical Exercise)

१. आरम्भ। २. व्यायाम किस लिये करते हैं? ३. व्यायाम करने से लाभ और न करने से हानि। ४. करने योग्य व्यायाम। ५. नियम और उपदेश ६. उपसंहार।

'सब साधन कर मूल सरीरा'

१. साधारणतः अपने घरू कार्य करने के अतिरिक्त शरीर से नियमानुसार परिश्रम के साथ काम लेने को व्यायाम कहते हैं अथवा यों कहिये कि अंग-प्रत्यंग को सम्यक् भाव से चालन करने का नाम व्यायाम है।

२. यह विदित है कि बिना काम किये स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। यदि स्वास्थ्य है तो जीवन सफल है, यदि नहीं तो इस शरीर को एक बोझा ही समझिये। बहुत-से मनुष्यों को अपनी रोटी के लिये सूर्योदय से सूर्यास्त या रात तक कठिन परिश्रम करना पड़ता है। वे फावड़ा चलाते हैं, हल जोतते हैं, पानी पटाते हैं, इसी प्रकार और कठिन परिश्रम के कार्य करते हैं। इसलिये ऐसे लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहता है, परन्तु बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें सदा कुर्सी या गद्दीपर बैठे काम करना पड़ता है। इस प्रकार बैठे रहना उनके स्वास्थ्य को नष्ट कर देता है। अतः, जो सदा बैठे उद्यम किया करते हैं उनके लिये व्यायाम की बड़ी आवश्यकता है।

३ व्यायाम करने से शरीर का भद्दापन दूर हो जाता है। मुख की छवि अधिक होती है और मस्तक चमकने लगता है। व्यायाम करने से फेफड़ों में शुद्ध वायु का अधिक प्रवेश होता है जिससे रक्त निर्मल हो जाता है और पाचन-शक्ति बढ़ जाती है। व्यायाम करने से पसीना अच्छी रीति से निकलता है, जिससे रोमकूपों में मैल नहीं रहने पाती। इनके स्वच्छ रहने से शरीर पर शुद्ध वायु का प्रभाव पड़ता है, इसलिये खुजली, दिनाय इत्यादि चर्मरोग नहीं होने पाते। व्यायाम करनेवालों का शरीर सब प्रकार की आधिव्याधियों से रहित रहता है। शरीर की शिथिलता इत्यादि बुढ़ौती के लक्षण दूर हो जाते हैं। व्यायाम करनेवालों को कच्ची डकार तथा अन्न न पचने की शिकायतें दूर

हो जाती हैं। कच्चा-पक्का सब प्रकार का खाया हुआ भोजन उन्हें पच जाता है। व्यायाम करने से बुद्धि तीव्र और विचार-शक्ति बढ़ जाती है। चित्त प्रसन्न रहता है और इन्द्रियाँ कार्य करने के लिये उद्यत रहती हैं। व्यायाम से वीरता का स्वभाव उत्पन्न होता है जिससे एक-ब-एक शत्रु नहीं चढ़ सकते। यदि चढ़ाई करते भी हैं तो खुद छिप जाते हैं।

व्यायाम न करने से शरीर में आलस्य का वास हो जाता है, बल घट जाता है। शरीर बादी से फूल जाता है और चलने-फिरने, उठने-बैठने में कष्ट होता है। कार्य करना बोझ-सा प्रतीत होता है और मुख सदा मलिन रहता है। व्यायाम से भागने वाले रूपवान भी कुरूप हो जाते हैं। उन्हें कहीं से कूबड़ निकल जाता है, कोई अङ्ग बढ़ जाता है और मांस हिलने लगता है।

४. द्रुतवेग से भ्रमण करना, दौड़ना, दण्ड-बैठक करना, तैरना, घोड़े की सवारी और कुश्ती लड़ना उत्तम व्यायाम है। इनसे सब अंगों पर जोर पड़ता है। बग्घी चढ़कर हवा खाने में केवल बैठना पड़ता है और व्यायाम का लाभ नहीं हो सकता। जो लोग घोड़े पर नियमानुसार सवारी करते हैं उनका शरीर फुर्तीला हो जाता है और टाँगें भी बलिष्ठ हो जाती हैं। मुग्दर से हाथ के पुट्ठे भी मजबूत होते हैं। मुग्दर हल्का होना चाहिये, जिससे झोंके अच्छी तरह लगें।

कबड्डी भी बहुत उत्तम है, इससे उपर्युक्त गुणों के सिवा 'एक दूसरे का सहायक होना, मिलकर काम करना, समय आते ही अपने काम का निश्चय कर लेना', इत्यादि मानसिक और सामाजिक शक्तियाँ भी बढ़ती हैं।

क्रिकेट-फुटबाल, टेनिस, डम्बल इत्यादि विदेशी खेल भी यहाँ जोर पकड़ रहे हैं, परन्तु ये खेल खर्चीले हैं। इनमें भी उपर्युक्त गुण वर्त्तमान हैं। शरीर के मुख्य-मुख्य अंगों की पुष्टि के लिये डम्बल उपयोगी है, पर इस कसरत को नियमानुसार जितना हो सके धीरे-धीरे करना चाहिये।

५. स्वास्थ्य के लिये बुद्धिमान् पुरुषों को उचित है कि वे अपनी आयु और बल के अनुसार नियम से सदा व्यायाम किया करें। जब मस्तक, आँख, गर्दन और काँख आदि से पसीना आने लगे तब व्यायाम करना छोड़ दे। संध्या और प्रातःकाल व्यायाम करना अत्यन्त उपयोगी है। व्यायाम खुले

स्थान और स्वच्छ वायु में करने से स्वास्थ्य को अधिक लाभ होता है। बहुत से लोग घर के एक कोने में व्यायाम करते हैं, जहाँ शुद्ध वायु का प्रवेश न होने से उनका व्यायाम करना और न करना दोनों ही बराबर हो जाते हैं।

रक्त, पित्त, क्षय, खाँसी, आदि रोगों से पीड़ित मनुष्यों को तथा भोजन के अनन्तर तुरत ही, कदापि व्यायाम नहीं करना चाहिये। क्योंकि, व्यायाम शक्त्यनुसार करने से जैसा लाभकारी है, बढ़ जाने पर उतना ही हानिकारक भी है।

व्यायाम करने का अभ्यास बचपन ही से लगाना चाहिये। जो लोग यह समझते हैं कि हमारे बच्चे व्यायाम करने से बीमार पड़ जायँगे, वे भारी भूल करते हैं। जो आलसी हैं वे ही बीमार पड़ते हैं, नियमानुसार व्यायाम करनेवाले कभी भी बीमार नहीं पड़ते। जो बचपन से वृद्धावस्था तक व्यायाम करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वास्तव में वे ही स्वास्थ्य का सुख उठाते हैं।

६. प्राचीन काल में व्यायाम करना भारतवर्ष के पुरुषों और स्त्रियों का प्रधान कर्त्तव्य समझा जाता था, लेकिन अब हाय! हमें शोक के साथ लिखना पड़ता है कि भारत के प्रायः बहुत से लोग अपना यह परम कर्त्तव्य दिनों दिन भूलते जाते हैं। स्त्रियाँ तो यहाँ तक समझती हैं कि व्यायाम करना हमारा काम नहीं। यही कारण है कि अधिकतर पुरुष और १०० पीछे ९९ स्त्रियाँ रोगी रहती हैं।

प्यारे भारतवासियों! चेतो। नहीं तो जो भी रही सही तुम्हारी शक्ति है वह भी लुप्त हो जायगी।

"दवा कोई वर्जिश से बेहतर नहीं।
यह नुसखा है कम खर्च बालानशीं॥"

स्वास्थ्य (Health)

१. आरम्भ। २. जीवन का सुख केवल नीरोग मनुष्यों के लिये है। ३. स्वास्थ्य से लाभ। ४. स्वास्थ्य रक्षा के उपाय। ५. उपसंहार।

"एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत"

१. शुद्ध शरीर में मन की शुद्ध स्थिति का नाम स्वास्थ्य है। इस प्रकार

विचार करते हुए हम उस मनुष्य को स्वस्थ या नीरोग कह सकते हैं कि जिसके शरीर में कुछ भी कमी नहीं है—शरीर अभङ्ग है, दाँत ठीक हैं, आँख कान दुरुस्त हैं, नाक नहीं बहती, जिसकी त्वचा से प्रस्वेद निकलता है, किन्तु दुर्गन्ध नहीं करता, जिसके पैर गन्दे नहीं हैं, मुँह नहीं सड़ता, हाथ-पैर साधारण तौर पर काम कर सकते हैं, जो विषयासक्त नहीं हैं, न बहुत मोटा है न बहुत दुबला और जिसका मन तथा इन्द्रियाँ सदा अधीन बनी रहती हैं। अतएव ऐसे उत्तम स्वास्थ्य को पाने के लिये प्रयत्न करना प्रत्येक मनुष्य का सबसे प्रधान कर्त्तव्य है।

२. ईश्वर-प्रदत्त आनन्द की सामग्रियों में स्वास्थ्य सबसे बढ़कर है। जीवन का सुख केवल वही पा सकता है जिसका स्वास्थ्य ठीक है। क्या भोजन, क्या वस्त्र, क्या धन, क्या घर—सभी वस्तुएँ नीरोग मनुष्यों को आनन्द देती हैं और बीमार को काँटे के समान चुभती हैं। भला, ज्वर से पीड़ित मनुष्यों को महल क्या सुख पहुँचा सकता है? जो गठिये से पीड़ित है, उसको कपड़ों से क्या लाभ पहुँचेगा? क्या मीठे और स्वादिष्ट लड्डू से ज्वर की अवस्था में कड़वा प्रतीत होने के सिवा और कुछ आनन्द मिलेगा? जो ठण्डी हवा नीरोग को सुखी करती है, वही रोगी के लिये विष का काम कर जाती है। जिसकी पाचनशक्ति जाती रही, उसके लिये उत्तम से उत्तम भोजन भी फीका है। अतएव यह विचारने योग्य है कि यह संसार नीरोग के लिये स्वर्ग और रोगी के लिये नरक के समान है।

३. स्वास्थ्य से हमें क्या आनन्द होता है, ऊपर बतला चुके। इससे और क्या लाभ हैं नीचे दिये हैं—जो नीरोग है वह सांसारिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के कार्यों के सम्पादन करने में भली-भाँति समर्थ हो सकता है। उद्यम के बिना उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़ना महा दुःसाध्य है, परन्तु उद्यम वही कर सकता है जिसे स्वास्थ्य प्राप्त है। अतएव, नीरोग मनुष्य सम्पत्तिशाली हो सकते हैं, विद्योपार्जन कर सकते हैं और संसार में यशस्वी बन सकते हैं। स्वास्थ्य ही के सहारे हम परलोक सुधारने के लिये ईश्वर-भक्ति कर सकते हैं और तीर्थ-व्रत एवं समाज-सेवा करके ईश्वर के प्यारे बन सकते हैं। बिना स्वास्थ्य के मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। रोगी की सारी आशाएँ हृदय में उठकर

लुप्त हो जाती है। याद रखना चाहिये, आज तक स्वास्थ्य के बिना कभी किसीने कोई उत्तम कार्य नहीं किया है।

४. "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंच रचित यह मनुज-शरीरा॥"

यह साढे तीन हाथ का पुतला जिसको हम शरीर कहते हैं, मिट्टी, पानी, तेज (अग्नि), वायु और आकाश इन्हीं पाँचों तत्त्वों से मिलकर बना है। यदि हम इस बात को अच्छी तरह समझ जायँ तो ध्यान में आये बिना न रहेगा कि शरीर को रखने के लिये स्वच्छ मिट्टी (चावल, गेहूँ इत्यादि मिट्टी के भिन्न-भिन्न रूप हैं), स्वच्छ जल, स्वच्छ तेज (प्रकाश), स्वच्छ वायु और खुले आकाश की अत्यन्त आवश्यकता है। इनमें से हमें किसी तत्त्व की अवहेलना न करनी चाहिये। वास्तव में देखा जाय तो इनमें से जिस तत्त्व की हममें जिस परिमाण से कमी होगी उसी परिमाण से रोग हमें आ घेरेंगे। इत्यादि—

(क) हमको ऐसे पदार्थों का भोजन करना चाहिये जिनसे भूख की तृप्ति, तुरन्त बल, देह की धारणा, स्मृति, आयु, ओज, शरीर का सौन्दर्य, वीर्य, स्वत्व और शोभा की वृद्धि हो तथा जो रुचिकर और सुपाच्य हों।

(ख) पीने के लिये जल शुद्ध और स्वच्छ होना चाहिये। उत्तेजना देनेवाले पेय पदार्थ बुरे हैं, इसलिये शराब इत्यादि मद की लत भी कभी नहीं लगाना चाहिये। पानी हमारे प्यास ही को नहीं बुझाता, परन्तु हमारी पाचन-क्रिया में सहायता देता है।

(ग) हम ऐसे स्थान में रहें जहाँ प्रकाश पूर्ण रूप से आता हो। देखिये, सूर्य के प्रकाश ही से पौधे हरे-भरे देख पड़ते हैं। जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं जाता वहाँ के पौधे पीले और सुकुमार हो जाते हैं। मनुष्य भी प्रकृति का एक पौधा ही है, इसलिये प्रकृति चाहती है कि मनुष्य भी हरा-भरा रहे।

(घ) जैसे हम खराब पानी और खराब अन्न ग्रहण करते हुए हिचकिचाते हैं, वैसे ही हमें हवा के सम्बन्ध में भी ध्यान रखना चाहिये। फेफड़ों से निकली हुई हवा और कै दोनों बराबर हैं। इसलिये हमें सदा निर्मल वायु का सेवन करना चाहिये।

(ङ) हम लोगों को उचित है कि सदा खुले आकाश* में रहें। कभी अपने

---

* 'आकाश' की केवल इतनी ही व्याख्या नहीं है। यह विषय बड़ा गम्भीर है। किसी तत्वज्ञानी के सत्संग से यह बात समझ में आवेगी।

को बंद कोठरी में रक्खे। रहने के घरों में भरपूर खिड़कियाँ और द्वार रक्खें। यदि हो सके तो खुले बरांडे, चाँदनी और मैदान में बिना मुँह ढाँपे सोयें। खुले स्थान में सोने से या प्रातःकाल की हवा से सर्दी होगी—ऐसा खयाल कभी नहीं करना चाहिये। जिन्होंने कुटेव से अपने फेफड़ों को बिगाड़ लिया है, उन्हें खुले स्थान में सर्दी हो जाना सम्भव है, परन्तु वैसे मनुष्य को भी ऐसी सर्दी से नहीं डरना चाहिये।

इन पाँचों की पूर्ति के लिये निम्नलिखित बातें अति आवश्यक हैं—

खाली कभी न बैठें, सदा उद्यम में लगे रहें। साँझ-सबेरे उचित रीति से व्यायाम किया करें। रात को ठीक समय पर सो जायँ। ९ या १० बजे से ४ बजे भोर तक सोना स्वास्थ्य के लिये बड़ा उपयोगी है। उदास कभी न रहो, सदा मन प्रसन्न रक्खो। क्रोध करने और बुरे-बुरे अभ्यासों के ग्रहण करने से बहुत से रोग हो जाते हैं। क्रोधी मनुष्य कभी मोटा-ताजा नहीं होगा। सदा औषधियों का सेवन करना भी उचित नहीं। जहाँ तक हो सके भोजन समय पर करें और बिना किसी विशेष रोग के औषधियों का सेवन न करें। दैनिक जितने कर्म हैं सब नियत समय पर किया करें। ब्रह्मचर्य और स्वर्ग में कुछ भी अन्तर न समझें, जो ब्रह्मचर्य नहीं रखता वह कभी स्वास्थ्य नहीं पा सकता। उसके लिये धीरे-धीरे संसार के सारे सुख लुप्त हो जाते हैं।

५. जिसके पास स्वास्थ्य-रूपी अमूल्य रत्न नहीं है वह जीता हुआ ही मुर्दा है। झोपड़ी में मौज से रहनेवाले किसी भी स्वस्थ निर्धन से महल में बीमार पड़ा हुआ राजा किसी प्रकार अच्छा नहीं।

देशाटन (Travel.)—शिक्षा का एक अंग

१. आरम्भ। २. लाभ। ३. देशाटन करने की रीति। ४. आजकल भारतवासी किस प्रकार देशाटन करते हैं? कारण। ५. आचार्यों से विनय। ६. उपसंहार।

"अनुभव का विकास देशाटन से होता है।"

१. देशाटन का अर्थ 'देशों में भ्रमण करना है।' जहाँ जन्म-स्थान है, वहाँ की प्रायः कार्यानुसार सभी बातों का अनुभव मनुष्य को बाल्या-

वस्था ही से प्राप्त होने लगता है। यह अनुभव तभी पूर्ण रूप से विकसित हो सकता है, जब भिन्न-भिन्न देशों के बहुत से मनुष्यों की संगति हो। हमारी जितनी अधिक जान-पहचान होगी, उतनी ही हम इस अनुभव की वृद्धि कर सकेंगे। जान-पहचान पर शुद्ध व्यवहार और उत्तम परिपाटी का बहुत कुछ आधार है। यह तभी हो सकता है, जब लोग देश-भ्रमण करें।

२. देश-भ्रमण करने से बड़े-बड़े लाभ होते हैं। "किस देश की कैसी रीति-नीति है, वहाँ के वासियों पर उस रीति-नीति का कैसा प्रभाव पड़ता है ? किस देश के मनुष्य सुखी हैं और किस देश के दुखी, उनके सुख-दुःख के क्या कारण हैं ? किस देश में कैसा वाणिज्य-व्यापार है ? कहाँ कौन-कौन वस्तुएं अधिकता से उत्पन्न होती हैं और कहाँ उन वस्तुओं का अभाव है ? किस देश में मनुष्यों की सुख-स्वच्छन्दता के लिये कौन-कौन कार्य किये जाते हैं ? किस देश में किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है ? अपने और दूसरे देशों की शिक्षा-प्रणाली में क्या भेद है ? किस प्रकार अपने देश की शिक्षा की अच्छी उन्नति हो सकती है ? अपने देश में जा हानिकारक बातें हैं, वे किस प्रकार दूर हो सकती हैं और दूसरे देशों की लाभदायक रीति-नीति किस प्रकार अपने देश में फैल सकती है ?" इत्यादि बातों का अनुभव देशाटन ही से होता है।

देशाटन करने से भूगोल-विद्या का ज्ञान भली-भाँति होता है, प्रकृति का पूरा पर्यवेक्षण होता है। अन्य देशों के पहाड़, नदियाँ, सड़कें इत्यादि अनेक प्रकार की अच्छी-अच्छी वस्तुएँ देखने में आती हैं, जिनसे हृदय प्रफुल्लित हो जाता है।

देशाटन से स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। जिस प्रकार बन्द तालाब का जल सड़ जाता है उसी प्रकार सदा एक ही स्थान में रहने से मनुष्य का स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है। देशाटन से जलवायु में परिवर्तन होता रहता है, जिसका प्रभाव शरीर पर बहुत ही अच्छा पड़ता है। इसलिये रोगी मनुष्यों को बहुत से वैद्य और डाक्टर देशाटन की राय दिया करते हैं।

देशाटन करने से मनुष्य में सहनशक्ति आती है, जिससे वह बलवान् और धीर बन जाता है। यह देशाटन ही का प्रभाव है कि अँगरेज लोग इतने बलिष्ठ और फुर्तीले दीख पड़ते हैं।

देशाटन से पवित्र स्थानों और तीर्थों के दर्शन होते हैं, जिससे अपना जीवन सुधर जाता है और ईश्वर-सेवा के तत्व समझ में आ जाते हैं।

३. देशभ्रमण करने के लिए जब कोई जाय तो उसे उचित है कि अपने साथ ऐसे मनुष्यों को ले जाय जो उस देश की भाषा से अभिज्ञ हो और जहाँ इससे पूर्व में भी गये हों। जिससे वे यह कहने के लिए समर्थ हों कि उस देश की कौन-कौन वस्तुएँ देखने योग्य हैं। किन पुरुषों से वहाँ जान-पहचान करना उचित है, किन-किन विषयों पर वह देश विकास और संयम का आदर्श प्रदान करता है। क्योंकि बिना इसके भ्रमण करने जाना आँखों में पट्टी बाँधकर जाने के समान है।

देश-भ्रमण में दिनचर्या लिखना बहुत ही आवश्यक है। अधिकांश लोग दिनचर्या लिखना भूल जाते हैं, जिस कारण पीछे पछताना पड़ता है। देश-भ्रमण करनेवाले को उचित है कि वह उस देश का मानचित्र अथवा और कोई ऐसी पुस्तक, जो उस देश का वर्णन करता हो, अपने साथ लेता जाय। एक ही नगर या ग्राम में अधिक दिनों तक ठहरना उचित नहीं है, उतना ही ठहरना चाहिये जितना आवश्यक हो। देश-भ्रमण में स्त्री, भोजन के पदार्थ, स्थान और कटु वचनों से विशेष सावधानी रखनी चाहिये, क्योंकि लड़ाई झगड़े और धर्म नष्ट होने के प्रधान कारण ये ही हैं।

बहुत से लोग देश-भ्रमण के समय बीमार पड़ जाते हैं जिसका कारण यह है कि वे देखादेखी अपने सामर्थ्य से अधिक चलते हैं और खाने-पीने में असावधानी रखते हैं। यदि प्रतिदिन चार-पाँच कोस से अधिक न चलें, दोनों समय रसोई बनाकर खायँ, गरम पानी में नमक देकर पैरों को धोया करें और तेल मलें तथा भरपूर वस्त्र ओढ़ें जिससे जाड़ा न लगने पावे, तो आशा है कि कोई भी बीमार न पड़े। भ्रमण के समय भात से अधिक रोटी खानी चाहिये और खटाई-मिठाई से बचना चाहिये।

४. भारतवर्ष के हजारों स्त्री-पुरुष नाना प्रकार की आपत्तियाँ झेल कर तीर्थयात्रा करते हुए दीख पड़ते हैं। वे प्रतिवर्ष इस यात्रा में करोड़ों रुपये व्यय कर डालते हैं, परन्तु मेरे जानते सिवा भेड़ियाधसान के यह और कुछ नहीं है। इस भेड़ियाधसान से शान्ति कभी नहीं मिल सकती। इसका कारण यह

है कि तीर्थयात्रा में जानेवाले प्रायः सभी को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। वे यह नहीं चाहते कि हम कहाँ, क्यों और किस लिये जा रहे हैं। न उन्हें यात्रा करने की रीति ज्ञात है और न कोई उन्हें राह दिखानेवाला है। तीर्थों के जो आचार्य हैं उनकी दशा कुछ ऐसी विलक्षण हो चली है कि वे यात्रियों को अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ तो कराते नहीं, बल्कि ऐसे कार्य करते हैं कि जिनसे यात्रियों का धर्म बिगड़े और उसका चित्त शान्ति के बदले अशान्ति के झूले पर झूलने लगे।

५. हे मेरे तीर्थों के आचार्यों और पूज्य पण्डितों! अब वादविवाद का समय नहीं है। समाज की इस बिगड़ी दशा को देखिये और प्राचीन आचार्यों ने किस रीति से और किसको तीर्थयात्रा करने का विधान किया है, इसका उपदेश कीजिये। नहीं तो समझ रखिये, इस भेड़िया-धसान से एक दिन तीर्थों का अवश्य लोप हो जायगा और तब आपका चिल्लाना कोई नहीं सुनेगा।

६. घर लौटने पर यात्री को भ्रमण किये हुए स्थानों को एकदम भूल नहीं जाना चाहिये, परन्तु योग्य जान-पहचानवालों के साथ पत्र-व्यवहार करते रहना उचित है। यात्रियों के पहनावे और हाव-भाव में विदेशी चालों की नकल तनिक भी नहीं उतरनी चाहिये। यहीं तक उचित है कि परदेश के दो चार चुने हुए पुष्प अपने यहाँ की नीति पर आरोपित हो जायँ।

मातृभूमि (जन्मभूमि या अपना देश)

१. आरम्भ। २. देशभक्ति क्यों करनी चाहिये? ३. देशभक्ति करने के नियम। ४. उपदेश। ५. उपसंहार।

१. संसार में जितनी भाषाएँ हैं, उनके शब्द-कोषों में सबसे मीठा शब्द कौन है? प्रत्येक भाषा का वही शब्द सबसे मीठा है जिसके लिये हमारी भाषा में 'माता' शब्द है। इसी शब्द से भारत के रोते हुए बच्चे धीरज बाँधते हैं। इसी शब्द के द्वारा युवा भक्ति और निःस्वार्थपरायणता सीखते हैं, यही एक शब्द है जिसके उच्चारण से दुःखों और आपत्तियों में मन को शान्ति मिलती है। माता शब्द में न जाने ईश्वर ने कैसा माधुर्य प्रदान किया है कि यह जिस शब्द में आ मिलता है उसी में एक अपूर्व सरलता, विचित्र माधुर्य तथा हृदय-ग्राही प्रभाव उत्पन्न कर देता है। इसलिये 'मातृभूमि शब्द इतना मीठा है कि उच्चारण करते ही हृदय आनन्द से गद्गद हो जाता है। भारत! भारत!!

नहीं। दुःख में, सुख में, परदेश में मातृभूमि को हम कभी न भूलें। स्मरण रक्खें कि माता के आशीर्वाद तथा शाप—दोनों में बड़ी शक्ति है।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

ईश्वर-भक्ति (Devotion towards God)

१ ईश्वर और उसकी भक्ति का परिचय। २. ईश्वर की सत्ता। ३. ईश्वर की भक्ति क्यों करनी चाहिये? ४. ईश्वर की भक्ति किस प्रकार कर सकते हैं? ५. उपसंहार।

१ जिसने हमको और संसार की सभी वस्तुओं को बनाया है, जो सारे संसार पर शासन करता है, जिसकी आज्ञा बिना संसार का कोई कार्य भी नहीं हो सकता, जिसकी इच्छा-मात्र से ही प्रकृति के सब कार्य नियमित रूप से सम्पादित हो रहे हैं और जो सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, साकार तथा निराकार है—उसी का नाम ईश्वर है। मनसा, वाचा और कर्मणा ईश्वर-सेवा करना और उसकी सृष्टि को सहायता पहुँचाना ही ईश्वर-भक्ति है।

२. बहुत से मनुष्य यह शङ्का करते हैं कि यह संसार आप-से-आप बन गया है। इसका रचनेवाला कोई नहीं है, परन्तु यह समझना उनकी भारी भूल है। हम लोग प्रतिदिन देखते हैं कि सूर्य पूर्व में उदित होता है और पश्चिम में डूबता है। जाड़ा, गर्मी और वर्षा इत्यादि वस्तुएँ समय-समय पर होती हैं। इन बातों से साफ प्रकट होता है कि इन नियमों का बाँधनेवाला कोई अवश्य है। यदि किसी स्थान को जायँ और राह में रुपये पड़े हुए देखें तो हमें यह अनुमान होगा कि किसी पथिक के रुपये गिर पड़े होंगे, जब यह देख पड़े कि प्रत्येक रुपया ठीक तीन-तीन हाथों की दूरी पर रक्खा हुआ है तब वह अवश्य निश्चित हो जायगा कि किसी चतुर मनुष्य ने ऐसा प्रबन्ध किया है। इसी प्रकार के इन अटल नियमों के देखने से ईश्वर के होने में किसी प्रकार की शङ्का नहीं हो सकती।

३. ईश्वर बड़ा ही दयालु है। वह प्रतिक्षण हमारी—ही क्या सारी प्रकृति की चिन्ता रखता है। उसने हमारे लिए क्या ही अच्छी-अच्छी वस्तुएँ दी हैं! यह वायु, जिसके बिना हम एक मिनट भी नहीं जी सकते, यह पानी, जिसको पीते हैं, यह भोजन, जिसको खाते हैं और यह पृथ्वी, जिस पर आनन्द करते हैं—इत्यादि सभी पदार्थ हमें ईश्वर से मिले हैं।

यदि वह सूर्य नहीं बनाता तो हमलोग जाड़े से मर जाते। रात को आकाश में जो छोटे-छोटे दीपक से नजर आते हैं जिन्हें हमलोग तारे कहते हैं और एक अनुपम सौंदर्यवाला गेंद सा दीख पड़ता है, जिसे हमलोग चन्द्रमा कहते हैं, ईश्वर ही ने हमें दिये हैं, वे हमारे बड़े बड़े कार्य करते हैं।

यह आँख, जिससे हम अपूर्व छटा देखते हैं, यह नाक, जिससे हम सूँघते हैं, यह कान, जिससे हम मधुर शब्द सुनते हैं, यह जीभ, जिससे हमें रस का ज्ञान होता है और हम बोलते हैं—कहाँ तक कहें, यह समूचा शरीर जिसको हम अपना कहते हैं, जिसे देख-देखकर हम फूले नहीं समाते, ईश्वर ने ही दिया है।

यह उसी प्रभु की महिमा है जिसने उत्पन्न होने से पहले ही हमारी माता के स्तनों में दूध देकर हमारे जीवन का प्रबन्ध किया और माता पिता को प्रेम में डाल उनसे हमारी रक्षा कराई। उसीने अपनी दयालुता से हमको सृष्टि-शिरोमणि की उपाधि से भूषित किया है।

जब-जब प्राणियों पर भारी विपत्ति पड़ती है और अत्याचार करनेवाले बढ़ जाते हैं तब वह साकाररूप धारण कर संसार की रक्षा करता है। यही कारण है कि ईश्वर ने रामरूप से पापी अत्याचारी रावण का, कृष्ण रूप से आततायी कंस का और नृसिहरूप से पापी हिरण्यकश्यपु का नाश कर समय-समय पर भक्तों का उद्धार किया है।

अतः हमलोगों का यह पहला कर्तव्य है कि उस दयालु ईश्वर की भक्ति तन, मन और वचन से करें और सदा उनकी सेवा में तल्लीन रहें।

४. ईश्वर ने हमलोगों की इतनी भलाई की है कि हम उसका बदला नहीं चुका सकते। वह सदा हमें अच्छी-अच्छी वस्तुएँ दिया करता है, परन्तु हमारे पास उसको देने के लिये कोई भी पदार्थ नहीं है। एक तो वह हमसे कुछ माँगता नहीं, यदि माँगता भी तो दे ही क्या सकते हैं? ऐसी अवस्था में यह उचित है कि हम उसके सदा कृतज्ञ बने रहें, उसके गुणों को याद किया करें और उसको हार्दिक धन्यवाद दें। कुत्ता एक रोटी का टुकड़ा पाते ही अपनी पूँछ हिलाकर कृतज्ञता प्रकट करता है। फिर हम तो मनुष्य हैं, हमें तो कुत्ते से कहीं बढ़कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये।

हमें उचित है कि ईश्वर की आज्ञा सदा मानते रहें, सदा अच्छे कार्यों को

बैल, भैंस, बकरी, भेंड़, कबूतर इत्यादि सहस्रों जीव प्रतिदिन मारे जाते हैं और हम ऐसे निर्दय हैं कि 'ओह' तक नहीं करते।

हम लोग शिकार करके आनन्दित होते हैं। परन्तु बेचारे जीवों की जान जाती है। कहिये जीवों ने क्या अपराध किया है कि हमलोग ऐसे निर्दय हो रहे हैं? जो जीव मरने से बचते भी हैं, उनके साथ बड़ा ही बुरा बर्ताव होता है। एक्केवालों को देखकर आप अवश्य शंका में पड़ेंगे कि एक्कावाला पशु है या उसका घोड़ा पशु है। इसी प्रकार गाड़ीवालों का बैलों की पूछें ऐंठ-ऐंठकर हांकना और हलवाहों का बैल पीटते हुए चलाना तो सभी जानते हैं।

इतना कठिन परिश्रम कराकर भी हमलोग इनके भोजन का कुछ भी प्रबन्ध नहीं करते। जब इच्छा हुई रूखा-सूखा कुछ खाने को दे दिया, नहीं तो खबर भी न ली। इनके अच्छी जगह में रहने का भी कोई ध्यान नहीं रखता। हमलोग तो आनन्द से घर में सोते हैं और ये बेचारे रातभर सर्दी में बाहर ठिठुरते रहते हैं। यदि इनके रहने के लिये घर भी हैं तो वहाँ शुद्ध हवा जाती ही नहीं। इन जीवों को पानी भी प्रायः खराब ही पिलाया जाता है। जब तक इन जीवों में बल रहता है तब तक इनसे काम लिया जाता है, पीछे हम लोग कसाई के हवाले करते हैं जो शीघ्र ही इन्हें इस संसार के दुःखों से छुटकारा दे देता है।

४. हाय! कैसे-कैसे निर्दयता के कार्य हमलोग इस संसार में करते हैं! खूब याद रखिये, ईश्वर के सामने एक दिन अवश्य इन कार्यों के लिये उत्तर देना होगा। जो निर्दय पुरुष है, वह ईश्वर का प्रेमपात्र कभी नहीं हो सकता। इस संसार में भी वह सबों की दृष्टि में नीचा ही दीखता है। सब उसके विमुख हो जाते हैं। परिवार के लोग भी उससे घृणा करने लगते हैं! सचमुच निर्दय पुरुष का हृदय कलुषित हो जाता है और उसकी सारी आत्मोन्नति रुक जाती है।

५. जीव-मात्र को सब प्रकार से सुखी रखना, जिसको कोई नहीं पूछनेवाला है, उसको अवलम्ब देना, जिन्हें वस्त्र नहीं है उन्हें वस्त्र देना, जो भूखे हैं उन्हें भोजन देना, प्यासे को जल देना, पीड़ा दूर करना, दूसरे के दुःख में दुःखी होना और सुख में सुखी होना—इत्यादि कार्यों ही से हम दया दरसा सकते हैं। हमें उचित है कि अपने आश्रित जीवों से उचित कार्य लें, कभी उनकी शक्ति से अधिक कार्य न करावें। उनके खाने, पीने और रहने

आदि का उचित प्रबन्ध करें। 'अहिंसा परमो धर्मः' इस उपदेश के अनुसार चलना दयालु पुरुष का प्रथम उद्देश्य है। जो हिंसा करता है वह कभी दयालु नहीं हो सकता।

विद्वान् अपने उपदेशों से, बलवान् बल से, शक्तिवान् शक्ति से, धनी धन से और असमर्थ मीठी बातों ही से दूसरों पर दया दिखला सकता है।

६. परमेश्वर को दया बहुत पसन्द है, इसलिए उसका एक नाम दयालु है। जो मनुष्य दूसरों के दुःख दूर करने में तन, मन और धन से उद्योग करता है तथा अपने-परायों के साथ बिना प्रयोजन सहायता करता है, वही ईश्वर को पहचान सकता है। अतएव उचित है कि यदि मनुष्य अपना मनुष्यत्व प्राप्त करना चाहे तो वह दयालु बनने की चेष्टा करे तथा अपनी सन्तानों को दया की शिक्षा दे और उनमें निर्दयता का प्रवेश कभी न होने दे।

पुण्यं तस्य न शक्यते गणयितुं यः पूर्ण कारुण्यवान्।
प्राणानामभयं ददाति सुकृतिं योत्स्यत्यहिंसा व्रतम्॥

परोपकार

१. प्रारम्भ। २. प्रकृति हमें परोपकार की शिक्षा देती है। ३. परोपकार से लाभ। ४. परोपकार कैसे दरसा सकते हैं? ५. किसका उपकार करना चाहिये?

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।—रामायण

१. बिना कुछ बदला लिये दूसरों की भलाई करने को परोपकार कहते हैं। जिन-जिन गुणों के होने से मनुष्य श्रेष्ठ समझा जाता है, उनमें सबसे पहला स्थान परोपकार का है। जिस मनुष्य में यह गुण नहीं है उसे हम मनुष्य न कहकर मनुष्य के रूप में पशु कहना उचित समझते हैं।

२. हमें प्रकृति से उपकार करने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। या पृथ्वी हमें क्या-क्या नहीं देती—भोजन यह देती है, जल यही पिलाती है और नाना प्रकार के कष्ट सहकर हमारे हृदय को प्रफुल्लित यही रखती है। सूर्य सबेरे निकल कर हमें गर्मी और प्रकाश देता है और सारे संसार को हरा-भरा रखता है। यह चन्द्रमा जो अमृत बरसाता रहा है, किसके लिये? हमारे ही लिये न? ये सभी हमारे उपकार कर रहे हैं, परन्तु इसका बदला वे हमसे

४. बड़ों का आदर करने से हम लोग नम्रता का गुण प्राप्त करते हैं; जिससे अपनी अवस्था का ज्ञान हो जाता है तथा ऐसे कार्यों से बचते हैं जिनसे दोषी होने का डर है। गुणवानों का आदर करने से उनके गुण हम सीखते हैं। जो विद्यार्थी शिक्षक का आदर नहीं करता, उसे विद्या कभी नहीं आती तथा वह संसार-यात्रा को भलीभाँति पूर्ण कभी नहीं कर सकता। हम सदा यही चाहते है कि संसार हमारा आदर करे, परन्तु, यह तभी होगा जब हम संसार का आदर करना सीखेंगे। यदि हम दूसरों का आदर नहीं करेंगे तो सबों की दृष्टि से गिर जायँगे, सभी हमसे घृणा करेंगे, कोई भी हमारी सहायता नहीं करेगा।

माता, पिता और गुरुजनों का सम्मान हमें हृदय से करना चाहिये। जो ऐसा करते हैं उनकी सन्तान भी उनका सम्मान करने लगती है। जो अपने माँ-बाप की आज्ञा नहीं मानता तथा उनका आदर नहीं करता उनकी सन्तान भी समझ जाती है कि हमें भी अपने माँ बाप के साथ ऐसा ही बर्ताव करना होगा।

५. क्या भोजन, क्या व्यवहार सभी बातों में आदर की आवश्यकता है। रहिमन कवि ने ठीक कहा है—

"रहिमन मोहि न सुहाय, अमिय पियावै मान बिन
जो विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो॥"

जहाँ मान नहीं वहाँ यदि अमृत भी मिले तो वह विष का काम करता है; परन्तु जहाँ आदर है वहाँ की साग-भाजी भी अमृत से बढ़ जाती है।

धर्म (Righteousness)

१. धर्म क्या है? २. धर्म के लक्षण और धर्मपालन के लिये उपदेश। ३ वर्तमान समय में धर्म की दुर्दशा।

१. जिससे प्राणियों की लौकिक उन्नति और पारलौकिक मोक्ष की प्राप्ति हो, उसी को धर्म कहते हैं। अथवा यों कहिये कि जिसके सहारे यह संसार सदा फूल फलता है, जिसकी दिव्य ज्योति से ज्ञान का दीप जलता है और जिससे यह पृथ्वी टिकी है, उसी का नाम धर्म है।*

---

* यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः—कणाद।
जगतःस्थितिकारणं प्राणिनांसाक्षादभ्युदयेनिःश्रेयसहेतुर्यः स धर्मः—शंकराचार्य।

२. श्री मनु भगवान् ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बतलाये हैं—

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी; विद्या, सत्य और अक्रोध। इन लक्षणों की संक्षिप्त व्याख्या नीचे दी जाती है।

(१) धृति—किसी शुभ कर्म को आरम्भ करके बीच में न छोड़े, वरन् विपत्तियों का सामना करते हुए धीरतापूर्वक उसे पूर्ण करे।

(२) क्षमा—यदि कोई अयोग्य व्यवहार करे तो उससे बदला न ले, वरन् क्षमा कर दे। हाँ उसको उपदेश द्वारा समझा दे जिससे वह उस अयोग्य व्यवहार से घृणा कर ले।

(३) दम—अपने मन में कोई बुरा भाव न जमने दे। मन को सदा अच्छे कार्यों में लगाये रहे।

(४) अस्तेय—किसी का कोई पदार्थ बिना उसकी आज्ञा के लेना चोरी है, इसलिए चोरी कभी न करे।

(५) शौच—शरीर, वाणी और मन को शुद्ध रखना ही शौच है। अतएव यह उचित है कि शरीर को जल से, वाणी को सत्य से और मन को विद्या और तप से पवित्र रक्खे।

(६) इन्द्रिय-निग्रह—अपनी इन्द्रियों को सदा बुरे कार्यों से रोके रहे। मुँह से कभी बुरे वचन न बोले, हाथ से किसी को न सतावे, पैरों से बुरी राह न चले, किसी को बुरी दृष्टि से न देखे और न कान से कोई बुरी बात सुने।

(७) धी—ऐसे-ऐसे कार्य करे जिनसे बुद्धि प्रबल हो।

(८) विद्या—विद्या-उपार्जन में सदा लगा रहे।

(९) सत्य—सदा सत्य व्यवहार करे, सत्य ही माने और सत्य ही बोले। कभी भी छल-कपट से काम न करे।

(१०) अक्रोध—किसी पर क्रोध न करे।

अतएव प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह धर्म के इन लक्षणों को धारण करे और अपने सम्प्रदाय की आज्ञा से सन्ध्या, पूजा, पाठ, जप, दान और होम प्रभृति में लगा रहकर अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करे, अपने कुल की मर्यादा को न त्यागे तथा कोई ऐसा कार्य न करे जिससे उनके कुल में बट्टा

लगे। जो मनुष्य इन सब नियमों पर चलेगा वह अवश्य ही लौकिक उन्नति करता हुआ परलोक को भी साथ लेगा।

हमारे धर्म के ऐसे पवित्र विधान मनुजी ने किये हैं जो संसार में सबों के लिये एक ही समान मान्य हैं, परन्तु हमें शोक के साथ लिखना पड़ता है कि इनमें से किसी का भी पता हमें नहीं है। हम लोग अब केवल साम्प्रदायिक झगड़ों में लगे रहते हैं और साधारणतः सन्ध्या, पूजा, जप, होम और तिलक चन्दन ही को धर्म की चरम सीमा मानते हैं, परन्तु यह तो धर्म का केवल एक अङ्गमात्र है। जब तक इस कार्य के साथ-साथ धर्म के ऊपर लिखित दसों लक्षण हममें न आवेंगे, हम कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते।

३. आधुनिक काल में तो धर्म की ऐसी दुर्दशा हो चली है कि इसके साथ आडम्बर भी दीख पड़ता है। जिसको धन है वे ही धार्मिक कहलाते हैं। धर्मग्रन्थों में जो वाक्य अपने अनुकूल हैं वे ही सत्य हैं और शेष प्रपंच हैं। जितने मनुष्य हैं उतने ही पन्थ हैं। अँगरेजी पढ़े-लिखे हिन्दुओं की दृष्टि में ईसाइयों का 'रिलीजन' शब्द ही धर्म है और जो हिन्दू फारसी और अरबी के पण्डित हैं, 'मजहब' और 'धर्म' का एक ही अर्थ करते हैं।

इसी दुर्दशा के कारण सारे गुण हमसे दूर होते जा रहे हैं और हमारा जीवन कंटकों से आच्छादित होता जा रहा है। अतएव हम लोगों को उचित है कि 'धर्म क्या है' इसको भली भाँति विचारें और धार्मिक बनने की चेष्टा करें।

'जिसके लिये संसार अपना सर्वकाल ऋणी रहा,
उस धर्म की भी दुर्दशा हमने उठा रक्खी न हा!
जो धर्म सुख का हेतु है भवसिन्धु का शुभ सेतु है।
देखो, उसे हमने बनाया अब कलह का केतु है!!'

—श्री मैथिलीशरण गुप्त

स्त्री-शिक्षा (Female Education)

१. प्रारम्भ। २. स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता। ३. विरुद्ध मत। ४. स्त्री-शिक्षा से लाभ—विरुद्ध मत—खण्डन। ५. स्त्री-शिक्षा किस प्रकार और किस ढंग से होनी चाहिये। ६. उपसंहार।

१. जिससे शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों का विकास हो उसे शिक्षा कहते हैं। मनुष्यों में ये शक्तियाँ शिक्षा द्वारा विकसित होती हैं, जिससे

वे अपने कर्त्तव्य कर्म पर आरूढ़ रहते हैं। अतः जिस शिक्षा से स्त्रियाँ अपने-कर्त्तव्य, धर्म और आचरण का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर लें और उनके पालने की शक्ति पा जायँ उसी का नाम स्त्री-शिक्षा है।

२. "पुरुषों की सहायता से अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करना, अपने बच्चों में गुण, साहस और उत्साह भरना तथा उन्हें धार्मिक और सुचरित्र बनाना, अपने मधुर वचनों से सांसारिक कार्यों से दुःखित पति-पुत्रों को आनन्दित करना एवं ईश्वरीय इच्छाओं तथा उनके उद्देश्य को भली-भाँति समझकर उन्हें पूरा करना"—इत्यादि जितने स्त्री के कर्त्तव्य हैं उन सबों के सफल होने के लिये स्त्री-शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है।

३. बहुत से लोग स्त्री-शिक्षा के कट्टर विरोधी हैं। वे कहते हैं कि स्त्रियों का काम दाल-रोटी बनाना, गृहकार्य देखना और बच्चों को सँभालना है। पढ़कर स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। यदि पढ़ लेंगी तो पुरुषों की बराबरी करने को तत्पर हो जायँगी इत्यादि। इन विरुद्ध बातों का खंडन नीचे के वाक्यों से अच्छी तरह हो जायगा।

४. भात-रोटी बनाना जरा टेढ़ी खीर है। रसोई तभी अच्छी बन सकती है जब स्त्रियाँ 'पाकशास्त्र' में प्रवीणा हों यह एक विद्या है, इस पर बीसियों पुस्तकें लिखी गई हैं जिनमें रसोई-सम्बन्धी पदार्थों के गुण और अवगुण भी लिखे हुए हैं। यदि स्त्रियाँ शिक्षिता हों तो इन पुस्तकों के सहारे अच्छी रसोई बना सकती हैं, अच्छी रीति से चौका सँभाल सकती हैं, अन्यथा स्त्रियों का फूहरपन तो प्रसिद्ध ही है।

प्रायः धनी घरों की स्त्रियों को रसोई नहीं बनानी पड़ती। वे दिन-भर गप-शप और झगड़ों में लगी रहती हैं। कभी-कभी ऐसे बुरे कार्य कर डालती हैं, जिन्हें कहने की आवश्यकता नहीं। यदि वे शिक्षिता हो जाँय तो अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़कर अपना जी बहलावें और अपने कर्त्तव्य को भी समझ जाँय।

स्त्रियाँ घर की अधिष्ठात्री हैं। संसार में मनुष्यों का जो कुछ अभ्युदय है, नाम, यश, प्रतिष्ठा इत्यादि उन सबका मूलाधार घर ही है। इसी घर से उचित और उत्तम प्रबन्ध से पुरुष संसार में निःशंक होकर अपने कर्त्तव्यों का उचित सम्पादन करता है। अतः, यह आवश्यक है कि स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हों, अन्यथा समस्त कुटुम्ब बात-की-बात में नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। बच्चों के सुधारने में सबसे

अधिक शिक्षा की आवश्यकता है। बच्चा जैसी संगति में रहेगा वह वैसा ही होगा। छोटे बच्चे लड़कपन में माताओं के ही साथ रहते हैं और उन्हीं के शील-स्वभाव और रंग-ढंग में सन जाते हैं। अतः, यदि माताएँ पढ़ी-लिखी हों तो बच्चों पर विद्या और बुद्धि का प्रभाव पड़ता है और सयाने होने पर वे सत्पुरुष निकलते हैं, नहीं तो उनके वैसे ही कोरे के कोरे रह जाने का भय है।

शिक्षा पाकर स्त्रियाँ बिगड़ती नहीं, सुधर जाती हैं। अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को समझ जाती हैं। उन्हें भले-बुरे और धर्माधर्म का ज्ञान हो जाता है और वे धूर्तों के फन्दे से बच सकती हैं। यह प्राचीन शिक्षा ही का संस्कार है कि हमारी स्त्रियाँ पतिव्रता हैं, अपने पति की तन, मन और बचन से सेवा करती हैं और अन्य पुरुष का मुँह देखना पाप समझती हैं। इनमें इतना प्रेम है कि अपने पति को अपना सर्वस्व समझती हैं। बराबरी का विचार भूल कर भी नहीं करतीं। इस समय शिक्षा की कमी ही के कारण इन बातों में कुछ विभिन्नता दीख पड़ती है। यदि शिक्षा का उचित प्रबन्ध हो तो फिर सोने में सुगन्ध आ जाय।

जिस शिक्षा से स्त्रियाँ बिगड़ती हैं वह शिक्षा नहीं, कुशिक्षा है। वह प्राचीन आदर्श को सामने रखकर नहीं दी जाती। कुसंग और कुप्रबन्ध के कारण, सामाजिक दुर्विचार के कारण तथा पुरुषों की स्वार्थान्धता, असद्विचार, असत्य-कार्य और चरित्रहीनता के कारण स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। अक्षरकट्टू डायन बनाना भी बिगाड़ना ही है—"नीम हकीम खतरे जान!"

५. "स्त्रियों को किस प्रकार की शिक्षा किस ढंग से देनी चाहिये?" इस पर भी कुछ विचारिये। हमारी स्त्रियों को शिक्षा अच्छी देख-रेख में भारतीय आदर्श को सामने रखकर मिलनी चाहिये, विदेशी आदर्श यहाँ के लिये उपयुक्त नहीं। पारिवारिक शिक्षा के साथ-साथ चिकित्सा शास्त्र और अपने इतिहास, भूगोल का भी साधारण ज्ञान उन्हें होना चाहिये। स्त्रियों का क्या धर्म है—पति के साथ उनका क्या सम्बन्ध है—ससुर इत्यादि परिवार के लोगों के साथ उनका क्या नाता है—पति के घर में उनका कौन-सा स्थान है—इत्यादि बातों की शिक्षा उन्हें अच्छी तरह मिलनी चाहिये। हिन्दू-शास्त्रों की अच्छी-अच्छी नीति सम्बन्धी कथाओं को भी यदि हम लोग स्त्रियों तक पहुँचा सकें तो विशेष लाभ हो सकता है। हमारी स्त्रियों को कालेज की डिग्रियों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उन्हें

आँगन भरके कार्य करने हैं। कहिये, आँगन में वकीली किससे करेंगी? वर्णमाला पढ़ाकर अक्षरकट्टू डायन भी बनाना ठीक नहीं, ऐसी ही स्त्रियाँ अपने कर्त्तव्य-कर्म को भुलाकर चौपट हो जाती हैं। हम भारत-वासियों का प्रधान धर्म है कि अपनी बहुओं, बहनों और बेटियों को अपने से पढ़ाकर शिक्षिता बनावें।

६. जिस घर की स्त्रियाँ शिक्षिता नहीं हैं वह भूत का घर है। उस घर में सुमति रहती नहीं, सदा अशान्ति विराजती रहती है। वहाँ आलस्य, कलह और दरिद्रता का वास हो जाता है। बच्चे बिगड़ जाते हैं। सदा आपस में अनबन रहा करती है। सच बात यों है कि जाति, समाज और देश की उन्नति स्त्री-शिक्षा ही पर निर्भर है।

मित्रता (Friendship.)

१. परिचय। २. आवश्यकता। ३. मित्रता के पात्र। ४. सच्चा मित्र—उपकार। ५. कपटी मित्र—हानि। ६. उपसंहार।

अत्यागसहनो बन्धुः सदैवानुमतः सुहृद्।
एकक्रियो भवेन्मित्रं समप्राणः सखा मतः॥

१. जो वियोग नहीं सह सकें वे बन्धु, जो प्रेमी सदा सहमत रहें वे सुहृद्, जिनकी क्रिया एक हो वे मित्र और जिनके प्राण एक हों वे सखा कहलाते हैं। जिसने कठिन समय की कसौटी पर कसे हुए मित्र की मित्रता पाई है, उसी पुरुष का जीवन संसार में धन्य है।

२. मनुष्य का स्वभाव है कि वह अकेला नहीं रहना चाहता, वह सदा संग ढूँढ़ता है। विद्वानों ने कहा है कि जो मनुष्य अकेला रहना चाहता है वह या तो देवता है या पशु। अकेला रहना सचमुच कष्टदायक है, यही कारण है कि जब अपराधी को कठिन दण्ड मिलता है तब वह निर्जन स्थान में रक्खा जाता है। अतः, यह स्वभावतः सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को किसी न किसी से मित्रता हो ही जाती है।

३. प्रायः एक अवस्थावाले मनुष्यों में प्रकृत मित्रता की अधिक सम्भावना रहती है। यदि दोनों में समता न होवे तो मित्रता नहीं हो सकती। बालक और वृद्ध में, धनी और निर्धन में, गृहस्थ और संन्यासी में, पण्डित और मूर्ख में तथा आस्तिक और नास्तिक में मित्रता असम्भव

है। जिनकी प्रवृत्ति एक ही विषय में होती है और जो एक ही कार्य के अनुरागी होते हैं उन्हीं में प्रकृत मित्रता अंकुरित होती है। मन और मत की एकता मैत्री को स्थायी और दृढ़ बनाती है। असम अवस्था और विभिन्न प्रकृति वाले मनुष्यों की मित्रता क्षणिक और स्वार्थ के लिये होती है।

४. सच्चा मित्र तो संसार में दुर्लभ है, परन्तु जिसने इसे पाया है वह सचमुच भाग्यवान् है। पण्डितों ने कहा है कि जो उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, राजद्वार और श्मशान में साथ दे वही यथार्थ मित्र है। सच्चामित्र अपने मित्र की मंगलकामना में सदा लगा रहता है। वह अपने मित्र से बदला नहीं चाहता और न अपना कोई कार्य साधता है। वह अपने मित्र को कुमार्ग से रोककर सुमार्ग पर लाता है, उसके अवगुणों को छिपाकर गुणों को प्रकट करता है, लेन-देन में कोई हीला-हवाला नहीं करता और जी-जान से उसकी भलाई में लग पड़ता है। वह शोक में सान्त्वना देता है, अच्छे कार्यों में उत्साह दिलाता है। वह अपने मित्र के ऊपर अपने प्राणों को भी निछावर करने के लिये सदा तत्पर रहता है।

कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा। गुण प्रकटहि अवगुणहिं दुरावा॥
देत लेत मन शङ्कु न धरहीं। बल अनुमान सदा हित करहीं॥
विपति काल कर शतगुण नेहा। श्रुति कह सत्य मित्र गुण येहा॥

५. कपटी मित्र द्वारा नाना प्रकार के अनिष्ट होते हैं। उसे अपने मित्र के दोषों का संशोधन करना तो दूर रहा, बल्कि उन्हें संसार में प्रकाशित कर देता है वह अपने मित्र के आगे मीठी-मीठी बातें बनाता और पीछे उसकी निन्दा करता है। सुख में साथ देता है और दुःख में छोड़ देता है। जब तक उसको अपना स्वार्थ रहता है, वह अपने प्रेम को खूब दरसाता है, परन्तु ज्योंही स्वार्थ सधा कि वहाँ से अलग हो जाता है। वह यदि मौका लगे तो अपने स्वार्थ के लिये मित्र के प्राण तक ले लेता है। अतः, हमलोगों को उचित है कि ऐसे छली से सदा सावधान रहें।

आगे कह मृदुवचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरै भलाई॥
सेवक शठ नृप कृपण कुनारी। कपटी मित्र शूल सम चारी॥

६. जब यह ठीक है कि हम कितने ही प्रसंगों पर माता, पिता, भ्राता इत्यादि से राय लेने में संकोच करते हैं और मित्र से संकोच नहीं करते, जब प्यारी माता के अटूट प्रीतिरूपी प्रवाह में बराबर स्नान करने पर भी और पवित्र पिता का स्नेह पूर्णतया प्राप्त होने पर भी—उनके समक्ष हृदय-पट खोलने का साहस न करके मित्र को दरसा सकते हैं, तब हमें उचित है कि इस संसारयात्रा को सुखपूर्वक पार करने के लिये सन्मित्र-रूपी अमूल्य हीरे की कनी को खोजकर अपनी जीवन-रूपी अँगूठी में जड़ा लें। फिर हमारे आनन्द की कौन-सी सीमा !

स्वच्छता (Cleanliness)

१. स्वच्छता क्या है। २. प्राप्ति के उपाय। ३. स्वच्छता और धर्म में सम्बन्ध। ४. आवश्यकता। ५. उपसंहार।

१. मलिनता से दूर रहना स्वच्छता है। कौन मलिनता? शारीरिक मलिनता, मानसिक मलिनता, व्यावहारिक मलिनता और सामाजिक मलिनता—ये ही चार मलिनता के मुख्य भेद हैं। जो इन गन्दगियों से दूर रहता है, वही स्वच्छ है।

२. स्वच्छता के विचार से हमारा पहला कर्तव्य अपने शरीर को शुद्ध रखना है। हमारे चमड़े में असंख्य रोमकूप हैं जिनसे सदा शरीर के दूषित पदार्थ बाहर निकलते हैं। यदि चमड़े को स्वच्छ न रक्खें तो ये दूषित पदार्थ रुक जायँगे और हमारा शरीर रोग का घर हो जायगा। अतः यह उचित है कि हम नित्य समय पर मल-मूत्र त्याग कर स्नान किया करें, बालों को साफ रक्खें और मुँह धोवें तथा समय पर बालों और नखों को कटवा दिया करें।

हमारा दूसरा कर्त्तव्य वस्त्रों को स्वच्छ रखना है। यदि हमारे वस्त्र निर्मल नहीं रहें और हमारे बिछावन मैले रहें तो शरीर कभी स्वच्छ नहीं रह सकता। अतः हमें चाहिये कि उन्हें ठीक समय पर धोबी से धुलवा लिया करें या अपने से धो लें। प्रतिदिन वस्त्रों और बिछावन को धूप दिखाना भी उचित है। इससे वे शुद्ध हो जाते हैं तथा उनमें रोगों के बीज भी नहीं रहने पाते।

घर हमलोगों की वासभूमि है। इसकी मलिनता से हमारा स्वास्थ्य कभी भी ठीक नहीं रह सकता। अतः यह उचित है कि घर, आँगन और पास की

भूमि को सदा स्वच्छ रक्खे। स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार घर बनावें और उसकी सफाई में तनिक भी ढिलाई न करें।

भोजन और जल की स्वच्छता पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। यदि दोनों पदार्थ स्वच्छ न रहें तो हम रोगों के पंजे में पड़ जायँगे और शीघ्र ही काल के गाल में पहुँच जायँगे। अतः हमलोगों को चाहिये कि सदा शुद्ध भोजन करें और शुद्ध जल पीवें। बाजार की पूड़ियों, मिठाइयों और सड़ी-गली चीजों से सदा बचे रहें।

३. देह की स्वच्छता से केवल शारीरिक ही उन्नति नहीं होती, इससे मानसिक उन्नति भी सम्पादित होती है। यही कारण है कि स्वच्छता और धर्म में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि शरीर शुद्ध न रहे तो अन्तःशुद्धि कभी भी नहीं हो सकती। इसी आधार पर हमारे ऋषियों ने स्नानादि बाह्य शुद्धियों के पश्चात् पूजा-अर्चा इत्यादि के लिये उपदेश दिया है। प्रायः सभी जातियों के धर्मग्रन्थों ने बाह्यशुद्धि के पीछे ईश्वराराधन की व्यवस्था की है।

४. क्या धर्मचर्चा, क्या जीविकार्जन—सभी स्वास्थ्य पर निर्भर हैं। शरीर यदि अस्वस्थ है, स्वास्थ्यभग्न है तो धर्मसाधन किस प्रकार होगा? शरीर को निरामय रखने के लिये स्वास्थ्य के नियमों पर दृष्टि रखना उचित है। स्वास्थ्य अमूल्य धन है। रुपया-पैसा रोगी को सुख नहीं पहुँचा सकता, परन्तु जिसकी स्वास्थ्य-धन प्रकृति अवस्था में है, वह सचमुच सुखी है। अब सोचो कि यह स्वास्थ्य किस पर निर्भर है? स्वच्छता ही पर न? क्या मैला आदमी स्वास्थ्य का सुख कभी पा सकता है? अतः, हमलोगों को उचित है कि स्वास्थ्य देनेवाली स्वच्छता पर सदा ध्यान रक्खें।

'स्वच्छता' भद्रता और सभ्यता की पहली बानगी है। मलिन पुरुष सभ्य-समाज में घृणित समझा जाता है। यदि हम सभ्यसमाज में मिलना चाहते हैं तो सबसे पहले स्वच्छता के पाठ सीखें। मलिनता शरीर में नाना प्रकार के रोग लाती है। इस मलिनता के कारण कभी-कभी हमलोग इन संक्रामक रोगों के चपेट में पड़ अकाल ही में कालकवलित हो जाते हैं। अतएव हमलोगों को चाहिये कि व्यावहारिक और सामाजिक स्वच्छता के लिये सदा उद्योग करते रहें और यह तभी हो सकता है जब हम अपने शरीर की शुद्धि के साथ-

साथ ईर्ष्या, द्रोह, पाखण्ड, असत्य और छल इत्यादि बुरे विचारों को छोड़ अपने मानस को भी स्वच्छ रक्खें।

५. बहुत से लोग स्वच्छता को विलासिता समझते हैं। जिनकी ऐसी धारणा है उन्होंने स्वच्छता का मर्म वास्तव में नहीं समझा है। हाँ, जिन्होंने वेष-भूषा का आडम्बर रच रक्खा है, उनकी बात ही न्यारी है। स्वास्थ्य-रक्षा के विचार से स्वच्छता के लिये जो उचित कर्त्तव्य है हम लोगों को वही करना चाहिये।

शुद्ध रहना परमेश्वर की भक्ति करने से दूसरे दर्जे पर है।

चित्तसंयम (Control of mind.)

१. परिचय। २. चित्तसंयमी और चित्तसंयम से लाभ। ३. चित्तसंयम की आवश्यकता कब होती है और इसकी मात्रा। ४. उपसंहार।

१. "तुम घोड़े पर चढ़े कहीं जा रहे हो और उसकी लगाम तुम्हारे हाथ में है। अब यदि तुम लगाम ढीली ही करते चले जाओ और उसे उचित राह पर नहीं चलाओ तो क्या यह संभव है कि तुम निश्चित स्थान पर पहुँचोगे? तुम अवश्य तंग गलियों में ठोकरें खाओगे, झाड़ीदार जंगलों के काँटों में फँसोगे, खड़ी चढ़ाई से गिरकर मरोगे, रेगिस्तान में पहुँचकर बालू फाँकोगे, अँधेरी गुफाओं में जाकर सिर तोड़ोगे या लम्बे-चौड़े मैदान में भटकते फिरोगे।" इस कथन से समझ में आ जाता है कि चित्तसंयम क्या है। मन की रोक अर्थात् उसे अपने अधीन करना ही वस्तुतः चित्तसंयम है।

२. जो चित्तसंयमी है वह मन रूपी घोड़े को अपने अधीन रखता है और उसपर सवार होकर अवश्य ही निश्चित स्थान में पहुँच जाता है। वह काम की तंग गलियों में ठोकरें नहीं खाता, क्रोध के झाड़ीदार जंगलों में नहीं फँसता, अहंकार की खड़ी चढ़ाई से गिरकर नहीं मरता, ईर्ष्या के रेगिस्तान में बालू नहीं फाँकता, मोह की अँधेरी गुफाओं में जाकर सिर नहीं तोड़ता और लोभ के लम्बे-चौड़े मैदान में भटकता नहीं फिरता। चित्तसंयमी का मन एकाग्र रहता है जिससे वह उत्साह-पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। जो विद्यार्थी एकाग्र होकर पढ़ता है वह अपना पाठ शीघ्र ही याद कर लेता है, परन्तु जिसमें एकाग्रता नहीं वह महीनों में भी कुछ नहीं सीखता। यही एकाग्रता है जिसने अर्जुन से लक्ष्यभेद करा बड़े-बड़े वीरों का मान-मर्दन किया और इसी की कृपा

से एकलव्य ने बाणविद्या सीखी। यही एकाग्रता है जिसने मनुष्य-समाज में ईश्वर तक पहुँच रखनेवाले अनेकों भक्त बना दिये।

३. जब हम काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि में पड़कर मनुष्य की सीमाओं का उल्लंघन करने लगते हैं तब मन को रोकने की आवश्यकता पड़ती है। यदि इस परीक्षा में पास हुए तो समझना चाहिये कि मनुष्यत्व-पद सार्थक हुआ और नहीं तो हम समाज की दृष्टि में चुभनेवाले काँटे हो गये। मान लो कि हमने क्रोध में पड़कर अपने किसी प्रेमी को बुरी बात कह दी। पीछे हमें कितना पछतावा होगा? संभव है कि वह प्रेमी हमें क्षमा कर दे, परन्तु हृदय में जो गाँठ पड़ गई है वह कभी खुलेगी? हम यह नहीं कहते कि हम अपनी आत्मरक्षा न करें। अवश्य ही करें। इसलिये क्रोध की मात्रा हम उतनी ही रक्खें जिससे हमारे वास्तविक शत्रुओं का नाश हो, लोभ उतना ही करें कि सात्विक वृत्ति से जीविकोपार्जन हो सके, मोह उतना ही होवे जिसमें हमारी सन्तान हमसे सुधर सके और समाज हमारे जन्म से धन्य-धन्य हो जाय। कहीं यह न हो कि आत्मरक्षा की आड़ में हमारा मनरूपी घोड़ा कुमार्ग में पाँव डाले।

हमलोगों को उचित है कि चित्तसंयम के लिये सदा यत्न करते रहें। ईर्ष्या और अहंकार का सदा के लिए नाश कर दें। क्रोध, मोह इत्यादि को सीमा से बाहर न होने दें। सदा शान्ति से काम लें। ऐसा कोई गुण ही नहीं जो अभ्यास से हममें न आ सके। अभ्यास करते-करते अपने मन को वश में कर सकते हैं और जब मन वश में हो गया तब हम समझ लें कि हमने सुख का मार्ग पहचान लिया।

एकता (Unity)

१. संज्ञा। २. एकता की क्षमता। ३. उपकार। ४. उदाहरण। ५. उपसंहार।

१. किसी एक उद्देश्य के साधन के लिये बहुत लोगों का एकमत होकर कार्य में लग जाना एकता का लक्षण है और इस प्रकार का मिलन एकता है।

२. एकता की क्षमता असीम है। सामान्य तृण से हम किसी छोटे जीव को भी नहीं बाँध सकते, परन्तु बहुत से तृण एकत्र कर जब हम रस्सी बना लेते हैं तब इससे उन्मत्त गजराज को भी बाँध डालते हैं। जल का एक छोटा

बिन्दु हमारी दृष्टि में किसी मोल का पदार्थ नहीं, परन्तु बिन्दुसमूहों से बनी हुई नद-नदियाँ जब प्रबल वेग से बहती हैं तब अपने दोनों किनारों को चूर्ण-विचूर्ण कर डालती हैं और बड़े-बड़े जहाजों और नावों का नाश कर छोड़ती हैं, जिसे देखकर हमलोगों को अवाक् हो जाना पड़ता है।

यही गति प्राणियों की भी है। जब कोई जीव दल बाँधकर कार्य में लग जाता है तब वह अनायास पूर्ण हो जाता है। चींटी अत्यन्त दुर्बल प्राणी है, वह एक तृण के छोटे टुकड़े को भी नहीं ढो सकती परन्तु जब सहस्रों चींटियाँ मिल जाती हैं तब बड़े-बड़े मनियारे साँप को भी मारकर खा जाती हैं। अतः, यह स्वभावतः सिद्ध है कि एक मनुष्य जिस कार्य को नहीं कर सकता वह दस-पाँच मनुष्यों के मिल जाने से बात की बात में हो जाता है।

३. किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने का एक मात्र उपाय 'एकता' ही है। यदि हमलोगों में एकता है तो क्या सांसारिक, क्या पारलौकिक सभी विषयों में हमें किसी प्रकार की असुविधा जान नहीं पड़ेगी। यदि दरिद्र के घर में भी परस्पर ऐक्य है—पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, असद्भाव नहीं तो वहाँ अवश्य शान्ति विराजती है। परन्तु यदि एकता का अभाव है, कोई किसी से सहानुभूति नहीं रखता, भाई-भाई के लिये स्वार्थ नहीं त्यागता तो राजप्रसाद में भी सुख नहीं, वह मरुभूमि के समान कष्टकर है और श्मशान के समान भयंकर है।

जिस समाज में ऐक्य नहीं, वह दुर्बल है—उसका पतन अवश्य ही होगा। वह कभी उन्नति और सम्पत्ति का मुँह नहीं देखेगा। एकता के अभाव से समाज की क्या गति होती है—देश की क्या दुर्दशा होती है इसका स्पष्ट उदाहरण हमारा देश है। गाँवों और नगरों में जाकर देखिये, इसके सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे।

४. इतिहासों के देखने से पता चलता है कि जिस घर में, जिस समाज में, जिस जाति में और जिस देश में एकता है वही घर, वही समाज, वही जाति और वही देश उन्नत और समृद्धशाली है। आजकल हमलोगों के सामने अँगरेज जाति इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इसने एकता ही के बल से धन और मान के साथ पृथ्वी में सबसे ऊँचा स्थान पाया है और राज्य-विस्तार करके अपनी क्षमता का परिचय दिया है। यह जिस देश में और जिस कार्य में हाथ डालती

है सभी में अपने देश की गौरवरक्षा के लिये प्रस्तुत रहती है और इसके निमित्त अपने प्राण तक दे देने में आगा-पीछा नहीं करती।

५. शोक है कि हम भारत-वासी सामने उदाहरण पाकर भी एकता के गुण को नहीं सीखते। यदि हम अपनी उन्नति चाहते हैं तो हमें उचित है कि आपस का भेद-भाव हटावें, किसी को ऊँच-नीच न समझें, मानापमान के विचार को जाने दें और एक होकर कार्य में पदार्पण करें।

स्वावलम्बन या आत्मनिर्भरता (Self-help)

१. परिचय। २. स्वावलम्बन की शिक्षा—प्रकृति हमें स्वावलम्बन की शिक्षा देती है ३. स्वावलम्बन से लाभ और उसकी आवश्यकता। ४. परावलम्बन से हानि। ५. हमलोगों को क्या करना चाहिये? ६. उपसंहार।

१. कार्यसिद्धि के सर्वप्रधान उपायों में जिन-जिन सद्गुणों की आवश्यकता है उनमें स्वावलम्बन अर्थात् किसी कार्य में परमुखापेक्षी न होकर अपनी शक्ति से उसका सम्पादन करना मुख्य है। वह एक ऐसा गुण है, जिसके न होने से मनुष्य में मनुष्यता का अभाव कहना अनुचित नहीं प्रतीत होता है।

२. संसार में जो उन्नतिशील जातियाँ हैं उनके इतिहास देखने से जान पड़ता है कि उन जातियों में प्रत्येक मनुष्य ने आरम्भ ही से स्वावलम्बन की शिक्षा पाई थी; यदि ऐसी बात न हो, तो उनकी प्रसिद्धि में हमें सन्देह है। वे भोजन, वस्त्र, भूषण सभी कार्यों में अन्य जाति का गलग्रह होना वृथा समझती हैं। संसार के सभी कार्य हमें यह शिक्षा देते हैं कि अपना अभाव अपने ही से पूर्ण करो। यह सदा देखते हैं कि सभी-निकृष्ट-प्राणी आप ही आप उठने की चेष्टा करते हैं। पहले वे दो एक बार अकृतकार्य तो होते हैं, परन्तु थोड़े ही समय में वे सफल हो जाते हैं, घूमने-फिरने लगते हैं और अपना आहार एकत्र कर लेते हैं, कभी परमुखापेक्षी नहीं होते। पालतू जीव अपने स्वामी के दिये भोजन पर जीवन-निर्वाह करते हैं और अपने से कुछ भी चेष्टा नहीं करते। यदि कारणवश उनके स्वामी मर गये तो उनकी दुर्गति हो जाती है—उनके प्राण बचते हैं या नहीं, सन्देह है।

हमारे यहाँ धनीमानी के बच्चे सदा माता, परिवार या दास-दासियों की गोद के खिलौने बने रहते हैं, उन्हें एक मिनट की छुट्टी नहीं मिलती कि वे

अपने बलबूते पर अपने को सँभालें। दरिद्र के बच्चे को देखिये, वह मिट्टी या चटाई पर पड़ा रहता है और माता सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहती है। वह बच्चा पड़ा-पड़ा अपने हाथ-पाँव झाड़ता रहता है, कभी रोता है और कभी चित्त-पट्ट हो जाता है। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में वह चलना सीख लेता है, परन्तु धनी के बच्चे को इस कार्य में बहुत दिन लग जाते हैं।

उपर्युक्त प्राकृतिक बातों से जान पड़ता है कि भगवान् ने सभी जीवों को स्वावलम्बन की शक्ति दी है और उसकी यह इच्छा है कि सभी इस शक्ति का उचित उपयोग करें, किसी के गलग्रह न बनें।

३. स्वावलम्बन शारीरिक और मानसिक उन्नतियों का एकमात्र सर्वोत्तम पथ है। इसके बिना किसी शक्ति की उन्नति नहीं हो सकती। विश्वविद्यालय की सबसे बड़ी उपाधि पाकर जितने स्वनामधन्य पुरुष निकले हैं और निकल रहे हैं, उनमें प्रायः अधिकतर दरिद्रों के पुत्र हैं, उन्हें घर पर किसी दूसरे शिक्षक ने पाठ में सहायता नहीं दी। वे पुस्तकों के अभाव में इधर-उधर भटकते फिरें। उन्हें भोजन-वस्त्र के लिये भी आपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। वे इतने बड़े कैसे हुए? स्वावलम्बन के कारण। अब धनीमानी के बच्चों को देखिये। उन्हें घर पर शिक्षक पढ़ाते हैं। समय पर उनकी सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। उनको विद्या प्राप्त करने में किसी प्रकार की अड़चन नहीं डाली जाती। इतने पर भी वे प्रायः अधिकतर भोंदू ही रहते हैं। क्यों? उनमें आत्मनिर्भरता नहीं। यूरोप के देशों ने जो इतनी उन्नति की है तथा अमेरिका, जापान आदि जो इस समय मनुष्य-जाति के सिरताज हो रहे हैं, इसका यही कारण है कि उन देशों में लोग अपने भरोसे पर रहना अच्छी तरह जानते हैं। भारत का जो सत्यानाश हो रहा था इसका यही कारण है कि यहाँ के लोग अपने भरोसे पर रहना भूल से गये थे। ईश्वर भी सहायक उन्हीं का होता है जो अपनी सहायता अपने आप कर सकते हैं। अपने आप अपनी सहायता करने की वासना आदमी में सच्ची तरक्की की बुनियाद है। अपने सुप्रसिद्ध सत्पुरुषों की जीवनी इसका उदाहरण तो है ही, वरन् प्रत्येक देश या जाति से लोगों में बल और ओज तथा गौरव और महत्व के आने का आत्मनिर्भरता सच्चा द्वार है।

४. यदि हममें स्वावलम्बन नहीं है तो हममें मनुष्यत्व नहीं, हम कौड़ी के

तीन हैं। हम हाथ, पैर रहते लूले और लँगड़े हैं, आँख रहते अन्धे हैं और कान रहते बहरे हैं। संसार में किसी जाति ने परावलम्बन की बेड़ी पहन कर उन्नति नहीं की। इस समय हमलोग दूसरे के भरोसे जीते हैं। यदि विदेश दियासलाई न दे तो रसोई नहीं बना सकते। यदि विदेशी सूई, तागे नहीं भेजें तो कपड़े नहीं सिला सकते। ये ही क्यों हमारे सभी कार्य दूसरों के भरोसे होते हैं, इसी कारण से हममें ऐसा संस्कार घुस गया है कि हम अपने हाथों कोई कार्य करना 'लज्जा की बात' समझते हैं। इन सबों ने अपने व्यक्तिगत स्वावलम्बन को खोकर अपने समाज को—समाज ही को नहीं बल्कि सारे भारत को परमुखापेक्षी बना डाला है। यही कारण है कि हममें बालविवाह, कन्याविक्रय, दहेज लेना, घूस खाना इत्यादि कई कुरीतियाँ घुस गई हैं। यदि स्वावलम्बन को अपनाते तो—गत यूरोपीय महायुद्ध से हमारी जो हानि हुई, कई बाहरी वस्तुएँ जो इस समय नहीं मिलती हैं या बहुत अधिक मूल्य पर मिल रही हैं—इत्यादि अभावों की पूर्ति बात की बात में कर डालते और हमारी ऐसी दुर्गति भी नहीं होती।

५. जब यह बात स्वतःसिद्ध है कि हमारी उन्नति अपने ही करने से होगी, स्वावलम्बन ही से होगी, तब हमें उचित है कि इसके लिए भरपूर यत्न करें और अपनी आत्मा पर विश्वास करके कार्यक्षेत्र में डट जायँ। जब ताता, विद्यासागर, बोनापार्ट इत्यादि महात्माओं ने यह प्रमाणित कर दिया है कि स्वावलम्बन ही उन्नति की जड़ है और सच्चे हृदय से कार्य आरम्भ करने से वह अवश्य पूर्ण हो जायगा, तब हमें उचित है कि स्वावलम्बन का आश्रय ग्रहण करके देश को साहित्य और कलाकौशलादि से भर दें। जब तक हम अपने से कार्य करने के लिये तैयार न होंगे तब तक हमारी कोई सहायता कभी नहीं करेगा। 'अपनी करनी पार उतरनी' इस कहावत के अभिप्राय को भलीभाँति समझ लेना चाहिये और यह भी मन में बैठा लेना चाहिये कि संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसको हम 'स्वावलम्बन, दृढ़प्रतिज्ञा, सदभिप्राय और श्रमशीलता के बल से नहीं कर सकें।

६. स्वावलम्बन का यह अर्थ नहीं कि हम सभी कार्य सब अवस्थाओं में स्वयं ही कर लें। जिन कार्यों को हम स्वयं नहीं कर सकते हैं या अपने कार्यों को दूसरे से करा कर उनके बदले अच्छे-अच्छे कार्य कर सकते हैं, उन्हें अवश्य

दूसरों की सहायता से करवावें। कहीं यह न हो कि हम आलसी बन जायँ और अपने कार्य दूसरों पर टाल दें। बच्चों को माता-पिता की, विद्यार्थियों को शिक्षक की, बड़े कार्य में बड़े लोगों की और कठिन कार्य में समाज की सहायता आवश्यक है, परन्तु कर सकने योग्य कार्यों में सहायता ढूँढ़ते फिरना अपने को परावलम्बन की बेड़ी पहनाना है। हे भगवन्!

"यह पाप पूर्ण परावलम्बन चूर्ण होकर दूर हो।
फिर स्वावलम्बन का हमें प्रिय पुण्य पाठ पढ़ाइये।"

शिक्षा (Education)

१. परिचय। २. प्रचलित अर्थ—सच्चा अर्थ। ३. शिक्षित मनुष्य। ४. अशिक्षित मनुष्य।

१. जिससे शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों का विकास हो उसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षा मनुष्य की प्रकृति को सुधारती है, शारीरिक शक्ति को भरती है, बुद्धि को खोल देती है और सजीवता प्रदान करती है। अतः, किसी मनुष्य की पूरी शिक्षा तभी कही जा सकती है जब उसमें ऊपर लिखी सभी बातें आ जायँ।

२. आजकल अँगरेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा का अर्थ समझा जाता है और वही मनुष्य शिक्षित कहलाता है जिसने अँगरेजी भाषा सीखी है। परन्तु हमारे जानते शिक्षा का यह ठीक अर्थ नहीं। "हमारी समझ में वही मनुष्य शिक्षित है जिसने किसी भाषा द्वारा अपनी शक्तियों का विकास पाया है, अपनी प्रकृति सुधारी है, शारीरिक शक्ति पाई है और सजीव है। शिक्षा का प्रधान उद्देश्य चरित्र-सुधार के साथ-साथ पूर्ण मनुष्यत्व प्राप्त करना है। जिसने अपने मन को अपने वश में नहीं रक्खा, वह शिक्षित नहीं।" अंगरेजी भाषा ने उस मनुष्य की कुछ भी भलाई नहीं की जिसने उपर्युक्त गुण नहीं प्राप्त किये, जिसने अपने कर्त्तव्य को नहीं पहचाना, जिसने ईश्वर की आज्ञा को नहीं समझा और जिसने कार्यक्षेत्र में कार्य को नहीं कर दिखाया।

३. जो वास्तव में शिक्षित मनुष्य है वह संसार की सभी वस्तुओं में अपनी बुद्धि की प्रखरता दिखला देता है। उसे प्रकृति की सभी वस्तुओं में एक न एक सच्चा तत्त्व झलकता है। शिक्षा शिक्षित मनुष्य का जितना समय लेती है उतने

से अपना अधिक फल उसे दे देती है। शिक्षा शिक्षित की शक्ति को समाज और देश पर फैला देती है, जिससे वह जीवन-संग्राम में अपूर्व सजीवता और उत्साह के साथ घुस पड़ता है और विजय प्राप्त कर स्वर्ग की सीढ़ी को चूम लेता है।

४. शोक है उसके लिये जिसने उचित शिक्षा नहीं प्राप्त की। उसे आँख है, परन्तु वह प्रकृति में खूबी नहीं देखता। उसे बुद्धि है, परन्तु वह उसका उपयोग नहीं जानता। यह बिना पूँछ और सींग का पशु है। उसके जीवन का कोई मोल नहीं; क्योंकि उसने मनुष्य के पद को नहीं समझा है। वह पहाड़ का एक रूखड़ा पत्थर है, जो एक जंगली बल रखता है। मूर्खता ईश्वर का शाप है और 'शिक्षा' स्वर्ग में पहुँचाने वाला प्रभु का वाहन।

अध्यवसाय (Perseverance)

१. अध्यवसाय किसको कहते हैं। २. लाभ। ३. अध्यवसायी के लक्षण और नीति-वाक्य। ४. उदाहरण।

१. एक ही बार चेष्टा करने से संसार के सभी कार्य प्रायः सिद्ध नहीं हो सकते। अधिकांश ऐसे कार्य हैं जिनके सिद्ध होने में नाना प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। किसी कार्य को सिद्ध करने के लिये दृढ़ चेष्टा के साथ, बार-बार विघ्न बाधाओं के उपस्थित होने और असफलता प्राप्त करने पर भी एकाग्र मन से उसमें तत्पर रहना 'अध्यवसाय' कहलाता है।

२. अध्यवसाय और परिश्रम इत्यादि के द्वारा ही मनुष्य इस संसार में उन्नति पथ पर अग्रसर होता है। कार्य चाहे कठिन से कठिन क्यों न हो, अध्यवसायी उसे उत्साहपूर्वक कर ही डालता है। ज्यों-ज्यों बाधाएँ उपस्थित होती है, त्यों-त्यों अध्यवसायी में परिश्रमशीलता और सहिष्णुता इत्यादि गुणों की वृद्धि होती जाती है, तथा कार्य करनेवाली शक्तियों का विकास होता जाता है। नदी, जब आगे पर्वत इत्यादि बाधाओं को पाती है तब वह और अधिक वेग से बहने लगती है। इसी प्रकार कार्यक्षेत्र में जब नाना प्रकार को आपत्तियाँ सामने आती हैं तब अध्यवसायी की शक्तियाँ पहले से और अधिक कार्य कर दिखलाती हैं। यह अध्यवसाय का ही प्रभाव है कि कितने साधारण अवस्थावाले मनुष्यों ने अपनी उन्नति दिखाकर संसार के मुख को उज्ज्वल कर दिया है।

३. जो अध्यवसायी है वह ऐसे कार्य अपने हाथ में लेता है जिसको कर

सके। वह कठिन कार्यों से नहीं डरता, परन्तु अपनी पहुँच से बाहर के कार्यों को कभी नहीं छूता। वह जब किसी कार्य को पूर्ण करने के लिये बीड़ा उठाता है तब उसको बिना किये नहीं छोड़ता, चाहे उसमें लाख बाधाएँ क्यों न पहुँच जायँ। नीतिकारों ने कहा है कि जो मनुष्य अध्यवसाय का अवलम्बन न करके व्यर्थ इधर-उधर भटकता फिरता है वह कभी भी अपनी या समाज की उन्नति नहीं कर सकता।

४. स्काटलैंड के राजा 'राबर्टब्रूस' ने राज्य-प्राप्ति के लिये लगातार छः बार सेनाओं को इकट्ठा करके शत्रुओं से लड़ाई की, परन्तु हर बार हारता ही गया। वहाँ उसने एक मकड़े को देखा जिसने कि अपने धागे के सहारे एक वृक्ष पर चढ़ने के लिये बार-बार चेष्टा की; प्रत्येक बार गिरता ही गया। अन्त में उसने सातवीं बार चेष्टा की और वृक्ष पर चढ़ ही गया। यह देखकर राजा ब्रूस का भी साहस बढ़ा। उसने जंगल से लौटकर सेना इकट्ठी की और शत्रुओं पर हमला कर दिया तथा उन्हें खदेड़कर राज्य प्राप्त कर लिया। अतः, हमलोगों को उचित है कि इस कहानी से शिक्षा लाभ करें और अध्यवसायी बनकर देश के मुख को उज्ज्वल कर दें।

शिक्षक के प्रति विद्यार्थी का कर्त्तव्य

१. शिक्षक से विद्यार्थी का सम्बन्ध और उपकार। २. छात्रकर्त्तव्य—पढ़ने के समय—पढ़ चुकने के पीछे—उदाहरण। ३. उपसंहार।

१. शिक्षक हमें विद्या पढ़ाते हैं। जिससे हम सुखपूर्वक संसारयात्रा तै करते हैं तथा हिताहित और धर्माधर्म को पहचानते हैं। माता-पिता हमें पाल-पोस कर बड़ा बनाते हैं, परन्तु कैसा मनुष्य ! पहाड़ के एक रुखड़े पत्थर के समान। वह सच्चे शिक्षक ही की कृपा है कि उनके ज्ञानोपदेश से हममें मानसिक बल आता है, हमारा अन्तःकरण सच्चे गुणों से विभूषित हो जाता है और हम उन्नति के सच्चे नियमों को सीखते हैं, अर्थात् हमारा रुखड़ापन सदा के लिये दूर हो जाता है। जिस प्रकार सन्तान की उन्नति देखकर माता-पिता को अनुपम आनन्द होता है, उसी प्रकार विद्यार्थी की उन्नति और विद्वत्ता से शिक्षक को भी आनन्द होता है। स्मृति के वचनानुसार विद्या-दाता शिक्षक भी हमारे पाँच पिताओं में से एक पिता है। अतः विद्यार्थी को उचित है कि शिक्षक को पिता के समान माने।

२. विद्यार्थी को चाहिये कि पढ़ने के समय शिक्षक की बातों को मनोयोग-पूर्वक सुने। जो ऐसा नहीं करता उसे विद्या नहीं आती और परिणाम में कष्ट भोगना पड़ता है। किसी समय शिक्षक से अशिष्ट व्यवहार न करे। जब शिक्षक से भेंट हो, सम्मान के साथ उनको प्रणाम करे और सदा नम्र बना रहे। यदि शिक्षक किसी कार्य के लिये आज्ञा दें तो उसे उसी क्षण कर डाले। शिक्षक जिस कार्य के लिये निषेध करें उसे कभी न करें।

शिक्षक के आदेश का प्रतिपादन करना या उनकी अवज्ञा करना विद्यार्थी को उचित नहीं। कारण, सच्चे शिक्षक कभी अनुचित कार्य करने के लिये आज्ञा नहीं दे सकते। यदि विद्यार्थी से कोई अनुचित कार्य हो जाय तो उसे उचित है कि शिक्षक के सामने स्वीकार कर ले। उनके दण्ड से डरकर 'नहीं' कहना अपने में बुरे गुणों को भरना है। हमें समझ रखना चाहिये कि शिक्षक हमारे शत्रु नहीं, वे हमारी मङ्गलकामना ही से प्रेरित होकर हमें दण्ड देंगे।

जो शिष्ट विद्यार्थी है वह सर्वदा शिक्षक का प्रीतिभाजन बना रहता है। जब वह शिक्षा प्राप्तकर कार्य में पैर रखता है तब भी अपने शिक्षक की खोज-खबर किया करता है। सच्चा विद्यार्थी धन और नाम प्राप्त करने पर भी शिक्षक के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने में कभी भी नहीं चूकता। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस बात को सच्ची करके दिखा दिया है। उन्होंने विद्या, यश और धन प्राप्त करके देश में अगुए का स्थान पाया; परन्तु जब वे कलकत्ते से घर जाते थे, अपने प्रथम शिक्षक (पाठशाला के गुरु) की सेवा में अवश्य उपस्थित होते थे और उनके अभाव को सदा दूर किया करते थे।

३. गुण के अनुसार सभी वस्तुओं का मोल ठीक कर सकते हैं, परन्तु ज्ञान अमूल्य वस्तु है। नाना प्रकार के कष्ट सहकर जिन शिक्षकों ने शिक्षा और उपदेश द्वारा हमें ज्ञानरत्न दिया है उनके हम कैसे ऋणी हैं, इसका वर्णन नहीं हो सकता। इस ऋण से मुक्त होने के लिये हमारे पास कोई भी सम्पत्ति नहीं है। अतः यह उचित है कि हम सदा उनके कृतज्ञ बने रहें तथा मन, कर्म, वचन से उनकी भक्ति किया करें। यदि हम ऐसा करें तो सम्भव है कि

उक्त ऋण का आंशिक परिशोध हो जाय। आरुणि की गुरुभक्ति और एकलव्य की गुरुदक्षिणा इसके सच्चे उदाहरण हैं।

एकहि अक्षर शिष्य को जो गुरु देत बताय।
धरती पर सो द्रव्य नहीं, देकर ऋण उतराय॥

माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य
(Duty towards Parents.)

१. परिचय। २. सन्तान के लिये माता-पिता क्या करते हैं और सन्तान को क्या करना चाहिये? ३. उदाहरण। ४. आधुनिक। ५. उपसंहार।

१. हम संसार में जिन पूज्य माता-पिता से उत्पन्न हुए हैं—देह का प्रत्येक अंश, मन की प्रत्येक प्रवृत्ति, मस्तिष्क की प्रत्येक शक्ति पाकर हम जिनकी दूसरी मूर्ति हैं—जिनके कठिन यत्न, अमानुषिक परिश्रम और अटल सहिष्णुता से हम जन्मकाल से युवावस्था तक नाना प्रकार की विपत्तियों से बचे हैं, पले हैं और बढ़े हैं—जिन के निःस्वार्थ प्रेम को देखकर मनुष्यगण उन्हें प्रत्यक्ष देवता समझते हैं—उनके प्रति हम पुत्र-पुत्रियों का क्या कर्त्तव्य है, इसका वर्णन हमसे नहीं हो सकता!

२. माता-पिता वास्तव में साक्षात् देवता है। देवता की दया, दान, आशीर्वाद जीवमात्र के लिये सापेक्ष तो है ही, परन्तु माता-पिता की सन्तान के लिये मंगलमयी कार्यावली क्षण-क्षण प्रेम टपकाती है। उनकी क्षणमात्र की असावधानता और उपेक्षा से बच्चा नाना प्रकार की विपत्तियों में फँस जा सकता है और अन्त में प्राणों से भी हाथ धो सकता है। सन्तान की सुखस्वच्छन्दता के लिये वे प्राण-पण से कैसी चेष्टा करते हैं, इसका अनुभव अज्ञानी और उन्मत्त को भी होता है। आवश्यकता पड़ने पर माता-पिता अपनी सन्तान की सुखशान्ति और शिक्षा के लिये द्वार-द्वार पर भीख माँगते हैं और स्वयं भूखे रहकर सन्तान को भोजन कराते हैं। यदि सन्तान कभी बीमार पड़ती है तो उनकी चिन्ता की सीमा नहीं रहती। स्वयं रोगी के समान बिना भोजन और नींद के उसकी मंगलकामना के लिये व्याकुल हो जाते हैं और अपने प्राण तक दे देने के लिये उद्यत रहते हैं।

जब दुधमुहाँ बच्चा अस्वस्थ हो जाता है तब उसकी माता स्वयं उपवास करती और औषध खाती है, यह सभी जानते हैं। अपने बच्चों को विद्वान्,

धार्मिक और यशस्वी देख माता-पिता को जो आनन्द होता है वह कदाचित् ही और किसी को होता होगा। सन्तान जब परदेश में रहती है तब माता-पिता के प्राण भी वहीं रहते हैं, इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। अतः यह बात भली-भाँति सिद्ध है कि इस संसार में माता-पिता के समान हमारा हितैषी कोई भी नहीं। अब सोचना चाहिये कि इन उपकारों का बदला चुकाने के लिये हममें योग्यता है? कदापि नहीं। अतएव यह उचित है कि मन, वचन और कर्म से आज्ञानुवर्ती रहकर उनकी सेवा-शुश्रूषा में सदा लगे रहें, देवता समझ उनकी भक्ति करें और जब वे वृद्ध हो जायँ तब उनकी सारी असुविधाओं को दूर कर अपने को उनकी बुढ़ापे की छड़ी बना दें।

२. पुराणादि ग्रन्थों के देखने से जान पड़ता है कि भारत-वासी पुराकाल ही से अपने माता-पिता को देवता समझ कर उन्हें पूजते चले आ रहे हैं, यहाँ तक कि बहुत से महापुरुषों ने अपने माता-पिता की आज्ञा को मान असाध्य को भी साध लिया है। अयोध्यापति महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी ने अपने पिता के वचन को सत्य करने के लिये राजपाट छोड़ वनगमन करके पितृभक्ति की पराकाष्ठा दिखा दी। महात्मा भीम माता की आज्ञा पाकर राक्षस के मुख में जाने से भी विचलित न हुए। शान्तनुतनय देवव्रत ने पिता की तृप्ति के लिये पैतृक साम्राज्य को त्याग दिया और जीवन भर अविवाहित रहकर कठोर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया, जिससे वे अभी तक भीष्मपितामह के नाम से प्रातःस्मरणीय हो रहे हैं। ऐसे-ऐसे सैकड़ों उदाहरण मातृ-भक्ति और पितृभक्ति के हमारे यहाँ मिलते हैं और आगे भी मिलते रहेंगे।

४. पहले माता-पिता की आज्ञा पालने में पाप-पुण्य का विचार नहीं था। उनकी आज्ञा का प्रतिपालन ही महाधर्म समझा जाता था, किन्तु आजकल, शोक है कि यह धारणा ही बदल गई है। अनेक आधुनिक शिक्षित जेंटिलमैनों की तनिक भी श्रद्धा 'माता-पिता' के प्रति नहीं देखी जाती। वे उन बूढ़े माता-पिता का पालन करना व्यर्थ भार समझते हैं। कितने ही उन्हें असभ्य, अशिक्षित और भोंदू समझते हैं और सभ्य समाज में उन्हें अपने 'माता-पिता' बताना लज्जा की बात समझते हैं। धिक् हमारी शिक्षा और हमारी सभ्यता को! कृतज्ञता लेशमात्र भी नहीं! क्या हममें अब मनुष्यत्व नहीं है! क्या हम सचमुच पशु हैं?

५. पशु-पक्षी में भी माता-पिता के प्रति श्रद्धा देखी जाती है। हम तो सृष्टि में प्रधान जीव हैं और हमी में उनके प्रति श्रद्धा न हो यह दुर्भाग्य की बात है! अतएव हमें चाहिये कि प्राणपण से उनकी आज्ञा पालें और उनकी भक्ति में लगे रहें। उनके अभावों और असुविधाओं को दूर करें। यदि हमसे उनकी आत्मा को सन्तोष मिला तो समझो कि हमारा जीवन सार्थक हुआ। खूब समझ रक्खो कि उनके आशीर्वाद और शाप ही में हमारा उदय और अस्त है।

क्षमा (Forgiveness.)

१. गुण। २. क्षमारहित पुरुष—क्षमाशील पुरुष। ३. गाली देना—वशिष्ठ और विश्वामित्र। ४. उपसंहार।

क्षमा कुछ साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष में क्षमा नहीं वह अति क्षुद्र समझा जाता है। जो ऐसे होते हैं कि किसी से कुछ अपकार की शंका हुई कि उसका अपकार करने को तैयार, किसी के मुँह से भ्रम से भी कुछ कड़ा शब्द निकला कि आप गालियों की वर्षा करने लगे, किसी ने अल्प अपराध भी किया तो झट उसपर टूट पड़े, वे अति तुच्छ समझे जाते हैं। जिनको क्षमा नहीं, उनके लड़के बड़े दुर्बल होते हैं, क्योंकि वे बात-बात में घूरे और घुड़के जाते हैं और बात-बात में मार खाते हैं। उनसे जी खोलकर कोई बात नहीं करता, क्योंकि यह आशंका सबको रहती है कि बातों में कोई अनुचित न हो जाय। जिसको क्षमा नहीं है उससे कितने ही काम चटपट में ऐसे अनुचित बन जाते हैं कि पीछे जन्मभर पछतावा रह जाता है। क्षमारहित पुरुष राजसभाओं में तो कभी टिक ही नहीं सकते। जैसे, किसी कटोरे में जल हो तो उसमें जहाँ कुछ और पदार्थ डाला कि जल उछला—यह स्वभाव अक्षम पुरुषों का है। समुद्र में पहाड़ आ पड़े तो भी उसका बढ़ना, घटना या फैलना कुछ नहीं विदित होता—यह स्वभाव क्षमावान् पुरुषों का है। जैसे, गजराज के पीछे कुत्ता भूकता हुआ चले और गजराज उसपर ध्यान न दे तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता, वैसे ही क्षमाशील पुरुष यदि तुच्छों की बक-बक पर ध्यान न दें तो उनकी क्या हानि है? यदि कोई गाली दे तो भी यों समझ लेना कि—

"जाके ढिग बहु गारी है हैं सोई गारी देहैं।
गारीवारो आप कहै हैं हमरो का घटि जैहैं॥"

कोई समझते हैं कि जो हमको गाली दे उसे यदि हम गाली न दें तो हमारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी, पर यह उलटी ही बात है। तुच्छों को गाली पर गाली देने से ही टंटा बढ़ता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किसको किसने गाली दी।

एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र में झगड़ा चला। झगड़ा इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें सब कोई ब्राह्मण कहा करें। यह बात उस समय के ब्राह्मणों को अच्छी नहीं लगी। वशिष्ठजी ने कहा कि आप क्षत्रिय हैं, पर तपस्वी हैं, इसलिये राजर्षि कहला सकते हैं, किन्तु ब्रह्मर्षि नहीं। इस बात पर विश्वामित्र ने वशिष्ठ से शत्रुता बाँधी। विश्वामित्र बार-बार अधिक तप करके आते और वशिष्ठजी से झगड़ा करते, पर वशिष्ठजी उनपर क्षमा ही रखते थे। पुराणों में ऐसा लिखा है कि एक बार विश्वामित्र बहुत तप करके आये और वशिष्ठजी को ललकार कर बोले कि हमें ब्राह्मण कहो, नहीं तो युद्ध करो। वशिष्ठजी एक दण्ड लेकर कुटी के बाहर खड़े हो गये। विश्वामित्र उनपर बहुत अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे, परन्तु वशिष्ठजी ने अपने तपोबल से सबको उसी दण्ड पर रोका। जब विश्वामित्र कोटि कला कर हारे तब वशिष्ठजी ने कहा कि भाई और कोई अस्त्र-शस्त्र बाकी हो तो चला लो, फिर हम भी आरम्भ करेंगे। तब विश्वामित्र ने हाथ जोड़े और वशिष्ठजी ने क्षमा की। कालान्तर में वशिष्ठजी अपनी कुटी में बैठे आँखें बन्द किये ध्यान कर रहे थे और अँधेरी रात थी। उस समय विश्वामित्र के चित्त में यह बात आई कि जितने ब्राह्मण हैं वे वशिष्ठ ही पर ढलते हैं और कहते हैं कि वशिष्ठ यदि ब्राह्मण कहें तो हमलोग भी ब्राह्मण कहेंगे और वशिष्ठ ऐसा दुष्ट है कि चाहे कुछ हो वह हमें ब्राह्मण न कहेगा। अतः, इस अँधेरे में वशिष्ठ का सिर काट डालना चाहिये। यह विचार कर चोर की भाँति वे तलवार ले वशिष्ठ की कुटी में घुसे। दैवात् वशिष्ठ की समाधि खुली। वशिष्ठ ने पूछा कौन है? तब विश्वामित्र ने कहा—तुम मुझे ब्राह्मण नहीं कहते, इसलिये तुम्हारा सिर काटने आया हूँ। वशिष्ठ ने कहा—"आप ही सोच लीजिये। क्या, जो पाप आप करने आये हैं ऐसे ही ब्राह्मणों के कर्म होते हैं? क्या ऐसे ही स्वभाव के भरोसे आप ब्राह्मण बनना चाहते हैं? यह सुनते ही विश्वामित्र लज्जित हो गये और तलवार दूर

फेंक प्रणाम कर बैठ गये और अपराध क्षमा कराने लगे। वशिष्ठजी ने कहा:— "हमें कुछ बदला नहीं लेना है कि आप क्षमा माँगें, पर देखिये कि जिस समय आप अहंकार से ऊँचे बनने का डंका दे युद्ध का डौल बाँधते थे, उस समय सबकी दृष्टि में आप छोटे जँचते थे और अब आप हाथ जोड़े अपने को तुच्छ समझे बैठे हैं तो हमारी दृष्टि में आप ऊँचे जान पड़ते हैं। इस समय आपके हृदय में अहंकार नहीं, छल नहीं, ईर्ष्या नहीं, मद नहीं, मत्सर नहीं। बस, ऐसा हृदय रखिये तो आप सबसे बड़े हैं।" विश्वामित्रजी को यह सुन बहुत बोध हुआ और वशिष्ठजी का इतना भारी क्षमा-गुण देख सबको आश्चर्य हुआ।

इसलिये यही चित्त में स्थिर करके रखना चाहिये कि—

"छमा सकल गुण सों बड़ो, छमा पुन्य को मूल।
छमा जासु हिरदै रहै, तासु दैव अनुकूल॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत बसु जाम।
छमाशील निज गुनन तें, सुखी रहत सब ठाम॥"

पं० अम्बिकादत्त व्यास

अमिताचार (Intemperance)

१. परिचय। २. परिणाम। ३. मान-मर्यादा, सम्पत्ति और स्वास्थ्य की हानि। ४. अमिताचारी की शोचनीय अवस्था। ५. उपसंहार।

१. मनुष्य क्षणिक सुख के लिये ऐसा लालायित रहता है कि वह जिस कार्य में सुख का कुछ भी आभास पाता है, भावी परिणाम को बिना विचारे उसकी ओर दौड़ पड़ता है। संसार में ऐसे अनेक कार्य हैं जिनके आरम्भ में बड़ा आनन्द मिलता है; परन्तु उनका परिणाम बड़ा ही भयंकर है। उन कार्यों में अमिताचार प्रधान है। अमिताचार के बन्धन में पड़कर मनुष्य नाना प्रकार की व्याधियों को सहता है और अकाल ही में काल की चक्की में पिस जाता है।

२. मनुष्य को सब प्रकार से हानि पहुँचानेवाले दोष-समूहों का राजा अमिताचार ही है। वह ऊपर से ऐसा आनन्ददायक जान पड़ता है कि मनुष्य के भावी हानि-लाभ का कुछ भी विचार नहींर खता। वह शास्त्र की आज्ञा को नहीं मानता, इसे तो वह सुख और विलास का प्रतिबन्धक समझ तुच्छ दृष्टि से देखता है। वह व्यग्रता के साथ कुकार्यों के पीछे लग पड़ता है

और जब शीघ्र ही उनके कुफल पा जाता है तब पश्चात्ताप करता हुआ शास्त्र की उपयोगिता समझने लगता है, परन्तु इस पछताने ही से क्या उसका शेष जीवन पार हो जाता है ? अतः हमें उचित है कि मिताचारी बनें, मन को रोकें और अमिताचार से सदैव सतर्क रहें।

३. अमिताचारी मनुष्य आदर-मान, बल-पौरुष और धन-सम्पत्ति सभी से हाथ धो बैठता है। उसकी संसार में निन्दा फैल जाती है। जब वह समाज में बोलने-बैठने योग्य नहीं रहता, सब कोई उसे देखकर घृणा करते हैं और वह किसी के विश्वास योग्य भी नहीं रह जाता है। जिस अमिताचार के पीछे लट्टू हो निखट्टू की नाईं यत्र-तत्र दौड़ने लगता है वही उसकी दुर्गती करके अन्त में कौड़ी के तीन बना देता है। बपौती या अपना कमाया धन उड़ा देने पर उसे एक टुकड़ी रोटी के लिये द्वार-द्वार हाथ पसारना पड़ता है। यदि भिक्षा मिल गई तो ठीक और यदि गाली सुननी पड़ी तो उस ग्लानि में प्राण त्यागने की इच्छा हो जाती है।

मनुष्य को स्वास्थ्यरक्षा के निमित्त शरीर सम्बन्धी कितने ही नियमों का पालन करना पड़ता है, परन्तु स्वेच्छाचारी से यह एकदम असंभव है। वह भक्ष्याभक्ष्य, पानापान इत्यादि का विचार न करके इच्छानुसार आहार-विहार करता है जिससे वह रोगी हो अकाल ही में इस संसार से चल बसता है।

४. अमिताचारी की दशा अत्यन्त ही शोचनीय रहती है। वह सदा इन्द्रियों को सुख पहुँचाने की मृगतृष्णा में पड़ा रहता है, परन्तु उसकी इन्द्रियाँ कभी तृप्त नहीं होतीं। लालसा सदा बढ़ती ही जाती है और जब यह पूर्ण नहीं होती तब उसे कठिन अशान्ति का सामना करना पड़ता है। बस, इसी प्रकार भँवर-जाल में पड़ा रहकर वह मनुष्यत्व को छोड़ देता है और चिन्तासागर में ऊबडूब करता रहता है।

५. अमिताचारी मनुष्य के कुकार्यों से केवल उसीको नहीं—वरन् समस्त देश को कष्ट उठाना पड़ता है। वह अभागा वंश और समाज को संकट में डाल देता है, सबके मस्तक को झुका देता है और विपत्ति-सागर में देश को बहाकर उसे परावलम्बन की बेड़ी पहना देता है। अतः, हम लोगों को उचित है कि इस दुर्गुण से सदा बचे रहें और निर्मल हृदय से कार्यक्षेत्र में प्रवेश करें।

आत्मगौरव (Self-respect)

१. परिचय । २. इसके लिये क्या करना चाहिये । ३. लाभ । ४. आदर्श—उदाहरण । ५. उपसंहार ।

१. आत्मगौरव का होना मनुष्य के लिये बहुत ही आवश्यक है । हमलोग अपने मान, अपनी प्रतिष्ठा के लिये गला फाड़-फाड़कर चिल्लाया करते हैं, परन्तु यह गौरव कुछ चिल्लाने और भटकने से नहीं मिलेगा जब तक हम स्वयम् बलवान न होंगे, हमें प्रतिष्ठा मिल नहीं सकती और न हम गौरवान्वित हो सकते हैं ।

२. जो अपनी सहायता आप करते हैं ईश्वर भी उनकी सहायता करता है बस, जब हम अपनी प्रतिष्ठा, अपना गौरव आप करेंगे तब अवश्य ही ईश्वर हमारी सहायता करेगा और संसार हमारी प्रतिष्ठा करने लगेगा ।

आत्मगौरव के लिये हमें अपने कई सुखों को निछावर कर देना पड़ेगा । हमें ठकुरसुहाती नहीं कहनी होगी । हमलोग व्यर्थ बात की बात में दूसरों के सामने गिड़गिड़ाते हैं, अपनी वंशमर्य्यादा छोड़ते हैं और लल्लोपत्तो की बात सुनाया करते हैं इससे हमारी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती, इससे तो हम और हीन तथा अप्रतिष्ठित समझे जाते हैं । हमें इस खुशामद की बदौलत भले ही कोई पदवी मिल जाय, परन्तु समाज में हम कभी भी बड़े नहीं समझे जा सकते और यह उचित है भी । भला, आत्मगौरव छोड़कर हमने जिस समाज या देश को कलंक लगाया और खुशामदी टट्टू बने, उसकी दृष्टि से हम कैसे बड़े हो सकते हैं ? हमारे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि हम शिष्टाचार को तिलांजलि दे दें और दूसरों के सिर पर चढ़ जायँ । हम यह कहते हैं कि आत्मगौरव के साथ सबसे नम्रता का व्यवहार करें । हाँ, यदि कोई हमें अवज्ञा की दृष्टि से देखें तो गौरव-रक्षा के लिये कायरता दिखाना उचित नहीं । हमें तो वहाँ प्राणों पर खेलना चाहिये । यही आत्मगौरव था जिसने हिन्दूधर्मरक्षक महाराणा प्रताप का मान मुगल बादशाह अकबर से कराया ! ठीक है, वीर ही वीर की प्रतिष्ठा करता है और जो रण से भागता है वह सबों की दृष्टि में पतित हो जाता है ।

३. जिसको आत्मगौरव का ज्ञान है, वह कभी कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता जिससे वंश, समाज और देश का अपमान हो । उसमें आत्मबल रहता

है, जिसके सहारे वह सदा फूला-फला रहता है। जिसे समाज में आत्मगौरव नहीं उसकी उन्नति नहीं हो सकती, जिस जाति ने आत्मगौरव त्याग दिया है वह--मरी जाति है और जिस देश ने अपनी प्रतिष्ठा छोड़ दी है उसकी सुख-सम्पत्ति बिदा हो गई। इस समय हमारे भारतवासियों की गति इसी ओर होना चाहती है। अब हमें चेतना और अपने आत्मगौरव को सँभालना चाहिये, नहीं तो पीछे सिवा पछताने के और कुछ भी हाथ न आवेगा।

४. आत्मगौरव, आत्मोत्सर्ग और आत्मसाहाय्य के लिये गौण उदाहरण तो छोड़ दीजिये। हमें अभी-अभी गये अंगरेजों ही से ये गुण सीखने चाहिये। बचपन ही से अँगरेजों में आत्मप्रतिष्ठा और जातीय मानमर्यादा का प्रवेश हो जाता है और वे अपने देश की उन्नति के लिये तन, मन और वचन से कटिबद्ध रहते हैं। एक बार फ्रांस की राजधानी पेरिस के एक स्कूल में खेल हो रहा था। एक लकड़ी के फाँदने का खेल था। बीस फरांसीसी और एक अँगरेज विद्यार्थी इस खेल में लगे थे। पहले एकाएक बीसों फरांसीसी बालक उसे फाँद गये। शिक्षकों ने अँगरेज विद्यार्थी को रुग्ण देखकर फाँदने से मना किया, परन्तु उसने नहीं माना और उत्तर दिया कि सब फाँदते है तब मैं क्यों रुकूँ। यह १० वर्ष का बालक रोगी होकर भी आत्मगौरव के जोश में चटपट फाँद तो गया, परन्तु कुछ ही देर में उसके प्राण निकल गये। मरते समय वह खुश था और यह कहता हुआ मरा—"कोई ऐसा न समझे कि अँगरेज फरांसीसियों की भाँति नहीं कूद सकता है।"

रामजी ने जटायु से स्वर्गगमन के समय कहा था—

"सीताहरण तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहिहि दसानन आई॥"

इसमें आत्मगौरव का कैसा भाव है।

५. कितने लोग आत्मगौरव और अभिमान को एक ही वस्तु समझते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है। गुणों के कारण घमण्ड करना अभिमान है, परन्तु आत्मगौरव घमण्ड नहीं। वह तो आत्मा की पवित्र प्रतिष्ठा है, उसका आदर-मान है, ज्ञान का सार है, जीवन का तत्व है, विद्या का फल है और मनुष्य का मनुष्यत्व है। हमलोगों को उचित है कि अभिमान से बचें, परन्तु आत्म-गौरव को हाथ से न जाने दें।

चरित्र-पालन

१. संज्ञा—आवश्यकता है ! २. चरित्र-रक्षा क्या है ? ३. दुश्चरित्र से मनुष्य की गति—चरित्रपालन के मुख्य अंग । ४. धनी कौन है ?—चरित्रवान् की प्रतिष्ठा । ५. चरित्र और शील । ६. चरित्रपालन का समाज पर असर । ७. उपसंहार ।

१. चरित्रता में कहीं पर किसी तरह का दाग न लगने पावे इस बात का नाम चरित्रपालन है । हमारे लिये चरित्रपालन की आवश्यकता इसलिये मालूम होती है कि चरित्र को यदि हमलोग सुधारने की फिक्र न रक्खें तो उसे बिगड़ते देर नहीं लगती । उर्वरा धरती में लम्बी-लम्बी घास और कटीले पेड़ आप से आप उग आते हैं; परन्तु अन्न आदि के उपकारी पौधे यत्न और परिश्रम के उपरान्त लगते हैं । सच तो यह है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति ने चरित्र में विकार पैदा कर देनेवाले इतने प्रकार के प्रलोभन संसार में उपजा दिये हैं, जिनसे आकर्षित हो मनुष्य बात-की-बात में ऐसा बिगड़ जा सकता है कि फिर यावज्जीवन किसी काम का नहीं रहता। महल के बनाने में कितना यत्न और परिश्रम करना पड़ता है, पर जब वह बनकर तैयार हो जाता है तब उसे हटाते देर नहीं लगती ।

२. चरित्ररक्षा एक प्रकार सन्दली जमीन है जिनपर यश, सौरभ इत्र के समान बनाये जा सकते हैं अर्थात् जैसे गंधी सन्दल का पुट देकर उससे हर किस्म का इत्र तैयार करता है वैसे ही आदमी चरित्र का शुद्ध है तब वह हर तरह की योग्यता प्राप्त कर सकता है । शुद्ध चरित्रवाला मनुष्य सब जगह प्रतिष्ठा पाता है और वह जिस काम में सन्नद्ध होता है उसीमें पूर्ण योग्यता को पाकर हर तरह सरसब्ज होता है ।

३. जैसे मैला कपड़ा पहना हुआ मनुष्य जहाँ चाहता है वहाँ बैठ जाता है, कपड़ों में दाग लग जाने का ख्याल उस आदमी को बिलकुल नहीं रहता उसी तरह चलित वृत्त अर्थात् जिसके चालचलन में दाग लग गया है वह फिर बाकि अपने चरित्रों को भी नहीं बचा सकता, वरन् वह बिगड़ता जाता है। मन, जिह्वा और हाथ का निग्रह चरित्र पालन के मुख्य अंग हैं । जिन्होंने मन को कुपथ पर जाने से रोका है; जीभ को दूसरे की चुगली-चपाटी से या गाली देने से रोका है और हाथ को दूसरे की वस्तु चुराने से या बेइमानी से कुछ

लेने में रोक रक्खा है; वही चरित्रपालन में दूसरों के लिये उदाहरण हो सकता है। ऐसा मनुष्य कसौटी में कसे जाने पर खरे-से-खरा निकलेगा।

४. कुलीन समझदार साक्षर के लिये चरित्र में दाग लगना ऐसी कड़ी बात है कि उसे अपना जीवन भी बोझ मालूम होने लगता है। जैसे किसी कवि ने कहा है—"विन्ध्य पहाड़ के वन में भूखा-प्यासा ही मर जाना अच्छा; तिनकों से ढँके, साँपों के भरे हुए कुएँ में गिरकर प्राण दे देना श्रेष्ठ; पानी के भँवर में डूबकर बिला जाना उत्तम है; पर शिष्ट पढ़े-लिखे मनुष्य का चरित्र से च्युत हो जाना अच्छा नहीं।" रुपया पैसा हाथ का मैल है, आता-जाता रहता है, परन्तु बिगड़ती बात फिर नहीं बनती, इसीलिये धन का दरिद्र, दरिद्र नहीं कहा जा सकता, यदि वह सुचरित्र में आढ्य हो। जिनकी आँख का पानी ढरक गया है उनके लिये चरित्र-पालन कोई बड़ी बात नहीं है और न इसकी उन्हें कुछ कदर है, किन्तु जो चरित्र को सबसे बड़ा धन माने हुए हैं वे अत्यन्त संयम के साथ सावधानी से संसार में निबहते हैं। यावत् धर्म, कर्म और परमार्थ-साधन सबका निचोड़ वे इसीको मानते हैं। ऐसे लोग जन-समाज में बहुत कम पाये जाते हैं। हजारों में एक कहीं ऐसे होते हैं। ऐसे ही लोग समाज में अगुआ, राह दिखानेवाले, आचार्य, गुरु, रसूल या पैगम्बर हुए हैं और तथा शिष्ट कहलाये हैं। उनके मुख से शब्द निकलते हैं तथा उनका उठना-बैठना, चलना-फिरना अलग चरित्रपालन में उदाहरण होता है। जो प्रतिष्ठा बड़े-से-बड़े राजाधिराज, सम्राट्, बादशाह, शाहनशाह को दुर्लभ है वह चक्रपालक को सुलभ है और यह प्रतिष्ठा चरित्रपालन करनेवाले को सहज ही मिल गई हो सो नहीं, वरन् सच कहिये तो बड़े क्लेश उठाने के उपरान्त मनुष्य इसमें पक्का हो सकता है।

५. चरित्र से बहुत मिलती हुई बात शील है। शील का चरित्र ही में अन्तर्भाव हो सकता है। चरित्रपालन में चतुर शीलसंरक्षण में भी प्रवीण हो सकेगा। किन्तु शीलसंरक्षण में विलक्षण मनुष्य चरित्रपालन में प्रपीण नहीं हो सकता है। अँगरेजी में शील के लिये "कांडक्ट" (Conduct) और चरित्र के लिये "कैरेक्टर" (Character) शब्द है। आदमी के बाहरी चालचलन का सुधार शील या "कांडक्ट" अथवा "बिहेवियर" (Behaviour) कहा जायगा, किन्तु जब तक मनुष्य का आभ्यन्तर शुद्ध न होगा तब तक बाहरी सभ्यता "चरित्र" नहीं कहलावेगी।

६. श्रीरामचन्द्र, युधिष्ठिर, बुद्धदेव तथा महात्मा ईसा के चरित्रपालन का समाज पर वैसा ही असर होता है जैसा रक्तसंचालन का शरीर पर। सुस्निग्ध, पुष्ट भोजन से जो रुधिर पैदा होता है वह शरीर को पुष्ट और नीरोग रखता है। वैसे ही जिस समाज में चरित्रपालन की कदर है और लोगों को इसका खयाल है कि हमारा चरित्र दगीला न होने पावे, वह समाज पुष्ट पड़ जाता है और उत्तरोत्तर उसकी उन्नति होती जाती है। जिस समाज में चरित्रपालन पर किसी की दृष्टि नहीं है और न किसी को "चरित्र किस तरह बनता बिगड़ता है" इसका कुछ खयाल है, उस बिगड़े समाज का भला क्या कहना? कुपथ्य भोजन से विकृत रुधिर पैदा होकर जैसे शरीर को व्याधि का आलय बना नित्य उसे क्षीण और जर्जर करता जाता है, वैसे ही लोगों के कुचरित्र होने से समाज नित्य क्षीण, निःसत्त्व और जर्जर होता जाता है। जिस समाज में चरित्र की बहुतायत होगी वह समाज सर्वोपरि देदीप्यमान होकर देश और जाति की उन्नति का द्वार होगा।

हमारी प्राचीन आर्यजाति चरित्र की खान थी, अफसोस! जो कौम किसी समय दुनिया के सब लोगों के लिये चरित्रशिक्षा में उच्च थी वह आज दिन यहाँ तक गई-बीती हो गई कि दूसरे से सभ्यता और चरित्रपालन की शिक्षा लेने में अपना अहोभाग्य समझती है। समय खेलाड़ी ने हमें अपना खिलौना बनाकर जैसा चाहा वैसा खेल खेला, देखें आगे अब वह कौन खेल खेलता है।

—पं० बालकृष्ण भट्ट

चारुचरित्र

१. मनुष्य के जीवन का महत्व चारुचरित्र से सम्पादित होता है। २. व्यक्तिगत चरित्र का फल समाज पर पड़ता है—चरित्रवान् समाज का अगुआ होता है। ३. चारुचरित्र का पवित्र विशाल मंदिर सिद्धान्तों की दृढ़ता पर खड़ा रहता है। ४. आत्मगौरव चरित्र का प्रधान अंग है—चरित्रहीन पुरुष गरीब है। ५. पवित्र चरित्र के मुख्य-मुख्य अंग।

१. मनुष्य के जीवन का महत्त्व जैसा चारुचरित्र से सम्पादित होता है वैसा धन, ऊँचा पद, ऊँचे दर्जे की तालीम इत्यादि के द्वारा नहीं हो सकता। समाज में जैसा गौरव, वैसी प्रतिष्ठा वा इज्जत, जैसा जोर, लोगों के बीच में शुद्ध चरित्र वाले का होता है वैसा बड़े-से-बड़े धनी, ऊँचे-से-ऊँचे ओहदेवालों को कहाँ? धन-

वान् या विद्वान् को जो प्रतिष्ठा दी जाती है या सर्वसाधारण में जो यश या नामवरी उसकी होती है उसकी स्पर्धा सबको होती है। कौन ऐसा होगा जो अपने वैभव, अपनी विद्या या योग्यता से औरों को अपने नीचे रखने की इच्छा न रखता हो! शांति का एकमात्र आधार—केवल चारुचरित्र वाले में अलबत्ता यह नहीं देखा जाता। वह कभी यह नहीं चाहता कि चरित्र के पैमाने में, अर्थात् चरित्र क्या है—इसकी नापजोख में दूसरा हमारे आगे न बढ़ने पावे।

२. कार्य-कारण का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सूत्र के अनुसार देश या जाति का एक-एक व्यक्ति सम्पूर्ण देश या जाति के सभ्यता-रूप कार्य का कारण है, अर्थात् जिस देश या जाति में एक-एक मनुष्य अलग-अलग अपने चरित्र के सुधार में लगे रहते हैं वह समग्र देश-का-देश उन्नति की अन्तिम सीमा तक पहुँच कर सभ्यता का एक बहुत अच्छा नमूना बन जाता है। नीच-से-नीच कुल में पैदा हुआ हो, बहुत पढ़ा-लिखा भी न हो, बड़ा सुभीतेवाला भी न हो, न किसी तरह की कोई असाधारण बात उसमें हो, किन्तु चरित्र की कसौटी में यदि वह अच्छी तरह कस लिया गया है तो उस आदरणीय मनुष्य का संभ्रम और आदर समाज में कौन ऐसा कम्बख्त होगा जो न करेगा और ईर्ष्यावश उसके महत्व को मुक्तकण्ठ से स्वीकार न करेगा! नीचे दरजे से ऊँचे को पहुँचाने के लिये चरित्र की कसौटी से बढ़कर और कोई दूसरा जरिया नहीं है। चरित्रवान् यद्यपि धीरे-धीरे बहुत देर में ऊपर को उठता है, तथापि यह निश्चित है कि वह एक-न-एक दिन अवश्य समाज का अगुआ मान लिया जायगा। हमारे यहाँ के गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि, भिन्न-भिन्न मतों या सम्प्रदायों के चलाने वाले आचार्य, नबी, अम्बिया, औलिया आदि सब इसी क्रम पर आरूढ़ रह लाखों-करोड़ों मनुष्यों के गुरुगुरु 'देवतुल्य' माननीय और पूजनीय हुए; अपितु कितने ही उनमें से ईश्वर के अंश और अवतार माने गये।

३. यों तो दियानतदारी, सत्य पर अटल विश्वास, शांति, कपट और कुटिलाई का अभाव आदि चरित्रपालन के अनेक अंग हैं, किन्तु इन सब उत्तम गुणों की बुनियाद, जिसपर मनुष्य में चारुचरित्र का पवित्र विशाल मन्दिर खड़ा हो सकता है, अपने सिद्धान्तों का दृढ़ और उसूलों का पक्का होना है। जो जितना

ही अपने सिद्धान्तों का दृढ़ और पक्का है वह उतना ही चरित्र की पवित्रता में एक होगा। चरित्र की सम्पत्ति के लिये सिधाई तथा चित्त का अकुटिल भाव भी एक ऐसा बडा स्रोत है जहाँ से विश्वास, अनुराग, दया, मृदुता और सहानुभूति के सरल प्रवाह की अनेक धाराएँ बहती हैं। इनमें से किसी एक धारा में नियमपूर्वक स्नान करनेवाला मनुष्य भलमनसाहत, सभ्यता, आभिजात्य या कुलीनता तथा शिष्टता का नमूना बन जाता है। क्योंकि चतुराई बिना चित्त की सिधाई के, ज्ञान या विद्या बिना विवेक या अनुष्ठान के, मनुष्य में उत्पन्न होना कठिन है, किन्तु मनुष्य में एक प्रकार की शक्ति अथवा योग्यता अवश्य है, पर यह योग्यता उसकी वैसी ही है जैसी गिरह काटनेवालों में जेब या गाँठ काटकर रुपये निकाल लेने की योग्यता या चालाकी रहती है।

४. आत्मगौरव भी चरित्र का प्रधान अंग है। सुचरित्रसम्पन्न नीच काम करने में सदा संकुचित रहता है। प्रतिक्षण उसे इसके लिये बड़ी चौकसी रखनी पड़ती है कि कहीं ऐसा काम न बन पड़े कि प्रतिष्ठा में हानि हो। उसका एक-एक काम और एक-एक शब्द सभ्य समाज में नेक चलनी के सूत्र के समान प्रमाण में लिया जाता है। जिसके लिये उसने "हाँ" कहा फिर उसी के लिये उससे 'नहीं' कहलाना मनुष्य-मात्र की शक्ति के बाहर है। उत्कोच और किसी तरह का लालच दिखलाकर उसके उसूल को बदलवा देना या दृढ़ सिद्धान्तों से उसे अलग करना वैसा ही है जैसा प्रकृति के नियमों को बदल देना है। यह कुछ अत्यन्त आवश्यक नहीं है कि जो बड़े धनी हैं या किसी ऊँचे ओहदे पर हैं वे ही सच्ची शराफत या चोखी-से-चोखी सज्जनता अथवा नेकचलनी के सूत्र (Standard) हों। अपिच, गरीब तथा छोटा आदमी भी सज्जनता की कसौटी में अधिकतर चोखा और खरा निकल सकता है। किसी ने कहा—

अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतोहतः।

अर्थात् धन पास न होने से गरीब गरीब नहीं है वरन् जो सद्वृत्त, नेकचलनी से रहित है, वह गरीब है। धनी सब कुछ अपने पास रखकर भी सब भाँति भरा-पूरा है। उसे भय और नैराश्य कहीं से नहीं है। दैववश जिसका सब कुछ नष्ट हो गया, पर धैर्य, चित्त की प्रसन्नता, आशा, धर्म पर दृढ़ता, आत्मगौरव और

सत्य पर अटल विश्वास बना है उसका मानों सब बना है, कहीं पर किसी अंश में वह दरिद्र नहीं कहा जा सकता।

५. एक बुद्धिमान् ने इन बातों को पवित्र चरित्र के मुख्य-मुख्य अंग निश्चित किये हैं। लम्पटता का न होना, रुपये-पैसे के लेन-देन में सफाई, बात का धनी और अपने वादे का सच्चा होना, आश्रितों पर दया, मेहनत से न हटना, अपने निज परिश्रम और पौरुष पर भरोसा रखना, अविकत्थन अर्थात् अपने को बड़ा के न कहना—इनमें ये एक-एक गुण ऐसे हैं जिनपर किताब पर किताब लिखी जा सकती है। चारुचरित्र का एक संक्षिप्त विवरण हमने कह सुनाया। जिस भाग्यवान् में चरित्र के पूर्ण अंग हैं उनका क्या कहना! वह तो मनुष्य के तन में साक्षात् देवता या जीवन्मुक्त कोई योगी है। जिन बातों से हमारे में चरित्र आता है उनमें की दो-एक बातें भी जिसमें हैं वह धन्य है और प्रशंसा के योग्य है। ऊँचे दरजे की शिक्षा बिना चरित्र के सर्वथा निरर्थक है। चरित्र-सम्पन्न साधारण शिक्षा रखकर देश या जाति का जितना उपकार कर सकता है उतना सुशिक्षित, पर चरित्र का छूछा नहीं करेगा। —पं० बालकृष्ण भट्ट

ब्रह्मचर्य

१. परिचय। २. पढ़ने के मुख्य विषय में हमारी समझ। ३. वर्तमान आदर्श। ४. विद्यार्थी का सच्चा तप। ५. ब्रह्मचर्यहीन विद्यार्थी की गति। ६. विद्यार्थी कैसे बिगड़ते हैं? ७. सच्चरित्रता का मुख्य साधन। ८. उपसंहार।

१. ब्रह्मचारी के उपास्य धर्म को ब्रह्मचर्य कहते हैं, या यों कहिये कि जो ब्रह्मचर्य से रहता है वह ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचर्य का मुख्य सम्बन्ध है वीर्यरक्षा से—वीर्यरक्षापूर्वक जो विद्यार्थी विद्याध्ययन करता है, यथार्थ में वही ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचर्य के अनेक नियमों में जितेन्द्रियता का माहात्म्य बहुत बड़ा है। पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के बालक यज्ञोपवीत के अनन्तर गुरुकुल में वास कर ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करते थे, परन्तु अब यह व्यवस्था उठ-सी गई है। अब अध्ययन का नियम बिल्कुल बदल-सा गया है। ब्रह्मचर्य की ओर किसीका ध्यान नहीं रहा। एक ही दिन में चूड़ाकरण, उपनयन, वेदारम्भ और समावर्तन कर्म समाप्त हो जाते हैं। दूसरे ही दिन गार्हस्थ्य धर्म में प्रवेश करके द्विजकुमार विवाहसूत्र में बद्ध हो ब्रह्मचारी से गृहस्थ बन जाते हैं। यद्यपि ब्रह्मचर्य का पालन

मनुष्यमात्र के लिये कर्त्तव्य है तथापि कोई भारतवासी इस ओर विशेष लक्ष्य नहीं देता। इसीका यह परिणाम है कि आज सारा भारत दीन-हीन अवस्था में पड़ कर दूसरे का मुह ताक रहा है। बिना ब्रह्मचर्य के कोई उच्च उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। जो लोग ब्रह्मचर्य से च्युत हैं वे आप तो ब्रह्मतेज से हीन होते ही हैं, उनकी सन्तान भी निस्तेज होती है। उत्तरोत्तर ब्रह्मचर्य का लोप होने ही से यह देश अधोगति को प्राप्त हो गया है। जहाँ देखिये वहीं रोग, शोक, सन्ताप, आलस्य, निरुत्साह, साहसहीनता, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याडम्बर,, प्रेमशून्यता, अभक्ति, आदि अनेक दोषों का साम्राज्य फैल रहा है।

२. पढ़ने का मुख्य फल लोगों ने द्रव्योपार्जन समझ लिया है और उपार्जन की पहली सीढ़ी नौकरी मान ली गई है। पढ़ने से कोई-न-कोई नौकरी अवश्य मिलेगी यह धारणा प्रायः सभी छात्रों के मन में रहती है। यहाँ तक कि कितने ही राजा-महाराज वैतनिक सेवा को प्रतिष्ठामूलक समझ उसे चारतार्थ करते हैं। फिर जो छात्र केवल नौकरी ही के लिये विद्याध्ययन करते हैं वे नौकरी मिल जाने पर विद्या पढ़ना सफल समझें तो आश्चर्य ही क्या है! परन्तु जिस ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मनुष्य कठिन-से-कठिन साधन को अनायास सिद्ध कर सकते हैं, उसकी वे कभी स्वप्न में भी भावना नहीं करते। 'विद्या पढ़ो चाहे न पढ़ो, किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य करो' ऐसा कहनेवालों या इस सिद्धान्त पर चलनेवालों की संख्या बहुत कम है। आजकल जो लोग दूसरे की वैज्ञानिक विद्या, शारीरिक बल, सुन्दर सन्तान, यथेष्ट धन और नाना प्रकार के सुख देख-कर तरसते हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य की महिमा गाकर सन्तोष करना चाहिये। अन्य युग में इस ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही बड़े-बड़े ब्रह्मनिष्ठ ऋषिगण बड़े-बड़े योगी, बड़े-बड़े युद्धवीर, धीर, ऐश्वर्यवान् और धर्मनिष्ठ हो गये हैं, जिनके चरित्र इतिहास में लिखे हैं, और जिनके पवित्र नाम अब भी प्रातःस्मरणीय हो रहे हैं।

३. पहले की बात जाने दीजिये, वर्तमान युग में भी कितने ही आदर्श पुरुष विद्यमान हैं, जो अपने ब्रह्मचर्य का माहात्म्य प्रत्यक्ष दिखाकर लोगों को

शुभ मार्ग की ओर खींच रहे हैं। हम तो नवयुवक छात्रों से बार-बार यही नियमपूर्वक कहेंगे कि यदि आप पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सदृश दयालु, महर्षि दयानन्द सरस्वती के सदृश उदारचेता, राजा राममोहनराय के सदृश देशोपकारी, रजौर के राजा श्री बुद्धिनाथ चौधरी के सदृश बुद्धिमान्, महामहोपाध्याय श्री शिवकुमार मिश्र के सदृश विद्वान्, रासबिहारी घोष के समान दानशील और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सदृश साहित्यवेत्ता, कलियुगी भीम श्री राममूर्त्ति के समान बलिष्ठ तथा बापू के समान राष्ट्र-पिता होना चाहते हैं तो ब्रह्मचर्य का पालन करें।

४. ब्रह्मचर्य क्या है? मानो एक प्रकार का तप है। छात्रावस्था में तपोनिष्ठ होना नितान्त आवश्यक है। विद्यार्थियों के लिये ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करना ही तप है। लिखा भी है—'छात्रानामध्ययनं तपः।' पढ़ने के सिवा कभी अपने मन को विषयवासना की ओर न जाने देना ही तप है। जिस विद्या के पढ़ने से ज्ञान की प्राप्ति हो, ईश्वर की पहचान हो, अज्ञान का नाश और सुजनता का विकास हो, वह तप नहीं तो और क्या है? परन्तु आजकल बहुधा विद्या पढ़ने का फल उलटा ही देखने में आता है। कितने ही विद्यार्थियों में विलासप्रियता, अधीरता, अजितेंद्रियता आदि अनेक दोष देखे जाते हैं। देखकर देखनेवालों के मन में मर्मान्तिक पीड़ा होती है। यदि विद्या पढ़कर सच्चरित्र न हुए, कुछ देशोपकार न किया तो विद्या पढ़ने का फल क्या हुआ।

५. कितने ही विद्यार्थी तो ब्रह्मचर्य के अभाव से बराबर रोगी रहा करते हैं, जिससे उनके पढ़ने में बड़ी हानि पहुँचती है। वे भली-भाँति अपने पाठ को याद नहीं कर सकते। पाठ भली-भाँति याद न होने के कारण वे परीक्षा में फेल होकर खूब पछताते हैं। तीक्ष्ण बुद्धि होने पर भी वे मन्दबुद्धि की उपाधि से विभूषित होते हैं। जब कोई मोटी बुद्धिवाला सच्चरित्र छात्र पढ़ने में उनके आगे बढ़ जाता अथवा परीक्षा में अधिक नम्बर लाता है, तब उनके मन में ग्लानि की सीमा नहीं रहती। जब वे जितेन्द्रिय पुरुषों के तेजोपूर्ण मुख की दिव्य कान्ति देखते हैं तब उन्हें अपने मुर्झाते चेहरे पर अत्यन्त खेद उत्पन्न होता है और अत्यन्त दुःख तो

उन्हें तब होता है जब वे अपनी इस कान्तिहीनता का कारण तपोभ्रष्ट होना समझते हैं। जब वे मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास होते-न-होते बच्चों के बाप बन बैठते हैं तब अपने अविवाहित हृष्ट-पुष्ट युवा साथी के अदम्य उत्साह और जितेन्द्रियता को देख उन्हें बड़ी लज्जा होती है। पढ़ने-लिखने से उनका जी उचट जाता है। अपनी प्रणयिनी के रूप-लावण्य पर मुग्ध हो वे पढ़ना-लिखना भूल जाते हैं। विद्याध्ययन उन्हें भार-सा प्रतीत होता है। वे अपनी हृदयहारिणी के हृदय का हार बनने ही में अपने मानवजन्म को सार्थक समझते हैं, किन्तु कुछ ही दिनों में जब उनकी मोहनिद्रा टूटती है तब वे अपनी नासमझी पर घृणित आत्महत्या या गृहत्याग करने को तैयार हो जाते हैं। जिस ब्रह्मचर्य की उपेक्षा से मनुष्य मनमाना सुख पा नहीं सकता, उस ब्रह्मचर्य को हाथ से जाने देना मानो अपने हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना है।

६. छः-सात वर्ष के छोटे बच्चे जब पाठशाला में पढ़ने को जाते हैं; तब उनकी भोलीभाली सूरत, सरल स्वभाव और निर्मल चित्त देख किसे दया नहीं आती? उनके माँ-बाप की तो कोई बात नहीं, शायद कोई राक्षस भी ऐसा न होगा जो उनको बिगाड़ने की चेष्टा करे। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऐसे भोलेभाले बालक अपने ऊपर की श्रेणी के कुचरित्र विद्यार्थियों से कुव्यवहार की शिक्षा ग्रहण कर थोड़े ही दिनों में बिगड़ जाते हैं। उनका कोमल निष्कलङ्क हृदय अनेक दोषों का भण्डार बन जाता है जो लाख यत्न करने पर भी सद्गुण का स्थान नहीं बनने पाता। यदि ऊपर के दरजे के विद्यार्थी सच्चरित्र हों, सच्चे ब्रह्मचर्य के उपासक हों तो वे अपने अनुगत विद्यार्थियों का बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं—विद्यार्थियों का ही नहीं, सारे देश का उपकार कर सकते हैं।

७. विद्यार्थी की सच्चरित्रता के साथ गुरु का भी सच्चरित्र होना नितान्त आवश्यक है। बहुधा देखा गया है कि जो गुरु अच्छे पढ़े-लिखे हैं, परन्तु उनका चरित्र ठीक नहीं है। उनके संसर्ग से कितने ही विद्यार्थी भी कुचरित्र हो जाते हैं। जिन विद्यार्थियों के गुरु सच्चरित्र, धर्मनिष्ठ और दयालु होंगे उनके विद्यार्थी भी प्रायः वैसे ही होंगे। मनुष्यों का यह स्वभाव है कि वे अपने से श्रेष्ठ पुरुष की देखा-देखी काम करते हैं। गीता में लिखा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

जो लोग जिनके अधीन रहते हैं, उनके आचरण का कुछ-न-कुछ असर उनके आश्रितों पर अवश्य पड़ता है। अतएव यदि माँ-बाप अपनी सन्तानों को, गुरु अपने विद्यार्थियों को, पति अपनी पत्नी को, मालिक नौकरों को और राजा अपनी प्रजाओं को सच्चरित्र बनाना चाहे तो पहले आप अपने चरित्रगत दूषणों को दूर करें। जब हम अपने चरित्र को विशुद्ध रक्खेंगे, हमारे आश्रित भी अपने चरित्रसुधार की ओर जरूर ध्यान देंगे।

यद्यपि हमारी सरकार शिक्षकों की सच्चरित्रता पर विशेष ध्यान रखती है और वह चाहती है कि सच्चरित्र अध्यापकों के ही द्वारा छात्रगण सुशिक्षित हों तथापि ब्रह्मचर्य के निरादर से कुछ-न-कुछ गड़बड़ी मच ही जाती है। सच्चरित्रता का मुख्य साधन ब्रह्मचर्य है। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया, सच्चारित्रता मानो आप से आप उसके हाथ आ गई। बस, इसी एक ब्रह्मचर्य के भीतर छिपे हैं—सत्य, शौच, सन्तोष, क्षमा, दया, मैत्री आदि गुण, जो एक से एक बढ़कर दुर्लभ हैं। ब्रह्मचारी उन गुणों को अनायास पा सकते हैं।

८. ब्रह्मचर्य का गुण गाने में हम सर्वथा अक्षम हैं। जो उच्चाभिलाषी विद्यार्थी ब्रह्मचर्य की महिमा जानना चाहें वे स्वयं ब्रह्मचर्य की उपासना कर इसके महत्व का अनुभव करें। हमें आशा है कि हमारे विद्यार्थी अधिक नहीं तो बाईस वर्ष की उम्र तक इस अनमोल ब्रह्मचर्य का उचित रीति से पालन कर अतुलनीय तेज प्राप्त करके भारत का गौरव बढ़ायेंगे।

ब्रह्मचर्य के लिये न धन की, न समय की और न स्थानविशेष की आवश्यकता है। आवश्यकता है केवल दृढ़ प्रतिज्ञा की। जभी चाहिये, इसका नियम कीजिये, कुछ ही दिनों में आप ब्रह्मचर्य के मधुर फल का आस्वादन कर अवश्य कृतार्थ होंगे। आपका शरीर बलिष्ठ होगा, आपका आध्यात्मिक बल बढ़ेगा। आप देशोन्नति करने में समर्थ होंगे। विद्वन्मण्डली में आपका आदर होगा। आपके पास धन की कमी न रहेगी। सुन्दर, सुशील सन्तानों से भारत की शोभा बढ़ाकर अन्त में आप देवत्त्व लाभ करेंगे।

—पं० जनार्दन झा

विभेद और तुलना

(Contrast and Comparison.)

ग्रामवास और नगरवास

१. भूमिका। २. तुलना—नगर—ग्राम—दोनों की विशेष बातें—उदाहरण और कुछ। ३. दोनों का मिश्रण। ४. उपसंहार।

१. लोग समझते हैं कि बड़े पुरुषार्थी और बड़े विद्वान् को उत्पन्न करना नगर ही का काम है। ग्रामवासी कहाँ बड़े हो सकेंगे; क्योंकि वह प्रसिद्ध है कि गँवई के गँवार! वे समझते हैं कि गँवई में भैंस, बैल, भेड़, हल, मूसल, कोदारी और ऊखल आदि के अतिरिक्त और कुछ देखने को नहीं रहता और नगर में सब प्रकार के पदार्थों को देखने का अवसर मिलता है। जिसमें नगरनिवासी सब प्रकार से योग्य हो सकते हैं, परन्तु यह उलटी बात है। नागरिक घटनाएँ ऐसी होती हैं कि मनुष्य की मनुष्यता अवनत हो न कि उन्नत।

२. कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े नगरों के निवासियों पर काम के अनन्तर काम का ऐसा चक्कर रहता है कि उनके हृदय को क्षणमात्र का अवसर ही नहीं मिलता कि स्थिर हों और अपने में आवें। प्रतिक्षण सैकड़ों कार्य और घटनाएँ सिर पर गरजा करती हैं, चिन्ता की राक्षसी सदा छाती पर पाँव धरे ही रहती है और घटनाओं का ऐसा महाजाल बन जाता है कि उससे जी ज्यों-ज्यों सुलझना चाहता है त्यों-त्यों और भी उलझता ही जाता है। बस, रात को चिन्ताओं के सपने देखते प्रातःकाल हुआ, गाड़ियों के घर्राटों से नींद खुली और कामों की धमक मस्तिष्क में जा पहुँची और लगा जी उसी में चक्कर खाने। यदि टहलने का नाटक करना हुआ तो अंगों को लपेटकर प्रातःकाल की पवित्र वायु से शरीर बचाते, पतली-सी छड़ी हाथ में ले, पैर खटखटाते निकल पड़े तो आती-जाती गाड़ियों से बचते, झाड़ूदारों की झाड़ी हुई धूल को मुँह पर रमाते, मेहतरों की बगलों से सटकते और ऊँचे-ऊँचे घरों की दीवारों की मलीन जमीं के समीप से यात्रा करते चले आये। घर में घुसते ही पुरानी चिट्ठियों के उत्तर घसीटने बैठे और धम से नई डाक आ पहुँची। इतना काम फैल गया कि लड़का भी सामने आवे तो दुरदुराया जाता है। यों ही चटपट और-और काम करके खाने-

पीने का भी खेल कर लिया जाता है, पर उसमें मन कहीं और हाथ कहीं। बात की बात में दिन समाप्त हुआ। बस, बस थके-माँदे कुछ टहले कुछ संवाद-पत्र पढ़े, कुछ हा-हा ही-ही की और चिन्ता में चित्त को चक्कर खिलाते सोये। इस प्रकार नागरिकों को जीवन का कुछ भी आनन्द नहीं मिलता, किन्तु कार्य-प्रवाह के धक्के ही बचाते प्राण जाते हैं।

जो ग्राम में रहते हैं उनके कानों में गाड़ी के घर्राटों के चट्टे नहीं पड़ते, बल्कि पक्षियों की कुहू-कुहू की मधुरता छाई रहती है। वे घर बैठे ही शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु का आनन्द उठाते हैं। वे जिधर ही दृष्टि डालें उधर ही उन्हें कहीं पक्के आमों के बोझों से झुकी डाल दीख पड़ेगी और कहीं जामुन चुआते वृक्ष दीख पड़ेंगे। जहाँ तक दृष्टि जाय वहाँ तक धानों से तरंगित खेत और कहीं कमलों से भरे सरोवर दीख पड़ेंगे। धारोष्ण दुग्ध उसी क्षण का महकर निकला मक्खन तथा टटके फल और शाक ही स्वाभाविक भोजन है। शारीरिक परिश्रम उनका नित्य कर्म है, कृषिकर्म और वृष्टि के फल देखते-देखते उद्योग और दैव का माहात्म्य इन्हें सीखना नहीं पड़ता। उनके शरीर में सुकुमारता का रोग नहीं, उनका दीपन प्रबल रहता है, अङ्गों में शक्ति रहती है और इसीलिए वे चिरंजीवी होते हैं और इन्हीं कारणों से उदारचरित और महापुरुष होने के योग्य मस्तिष्क उन्हीं का रहता है। अतएव नागरिक शिक्षा पाने पर भी उतना बड़ा पुरुष नहीं होता जितना दिहाती पुरुष थोड़े समय तक शिक्षा पाने से हो सकता है।

हाँ, यह दूसरी बात है कि अन्यान्य घटनाओं के विषय में नागरिक की बहुज्ञता रहती है और दिहातियों की नहीं, पर साथ ही साथ यह भी है कि नगरों में जैसे धूमधाम के व्यापारवाले गुदाम और बाजार रहते हैं, कहीं नाटक, संगीत, घुड़दौड़ और मेले होते हैं—वैसे ही कहीं नाच, जूआ आदि कहीं चोरी और मारपीट के हल्ले और कहीं ठगों और धूर्तों के बखेड़े इत्यादि ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं जो वृत्तियों को बिगाड़े और धूर्तता के अंकुर जमावें। लोग सीधे-सादे दिहाती को दिहाती कहकर दुरदुरा देते हैं, पर जैसे दिहाती पद से यह झलकता है कि लौकिक विषयों में चतुर नहीं वैसे ही यह भी झलकता है कि सीधा, सच्चा, निष्कपट और सज्जन। और जहाँ किसी को कहा कि

वे तो नगर निवासी न हैं ! बस, उसी समय विदित हुआ कि ये लोग चतुर तथा छल-कपट और धूर्तता-शास्त्र में भी प्रवीण हैं ! यदि सच्ची दृष्टि से चतुरता की तुलना करें तो यह निर्णय करना कठिन है कि अधिक चतुर कौन ? क्योंकि जिस विषय का संगठन नगर-निवासी को रहता है उस विषय में वह चतुर रहता है और जिस चक्र में दिहाती रहता है उसमें यह कभी किसी से कम नहीं रहता। नागरिक लोग वनस्पतियों को नहीं चीह्नते, कृषि विद्या कुछ भी नहीं जानते। केवल शब्द के सुनने से पशु-पक्षियों को नहीं पहचान सकते, पशु-पक्षियों के स्वभाव से परिचित नहीं रहते, परन्तु इन विषयों में ही सीधे-सादे ग्राम्यजन प्रवीण होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महापुरुष होने की जैसी योग्यता ग्रामीणों में होती है वैसी नगर-निवासियों में नहीं; क्योंकि दया, क्षमा, शील, विश्वास, श्रद्धा, निष्कपटता, कृतज्ञता, गुणग्राहकता, परिश्रम, पारस्परिक स्नेह आदि गुण जिसमें रहते हैं वही महापुरुष होने का अधिकारी होता है। ये गुण नगर-निवासियों में प्रायः नहीं पाये जाते। नगर-निवासियों में ऐसे ही पुरुष प्रायः मिलेंगे जिनके द्वार पर दीन-जन भूखों रोते-रोते मूर्छित भी हो जायँ तो वे इन्हें एक मुठ्ठी अन्न देने के ठिकाने अपने दासों को मारने की आज्ञा देते हैं, पर ग्रामों में प्रायः ठीक उसका उलटा बर्ताव होता है। यदि कोई पहुँचे तो उसी क्षण चौकी-चटाई बैठने को मिलती है और परिपूर्ण भोजन में तो सन्देह नहीं। नगर-निवासी तो एक-दूसरे से बहुत कम प्रीति रखते हैं प्रीति रखना तो दूर रहा जहाँ-तहाँ अपने महल्ले के रहनेवालों में सबको सब नहीं चीह्नते। यह कहा जा सकता है कि उन्हें कार्य बहुत रहते हैं, तो बेचारे कैसे सब, सबसे मिलें और चीन्हें। दिहातियों के इने-गिने काम और अवसर भरपूर रहते हैं तो वे एक-दूसरे को जानें और माने तो क्या आश्चर्य है ! फलतः, सिद्ध हुआ कि स्नेही, अनुरागी और प्रेमी ग्राम्यजन ही बड़ा पुरुष हो सकता है।

उदाहरण में देखिये, श्री रामायण के रचयिता आदिकवि वाल्मीकी किसी नगर के निवासी न थे, वेदव्यास जंगल में रहते थे, कणाद मुनि नागरिक नहीं थे, तर्कसूत्र के भाष्यकार शङ्कर मिश्र और षट्दर्शन-टीकाकार वाचस्पति मिश्र तिरहुत के ग्रामीण थे। गोकुलनाथ झा, पक्षधर मिश्र इत्यादि महापण्डित तिर-हुत के इन्हीं हरिनगर, मंगरौनी, पिलखवार आदि ग्रामों में हो गये हैं। ऐसा

कौन है जो तुलसीदास को नहीं जानता हो ? ये राजापुर नामक ग्राम के रहने वाले थे। विद्यापति ठाकुर का केवल तिरहुत ही नहीं, किन्तु समस्त भारत ऋणी है। ये महापुरुष तिरहुत के विपसी नामक ग्राम के थे। वंगभाषा के जीवनधन जगत्प्रसिद्ध ईश्वरचन्द्र विद्यासागर मेदनीपुर जिले के वीरसिंह ग्राम के निवासी थे। यों ही जहाँ तक ढूँढ़े जायँ, एक-से-एक उत्तम पुरुष ग्रामनिवासी पाये जायँगे, परन्तु सज्जन का कार्य यह है कि सबके ठीक-ठीक गुण-दोषों को ग्रहण करे, केवल एक का व्यर्थ पक्षपाती न हो।

नगरों में चोर, उठाईगिरे अधिक होते हैं, यह भी नगरों के लिये बड़ा कलंक है, पर ध्यान देकर देखें तो ग्रामों में भी ये बातें कम नहीं हैं। ग्रामों में बराबर सेंध पड़ा ही करती है। खेतों के सिवाने तोड़-तोड़ के घटा-बढ़ाकर बाँधनेवाले सहस्रों हैं। पानी की चोरी नगरों में कभी न सुनी होगी, पर बाँध से पानी चुरानेवाले ग्रामों में सहस्रों हैं। नगरों में यदि कोई भी कुम्हार किसी के घर में रहता हो तो स्वामी पैसा देकर उससे हाँड़ी लेता है, पर दिहात में तो असामी का धन अपना ही समझा जाता है। बात-बात में असामी की बेगार में पकड़ा और लतियाया जाता है और कुपित हुए तो उनकी झोपड़ी में आग लगा दी।

३. विचारने की बात यह है कि ग्राम की जलवायु स्वयं ही अच्छी होती है और नगर की अच्छी करने से होती है। परन्तु शिक्षा नगर ही में अधिक सुभीते से और उत्तम रीति से होती है; ग्राम में थोड़ी-बहुत जाती भी है तो नगर ही से। यदि अलग-अलग लें तो ग्राम पशुवत्, परन्तु आरोग्य जीवन बनाता है और नगर आरोग्य रहित, किन्तु शिक्षित जीवन बनाता है। अलग-अलग दोनों ही काम के नहीं, परन्तु यदि दोनों का मिश्रण हो तो अपूर्व फल होता है। प्रायः जितने उदाहरण दिये जा सकते हैं वे सब ऐसे ही हैं कि ग्राम ने उन लोगों को आरोग्यता दी, मस्तिष्क में बल दिया और हृदय में धीरज, गम्भीरता इत्यादि गुण दिये और ऐसे पात्र को पा नगर ने शिक्षा दी। तब वे इतने बड़े पुरुष हो, इस भूमि के अलंकार होकर विचरण करने लगे। काशी के पूज्यपाद पण्डित योगेशजी, पण्डित सुधाकर द्विवेदी, स्वामी राममिश्र शास्त्री और स्वामी भास्करानन्द इत्यादि ग्रामों ही के निवासी थे। परन्तु क्या वे लोग ग्रामों ही में पड़े रहते तो ऐसे महानुभाव होते ? कदापि नहीं। ग्रामों ने योग्यता का बीज

भले ही दिया हो, परन्तु शिक्षित कर इतना बड़ा बना देनेवाली भगवती काशी है।

४. अब हम अपने लेख को बहुत लम्बा नहीं करना चाहते, इतना ही उपदेश देकर समाप्त करते हैं कि ग्रामवास और नगरवास में जो-जो अच्छी बातें हों उनको ग्रहण करना और जो-जो बुरी हों उनका त्याग करना।

याते कछु गुण दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

(पं० अम्बिकादत्त व्यास के लेख का संक्षेप)

विद्या और विवेक (Knowledge and Wisdom)

१. परिचय। २. तुलना। ३. विद्वानों को क्या करना चाहिये। ४. उपसंहार।

विद्या बिनु विवेक उपजाये। श्रमफल पढ़े लिये अरु पाये।

—रामायण

१. विद्या सबसे ऊँची श्रेणी की मन की योग्यता है जो पुस्तक और विद्वानों से मिलती है, परन्तु विवेक उससे भी कुछ बढ़कर है। या यों कहिये कि विद्या भी है और विद्या के उचित उपयोग की शक्ति भी है। विद्या का निवास मस्तिष्क में है, और यह दूसरों से सीखो जाती है, परन्तु विवेक का स्थान हमारे अपने विचार और बुद्धि में है और इसे अपनी ही आत्मा के अनुशीलन और कार्य-व्यवहार से सीखते हैं। विद्या रुखड़े और बेढब पत्थरों का पहाड़ है। इन्हीं बेढब पत्थरों को चिकनाकर और काट-छाँट कर विवेक का महल तैयार करते हैं।

२. विद्या से हम संसार को पहचानते है। यह बेटा है, यह दूसरा लड़का है, यह हमारी पत्नी है, यह हमारी माता है—इत्यादि का परिचय विद्या कराती है। परन्तु ऊँच और नीच का निर्णय, गुण और अवगुण का भेद तथा अच्छे और झूठे का विचार हम विवेक ही से कर सकते हैं, किसको किस भाव से देखना चाहिये, संसार ही हमारा कुटुम्ब है—इत्यादि का यथार्थ निर्णय विवेक ही से होता है। जिसने केवल पुस्तकों से ही विद्या प्राप्त की है उसके लिये यह बाह्यजगत् भी एक मुहर लगी पुस्तक है, परन्तु विवेक की दृष्टि से एक क्षुद्रतर प्राणी भी सारे संसार को अक्षय सत्य के उपदेश सिखा देता है। विवेकी अन्तर्जगत् और बाह्यजगत् को एक समान देखता है, परन्तु विवेकहीन विद्वान् की अन्तर्जगत् में पहुँच ही नहीं।

विद्या हमारे चरित्र पर कुछ भी अधिकार नहीं रखती, परन्तु विवेक हमको सच्ची वस्तु की और सच्ची राह की परख कराता है तथा सांसारिक व्यवहारों और उलझनों से सावधान कराता है। सम्भव है कि विद्वान् राह से पिछड़ जायँ, कुमार्गों में पाँव डाल दें और असद्विचारों में लगकर अपने केन्द्र को संकुचित बना लें, परन्तु विवेकी अपने विवेक से सांसारिक विषय-वासनाओं से हटकर, सच्ची राह पर चल कर और सद्विचारों में लगकर अपने केन्द्र को प्रशस्त बना देता है।

विद्या स्वभावतः अपने ज्ञान पर भ्रम डालती है जिससे हममें अभिमान आता है। परन्तु विवेक, जो हमारी अज्ञानता का यथार्थ ज्ञान है, हममें विषय और मान की सजीवता उत्पन्न करता है, जिससे हम दुर्विचारों से हटकर आत्मा को पहचानते हैं और आध्यात्मिक शान्ति लाभ करके निर्वाण पद तक पहुँच जा सकते हैं।

३. विद्वानों को उचित है कि वे अपनी विद्या के साथ विवेक का उचित समागम करावें। यदि वे विवेक से कार्य करेंगे—तो अपने जन्म को सार्थक कर सकेंगे—अपनी मातृभूमि के सच्चे सेवक बन सकेंगे और यदि नहीं, तो उनकी विद्या सतीत्वरहित सुन्दर स्त्री, केवटहीन नाव या लवणरहित व्यंजन के समान केवल अभिमान ही भर को रह जायगी।

४. बहुत से विवेकी पुरुष हो गये हैं जिन्होंने उपयुक्त विद्या के लिये कभी भी अभिमान नहीं दिखाया। विवेकियों में अग्रगण्य महात्मा सुकरात को विद्या सम्बन्धी पाण्डित्य का कुछ भी घमण्ड नहीं था। बहुत से मनुष्य हैं जो अपनी विद्या को विवेक में न बदल सकने के कारण संसार के भार हैं और उनकी विद्वत्ता से कुछ भी फल नहीं मिलता।

"... ... ...
Knowledge is proud thet he has learned so much.
Wisdom is humble that he knows no more —Cowper.

—B. A. Examination. 1920

प्रवाद और सूक्तियाँ

(Proverbs and Quotations)

लालच बुरी बलाय

(Avarice is the root of sin.)

१. परिचय। २. लोभ का प्रभाव। ३. लोभी का स्वभाव। ४. लोभ का फल। ५. लोभ छोड़ने से लाभ।

१. दूसरे का धन या कोई पदार्थ ले लेनें के लिये हृदय में जो बुरी लालसा उत्पन्न होती है उसीका नाम लोभ या लालच है। यह षड्रिपुओं में सबसे प्रबल रिपु है।

२. लोभ में ऐसी मोहिनी शक्ति है कि मनुष्य की सारी सत् प्रवृत्तियाँ ध्वस्त हो जाती हैं। आज अपनी सच्चरित्रता से जिसने सम्मान लाभ किया है, कल वही लोभ के कारण चोरी इत्यादि कुकार्य करके सबों की दृष्टि में पतित हो जाता है। लोभ साधु को असाधु बना देता है, ज्ञानी का ज्ञान छीन लेता है और दाता के हृदय को कठिन बना देता है। लोभ न्यायान्याय का विचार नहीं रहने देता और मनुष्यों से मनुष्यत्व को भी छीन लेता है।

३. लोभी मनुष्य सत्यासत्य और हिताहित की विवेचना नहीं कर सकता। वह अकार्य को कार्य और अन्याय को न्याय समझता है। क्षुद्र से क्षुद्र पदार्थ के लिये भी लोभी झूठ बोलता है, निन्दा सहता और नरहत्या तक कर डालता है। प्रतिहिंसा में पड़कर वह दूसरे का धन हरने, चोरी करने और डाका डालने का बीड़ा उठा लेता है। लोभी की आकांक्षा इतनी प्रबल होती है कि वह दूसरे का नाश करने के लिये सदा उतारू रहता है। लोभी मनुष्य दरिद्र के मुँह का भोजन छीन लेता है, धनी को भिखारी बना देता है, सती का सतीत्व नाश कर देता है और पति को पत्नी से जुदा कर देता है।

४. लोभी की अभिलाषा जितनी बड़ी होती है, प्रवृत्ति उतनी ही घृणित होती है, जिसका परिणाम अति ही शोचनीय और भयंकर होता है। प्रायः देखा जाता है कि लोभी मनुष्य निन्दा सहता हुआ दूसरे की सम्पत्ति लेने में लगकर पकड़ा जाता है और कठिन दण्ड भोगता है। पेटू मनुष्य मुफ्त का भोजन

पा ठूँस-ठूँसकर खा लेता है और कठिन रोगों के पंजे में पड़ अपने पाप का परिणाम भोगता अकाल ही में मृत्यु के मुख में पड़ जाता है। लोभी मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं। वह पशु के समान दूसरों के वश में पड़कर स्वावलम्बन गुण को भूल जाता है और अन्त में अपने को संसार का भार समझने लगता है।

५. जो 'प्रकृत मनुष्य' बनना चाहता है उसे उचित है कि इन्द्रिय-संयम सीखे और लोभ का दमन करे। लोभ का त्याग करने ही से मनुष्य की आत्मा उन्नत हो सकती है। यदि कोई मनुष्य तुम्हें कुछ सम्पत्ति अमानत रखने के लिये दे और तुम लोभ में पड़कर उसे फिर नहीं लौटाओ तो तुम्हें विश्वासघात का पाप लगेगा। लोग तुमसे घृणा करने लगेंगे और तुम्हारा आदर-मान जाता रहेगा। तुमसे मनुष्यत्व बिदा हो जायगा और पशुत्व का गुण तुममें पहुँच जायगा। यदि तुम अपनी आर्थिक और मानसिक उन्नति चाहते हो तो लालच छोड़ने का अभ्यास बचपन से लगाओ, नहीं तो पीछे हाथ मल-मलकर पछताना पड़ेगा। कारण—

"मक्खी बैठी दूध पर, पंख गये लपटाय।
हाथ मले अरु सिर धुने लालच बुरी बलाय॥"

जो कुछ हो पर अपना कर्त्तव्य पालन करो

(Do your duty come what may)

१ कर्तव्य क्या है? २. कर्त्तव्य पालन ही मनुष्यत्व और महत्व है। ३. इसके लिये क्या आवश्यक है—उदाहरण। ४. कर्त्तव्य न पालने से परिवार और समाज की दुर्गति। ५. उपसंहार।

१. हमें सम्पादन करने के लिये जो सत्कार्य अपनी इच्छा से या दूसरों के द्वारा मिला है, वह हमारा कर्त्तव्य है। वही कर्त्तव्यसाधन मनुष्य को इस संसार और समाज के बन्धन में बाँध देता है। मानव-जीवन कर्तव्य-कर्मों का समूह है। जन्म से मरण तक मनुष्य कर्तव्य-पालन ही में लगा रहा है। उन कर्तव्यों में कुछ तो ईश्वर की ओर से मिले हैं और कुछ को हमने अपने ही से निश्चित कर लिया है।

२. कर्त्तव्यपालन ही यथार्थ में मनुष्यत्त्व और महत्त्व है। संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य हैं, परन्तु कर्त्तव्यपरायण की संख्या बहुत ही कम है। जिसे कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं, वह मनुष्य-पद के योग्य नहीं। जिसको इसका ज्ञान है वही समाज का रक्षक और आदर्श है, वही सबों के सन्मान का पात्र है, इस पृथ्वी में जो जाति जितनी ही अधिक कर्त्तव्यपरायण है वह उसी प्रकार उन्नतिशील है। समाज की उन्नति तभी होती है जब उसका प्रत्येक मनुष्य अपने अपने कर्त्तव्य को भलीभाँति पाले।

३. कर्त्तव्य-पालन के लिए हृदय की दृढ़ता की बड़ी आवश्यकता है। जीवन-संग्राम में नाना प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होकर कर्त्तव्य से भ्रष्ट कर देना चाहती हैं, परन्तु जो कर्मवीर है वह कभी विचलित नहीं होता। जिसका हृदय दृढ़ नहीं है, वह लज्जा, घृणा और भयवश कर्त्तव्यपालन नहीं कर सकता है, परन्तु जिसने यह समझ लिया है कि अमुक कार्य हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है, उसे कोई भी लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं कर सकता। इसी कर्त्तव्यज्ञान ने प्रातःस्मरणीय महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से वह-वह कार्य कराये, जिनके करने के लिये कच्चे दिलवाले तैयार नहीं होते। यही कर्त्तव्य-ज्ञान था जिससे काजी ने 'अपने बादशाह गयासुद्दीन' को कचहरी में बुलवाया। कर्त्तव्य-ज्ञान के कारण हिन्दू धर्मरक्षक महाराणा प्रताप का मान मुगल-सम्राट् अकबर ने शत्रु होकर भी किया और कर्त्तव्य-ज्ञान था कि इङ्गलैण्ड के गैसकाइन जज ने अपने राजा के बेटे को कारागार का दण्ड दिया।

४. जो अपने कर्त्तव्य को नहीं पालता वह समाज की बड़ी हानि करता है। क्या परिवार, क्या समाज, सभी कर्त्तव्य पर स्थित हैं। परिवार में यदि माता-पिता अपने कर्त्तव्य न पालें और सन्तान उनकी आज्ञा से कार्य न करें तो क्या वहाँ सुख रह सकता है? जिस राज्य में राजा प्रजा के सुख का उपाय नहीं करता और प्रजा राजा के नियम नहीं मानती क्या वहाँ शान्ति विराज सकती है? अतः सभी को उचित है कि अपने-अपने कर्त्तव्यों को भलीभाँति पालें।

५. कर्त्तव्यपालन ही मानव-जीवन का यथार्थ महत्त्व है। जिसमें यह महत्त्व मिलें उसके लिये हमलोगों को हृदय से चेष्टा करनी चाहिये। जिस देश में प्रत्येक व्यक्ति ने अपने-अपने कर्त्तव्य पालन की चेष्टा की है उसके आगे विजय-

लक्ष्मी हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। ट्राफल्गर के युद्ध में अँगरेजी सेना का कर्त्तव्य-पालन इसका ज्वलन्त आदर्श है। "हमारी मातृभूमि (इङ्गलैण्ड) आशा करती है कि उसका प्रत्येक पुत्र अपना-अपना कर्त्तव्य-पालन करे"—ज्योंही वीरवर नेलसन के मुँह से यह वाक्य निकला कि योद्धाओं में कर्त्तव्य-पालन का जोश भर आया और उन्होंने बात की बात में शत्रुओं को पीसकर इङ्गलैण्ड का मुख उज्वल कर दिया।

उपदेश से उदाहरण उत्तम है

(Example is better than precept)

१. भूमिका। २. कारण। ३. प्रभाव के स्थान। ४. उपदेश। ५. उपसंहार—बुरे उदाहरण।

१. किसी विषय में अपने को निपुण बनाने के लिये हम उस विषय की सैकड़ों पुस्तकें उलट डालें, या उपदेशकों के मुख से बार-बार उपदेश भी सुन लें, परन्तु इनका फल तुच्छ जान पड़ेगा जब उस विषय का एक अच्छा उदाहरण हमें दृष्टिगोचर हो जायगा। अच्छी से अच्छी वक्तृता हमें ज्ञानसम्पादन करने में कुछ भी सहायता नहीं दे सकती जो सहायता हमें एक उदाहरण से मिलती है।

२. मनुष्यमात्र का स्वभाव है कि वह जैसा देखता है वैसा ही करता है। जो कार्य दृष्टिगोचर होते हैं वह उन्हीं कार्यों को करता है। जब तक यूरोप-निवासी यहाँ नहीं आये थे तब तक हमलोग कोट, पैंट, सूटबूट, हैटवैट, कालर, नेकटाई नहीं देखते थे; परन्तु अब अपने देशी भाइयों को पहनते भी देखते हैं। लोगों के लिये कहे हुए उपदेश केवल कानों के लिये हैं, परन्तु उदाहरण आँखों के लिये। आँखें कानों से कहीं अधिक बल रखनेवाली हैं। यही कारण है कि आँखों के सामने का एक छोटा-सा उदाहरण कानों से सुने हुए उपदेश के प्रभाव को मटियामेट कर देता है।

३. सर्वप्रथम स्थान जहाँ मनुष्यों पर उदाहरणों का प्रभाव पड़ता है, घर है। बालक उन्हीं कार्यों को करते हैं जो उनके माँ-बाप, भाई-बहन और बड़े लोग करते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि जिस परिवार के बड़े लोग कर्त्तव्य-परायण, धार्मिक, पवित्र, दयालु और सुशील होंगे उनके बाल-बच्चे भी वैसे ही

होंगे। दूसरा स्थान पाठशाला है। यहाँ हमलोगों के जीवन का सुधार होता है। यदि शिक्षक और सहपाठी सज्जन हुए तो विद्यार्थियों में दुर्गुण का विकास कभी हो ही नहीं सकता। अन्तिम स्थान में सारा संसार है। हमारा समाज और हमारे पड़ोसी जैसी अवस्था में होंगे, हमारी अवस्था भी वैसी हा होगी। देखिये, इस समय भारत में उद्योग, अध्यवसाय और वीरता का अभाव-सा हो गया है। क्यों? क्योंकि देखादेखी से हमारा समाज ढीला पड़ गया है।

बड़े-बड़े कवि, ज्ञानी, वीर और आदर्श-पुरुष—सभी देखादेखी से हुए हैं और होंगे।

४. जब यह बात ठीक हो गई कि हम देखादेखी से कार्य करते हैं, तब हमें उचित है कि अच्छे मनुष्यों के उदाहरण अपने सामने रक्खें और अच्छे आदर्श पर चलें। ये हमें बुराइयों से बचायेंगे और जीवन-यात्रा का सुगम मार्ग दिखावेंगे। ये हममें साहस भरेंगे और हमारा चरित्र सुधारेंगे। ये सदा हमारी भलाई किया करेंगे और आनन्द को बढ़ावेंगे।

५. बुरे उदाहरण संक्रामक रोगों के समान हैं, ये भारी विपत्तियों का सामना करते हैं और दुराचारी बनाकर नरक में ढकेल देते हैं। ये हमारे सभी सद्गुणों पर कालिख पोत देते हैं। अतः, इनसे बचते रहना चाहिये और सदा अच्छे उदाहरणों से शिक्षा लेनी चाहिये।

जहाँ चाह वहाँ राह

(Where there is a Will there is a Way.)

१. परिचय। २. चाह के फल। ३. चाह के बिना हानि—हानिकारक सिद्धान्त। ४. कैसी चाह। ५. उपसंहार।

१. जब मैं किसी वस्तु पर दृष्टिपात करता हूँ तब मन में उसी क्षण दो बातें उत्पन्न हो जाती हैं—(१) ऐसी वस्तु की मुझे आवश्यकता है। (२) ऐसी वस्तु की मुझे आवश्यकता नहीं। बस, जब आवश्यकता होती है तब चाह की उत्पत्ति होती है और जब चाह होती है तब उद्देश्य की सिद्धि के लिये राह भी सूझने लगती है।

२.यदि चाह नहीं होती तो बड़े-बड़े महल, सामने का हरा-भरा उद्यान, शिल्प के कल-कारखाने, रेलगाड़ी, हवाई जहाज, तार, बेतार का तार इत्यादि से

हमलोग परिचित न होते। मुझमें किसी बात की चाह अवश्य है, जिसने मुझे पढ़ने के लिये बाधित किया है। तपस्वियों का तप करना, व्यापारियों का अथाह और भयंकर समुद्रों में अपनी जान को हथेली पर रखकर जहाज चलाना; राजाओं को समरभूमि में हत्याकाण्ड उपस्थित करना इत्यादि सभी कार्य चाह से भरे हैं। जगत् में जो कुछ नूतन आविष्कार और निर्माण हो रहे हैं और जो कुछ उन्नति प्रत्येक विषय की हो रही है, वे कुछ भी न हों, यदि उन बातों की चाह न हो। यदि मुझमें चाह की कमी हो जाय तो उत्साह, उद्यम और अध्यवसाय सभी मुझसे विदा हो जायँ और मेरी उन्नति रुक जाय—यहाँ तक कि पुरुषार्थ भी मुझसे ३ और ६ का नाता जोड़ लेवे।

३. जो संसार को असार मान लेगा वह संसार में क्या उन्नति कर सकेगा? जो अपने को ब्रह्म समझ लेगा उसको फिर किस उन्नति की आवश्यकता रहेगी? जिन्होंने यह समझ लिया कि जिस परमेश्वर ने गर्भ में भरणपोषण किया वह भी हमको बिना हाथ-पैर हिलाये आहार देगा—जो जल में, थल में, आकाश में सब प्राणियों को आहार पहुँचाता है वह अवश्य हमारी सुधि लेगा, वे क्या पुरुषार्थ करेंगे!

'चाह घटी चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जाहि कछू ना चाहिये, सो शाहनपति शाह॥ १॥
अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका यों कहे, सबके दाता राम॥ २॥'

ऊपर लिखे विचारों की धारणा जब से हमारे देश में बनी तभी से चाह की भरपूर कमी हो गई है। इसलिये भारतवासियों ने कुछ भी उद्यम न करके अपने खानपान और जीवन-निर्वाह का भार दूसरों पर डालकर, विभवशाली आर्यावर्त्त को दरिद्र हिन्दुस्तान बना दिया! हाय! जिस आर्यावर्त्त के लिये संसार कहता था कि वहाँ सोने-चाँदी की नदियाँ बहती हैं, अब वहीं के वासियों की उदरपूर्त्ति अमेरिका के ईसाइयों की खैरात पर होती है! भला बताइये तो, क्या कारण है कि हिन्दुस्तान के एक चौथाई मनुष्य दोनों काल भोजन करना जानते ही नहीं। ऐसे करोड़ों स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ हैं, जिन्हें साल भर एक समय भी भरपेट अन्न नहीं मिलता!

ऊपर लिखित दूसरे दोहे का भाव आधुनिक भारतवर्ष के लिये बहुत ही हानिकारक है। हाँ, इसका किंचित् अंशमात्र उन लोगों को लाभदायी हो सकता है जो तृष्णासागर में आठों पहर निमग्न रहकर तरह-तरह के दुःख उठाते हैं, परन्तु ऐसे सिद्धान्त पुरुषार्थहीन और आलसी मनुष्यों के लिये बिगाड़ करनेवाले हैं। यहाँ पर ऐसे ही सिद्धांतों के कारण पिछले तीनचार सौ वर्षों में उत्साह, उद्यम और अध्यवसाय की बड़ी कमी हो गई है और हमलोग अवनति के मुख में पहुँच रहे हैं। अतएव ऐसे सिद्धान्तों को सदा के लिये दूर करना चाहिये। अब तो ऐसा समय आ गया है कि यदि हमलोग उद्योग न करें आलसी बने रहें तो हमारा रहा-सहा नाम-निशान भी संसार से मिट जायगा।

४. मुझे अच्छी-अच्छी बातों की चाह होनी चाहिये। मुझे अपनी चाह को उचित और उदार बनाना चाहिये। जिन कार्यों से देश की भलाई, जाति की उन्नति और मनुष्यजन्म का कर्त्तव्य पूर्ण होवे, उन्हीं की चाह सत्य और उदार है। जिस कार्य की चाह से देशवासी आपस में एक-दूसरे को प्रेम से चाहें और मिलें, वही कार्य सच्चा और उन्नति के मार्ग पर चढ़ानेवाला है और ऐसे ही कार्यों की चाह से मनुष्य बड़ा भी होता है।

अनुचित कार्यों की चाह सर्वथा बुरी है। जितने बुरे कार्य हैं उनसे सदा अलग रहना चाहिये। विषय-वासना अर्थात् विषयभोग की चाह सदा दुःख देने-वाली है, इससे शान्ति नहीं मिलती। जिस प्रकार आग में घी देने से वह अधिक प्रज्ज्वलित होती है उसी प्रकार विषयतृष्णा भी भोग विलास से बढ़ती है। विषयी जन जिसको तृप्ति मानते हैं, वह तृप्ति क्षणिक है। पुनः अल्पकाल ही में उसकी चाह दूनी हो जाती है, परन्तु उससे सच्चा अखण्ड सुख कभी नहीं मिलता, अतएव यह उचित है कि हमलोग अपने चित्त को किसी काम्य वस्तु पर मोहित न होने दें।

"मोह सकल व्याधिन कर मूला"

मोह ही दुःख का कारण है। यह मनुष्य को नाना प्रकार की आपत्तियों में फँसा डालता है, परन्तु मन को वश में रखने से इन्द्रियों पर प्रभुत्व बना रहता है। जिससे मनुष्य अनुचित विषय-विलास से बच सकता है।

असम्भव बातों की चाह नितान्त अनुचित है। भला जो कार्य अपनी योग्यता से बाहर है, वह कैसे सम्पादित होगा? क्या हमलोग समुद्र को तैरकर पार कर सकते हैं? अतएव ऐसे कार्यों के लिये कभी भी व्यर्थ कष्ट नहीं उठाना चाहिये।

५. हम लोगों को उचित है कि अपनी योग्यता का विचार करके किसी वस्तु की चाहना करें। कहीं ऐसा न हो कि व्यर्थ मृगतृष्णा में पड़कर अपने को नष्ट-भ्रष्ट कर डालें, क्योंकि जो इस भँवरजाल में पड़ता है वह विचारशून्य हो जाता है। उसे यह नहीं सूझता कि मैं जिस वस्तु पर मोहित हूँ वह मुझे प्राप्त होगी या नहीं—वह मेरी योग्यता के अनुकूल है या नहीं। वह उसपर ऐसा लग पड़ता है कि उपाय सोचते-सोचते उसका ज्ञान जाता रहता है और अपने रूप के भूलने के कारण वह अनेक प्रकार की आपत्तियाँ, निन्दा और हँसी सहता है।

सचाई की ही नीति उत्तम है

(Honesty is the best policy.)

१. परिचय। २. इससे लाभ। ३. इसके अभाव में दुर्गति। ४. सिद्धान्त।

१. मनुष्य जब संसारयात्रा की पगडण्डी पर पहले-पहल पैर रखता है तब उसे प्रथम यह स्थिर कर लेना पड़ता है कि वह किस रीति से अपनी यात्रा सम्पन्न करेगा! वह जिस रीति का अवलम्बन करता है, उसे ही नीति कहते हैं। मानव-स्वभाव की विभिन्नता के कारण नीति के स्वरूप भी भिन्न-भिन्न होते हैं। पूर्व सुकृत और सुशिक्षा के कारण जिनका अन्तःकरण निर्मल और सबल रहता है वे कर्मठ पुरुष तो निश्चय कर लेते हैं कि वे अपने समस्त लोकव्यवहार सचाई के साथ करेंगे। पर, जिनका अन्तःकरण अज्ञात-तिमिर से आच्छन्न एवं आलस्य-कलुषित अतएव निर्बल रहता है वे पास में दूरदर्शिता न रहने के कारण छल-कपट का आश्रय लेने की ठान लेते हैं। यद्यपि दोनों प्रकार के पुरुषों का लक्ष्य एक ही रहता है—दोनों ही चाहते हैं कि सुख, शान्ति और स्वतन्त्रता के साथ अपना जीवन बितावें, तथापि दोनों की अभीष्ट-सिद्धि में अन्तर पड़ जाता है। हमें यही विचारना है कि वह अन्तर कैसा है!

२. हम देखते हैं कि जो मनुष्य मन, वचन और कर्म तीनों की सचाई रखते हैं, अर्थात् सच्ची ही बातों को सोचते, सच्ची ही बातें बोलते और तदनुसार सच्चे ही कार्य भी करते हैं, उनके लिये सफलता मानों पहले से ही बरी रहती

है। ऐसे पुरुष यदि कहीं नौकरी करते हैं तो कुछ ही दिनों में आप देखेंगे कि वे अपनी सचाई से अपने स्वामी को प्रसन्न करके बड़े से बड़े पद पर पहुँच गये। अगर वाणिज्य-व्यवसाय की दीवाल सचाई की नींव पर खड़ी की जाती है तो वह बड़ी सुडौल और टिकाऊ होती है। देखा जाता है कि थोड़े से भी मूलधन से आरम्भ किया गया कोई व्यापार थोड़े ही दिनों में चमक उठा और होते-होते उसने विशाल आकार धारण कर लिया। इसका कारण क्या है? यह सचाई है। सच्चा मनुष्य जहाँ जाता है वहीं उसकी प्रतिष्ठा होती है। वह दीन से भी दीन वेश में क्यों न हो, उसकी सचाई की बात लोगों पर प्रकट होते ही सबका सम्मान-भाजन बन जाता है। यदि ऐसा पुरुष छोटी-सी झोपड़ी में निवास करता है तो इस हेतु उसके चित्त में कुछ भी अशान्ति नहीं है। अपने परिश्रम से जो थोड़ा बहुत पा लेता है उसीसे वह आनन्द और स्वतन्त्रता के साथ कालयापन करता है। क्यों? वह घबराता क्यों नहीं है? उसको आनन्द कैसे मिलता है? आप यदि इसका कारण जानना चाहें तो सुनिये। सुख-दुःख का लगाव अन्तःकरण से है, धन-सम्पत्ति तो बाहरी वस्तु है! वह रहे चाहे जाय, सच्चे सुखानुभव का हेतु—सच्चा अन्तःकरण तो उसके पास है। तो फिर वह आनन्द क्यों न पाये! ऐसे साधुशील पुरुषों की संसारयात्रा समाप्त होती है तब वे विलक्षण सुख-शान्ति के साथ न केवल संसार को ही, किन्तु अपने सुनाम को भी अपने पीछे छोड़ जाते हैं।

हम यह भी देखते हैं कि जिनका हृदय छल-प्रपञ्च और दाव-पेंच से भरा रहता है, जो सोचते और हैं और बोलते और तथा करते भी और ही हैं उनको किसी कार्य में अच्छी सफलता मिलती ही नहीं, जो थोड़ी बहुत होती भी है, वह कुछ ही देर के लिये। ऐसे पुरुष को आज आप प्रयत्न करके किसी बड़े पद पर बैठा। दीजिये कल ज्योंही उसके हृदय की कुटिलता प्रकट हो जायगी त्योंही वह नीचे गिर जायगा। कभी सुनते हैं कि वह बड़ी कोठी या बड़ा कारखाना एकाएक बैठ गया। ऐसा क्यों होता है? ऐसी घटनाओं का कारण प्रायः वही कुटिलता रहती है। बालू की भीत कितने दिन ठहर सकती है? देखा जाता है कि कभी-कभी कुटिल पुरुष भी लोगों में बड़ा आदर पा रहा है। पर कब तक? जब तक उसकी कलाई नहीं खुली है। ऐसा मनुष्य लोगों को धोका देने के लिये बहुधा खूब ठाट-बाट और चमक-दमक के साथ रहता है। किन्तु ज्योंही लोग जान जाते

हैं कि यह भेंड़ की छाल ओढ़े भेड़िया है त्योंही वह ठिकाने लग जाता है। जो सत्यशील नहीं हैं वे स्वयं सब प्रकार से सम्पन्न रहने पर भी दूसरों की चीज कहीं कुछ पा जायँ तो हड़पने के लिये उद्यत रहते हैं। रहे क्यों नहीं? सन्तोष की जननी सचाई है। जब सच्चाई नहीं तब संतोष कैसा? ऐसा मनुष्य प्रायः कभी सच्चे स्वातन्त्र्यसुख का अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि इनके मार्ग दूसरे न कहीं जान लेवें, इस चिन्ता से बहुधा अपने भाव को दबाकर दूसरों की इच्छा से चलते हैं। फिर परतन्त्र और किसे कहते हैं? जिसके हृदयसुमन में साधुता का वास नहीं है वह बड़े से बड़े महलों में बड़ी सजधज और बहुत से जन-परिजनों को आसपास में लेकर ही क्यों न निवास करता हो, वह अपने को सूनसान श्मशान में आसीन समझता है। ऐसे को लक्ष्मी भी आनन्द नहीं दे सकती। क्यों? जिसके रहने से आनन्द का यथार्थ अनुभव होता है वह चित्त की शांति उसके पास है ही नहीं। ऐसे पुरुष का अन्तकाल बड़ा दुःखद होता है क्योंकि उस समय उसको अपनी धूर्तता की सब पुरानी बातें स्मरण आ जाती हैं और उनके कारण होनेवाली दुर्गति की चिन्ता से वह भीत और कातर हो जाता है।

४. सच्चे और धूर्त दोनों प्रकार के पुरुषों की परस्पर तुलना करने के उपरान्त सिद्धान्त यह निकलता है कि जो कोई सच्चे सुख तथा सच्ची शांति और स्वतन्त्रता का जीवन-यापन करना चाहे तो वह केवल सच्चा रह कर अर्थात् केवल सचाई की ही नीति से ऐसा कर सकता है। जो छल-प्रपंच और दाव-पेंच अर्थात् कूटनीति का सहारा लेकर जीवन-संग्राम में विजयलक्ष्मी को आलिंगन कर अपनी यशोदुन्दुभि बजवाना चाहते हैं उसकी वह इच्छा केवल मृगतृष्णा है। जो सिद्धान्त एक व्यक्ति पर लागू है वह एक जाति पर भी, और जो एक जाति पर लागू है वह एक देश या राष्ट्र पर भी। क्योंकि व्यक्तियों के समूह से ही जाति बनती है और जातियों के समूह से ही देश या राष्ट्र बनता है। जिस जाति के अधिकांश व्यक्ति सच्चे हैं वह सच्ची और जिसके अधिकांश कुटिल हैं वह कुटिल कहलाती है। जैसे एक व्यक्ति के सम्बन्ध में, वैसे ही एक जाति और देश या राष्ट्र के सम्बन्ध में कुटिलता की नीति अधम और सचाई की नीति उत्तम समझनी चाहिये।

—पं० जीवननाथ राय

समालोचनात्मक लेख

(Sketches of Characters, Books etc.)

रामचरित्र (Character of Ram)

१. परिचय। २. आदर्शपुत्र। ३. आदर्श भ्राता। ४. आदर्श मित्र। ५. आदर्श पति। ६. आदर्श राजा।

१. राम के समान सर्वगुणसम्पन्न राजा किसी देश में और किसी काल में हुए या नहीं—हमें सन्देह है। उनमें सभी गुणों का एकत्र समावेश था। उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा, धर्मपरता, पराक्रम और प्रजापालन पर सभी मुग्ध हो जाते हैं। वे सभी विषयों में अद्वितीय थे। सच्चे पुत्र होने के आदर्श वही थे, भाईपना उन्हीं में था, मित्रता उन्हीं से सीखते हैं, राजाओं के लिये वही आदर्श हैं और पत्नी के लिए पति का क्या कर्त्तव्य है, उन्हीं में पाते हैं।

२. राम ने अपने माता-पिता की आज्ञा कभी नहीं टाली। ज्योंही कैकेयी के मुँह से वनवास का वृत्तान्त सुना, अचल भाव से पिता का आदेश पालने के लिये कटिबद्ध हो गये और अधीर पिता को धैर्य देने के लिये बड़ी चेष्टा की। वह समाचार पाते ही जब लक्ष्मण ने दशरथ और कैकेयी के विरुद्ध अस्त्र धारण करना चाहा तब राम ने उन्हें उचित कर्त्तव्य समझाकर शान्त किया और पिता की सत्य-रक्षा के लिये वल्कल धारण कर सीता और लक्ष्मण समेत वन को प्रस्थान कर दिया। चित्रकूट में जब भरत उन्हें राज्यभार ग्रहण करने के लिये मनाने गये तब उन्होंने पिता के सत्य और अपने कर्त्तव्य के भंग हो जाने की आशंका से यह बात स्वीकार नहीं की।

३. रामजी में भाईपना कूट-कूट कर भरा था। जिस समय लक्ष्मण को शक्ति लगी थी उस समय का रामविलाप रामायण में पढ़िये कि कितना प्रेम टपकता है! वह विलाप करते हुए बोल उठे थे—"मैं अब किस मुँह से अयोध्या लौटूँगा। जगत् में अपयश चाहे भले ही सह लेता कि रावण ने स्त्री छीन ली, क्योंकि स्त्री के न होने पर कोई विशेष हानि नहीं थी। अब तो उस अपयश के साथ-साथ तुम्हारा वियोग भी इस निठुर हृदय को सहना पड़ता है।"

यह प्रेम केवल लक्ष्मण ही तक नहीं था। वे भरत और शत्रुहन को भी

इसी प्रेम से देखते थे। भरत के विषय में रामजी ने लक्ष्मण से कहा है—
"लखन तुम्हारा शपथ पितु आया। शुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना॥"

४. रामजी ने जिनसे मित्रता की, उनमें सर्वदा अपना प्रेम रक्खा। शत्रुओं का नाश करके सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य देना और विभीषण को लंकेश बना देना, इसके स्पष्ट प्रमाण हैं।

५. रामजी का सती सीता के प्रति सच्चा अनुराग था। जब सीता दुष्ट रावण से हरी गई तब रामजी कुटी में आकर कैसे व्याकुल हुए थे—उन्होंने वियोग में कैसी कातरता दिखलाई थी—सीता की खोज में रोते और भटकते हुए जड़ पदार्थों से भी उन्मत्त की भाँति क्या-क्या बातें पूछी थीं—इन सबों का वर्णन हमारी लेखनी नहीं कर सकती। समुद्र पर पुल बाँध कर रावण को मार सीता का उद्धार करना सच्चे अनुराग का काम था।

प्रजारंजन के लिए जब रामजी ने सीता को वनवास दे दिया तब फिर उन्होंने किसी दूसरी रमणी से विवाह नहीं किया और एक पत्नीव्रत-धर्म को पाल अपने को आदर्श पति प्रमाणित कर दिया। आपने अश्वमेध यज्ञ में स्वर्ण की जानकी निर्माण कराकर सस्त्रीक धर्माचरण के नियम का पालन किया।

६. रामजी के शासनकाल में प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट और किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई। वे प्रजा के सुख और सम्पत्ति की उन्नति के लिये सदैव यत्नवान् रहे। उन्होंने प्रजा के प्रेम में पड़ निर्दोष सीता को भी वनवास दे दिया। लंका में जब मेघनाद मारा गया तब रावण ने पुत्र की अन्त्येष्टि क्रिया के लिये एक सप्ताह युद्ध बन्द रखने को रामजी से अनुरोध किया। अपने शत्रु के अनुरोध की रक्षा कर रामजी ने सच्ची उदारता का परिचय दिया। जब रावण मृत्युशय्या पर था तब रामजी ने उससे राजनीति सीखकर—"शत्रु से भी उपदेश ग्रहण करना चाहिये"—इस राजधर्म को पाला।

राम राज्यकर सुखसम्पदा। बरणि न सकहि फणीश शारदा॥
एक नारि व्रत सब नर नारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी॥
बैर न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप विषमता खोई॥
फूलहि फलहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भै सतजुग की करनी॥

मिश्रित लेख (Miscellaneous Essays.)

(छुट्टी कैसे बितानी चाहिये ?)

१. परिचय । २. छुट्टी क्यों मिलती है ? ३. छुट्टी में विद्यार्थी के कार्य । ४. उपदेश । ५. उपसंहार ।

१. प्रायः स्कूल में समय-समय पर छुट्टियाँ मिला करती हैं। इनमें गर्मी की छुट्टी, पूजा की छुट्टी और होली की छुट्टी मुख्य हैं। इन मुख्य छुट्टियों में गर्मी की छुट्टी, प्रायः १ मास से २-२॥ मासों तक होती है।

२. मनुष्य का शरीर एक मशीन के समान है। यदि मशीन सदा काम करती रहे तो वह कुछ ही दिनों में बेकार हो जायगी। इसी कारण बीच में उससे काम नहीं लिया जाता और उसके कलपुर्जे ठीक किये जाते हैं। इसी प्रकार हम यदि अपने शरीर को या उसके किसी अंग को सदा काम में लगाते रहें तो वह शरीर या अंग कुछ ही दिनों में अयोग्य हो जायगा। विद्यार्थी स्कूलों में सदा पढ़ने में लगे रहते हैं, उनको अपने मस्तिष्क से अधिक काम लेना पड़ता है और अन्य अंगों से कम। इसलिये उचित है कि छुट्टियाँ देकर उनकी मानसिक और शारीरिक थकावटें मिटाई जायँ जिससे वे फिर आगे के लिये योग्य हो जायँ। हाँ; छोटी-मोटी कई छुट्टियाँ राष्ट्रीयता और धर्म के कारण भी मिला करती हैं।

३. विद्यार्थियों को उचित है कि जब वे छुट्टी में घर जायँ तब सबसे पहले अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देवें। प्रतिदिन ८-९ घंटे से कम न सोवें। प्रातःकाल ही उठकर नित्यकर्मों को समाप्त करें और खुले मैदान में टहलें या कोई व्यायाम करें। भोजन के बाद दोपहर को किसी शान्तिमय शीतल स्थान में बैठकर भारत के वीरों और ऋषियों की जीवनियों और कीर्तियों का मनन करें और उनसे शिक्षा लेकर प्राचीन और नवीन भारत की तुलना करें। जब संध्या की ठंढी हवा चलने लगे तब अपने ग्राम या नगर में घूम-घूम कर गरीब भाइयों की सुधि लें, उन्हें यथासाध्य सहायता करें, लोगों को विद्या पढ़ने का महत्व बतावें और उन्हें अपने प्राचीन गौरव की याद दिला सजग कर दें। विद्यार्थियों को उचित है कि वे अपने-अपने महल्ले या गाँव में एक-एक वाचनालय स्थापित करावें और उसमें ऐसे समाचार पत्र और ग्रन्थ मँगावें

जिन्हें पढ़कर लोग अपने कर्त्तव्य को जानें। सूर्यास्त होते समय वे बच्चों के खेल में भाग लें और प्रकृति की शोभा का भी अनुभव करें। रात में सोने से एक घंटा पहले ही भोजन कर अपने परिवार के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों को सदुपदेश दें और मातृभूमि के प्रति प्रीति उत्पन्न करनेवाली बातें उन्हें सुनावें।

यदि पढ़ाई में कुछ कमी रह गई हो तो हमें चाहिये कि उसे छुट्टी के पहले ही भाग में पूरा कर लें और अन्तिम भाग उपर्युक्त कार्यों में लगावें और यदि पाठ पूर्ण हो तो आरम्भ ही से बताई हुई रीति पर चलें, जब कुछ दिन रहे तब पाठों को देख जायँ।

४. छुट्टियों को यदि हमने ऊपर कही रीति से बिताया तो हमने अपनी भलाई के साथ-साथ देश की भी बड़ी भलाई की। यह समझ रखने की बात है कि मातृभूमि हमसे बहुत-कुछ आशा रखती है। उसकी यह आशा, देश और समाज के अज्ञान को दूर करने, समाज में ऐक्यस्थापन करके और लोगों को कर्त्तव्य सिखा के हम बहुत कुछ पूरी कर सकते हैं। हम ही भारत के भविष्य में विद्वान् और नेता बनेंगे, हमारे ही ऊपर भारतमाता की जवाबदेही रहेगी। अतः, उचित है कि हम अभी से जवाबदेही लेने के लिये योग्यता प्राप्त करें।

५. विद्यार्थियों के संरक्षकों और माता-पिताओं से हमारी प्रार्थना है कि छुट्टियों में वे अपने बच्चों को किताबों के कीड़े न बनने दें। उनके शरीर के उचित विकास पर ध्यान देकर उन्हें शक्तिशाली और कर्मवीर बनावें जिससे वे मातृभूमि के सच्चे सेवक बनकर उसके मुख को उज्ज्वल कर सकें। नहीं तो वे निर्बल, कमजोर और अयोग्य होकर व्यर्थ ही समाज के भार हो जायँगे।

उपन्यास पढ़ना (Novel-Reading)

१. परिचय। २. लाभ ३. हानि। ४. विद्यार्थियों को उपदेश। ५. उपसंहार।

१. हमारे यहाँ नाटक, इतिहास, जीवनचरित्र, यात्रावर्णन और काव्य इत्यादि के साथ-साथ उपन्यास की भी गणना की जाती है। उपन्यासों में समाज की परिस्थिति के अनुकूल मन लुभानेवाली काल्पनिक कहानियाँ रहा करती हैं, जो सर्वसाधारण की समझ में आनेवाली भाषा में लिखी रहती हैं।

२. जब मन शारीरिक और मानसिक परिश्रम में थककर उकता जाता है तब वह विश्राम चाहता है। यह विश्राम उपन्यास पढ़ने से मिलता है। उच्च

आदर्श के उपन्यासों से उत्तम उदाहरण और भिन्न-भिन्न स्थानों के अच्छे आचार-व्यवहारों का पता लगता है। उपन्यास के पढ़ने से कल्पना शक्ति का विकास और भाषा का ज्ञान होता है तथा लिखने की शक्ति बढ़ती है।

बहुत से उपन्यासों से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक दशाओं का चित्र सामने खिंच जाता है जिससे उनकी शुद्धि हो जाती है।

३. जिसकी बुद्धि कच्ची है उसको, उपन्यास पढ़ने से नाना प्रकार की हानियाँ होती हैं। उसका समय वृथा जाता है। वह इसकी चाट में अपना कर्त्तव्य भूल जाता है। जिस विद्यार्थी को उपन्यास पढ़ने की चाट लग जाती है, अपने पाठ में उसका मन नहीं लगता। सदा उसे कथा-कहानियों की पुस्तकें ही पढ़ने की इच्छा लगी रहती है। बहुत-से उपन्यासों में अश्लील बातें भरी रहती हैं, जिससे विद्यार्थियों में बुरे-बुरे गुण आ जाते हैं। वे विचारशक्ति से हाथ धो बैठते हैं, जिससे अन्त में कोरे-के-कोरे रह जाते हैं।

४. विद्यार्थियों को उचित है कि वे उपन्यास पढ़ने की ओर न झुकें। उनके लिये उपदेशप्रद बहुत से ग्रन्थ लिखे गये हैं, उन्हें पढ़ा करें। अपने शिक्षकों और गुरुजनों से राय लेकर अच्छी-अच्छी पुस्तकें चुन लें और उन्हें इस भाँति पढ़ें कि चरित्र पर अच्छा प्रभाव पड़े। दो-चार अच्छे सामाजिक और देश-सुधार के उपन्यास निकले हैं जिन्हें ऊँची श्रेणी के विद्यार्थी अवकाश के समय में अपने गुरुजनों की राय से पढ़ सकते हैं।

५. शोक के साथ लिखना पड़ता है कि हमारे कई विद्यार्थी, जिनपर देश का भविष्य निर्भर है; उपन्यास पढ़ने की बुरी लत में पड़कर अपने कर्त्तव्यकर्म को भूलते जा रहे हैं और अपने कुल और समाज को कलंकित कर रहे हैं। उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे देश और समाज के सुधार की पुस्तकों को पढ़ें और भारतमाता के सच्चे पुत्र बनने की चेष्टा करें।

बच्चों को गहने पहनाना

१ परिचय। २. झूठी समझ। ३. हानि। ४. सच्चा गहना। ५. उपदेश। ६. उपसंहार।

१. इस देश में सुकुमार बच्चे गहनों से लदे दीखते हैं। न मालूम कब से यह रीति चली। हाथ में बल्ला, कान में कुण्डल, गले में कण्ठा, कमर में करधनी,

पाँव में कड़ा इत्यादि पहनाकर हम अपने बच्चों को खूब सजाते हैं। यदि कहीं विवाह में गये तो क्या पूछना ! अड़ोस-पड़ोस से गहने माँग कर पहना देते हैं।

२. जहाँ तक हमारी धारणा है, हम समझते हैं कि माता-पिता अपने बच्चों को रूपवान् बनाने की इच्छा से गहने पहनाते हैं। उनका यह भी आशय होता है कि हमें कोई दरिद्र न समझे, हमारी प्रतिष्ठा भंग न हो और हम समाज में दूसरों से हीन न समझे जायँ।

३. हमारी समझ में बच्चों को गहना कभी भी नहीं पहनाना चाहिये। इससे वे अकड़कर चलते हैं। उनमें अभिमान का बीज अंकुरित हो जाता है। वे गहने पहनकर दूसरों से अपने को बड़ा समझने लगते हैं और नम्रता को दूर भगा देते हैं। वे अभिमानी बनकर विद्या पढ़ना चाहते और अन्त में कोरे के कोरे रह जाते हैं।

इसी गहने के कारण प्रति-वर्ष सैकड़ों निरपराध बच्चों के प्राण जाते हैं। चोर, डाकू और लोभी लालच में पड़कर उन्हें मार डालते हैं। यदि माता-पिता अपने प्यारे बच्चों को गहने नहीं पहनाते तो उन्हें सिर पीटकर पछताना नहीं पड़ता और बच्चे भी निडर होकर इधर-उधर घूम सकते हैं।

गहनों से बच्चों का शरीर बढ़ने नहीं पाता। उनके हाथों और पैरों में गहनों की रगड़ से चिह्न पड़ जाते हैं। कंठे और चकतियों से छाती फैलने नहीं पाती। जिन-जिन अङ्गों पर गहने रहते हैं वे मैले हो जाते हैं और उनमें रुधिर का बहाव भी भली-भाँति नहीं होता। इससे वे सदा के लिये स्वास्थ्य से हाथ धो बैठते हैं।

४. बच्चों का सच्चा आभूषण विद्या है। विद्या से बच्चों को सजा दीजिये, देखिये वे कैसे सुन्दर लगते हैं ! वे जहाँ जायँगे आपकी प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे। जब वे दूसरों से नम्रता से व्यवहार करेंगे तब वे दूसरे, आपका नाम प्रेम से लिया करेंगे। जो बच्चा विद्या से हीन है उसको सैकड़ों गहने पहना दीजिये; वह मूर्ख ही रहेगा और उसे देखकर लोग आपको और आपके बच्चे को भी अभिमानी ही समझेंगे।

५. जो लोग अपनी अमीरी दिखलाने के लिये अपने बच्चों को गहनों से सजाते हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस भूल को त्याग दें और भूखों का भरण-पोषण करके अपने धनाढ्यपन का परिचय दें। वे समझ रक्खें कि प्रतिष्ठा

गुणों की होती है, धन को नहीं। यदि इसपर भी अपने धन को प्रकट करना ही चाहें तो अपनी आमदनी का हिसाब लड़के के गले में लटका दिया करें। इससे संसार को उनके धन की खबर भी मिल जायगी और बच्चों को हानि भी न होगी।

६. लोगों को उचित है कि अपने बच्चों के स्वास्थ्य पर ध्यान रखकर उन्हें साफ-सुथरा रक्खा करें और विद्यारूपी भूषण से सजाकर देश के सच्चे सेवक बना दें। इसीमें हमारी अमीरी है, इसीमें हमारी प्रतिष्ठा है। बहुत से लोग अपने बच्चों को गहनों से तो लाद देते हैं और कपड़ों की खबर भी नहीं लेते। यह भूल नहीं, बल्कि मूर्खता है।

मद्यपान (शराब पीना)

१. आरम्भ। २. शराब क्या है ? ३. मद्यपान से हानि। ४. प्राचीन काल में सोमरस का पान। ५. उपसंहार।

१. व्यसन का अर्थ 'आदत' है—ऐसी आदत जो कठिनता से छूटे और जिसके बिना मन को चैन न मिले। जैसे—शिकार का व्यसन; पढ़ने का व्यसन, चोरी करने का व्यसन। अच्छी आदतें डालना तो सभी को उचित है, परन्तु दुर्व्यसन के पंजे में पड़ना किसी को उचित नहीं। मद्यपान भी एक दुर्व्यसन है। इसके पंजे में पड़कर लाखों घर बिगड़ गये हैं।

२. मदिरा एक मादक पदार्थ है। यह जौ, महुए इत्यादि वस्तुओं को सड़ा कर बनाई जाती है। सड़ाने से एक प्रकार का कड़वापन आ जाता है।

३. मदिरा पीने से मस्तिष्क को क्षोभ और बुद्धि को जड़ता प्राप्त होती है। इससे शरीर पर उग्र प्रभाव पड़ता है तथा रक्त में गर्मी अधिक हो जाती है जिससे मन में कुछ उमंग-सी प्रतीत होती है। इस उमंग में मनुष्य को अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझता, वह जो चाहे, कर बैठता है। उसके उत्तम आचार विचार सब भ्रष्ट हो जाते हैं।

मदिरा पीनेवाले का चित्त ठिकाने नहीं रहता, अतएव वह अपने दैनिक कार्यों का उचित रूप से सम्पादन नहीं कर सकता है। उसका बहुमूल्य समय यों ही निकल जाता है और अन्त में पछताने के सिवा उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता है।

मदिरा मनुष्य की पाचनशक्ति को बिगाड़ देती है, जिससे शरीर रोगों का घर हो जाता है। इसकी चाट ऐसी बुरी है कि बिना पीये कल नहीं पड़ती। ज्यों-ज्यों यह चाट बढ़ती जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है और हाथ-पैर बेकाम हो जाते हैं। देखा गया है कि जो बड़े शराबी हैं उन्हें लकवा, वातरोग, मूत्ररोग, चर्मरोग और कम्पवायु इत्यादि बहुत-सी बीमारियाँ हो गई हैं और उन्होंने इस संसार को शीघ्र ही अपने से खाली कर दिया है।

मदिरा पीनेवाले अपनी चाह को रोक नहीं सकते। इसलिये वे अपनी सारी सम्पत्ति इसीके पीछे स्वाहा कर देते हैं। जब निर्धन हो जाते हैं तब वे चोरी, कपट इत्यादि नाना प्रकार के दुराचारों के पाले पड़ जाते हैं। तथा उनके बाल-बच्चे भूखों मारे-मारे फिरते हैं।

मदिरा पीनेवाले धर्म को चुनौती दे देते हैं। हमारे धर्मशास्त्रों ने मद्य को परम निषिद्ध माना है। सामाजिक प्रथा भी इस व्यसन को घृणा की दृष्टि से देखती है और पीनेवाले का मान नहीं करती।

४. प्राचीनकाल में आर्य लोग सोमरस पान करते थे, जो सोम-लता से निकाला जाता था। सोमरस वस्तुतः एक औषधि है जो ब्राह्मी आदि बूटियों की भाँति बुद्धि के बढ़ाने में बड़ी लाभदायक है। इसी 'सोमरस' पर दृष्टि करके आज-कल बहुत से मनुष्य यह कह बैठते हैं कि प्राचीन काल में भारतवासी मद्यपान करते थे, परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं जँचता। क्योंकि जिस प्रकार ऊँख के रस को कोई मदिरा नहीं कह सकता उसी प्रकार 'सोमरस' को भी मदिरा कहना उचित नहीं।

५. 'मद्यपान' से सब मनुष्यों को बचना चाहिये। हमलोगों का यह प्रधान कर्तव्य है कि मद्य की हानि दिखाकर लोगों को सावधान करें तथा बच्चों को ऐसी शिक्षा दें जिससे वे सदा मद्य पीने से बचे रहें। इसी कार्य के लिये कई स्थानों में सभाएँ हो रही हैं। स्कूलों में भी ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जाने लगी हैं जिनके पढ़ने से बालकों की प्रवृत्ति मद्य की ओर न हो।

हम भारतवासी, यदि अपनी जातीयता रखना चाहते हों तो 'मद्य' को दूर से प्रणाम करें। हाय!

जो मस्त होकर 'तत्त्वमसि' का गान करते थे सदा—
स्वच्छन्द ब्रह्मानन्द रस का पान करते थे सदा।
मद्यादि मादक वस्तुओं से मत्त हैं अब हम वहीं,
करते सदैव प्रलाप हैं, सुधबुध सभी जाती रही!॥

—श्रीमैथिलीशरण गुप्त।

बाल-विवाह (Early Marriage)

१. परिचय। २. कारण। ३. इसके प्रभाव से विवाह के विषय में अभी भी हमारी बुरी धारणा। ४. हानि। ५. रोकना—शास्त्रों का अभिप्राय—हमारी सम्मति।

१. शोक के साथ लिखना पड़ता है कि हमारी जाति कुरीतियों का केन्द्र कही जा सकती है। हाय! जो जाति संसार भर में प्रतिष्ठा पाती थी—जो सबों को शिक्षा देती थी—वही आज इस गिरी दशा में है! अब हमारी यह दशा क्यों नहीं सुधरती? हम क्यों नहीं उन्नति के पथ पर अग्रसर होते? मातृभूमि के सच्चे सेवक स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्टजी बहुत ही ठीक कह गये हैं—

"किसी का मत है, मुल्क की तरक्की औरतों की तालीम से होगी—कोई कहता है विधवा-विवाह जारी होने से भलाई है, कोई कहता है खाने-पीने की कैद उठा दी जाय तो हिन्दू लोग स्वर्ग पहुँच इन्द्र का आसन छीन लें, कोई कहता है कि विलायत जाने से तरक्की होगी, कोई कहता है कि फिजूलखर्ची कम कर दी जाय तो मुल्क अभी तरक्की की सीढ़ी पर लपक कर चढ़ जाय। हम कहते हैं, इन सब बातों से कुछ न होगा जब तक बाल-विवाह-रूपी हमारा कोढ़ साफ न होगा।"

२. बाल-विवाह-रूपी कोढ़ हममें घुसा क्यों? इसपर विचार करना चाहिये। इतिहास हमें बताता है कि जब यवनों के अत्याचार से कन्याओं के सतीत्व की रक्षा असम्भव हो गई थी तब हमारे आचार्यों ने देशकाल का विचार कर बाल-विवाह की प्रथा चलाई।

३. इस प्रथा से उस समय मानमर्यादा की थोड़ी-बहुत रक्षा हुई तो सही, परन्तु अब यह हमारे प्राण लेने पर उद्यत जान पड़ती है। प्रभाव पड़ते-पड़ते हमारे संस्कार ऐसे हो गये हैं कि वह अब इसे धर्म-पुस्तकों की आज्ञा समझने

लगे हैं और "अष्टवर्षा भवेद्गौरी..." इत्यादि प्रमाणों से 'बाल-विवाह' को उचित बता रहे हैं। जिसके घर में सन्तान कुछ भी सयानी हो जाती है उस घर को हम कलंकित समझने लगते हैं।

हमलोग इतने गिर गये हैं कि वृक्षों की ओर जितना खयाल है, उतना भी अपनी सन्तान की ओर नहीं है! रोपने के समय इस बात पर बहुत ध्यान रहता है कि वृक्ष पुष्ट हों, हरे-भरे हों, उनकी जड़ें और डंठियाँ ऐसी दृढ़ हों कि समय पर अच्छे फल दे सकें। उनके रोपने के लिये भूमि तैयार की जाती है। भूमि से कङ्कड़ और पत्थर निकाल दिये जाते हैं और हर तरह उनकी रक्षा की जाती है। परन्तु क्या, हम सन्तानों की कुछ भी रक्षा करते हैं? जो चेतन-वृक्ष हैं, जिनसे चेतन-फल की आशा है और जिनसे अपना वंश ही नहीं, बल्कि देश उज्ज्वल हो सकता है—क्या उन सन्तानों को, विवाह के पूर्व विद्वान् और बलवान् बनाने की कोशिश करते हैं? नहीं, कदापि नहीं!

४. इस कुप्रथा ने बड़े ही अनर्थ किये हैं। समाज और जाति जिन बच्चों से हरी-भरी होती, वे स्वयं कच्ची उम्र में विवाह के कारण बल और बुद्धि खो बैठते हैं और ब्रह्मचर्य की कमी से आत्मनिर्भरता उनके पास तक नहीं फटकने पाती। भला, ब्रह्मचर्य नहीं तो स्वास्थ्य, बल, तेज और विद्या उनको कहाँ, और जब ये ही नहीं तब वे परावलम्बन की बेड़ी न पहनें तो क्या करें? लड़कियाँ कम उम्र में सन्तान पैदा करने के कारण अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं और गृहस्थाश्रम दुःखाश्रम बन जाता है। इतिहास से पूरा-पूरा पता लगता है कि जबसे दुधमुहों का ब्याह जारी कर दिया गया तबसे आज तक हमारी घटती ही होती जाती है और हम गीदड़ की भाँति निकम्मे होते जा रहे हैं। यह बाल-विवाह का ही फल है कि हजारों विधवाएँ घरों में रोती हुई दिन काट रही हैं।

५. उपर्युक्त बातों पर विचार करने से जान पड़ता है कि यदि हम अपनी उन्नति चाहते हैं—यदि देश की भलाई चाहते हैं तो हमें इस कुरीति को रोकने का यत्न करना चाहिये। अब वह अत्याचार भी नहीं है, जिससे यह रीति फिर चलने दी जाय। उस समय जिस प्रकार हमारे आचार्यों ने देशकाल को देखकर बाल-विवाह करने के लिये नियम बना दिये थे; उसी प्रकार अब भी उचित है

कि इस समय के आचार्य नियम बनाकर बाल-विवाह को रोक दें और हिन्दू-शास्त्रों ने जो उपदेश दिये हैं उनके अनुसार आदर्श-विवाह की रीति चलावें।

शास्त्रों का अभिप्राय है कि पहली अवस्था में विद्योपार्जन करे और दूसरी में योग्य बनकर विवाह करें। वैद्यकशास्त्र की सम्मति है कि २५ वर्ष से कम अवस्थावाले पुरुष और १६ से कम अवस्था वाली स्त्री की सन्तान दुर्बल और अल्पायु होगी। जहाँ ब्रह्मचर्याश्रम का वर्णन है वहाँ कम-से-कम २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने की आज्ञा है।

हमारे बहुत से भाई कहेंगे कि आजकल ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों को पूर्णरूप से पालन करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। इसलिये २५ और १६ का नियम रखना बहुत कठिन होगा। हम कठिनाइयों को स्वीकार करते हैं और हमारी सम्मति है कि इस समय कम-से-कम २२ वर्ष में लड़कों का और १४—१५ वर्ष की लड़कियों का विवाह होवे। यदि अधिक उम्र में विवाह होने लग जाय तो बाल-विधवाओं की संख्या का एकदम लोप हो जाय।

"प्रतिवर्ष विधवावृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है फटती कभी हिलकर मही!
हा! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को?
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य-वृद्ध विवाह को॥"

निबन्ध-माला

दूसरा खंड—साहित्यिक प्रणाली से लिखे लेख

गंगा

गंगा ने यदि और कुछ भी नहीं किया होता और केवल एक भीष्म को ही जन्म दिया होता, तो भी वह आज आर्य-जाति की माता के रूप में विख्यात होती। भीष्म की टेक, भीष्म की निःस्पृहता, भीष्म का ब्रह्मचर्य और भीष्म का तत्त्वज्ञान आर्य-जाति के लिये हमेशा के आदर-पात्र के ध्येय बन चुके हैं। ऐसे महापुरुष की माता के रूप में हम गंगा को पहचानते हैं।

नदी को यदि कोई उपमा शोभा देती है। तो माता की ही। नदी के किनारे बसे कि अकाल का भय भागा। इन्द्र राजा जब दगा दें तब नदी-माता हमारी फस्ल तैयार करती हैं। नदी का किनारा ही मानो शुद्ध और शीतल हवा है। नदी के किनारे-किनारे घूमने निकलते ही प्रकृति के मातृ-वात्सल्य के अनन्त प्रवाह के दर्शन होते हैं। नदी अगर बड़ी हो और उसका प्रवाह धीर-गंभीर हो, तो किनारे पर रहनेवालों की सारी सम्पत्ति-समृद्धि नदी की बदौलत होती है। सब ही नदी जन-समाज की माता है। शहर की गली-गली में घूमते-घूमते अगर कहीं किसी कोने से हमें नदी के दर्शन होते हैं, तब हम कितने प्रसन्न हो जाते हैं। कहाँ शहर का मैला वातावरण और कहाँ नदी के प्रसन्न दर्शन! तुरत ही दोनों का फर्क जान पड़ता है। नदी ईश्वर नहीं है, किन्तु ईश्वर का स्मरण करानेवाली देवी है। अगर गुरु की वन्दना करनी उचित है तो नदी की भी वन्दना करनी चाहिये।

यह तो हुई सामान्य नदी की बात, किन्तु गंगा मैया तो आर्य-जाति की माता हैं। आर्यों के बड़े-बड़े साम्राज्य इसी नदी के किनारे स्थापित हुए हैं। अंग-वंगादि के साथ कुरु-पांचाल का संयोग गंगा-मैया ने ही किया है। आज भी भारत की आबादी गंगा-मैया के किनारे सबसे अधिक है।

जब हम गंगा के दर्शन करते हैं तब सिर्फ हरे-हरे, फस्ल से लदे हुए खेत ही ध्यान में नहीं आते हैं, और माल से लदी हुई नावें ही ध्यान में नहीं आती हैं, किन्तु व्यास-वाल्मीकि की कविता, बुद्ध–महावीर के विहार, अशोक-समुद्रगुप्त या हर्ष-जैसे सम्राटों के पराक्रम और तुलसीदास या कबीर जैसे सन्तजनों के भजन—ये सब याद आते हैं। गंगा के दर्शनों का अर्थ है शैत्य-पावनत्व के प्रत्यक्ष दर्शन।

किन्तु गंगा के दर्शन कुछ एकविध नहीं है। गंगोत्री के पास के हिमाच्छादित प्रदेशों में इसका क्रीड़ाप्रिय कन्यारूप, उत्तर-काशी की ओर का—चीड़-देवदारु के काव्यमय प्रदेश में का—मुग्धास्वरूप, देवप्रयाग की पहाड़ी और सँकरे प्रदेश में चमकीली अलकनन्दा के साथ उसकी क्रीड़ाएँ, लक्ष्मण-झूला की विकराल दंष्ट्रा में से छूटने पर हरिद्वार में उसका अनेक धाराओं में स्वच्छन्द विचरण, कानपूर के बगल से जाता हुआ उसका इतिहास-प्रसिद्ध प्रवाह, प्रयाग के विशाल पट के ऊपर का उसका कालिन्दी के साथ का त्रिवेणी-संगम—हर एक की शोभा कुछ न कुछ न्यारी ही है। एक दृश्य देखने से दूसरे की कल्पना नहीं आ सकती। हर-एक का सौन्दर्य जुदा, हरएक का वातावरण जुदा, हरएक का महात्म्य जुदा है।

प्रयाग से गंगा जुदा ही स्वरूप धारण करती है। गंगोत्री से प्रयाग तक गंगा वर्द्धमान होने पर भी एक रूप गिनी जायँगी, किन्तु प्रयाग के पास इन्हें यमुना मिलती हैं। यमुना का तो पहले से ही दुहरा शरीर है। वह खेलती है, कूदती है किन्तु खिलाड़ी नहीं दीखती है। गंगा शकुन्तला के समान तपस्वी-कन्या दीखती है, जब कि काली यमुना द्रौपदी के समान मानिनी राजकन्या-सी जान पड़ती है। जब हम शर्मिष्ठा और देवयानी की कथा सुनते हैं तब भी महा-कठिनाई से मिलनेवाले गंगा और यमुना के शुक्ल और कृष्ण प्रवाह याद आते हैं। हमारे पूर्वजों ने सब संगमों में से गंगा-यमुना का यह संयोग सबसे अधिक पसन्द किया है और इसीसे उसका तीर्थराज प्रयाग के जैसा गौरव-भरा नाम रक्खा है। भारत में जब से मुसलमान आये, तब से जिस तरह उसका इतिहास बदला, उसी तरह दिल्ली, आगरा और मथुरा-वृन्दावन के पास से आती हुई यमुना के प्रवाह के कारण गंगा का स्वरूप बिलकुल बदल गया है।

प्रयाग के बाद गंगा कुलवधू के समान गम्भीर और सौभाग्यवती दिखलाई पड़ती है। इसके बाद उसमें बड़ी-बड़ी नदियाँ मिलती जाती हैं। यमुना का जल मथुरा-वृन्दावन से श्रीकृष्ण के स्मरण अर्पित करती है; जब कि अयोध्या से आती हुई सरयू आदर्श राजा रामचन्द्र के प्रतापी किन्तु करुण जीवन के स्मरण लाती है। दक्षिण तरफ से आती हुई चंचल-नदी रंतिदेव के यज्ञ-याग की बातें करती है तो दक्षिण से महान् कोलाहल करता हुआ शोणभद्र मगध-साम्राज्य की कथा की याद दिलाता है। इस प्रकार पुष्ट होकर गंगा पाटलिपुत्र के पास मगधसाम्राज्य के समान विस्तीर्ण हो जाती है। तो भी अपना अमूल्य कर-भार लेकर आती हुई गण्डक भी गज-ग्राह के दारुण युद्ध की कथा सुनना नहीं ही भूली। बिहार की प्राचीन भूमि में से आगे बढ़ते हुए गंगा मानों इस विचार में पड़ जाती है कि अब कहाँ जाना चाहिये। ऐसी प्रचण्ड जलराशि जब कि अपने अमोघ वेग से पूर्व की ओर बही जा रही हो, तब उसे दक्षिण की ओर घुमाना क्या सहज बात है? मगर तो भी वह उसी ओर घुमी है जिस तरह दो सम्राट या दो जगद्गुरु परस्पर एक दूसरे से एकाएक नहीं मिलते हैं, उसी तरह गंगा और ब्रह्मपुत्र का हुआ सा दीखता है। ब्रह्मपुत्र हिमालय के उस पार का सारा पानी लेकर आसाम में से पश्चिम की ओर आता है और गंगा इस बाजू से पूर्व की ओर आती है। इसका मिलाप भला आमने-सामने कैसे होवे? कौन किसे पहले नमस्कार करे या कौन किसे रास्ता देवे? आखिर दोनों ने निश्चय किया कि दोनों ही दाक्षिण्य का अभ्यास करके सरित्पति के दर्शन करने जावें और भक्ति-नम्र होकर जाते-जाते जहाँ बने वहाँ रास्ते में एक दूसरे को मिल लेवें।

इस तरह गोआलन्दो के पास गंगा और ब्रह्मपुत्र के विशाल जल जब मिलते हैं तब यह शंका उत्पन्न होती है कि सागर क्या इससे कुछ भिन्न होता होगा? विजय प्राप्त होने पर भली-भाँति सिखलाई हुई सेना भी जिस तरह अव्यवस्थित हो जाती है और विजयी वीर जैसा जी चाहे, वैसा कर सकते हैं, वही दशा इन महान् नदियों की होती है। अनेक मुख होकर सागर से जाकर मिलती है। हर एक प्रवाह का जुदा ही नाम होता है और किसी-किसी प्रवाह के तो एक से भी अधिक नाम हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्र एक होकर पद्मा का नाम धारण करती हैं। यही आगे जाकर मेघना के नाम से विख्यात होती है।

यह अनेक मुखी गंगा कहाँ जाती है ? सुन्दर-वन के बेतों के झुण्ड उगाने या सगरपुत्रों की वासना तृप्त करके उनका उद्धार करने को ! आज जाकर देखोगे तो पुराने काव्य में से कुछ भी नहीं रहा है। जहाँ नजर डालो, वहीं सन के बोरे बनानेवाली मिलों और उनके जैसे ही दूसरे विरूप कारखाने दिखलाई पड़ेंगे। जहाँ से भारतीय कारीगरी की असंख्य वस्तुएँ भारतीय जहाजों में लंका अथवा जावा-द्वीप तक जाती थीं वहीं से अब विलायती और जापानी आग-बोटें परदेशी कारखानों में बना कचरा माल भारत के बाजारों में पाट देने के लिये आती हुई दिखाई पड़ती हैं। गंगा-मैया तो पहले के ही समान हमें समृद्धियाँ अर्पण करती है, किन्तु हमारे निर्बल हाथ उन्हें ले भी तो ! गंगा-मैया ! तुम्हारे नसीब में यह दृश्य देखना कब तक बदा है।

—काका कालेलकर

रिक्शावाला

टीसन···गर्दनी बाग···टीसन चलिये बाबू !

रिक्शावाला चिल्ला उठा। किन्तु कल के भूखे पेट की आवाज अधिक तेज न हो सकी। परसों उसे हलका बुखार हो गया था। बेचारा रिक्शे पर ही पड़ा रहा रातभर ! करता क्या ? यही तो उसका जीवन है। दिनभर घोड़े की तरह खटना और रात में रिक्शे पर सो जाना। कहीं छोटी-मोटी कोठरी किराये पर ले लेता सो इतने पैसे कहाँ बचाते थे उसे ! रिक्शा ही उसका घर था। बहुत भूख लगती तो एक शाम किसी होटल में खा लेता, एक शाम फरही-चना फाँककर गुजर चला लेता। रिक्शावाला हुआ तो क्या हुआ ? उसे भी तो परिवार है। उसकी पत्नी है, माँ है, दो बच्चे हैं। और इन सबका भरण-पोषण उसे ही करना है। इसीलिये वह पैसा बचाने की यथासाध्य चेष्टा करता है। लेकिन रिक्शा भी तो उसका अपना नहीं है। मालिक को तीन रुपये रोज देना पड़ता है, उस सड़े रिक्शे के लिये।

हाँ तो, बुखार लगने पर पड़ा रहा अपने रिक्शे पर। दूसरे दिन बुखार तो उतर गया। लेकिन पैसे थे नहीं उसके पास। केवल डेढ़ रुपये बचे थे जो रिक्शा मालिक ने रोज में ले लिये। बेचारा खाय तो क्या खाय ? और लाचार होकर उसे रिक्शा चलाना ही पड़ेगा। पेट तो मानेगा नहीं। और इसीलिये वह रिक्शा

लेकर निकला है। दो बज रहे हैं, किन्तु अभी तक एक भी सवारी उसके भाग्य में नहीं।

रिक्शा-मालिक का रौद्र-रूप उसकी आँखों के आगे नाच रहा है। उसके कल का आधा रोज भी बाकी है, और आज का तीन रुपया हो जायगा। वह कहाँ से पूरा करेगा।

रिक्शावाला काँपते हुए पैरों से रिक्शे को ढकेलते हुए आगे बढ़ा। एक बाबू ने पूछा—"क्यों जी, सेक्रेटेरियट चलोगे?" रिक्शावाले की आँखों में आशा की चमक दीख पड़ती। वह बोला—'चलूँगा क्यों नहीं हुजूर!"

'कितना लोगे?'

'वहाँ का तो रेट ही बँधा हुआ है। बारह आना दे दीजियेगा!'

"ओह, तुमलोग बहुत चार्ज करते हो! देखते नहीं जमाना सस्ती का आ गया है। रुपये में दो सेर चावल मिलने लगा है और तुमलोग हो जो अभी तक वही चार्ज रक्खे हुए हो!"

वैशाख मास की कड़कती धूप में बाहर सड़क पर खड़े होकर इतनी बातें करने के बाद बाबू का मिजाज गर्मी से व्याकुल हो जाना कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं थी। वे परेशान हो उठे थे और सिर का पसीना पोछ रहे थे। रिक्शा-वाले ने मिन्नत से कहा—"मालिक बारह आना आप लोगों के लिये क्या है और कितना दूर जाना पड़ता है यह भी तो देखिये।"

"ओह, इस धूप में खड़े होकर तुमसे बहस मुझे नहीं करनी है। अकेला आदमी हूँ, छः आना दूँगा। चलना हो तो चलो। नहीं तो मैं यह चला।" कहकर बाबू सड़क की बगल में एक दूकान की साये की ओर बढ़े।

रिक्शावाले ने देखा तीन आदमी के वजन के तो ये अकेले ही हैं। इनके चढ़ने पर दूसरे आदमी को चढ़ा लेना और रिक्शा खींचकर इस धूप में से सेक्रेटेरियट तक जाना उसके लिये असम्भव है। सो भी छः आने पैसे में। किन्तु अभी तक उसे कोई सवारी नहीं मिल सकी। पेट की आँतें कुलबुला रही हैं। सवारी का मोह...। मालिक का रोज...।

रिक्शावाले ने कहा—"अच्छा आइये, दस आना ही दे दीजियेगा।

लेकिन बाबू आठ आने से अधिक बढ़ने के लिये तैयार नहीं हुए। लाचार

होकर रिक्शावाले को उस सवारी का मोह छोड़ना पड़ा। उसकी आँखों की आशा की ज्योति बुझ गई और अंधकार छा गया।

उसने फिर आवाज लगाई—"टीशन, पर्ल सिनेमा !..."

किन्तु उस भयंकर धूप में बाहर निकलने के लिये लोग उतने उत्सुक थे नहीं जितना था वह रिक्शावाला। कुछ आगे बढ़ गया वह। एकाएक एक युवक नख-शिख तक फैशन में चूर—उसकी ओर बढ़ा—"पर्ल चलोगे ?"

"चलूँगा क्यों नहीं बाबू !" रिक्शावाले की आँखों में आशा की ज्योति पुनः चमकी।

"क्या लोगे ?"

"आठ आना दे दीजियेगा बाबू !"

"आठ आना ?" इतना अधिक तो नहीं दे सकूँगा। अकेला हूँ, चार आना दूँगा। कोई दूसरी सवारी बैठा लेना।

अब रिक्शावाला क्या करे ? भूख से उसकी अँतड़ियाँ ऐंठी जा रही थीं। अंग-अंग शिथिल हो रहे थे। इन सबों के समाधान के लिये चाहिये भोजन और भोजन के लिये चाहिये पैसे ! किन्तु बिना रिक्शा चलाये उसे पैसे मिलें कहाँ से ?

"अच्छा, आइये, पाँच आने हो दे दीजियेगा।"

बाबू रिक्शे पर बैठ गये। रिक्शावाला पैडिल चलाने लगा। बाबू ने घड़ी की ओर नजर डाली और कहा—"जरा तेजी से चलो, इस रफ्तार से चलने पर तो दो घंटे लग जायेंगे, केवल पन्द्रह मिनट बाकी है खेल शुरू होने में। जान पड़ता है आज ब्लैक से टिकट लेना पड़ेगा।

रिक्शावाले ने पुकारा—"एक सवारी–टीशन–गर्दनी बाग—पर्ल सिनेमा।"

किन्तु उसको जैसी गरज थी वैसी और लोगों को भी रहे तब तो ! वह सोच रहा था—अपने इस दुर्भाग्यपूर्ण जीवन के बारे में। तभी सामने उसका साथी कल्लू खड़ा-खड़ रिक्शा चलाता दीख पड़ा। इस समय वह खूब पिये हुए था। इस रिक्शेवाले ने जोर से कहा—"कल्लू भैया, एक बीड़ी तो देना ! एक फूँक लगा लूँ तो जरा दम आ जाय।"

कल्लू को शायद अच्छी आमदनी हो गई थी। वह अकड़ कर बोला—"क्या बीड़ी-फीड़ी पीता है बे ! कई बार कहा कि सुबह में आकाश जल (ताड़ी)

एक लबनी चढ़ा लिया कर। भला बिना नशा-पानी के कोई किस बल पर रिक्शा चला पायगा। देखना आज सुबह ही एक लबनी चढ़ा ली है अभी तक मिजाज मस्त बना हुआ है ले-ले यह बीड़ी।"

बीड़ी सुलगाकर रिक्शावाला फिर बढ़ा आगे। लेकिन भूखे पेट को बीड़ी कितना भर सकती है? अब तक वह नशे से बचता आया है। उसे तो भर पेट भोजन ही नहीं मिलता, फिर नशा-पानी के लिये पैसे कहाँ से लावे। वह ऐसे अनेक रिक्शावालों को जानता है जो अपनी सारी कमाई नशे-पानी में ही फूँक देता है और तरह-तरह के दुर्व्यसनों का शिकार हो जाता है। बुरे रोग भी उन्हें धर दबाते हैं। पौष्टिक भोजन तो उन्हें मिलता नहीं फिर नशा खाकर वे मजबूत बनना चाहते हैं। लेकिन...

"देखो जी, इस रफ्तार से काम नहीं चलेगा। इस प्रकार तो इस धूप में तुम मुझे मार ही डालोगे। सिनेमा भी छूट जायगा।" बाबू ने तीखी आवाज में कहा।

रिक्शावाले ने जरा और जोर लगाया। तीखी धूप से उसका शरीर पसीने-पसीने हो रहा था। पाँव थरथरा रहे थे। दूसरी सवारी भी नहीं मिल रही थी। इतनी दूर इस धूप में जानेपर उसे मिलेंगे केवल पाँच आने पैसे, जिसमें वह पेटभर खा भी नहीं सकेगा।......

वह फिर चिल्लाया—"टीशन-पर्ल सिनेमा एक सवारी।"

लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला। वह अपनी सारी शक्ति को बटोरकर कमर झुकाये जोर लगा रहा था, जिससे बाबू समय पर सिनेमाघर पहुँच जायँ! बाबू सिनेमा देखकर खुश होंगे, जरा मनोरंजन हो जायगा...और इधर रिक्शावाले की जान निकली जा रही थी! विज्ञान ने लोगों के लिये आराम और सुविधा के सभी सामान इकट्ठे कर दिये हैं। किन्तु इस वैज्ञानिक युग में आज भी मानव 'घोड़े' का काम कर रहा है! विज्ञान द्वारा उत्पादित आराम के सारे उपादान केवल पैसेवालों के लिये ही हैं, गरीबों के लिये नहीं। उन्हें तो आज भी उसी प्रकार जानवर की तरह खटना पड़ता है, जिस प्रकार सौ साल पहले। पुराने जमाने के धनी-मानी या राजे-महाराजे आदमी द्वारा ढोई जानेवाली पालकी पर सफर करते थे। उस रिवाज को आज के सभ्य कहे जानेवाले बर्बरतापूर्ण कहते

हैं। पर क्या ये रिक्शेवाले उससे भिन्न हैं? ये भी तो उसी प्रकार रिक्शा खींचते हैं!

"रिक्शा स्टेशन के पास आ पहुँचा, पर बेचारे को दूसरी सवारी नहीं मिली। उसकी सारी ताकत जवाब दे रही थी। प्राण होठों पर अटक गये थे। वह अपनी अन्तिम शक्ति से उसे खींच रहा था। उसी समय जोरों की आवाज हुई और उसका रिक्शा पंचर हो गया! दैवो दुर्बलघातकः।"

"पंचर हो गया!" कहते हुए रिक्शावाला जैसे आसमान से गिर पड़ा। बाबू तुरन्त रिक्शे से उतर गये और लाल-पीले होते हुए बोले—"तुमने सब बोर कर दिया। अब शायद ब्लैक से भी टिकट मिलेगा या नहीं, कौन जाने! गधे की चाल से लाया है, कम्बख्त रिक्शावाला तो वज्राहत की भाँति अपने रिक्शे की पंचर टायर की ओर देख रहा था। इधर बाबू लपके सिनेमा की ओर। रिक्शावाला चिल्लाया—"हुजूर, भगवान की मार का क्या जवाब है। यहाँ तक तो आ ही गये, अब तो थोड़ी ही दूर है! पैसे......।"

"कैसा पैसा? तुम्हें तो दण्ड मिलना चाहिये, बेवकूफ कहीं का! कितना टाइम खराब कर दिया। ताकत नहीं थी तो रिक्शा लेकर चला काहे था? मूर्ख!"

"बाबू, कल से ही भूखा हूँ! आप तो सिनेमा में तीन रुपये खर्च करेंगे! मुझ गरीब का कमाया हुआ...केवल चार आने भी दे दीजिये! भगवान् आपका भला करेंगे।"

"रिक्शावाले की सारी आशा समाप्त हो रही थी!"

"तीन नहीं, तीन सौ खर्च करूँगा? उसमें तेरे बाप का क्या बिगड़ता है, शैतान कहीं का! उलटे टाइम भी बरबाद कर दिया और बत्तमीजी करता है। ले भाग!'

एक इकन्नी फेंककर बाबू सिनेमा की ओर लपक पड़े। रिक्शावाले ने इकन्नी उठा ली! उसकी आँखों से दो अश्रुकण लुढ़क पड़े! पंचर रिक्शा...तीन शाम का भूखा पेट···मालिक का साढ़े चार रुपया रोज...और यह एक इकन्नी...।

वीरत्व

वीर कौन है! क्या वह, जो अपने शारीरिक बल से दूसरों को दबावे? क्या वह, जो अपने पराक्रम से दूसरों को परास्त करे? क्या वह जो-कल-बल छल

से शत्रुओं को जीत ले? अथवा वह, जो जबरदस्ती दूसरों का माल छीन ले—उनकी जगह-जमीन अपने कब्जे में कर ले या दूसरे मुल्कों पर अपना अधिकार जमा डाले? 'वीरत्व' क्या शारीरिक बल का तमाशा दिखाने का ही दूसरा नाम है अथवा इसमें कुछ नैतिक गुण का भी समावेश है? 'वीरत्व' के लिये क्या 'सफलता' आवश्यक वस्तु है अथवा 'विफलता' में भी 'वीरत्व' का आभास मिल सकता है?

साधारणतः लोग उसीको 'वीर' कहते हैं जिसने साधारण बल प्रकट करनेवाला कोई काम किया हो—किसी लड़ाई में सफलता प्राप्त की हो—शत्रुओं पर विजय पाई हो अथवा दूसरे मुल्कों को छीनकर अपने अधीन कर लिया हो। यदि थोड़ी-सी चिन्ता और विचार से काम लिया जाय तो मालूम पड़ेगा कि ऊपर कही गई कोई भी बात 'वीरता' के लिये अत्यन्त आवश्यक नहीं है। 'वीरता' बल का तमाशा दिखाने में नहीं, सफलता में नहीं और दूसरों पर अधिकार जमाने में भी नहीं है। वह एक स्वाभाविक गुण है—हृदय का एक उच्च भाव है, जिसका ऊपर लिखी हुई किसी बात से कोई विशेष सम्बन्ध या लगाव नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि साधारण भाषा में सफल दिग्विजय और देश-विजेता 'वीर' नाम से पुकारे जाते हैं—जैसे महावीर सिकन्दर, महावीर नेपोलियन, आदि। इसमें शक नहीं कि बड़े-बड़े योद्धा भी—शूर-वीर कहे गये हैं और कहे जाते हैं। पर विचारने की बात यह है कि उनकी वीरता क्या वास्तव में उनके युद्ध-कौशल अथवा शारीरिक या सैनिक बल के कारण थी, अथवा उनमें और भी गुण थे, जिनके कारण उन्हें लोग 'वीर' कहते हैं मोटी तरह से देखने पर केवल बाहरी गुणों तक ही दृष्टि पहुँचती है। इसलिये साधारण रीति से उनके ऊपर लिखे बाहरी गुणों अथवा साधनों के कारण लोग भले ही उन्हें 'वीर' कहें; पर बारीकी से देखने और विचार करने पर इतने से ही संतोष नहीं हो सकता—केवल उन बाहरी विषयों के लिये ही उन्हें 'वीर' की पदवी नहीं दी जा सकती। बारीकी की दृष्टि अथवा विचार तो उनके भीतर प्रवेश करेगा—उनके हृदय को टटोलेगा और जब उसे वहाँ कुछ नैतिक गुण प्राप्त होगा, तभी वह उन्हें 'वीर' कहेगा, नहीं तो—नहीं।

शारीरिक बल तो पशुओं में भी हैं; तो क्या वे इस कारण 'वीर' कहे जा

सकते हैं ? बड़े-बड़े, हत्यारे डाकू भी असाधारण बल दिखाया करते हैं; तो क्या वे भी 'वीर' कहे जा सकते हैं ? शक्तिशाली पुरुष निर्बल को दबा सकता है; उसकी मानवता छीन ले सकता है; तो क्या वह भी 'वीर' कहा जा सकता है ? बहुत बड़ी सेना रखनेवाला राजा दुर्बल राजाओं को युद्ध में परास्त कर सकता है और उनके राज्य छीनकर उनपर अपना सिक्का जमा सकता है; तो क्या वह भी 'वीर' ही गिना जायगा ? संसार का इतिहास इस प्रकार की अनेक घटनाओं से भरा पड़ा है; पर तो भी उन घटनाओं में भाग लेनेवाले कितने ऐसे हैं जिन्हें लोग 'वीर' कहते हैं या कह सकते हैं ? इससे स्पष्ट है कि सांसारिक सफलता अथवा शारीरिक बल 'वीरता' के लिये आवश्यक नहीं है। इस प्रकार चतुराई और बुद्धि भी वीरता के लिये निश्चित रूप से आवश्यक नहीं है। बुद्धि और चतुराई से मनुष्य अपना काम निकाल ले सकता है—कोई अपूर्व कार्य भी कर सकता है—बड़े-बड़े को नीचा दिखा सकता है—धन और यश भी कमा सकता है; पर उनसे वह 'वीर' कदापि नहीं बन सकता।

तब 'वीरत्व' क्या है ? 'वीर' कौन है ? मेरी समझ में 'वीर' वही है जिसके हृदय में बल अवश्य हो, चाहे देह से वह दुर्बल ही क्यों न हो। जिसमें कर्तव्यपालन करने की सच्ची लगन हो—उसके लिये मर मिटने की हिम्मत हो; जो विघ्नबाधाओं की—आपद्-विपदों की—कष्ट-संकटों की—जरा भी परवाह न कर, निर्भय-निःशंक रह, अपने धर्म पर—अपने कर्तव्य पर डटे रहे; जो धीरता-पूर्वक सब दुःखों को सहे, पर कभी सत्य से भ्रष्ट न हो, सचाई के मार्ग को न त्यागे; जो सदा सबलों से निर्बलों की रक्षा करने की चेष्टा करे—दुखियों का दुःख दूर करने का प्रयत्न करे—अबलाओं की मान-मर्यादा की रक्षा करे; जो परोपकार के लिये अपना जीवन निछावर करने को भी तैयार रहे; जो संसार के कल्याण के सामने क्षुद्र स्वार्थ का बलिदान करने को कमर कसे रहे—संक्षेप में यह कि जो तन-मन-वचन और धन-जन-प्राण से लोक का हित—लोक की सेवा करने पर तत्पर तथा धर्म और सत्य की लीक से कभी न डिगे, ये ही गुण 'वीरत्व' के मुख्य लक्षण हैं। जिनमें इन गुणों का एक अंश भी रहता है वही 'वीर' कहाता है और आजतक कहलाता आया है।

'वीर' शब्द का मौलिक अर्थ क्या था, यह ठीक पता नहीं चलता। परन्तु अँगरेजी भाषा में एक शब्द है जिससे मिलान करने पर इस शब्द का वास्तविक अर्थ सम्भवतः मिल जाता है। अँगरेजी में तुमलोगों ने वर्चू (Virtue)* शब्द पढ़ा होगा, जिसका अर्थ 'गुण' है, पर यह इसका मौलिक अर्थ नहीं है। अँगरेजी का वर्चू (Virtue) लैटिन भाषा के वीर (Vir) शब्द से निकला है, और लैटिन में वीर (Vir) शब्द का अर्थ 'मनुष्य' है। इसलिये वर्चू (Virtue) शब्द का असली अर्थ 'मनुष्यत्व, मनुष्योचित गुण वा पुरुषार्थ' है। मैं समझता हूँ कि हमारे 'वीरत्व' शब्द का भी वही असली अर्थ था, जिसे समय की गति के प्रभाव से अब हम भूल गये हैं! मैं अँगरेजी या लैटिन वर्चू (Virtue) और हिन्दी या संस्कृत 'वीरत्व' शब्द को एक ही समझता हूँ। देशान्तर के कारण दोनों के उच्चारण में थोड़ा-सा भेद अवश्य पड़ गया है, फिर भी देखिए कैसा साम्य है! सब लोग जानते हैं कि लैटिन भाषा और संस्कृत भाषा का उत्पत्ति-स्थान एक है। कोई-कोई तो लैटिन को आरंभ में संस्कृत से निकली हुई मानते हैं, भाषा-शास्त्र के पण्डितों ने बड़ी खोज के बाद इतना तो अवश्य सिद्ध कर दिया है कि चाहे 'लैटिन' संस्कृत से निकली हो या नहीं, कम-से-कम आरम्भ में लैटिन और संस्कृत में अवश्य घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा—सम्भव है, दोनों की जननी कोई एक ही भाषा होगी जो आज लुप्त हो गई है। दोनों भाषाओं में आज भी ऐसे अनेक शब्द वर्तमान हैं, जो उच्चारण और अर्थ में एक ही जैसे हैं। उदाहरण के लिये संस्कृत के 'पितृ' शब्द को लीजिये। इसका अर्थ 'पिता' है। लैटिन भाषा का पेटर (Pater) शब्द इसीसे मिलता-जुलता है और उसका अर्थ भी 'पिता' है। इसी प्रकार संस्कृत 'मातृ' और लैटिन मेटर (Mater) शब्द का अर्थ 'माता' है। और भी अनेक शब्द दोनों भाषाओं में इसी प्रकार की—अर्थ और उच्चारण में—समता रखनेवाले हैं।

इसी कारण, मैं समझता हूँ कि संस्कृत 'वीर' और लैटिन वीर (Vir)

---

* अँगरेजी में कई शब्दों के उच्चारण उनके अक्षरों के पढ़ने से ठीक नहीं होते हैं। इसलिये वर्चू उच्चारण है, नहीं तो अक्षरों के विचार से वीरतुई उसका उच्चारण होगा।

शब्द—दोनों—एक ही हैं और दोनों के अर्थ भी एक हैं। मैं इसी आधार पर यह कहना चाहता हूँ कि संस्कृत 'वीर' शब्द का अर्थ वही है जो लैटिन वीर (Vir) शब्द का है और संस्कृत 'वीरत्व' और अंगरेजी (Virtue) एक ही शब्द है। इस कारण मेरी समझ में 'वीरत्व' का वास्तविक अर्थ 'पुरुषार्थ' है और इसमें उन सब गुणों का समावेश है जो मनुष्योचित हैं—जिनके कारण मनुष्य वास्तविक मनुष्य है।

इस दृष्टि से देखने पर मालूम होगा कि मैंने ऊपर वीर पुरुष के जो लक्षण लिखे हैं वे गलत नहीं हैं, और सचमुच संसार—विशेषकर भारतवर्ष—भी वीरों में कुछ कम-बेश उन्हीं लक्षण की कल्पना करता आया है। यद्यपि मामूली जबान में मामूली लोगों द्वारा दिग्विजयी बादशाह 'वीर' कहे गये हैं; पर और लोग भी इस नाम से वंचित नहीं हुए हैं। देश के लिये जान देनेवाले, धर्म पर न्योछावर करनेवाले और लोक-कल्याण पर निःसार होनेवाले भी इस नाम से वंचित नहीं हुए हैं। प्रसिद्ध अङ्गरेजी लेखक कार्लाइल (Carlyle) में सभी विषयों और विभागों के बड़े लोगों को 'वीर' पदवी से अलंकृत किया है। उसके मत के अनुसार यदि प्रसिद्ध योद्धा 'नेपोलियन' वीर है तो महाकवि 'शेक्सपियर' भी 'वीर' है। मुसलमानी मजहब के पैगम्बर 'हजरत मुहम्मद', समालोचना शिरोमणि 'डाक्टर जान्सन' और प्रसिद्ध धर्म-प्रचार 'मार्टिन लूथर' सभी अपने-अपने विभाग—अपनी-अपनी श्रेणी के वीर पुरुष हैं। चाहे 'कार्लाइल' के इस मत से लोग सहमत हों या न हों, पर इतना तो अवश्य है कि देशोद्धारक 'मेटज़िनी' और 'गैरिबाल्डी', कर्तव्यपालन में प्राण देनेवाले 'नेलसन', स्वतंत्रता के पवित्र मन्त्र से फरांसीसियों को दीक्षित करनेवाली 'देवी जोन', देश के हित उपावस-व्रत लेकर—अपने सिद्धान्त पर डटे रहकर—प्राणदान करनेवाले 'मैक्स्विनी' तथा धर्म के लिये हँसते-हँसते अग्नि-कुण्ड में भस्म हो जानेवाले अनेक रोमन-कैथोलिक पादरी—सभी 'वीर' पदवी के अधिकारी बन गये है।

भारत में 'वीर' शब्द का सदा से बड़े ही विस्तृत-व्यापक अर्थ में व्यवहार होता आया है; आदर्श भी सदा ऊँचा, अत्यन्त ऊँचा, ही रहा है। यहाँ वीरों में सबसे पहले गिने जानेवाले 'दधीचि-ऋषि' थे, जिन्होंने लोकहित के लिये अपनी हड्डियाँ सानन्द दे डालीं। यहाँ के वीर राजा 'शिवी' थे, जिन्होंने

अपनी शरण में आये हुए एक कबूतर—हाँ, महज मामूली कबूतर—की प्राणरक्षा तथा उसके ऊपर आक्रमण करनेवाले एक बाज की भूख शान्त करने के लिये अपनी देह से मांस काट-काटकर दे दिया। यहाँ के वीर राजा 'हरिश्चन्द्र' हैं जिन्होंने अपने वचन की रक्षा—अपने सत्य का पालन—के लिये सारा राजपाट दे दिया। और जब उससे पूरा न पड़ा तब अपने को चांडाल के हाथ बेच दिया—स्त्री-पुत्र को पराधीन बना दिया; और जब साँप के काटने से अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु हुई तब अपनी असहाय दुःखिनी स्त्री के करुण-विलाप से भी तनिक न हिलकर—अपने श्मशानस्वामी की आज्ञा के उचित पालन के हेतु—पुत्र की लाश में लपेटे हुए कफन का भी आधा भाग रोती-कलपती स्त्री से नियमानुसार माँगने में जरा नहीं चूके, यद्यपि वह कफन भी दरिद्रता और वस्त्र के अभाव के कारण उनकी स्त्री ने अपनी आधी साड़ी फाड़कर बनाया था और बाकी अधफटी साड़ी से ही अपने शरीर की लज्जा ढके हुए थी। यहाँ के वीर हैं 'प्रह्लाद' जिन्होंने ईश्वर-प्रेम और भक्ति के लिये पहाड़ पर से गिराया जाना तथा आग में जलाया जाना भी सहर्ष स्वीकार किया, अपने हृदय के विश्वास से न टले—ईश्वर-भक्ति से न डिगे। हमारे वीर हैं 'लक्ष्मण', जो भ्रातृ सुभक्ति के कारण सब सुखों को त्याग—वन-वन मारे-मारे फिरे, पर पूज्य बड़े भाई के चरणों की सेवा नहीं छोड़ी। हमारे परम पूज्य वीर हैं 'महावीर हनुमान', जिनकी प्रभु-भक्ति और आत्मशक्ति प्रसिद्ध है। हमारे आदर्श वीर हैं पितृभक्त सत्यव्रत 'भीष्म', जिन्होंने पिता के सुख और सन्तोष के लिये अपना राज्य का अधिकार छोड़ा और जीवन भर ब्रह्मचारी रहने का व्रत सानन्द स्वीकार किया। इसी प्रकार इस युग में भी अनेक वीर इस देश में हो गये हैं, जिनकी पवित्र स्मृति हमें सदा उत्साह और स्फूर्ति प्रदान करती है। 'महाराणा प्रताप' के वीरत्व की कहानियाँ पढ़ते-सुनते ही हमारा हृदय उमंग से भर जाता है—सारे शरीर में रोमांच हो जाता है। उन्होंने अपनी मातृभूमि के मान और क्षत्रिय-जाति की मर्यादा की रक्षा के लिये कितने ही कष्ट सहे—जंगलों में घूमते फिरे—कन्द-मूल पर निर्वाह किया—अनेक बार भूखों भी दिन काटे—अपने प्रिय स्त्री-पुत्र को दाने-दाने के लिये अपनी आँखों तरसते देखा; पर विधर्मी, विदेशी, विजेता के सामने कभी

सिर नहीं झुकाया—अधीनता स्वीकार कर और जाति का अपमान कर अपना राजपाट वापस नहीं किया। महाराष्ट्रवीर शिवाजी तथा सिक्खों के गुरु गोविन्द-सिंह ने मुगलों के अत्याचार से पीड़ित प्रजा के उद्धार के लिये तथा हिन्दू-धर्म का गौरव पुनः स्थापित करने के लिये कौन-सा कष्ट स्वीकार नहीं किया है ?

ऐसे-ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। 'वीरत्व' हमारे यहाँ केवल एक ही विषय की सीमा में बँधा नहीं है बल्कि प्रत्येक विषय में—जिसमें निर्भीकता, हृदय की दृढ़ता, सत्साहस, त्याग, कर्तव्य-परायणता और सत्य-निष्ठा आदि गुण पाये जायँ—'वीरत्व' सम्भव है। रणवीर, दानवीर, कर्मवीर, धर्मवीर आदि प्रचलित शब्द ही इसके प्रमाण हैं कि हर विषय में 'वीरता' प्राप्त हो सकती है।

महात्मा गांधी ने कभी अपने शारीरिक बल का जौहर नहीं दिखाया, किसी लड़ाई में नहीं लड़े, तो भी क्या वह वीर नहीं हैं? क्या लोगों ने स्वयं ही अपने हृदय की सहज प्रेरणा से ही, उन्हें कर्मवीर की उपाधि नहीं दे रक्खी है! क्या वह इस बात का सबूत नहीं है कि हमारे हृदय को 'वीरत्व' की खूब परख है—अच्छी पहचान है। चाहे जबान से हम कितनी ही उलटी-सीधी बातें करें और चाहे जिसे 'वीर' कह डालें, पर हृदय सदा सच्चे वीरत्व का अनुभव करता है। हमारी सहज बुद्धि सदा अज्ञात तर्क से उसे पहचान जाती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि 'वीरता' सब स्थानों, सब विषयों, सब विभागों में प्राप्त होने योग्य है। उसके लिये किसी को कोई खास विषय या व्यापार ढूँढ निकालना नहीं पड़ता। जो कोई जहाँ हो—जिस विभाग में हो, जिस कार्य में लगा हो—वहीं, उसी विभाग में—उसी कर्म में वह 'वीर' बन सकता है—यदि वह अपने धर्म पर दृढ़ रहे, अपने स्वार्थ में लगाम डाले, लोक-हित पर ध्यान रक्खे, विघ्न-बाधाओं की परवा न करे, निर्भय, निःशंक होकर अटल भाव से अपने स्थान पर डटा रहे, मर जाय—पर कर्तव्य को न त्यागे। इस्पात की तरह टूट जाय—पर कभी झुके नहीं।

संक्षेप में यह कि पुरुषार्थ की मूल भित्ति, उसकी एकमात्र प्रेरक शक्ति और 'आत्मिक बल' ही यथार्थ 'वीरत्व' है। उसीके लाभ की सबको चेष्टा करनी चाहिये—केवल पाशविक अथवा शारीरिक बल के लाभ की नहीं। पाश-

विक बल अन्यायी होता है और अन्याय 'वीरत्व' का घातक है। जो दूसरों की वस्तु पर—उनकी सम्पत्ति—उनके देश पर बल का प्रयोग करके अधिकार जमा लेते हैं, वे अन्यायी हैं। आत्मिक बल से शून्य दिग्विजयी राजा के सेनापति कदापि 'वीर' नहीं कहे जा सकते, चाहे उन्होंने कितनी ही हिम्मत या कितना ही कष्ट सहने की ताकत क्यों न दिखाई हो। उनमें और मामूली राहगीर डाकुओं में यदि कोई भेद है तो यही कि वे उनसे अधिक लोभी और अधिक बलशाली हैं। 'वीरत्व' निर्बलों की रक्षा और दुखियों का उद्धार करने में है, उनको दबाने या सताने में नहीं।

—आचार्य बदरीनाथ वर्मा

कर्त्तव्य-पालन

मनुष्य-जाति में यह एक स्वाभाविक गुण है कि परोपकार और त्याग की ओर उसकी बहुधा पूज्यबुद्धि रहती है। जो मनुष्य सुख, आराम और धन के त्याग से दूसरों का उपकार करता है उसका आदर और प्रशंसा करना हमारे लिये एक स्वाभाविक बात है। किसी बड़े प्रयोजन की सिद्धि के लिये जब कोई व्यक्ति कठिन क्लेश भोगता और अपने प्राण तक संकट में डालता है तब हमारे हृदय में उसके आदर का आविर्भाव होता है और हमारे मुख से आप ही आप वाह-वाह निकलता है।

अब यहाँ हम इस बात की विवेचना करना चाहते हैं कि कौन-कौन से ऐसे कार्य हैं जो सच्ची प्रशंसा के योग्य हैं और जिनके करनेवालों की विशुद्ध चरितावली पढ़ने या सुनने से हम वास्तविक लाभ उठा सकते हैं। ऐसे कार्यों की उपमा चमकते हुए स्वर्ण से दी जा सकती है।

निरी निर्भीकता सच्ची प्रशंसा के योग्य नहीं है। ऐसा साहस और निर्भयपन तो साधारण चोरों या डाकुओं में भी पाया जाता है। कोई-कोई कार्य आत्म-श्लाघा की इच्छा से किया जाता है। इस प्रकार का कार्य कुछ थोड़ी बहुत प्रशंसा के योग्य तो अवश्य है, पर उसकी पूर्ण प्रशंसा नहीं की जा सकती। एक बार ग्रानाडा नगर के किले का मुहसरा स्पेन देश के राजा फर्डिनण्ड ने किया था। उन दिनों स्पेन का दक्षिणी भाग उत्तरी अफ्रीका के निवासी मूर मुसलमानों

के अधिकार में था। उनको स्पेन-देश से मार कर भगा देने के अभिप्राय से फर्डिनंड उनसे युद्ध करता था। एक दिन मूर सिपाही किले की दीवार पर, और फर्डिनंड की गोरी सेना सदर दरवाजे से कुछ दूरी पर लड़ने की इच्छा से सुसज्जित खड़ी थी। इतने में एक गोरा सवार कोड़ा मारता हुआ किले के दरवाजे की ओर बढ़ता दिखाई दिया और शीघ्र ही उस दरवाजे पर एक कागज का टुकड़ा, जिसमें प्रभु ईशु मसीह की माता मरियम की स्तुति लिखी थी; चिपकाकर फिर अपने स्थान पर जा खड़ा हो गया। पल भर में यह घटना हो गई और मूर सैनिक भी इस अनुपम साहस को देख चित्र में लिखे से अवाक् और स्तब्ध रह गये। मारे आश्चर्य के किसी को कुछ भी न सूझा। यह कार्य अत्यन्त साहसिक था, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर इससे लाभ क्या हुआ? हाँ, मुसलमान मूरों के हृदय पर तो अवश्य इसका कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ा ही होगा। उनको गोरे सैनिकों के शूरवीर होने का निश्चय अवश्य ही हुआ होगा। पर क्या उस सवार ने इस अभिप्राय से अपने प्राण सङ्कट में डाले होंगे? नहीं, उसने यह साहस अपनी बहादुरी दिखाकर वाहवाही लूटने के ही प्रयोजन से किया था, न कि और किसी कारण से।

जिस कार्य के करने में इस प्रकार निरी निर्भीकता दिखलाई गई है और जिसका करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है, वरन् वाहवाही लूटने की इच्छा से प्राणों को व्यर्थ संकट में डालना है, उसे कोई भी विचारवान् पुरुष प्रशंसा के योग्य नहीं समझता। कर्त्तव्य-पालन में जितनी अधिक निर्भीकता प्रदर्शित की जाय उतनी थोडी ही है। पर पूर्वोक्त स्पेनी सवार के समान व्यर्थ मृत्यु का कवल बनने की चेष्टा करना निरा उजड्डपन है। ऐसे कार्य की सराहना कौन करेगा? जिस साहसिक कार्य के सम्पादन में कर्त्तव्य-पालन भी होता हो वही पूर्ण प्रशंसा का पात्र कहा जा सकता है। इटली-देश में विसूवियस नामक ज्वालामुखी पर्वत के फटने से जो धन तथा प्राणहानि हुई थी उसे इतिहास पढ़नेवाले जानते ही हैं। इसी दुर्घटना के समय दो विशाल नगर गरम राखों, अंगारों तथा पिघले हुए पत्थरों की वर्षा से दबकर नष्ट हो गये थे। इस उत्पात के आरम्भ में नगर-भर के नरनारी तो भाग गये, पर एक संतरी ने अपना स्थान नहीं छोड़ा। वह पहरे पर था। इसलिये दूसरे किसी संतरी के आये बिना पहरे पर से कैसे हटे?

वह अपने कर्त्तव्य-पालन में ऐसा तत्पर रहा कि थोड़ी देर में दबकर मर गया। तभी गत शताब्दी में जब वह नगर खोदकर निकाला गया तब फाटक पर उस कर्तव्यपरायण सन्तरी का पंजर मिला। उसने प्राण भले ही दे दिये; पर कर्त्तव्य-विमुख न हुआ। ऐसे ही साधारण दशा तक के लोगों की कर्तव्य-परायणता से रोम साम्राज्य किसी दिन उन्नति के शिखर पर चढ़ा था। इस रोगी सन्तरी के कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। जिस देश में ऐसे सपूत होते हैं, वही अपने तथा अन्यान्य देशों पर शासन करते हैं। हमारे भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में राजपूतों की कर्त्तव्यपरायणता भी ऐसी-वैसी न थी। उन लोगों ने भी अपनी देश-रक्षा में बड़ा शौर्य दिखलाया और अपने प्राणों की कभी परवाह नहीं की। राजपूत-वीर-नारियों के भी ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। यह भारतवर्ष ही एक देश है जहाँ की स्त्रियाँ अपने पति के परलोकवासी हो जाने पर अपना कर्त्तव्य समझ अत्यन्त क्लेशकर रीति से अर्थात् जीते-जी अग्नि में भस्म होकर अपने प्राण दे देती थीं।

कासाबियाँका नामक अल्पवयस्क फरांसीसी बालक की पितृ-भक्ति और आज्ञापालन की कथा भी बड़ी मर्मभेदी और प्रशंसनीय है। युद्ध के समय एक फरांसीसी जहाज के कप्तान ने अपने १० वर्ष के पुत्र को एक स्थान में खड़ा करके कह दिया कि बेटा जबतक मैं न कहूँ तब तक तुम इसी स्थान पर खड़े रहना, तनिक भी न हटना। पिता तो लड़ाई में मारा गया और जहाज में आग लग जाने से वह धधककर जलने लगा। फरांसीसी अफसर और मल्लाह एक भी जीते न बचे जो इस अबोध बालक की सुध लें, पर वह व्रतधारी बालक अपने नियत स्थान से तनिक भी नहीं हटा। उस वीर ने आग की तीव्र लपटों को चारों ओर बढ़ते देख कई बार "पिता जी अब आऊँ ?" ऐसा कहकर पुकारा। पर पिताजी तो इस संसार में थे ही नहीं, उत्तर कहाँ से दें ? वह आज्ञाकारी बालक भी अपने कर्त्तव्य से विमुख कैसे हो ? बस, अन्त में वह वीर जलकर भस्म हो गया, पर उसने अपना धर्म और व्रत नहीं त्यागा।

इस प्रकार कर्त्तव्य-पालन में प्राणोत्सर्ग तक कर डालना वास्तव में एक बड़ा प्रशंसनीय कार्य है, पर वह भी सर्वोत्तम नहीं कहा जा सकता। यह खरे सोने के सदृश तो है, पर उसमें पालिश की कमी है। देदीप्यमान स्वर्ण के

समान होने के लिये एक दूसरा गुण अपेक्षित है। वह गुण है परोपकार-बुद्धि। दूसरों की भलाई या रक्षा को अपना कर्त्तव्य समझ कर जो कार्य किया जाय और उसमें स्वार्थ-बुद्धि का लेशमात्र न हो वह सर्वोत्तम एवं सर्वथा प्रशंसनीय कार्य है। ऐसा कार्य करनेवाले उस समय स्वार्थ को बिलकुल भूल जाते हैं और निरी कर्त्तव्य-बुद्धि से उसे करते हैं। उस समय उन्हें इस बात का स्मरण भी नहीं होता कि हम कोई अनोखी बात कह रहे हैं, जिससे जगत् में हमारा यश होगा या हमको किसी प्रकार का लाभ पहुँचेगा। जिस मनुष्य के कार्य में तनिक भी स्वार्थ की झलक आ जाती है उसका यह कार्य सर्वोत्तम नहीं कहाता। निष्काम कर्म; जो कर्त्तव्य समझकर किया जाता है, परमोत्तम है। हमारे शास्त्र-कारों ने भी कहा है कि सब काम निस्पृह होकर अर्थात् फल की इच्छा न करके कृष्णार्पण करना उचित है। जो साहसिक कार्य आत्मश्लाघा, अर्थ-लाभ या यशोलाभ की इच्छा से किया जाता है वह पन्नी के समान ऊपर से तो चमकदार सोना-सा दीख पड़ता है, पर वास्तव में वह सोना नहीं है। इसी तरह कोई-कोई कार्य खोटे सोने के होते हैं, पर कोई-कोई पालिशदार खरे सोने के सदृश भी होते हैं। ऐसे कार्य सर्वोत्तम और सर्वथा प्रशसनीय समझे जाते हैं और उनके करने वाले निस्पृह, कर्तव्य-परायण और परोपकारी होते हैं।

आर्थेन्स नगर में एक समय शासनकर्त्ता लोग प्रजा को बड़ा क्लेश देते और लोगों पर बड़े-बड़े अत्याचार करते थे। प्रजा की सारी स्वतन्त्रता छीन ली गयी थी और हर तरह से प्रजा को पीड़ा दी जाती थी। इन कुशासकों के अत्या-चार से प्रजा को छुड़ाने के अभिप्राय से थोड़े से देशहितैषी सज्जनों ने एक स्त्री के घर में एकत्र होकर मन्त्रणा की। अत्याचारी शासकों को इस बात की खबर मिल गई और उन दुष्टों ने उस अबला को पकड़कर उससे उन लोगों के नाम और विचार प्रकट करने का दुराग्रह किया। वह स्त्री विश्वासघात करना महा-पातक समझती थी, इसलिये उसने शासकों की आज्ञा न मानी। इसपर उन नराधमों ने यह आज्ञा दी कि उस स्त्री को, जब तक वह नाम न बतलावे तब तक, घोर कष्ट दिया जाय। वह बेचारी स्त्री ही तो थी। उसने देखा कि यदि कहीं घोर यन्त्रणा न सहकर विश्वासघात हो गया तो मुझे कर्तव्य-पालन न होने का पातकी बनना पड़ेगा। इस भय से उसने अपने दाँतों

से अपनी जीभ ही काटकर फेंक दी! धन्य ऐसी स्त्री! धन्य उसका कर्तव्य-पालन!! लोना की इस यूनानी वीर नारी के देश-बान्धवों ने इसका नाम चिरस्थायी रखने के लिये एक जिह्वाहीन सिंहिनी की प्रतिमा बनवा कर स्थापित की और बहुत काल तक उसके गौरव की कथा से यूनानी लोग अपने को धन्य समझते रहे। स्मरण रहे कि यूनानी भाषा में लीना शब्द का अर्थ ही सिंहिनी है।

हमारे भारतवर्ष में भी ऐसे दयालु और कर्त्तव्य-परायण अबलारत्नों की कभी कमी नहीं रही है। कुन्ती ने दीन ब्राह्मण की रक्षा के लिये अपने प्रियपुत्र भीम को भयंकर राक्षस के पास भेजने में तनिक भी संकोच नहीं किया। फिर एक पन्ना नामक धात्री ने एक राजपूत राजकुमार के स्थान में अपने निज पुत्र को लिटाकर उसका वध अपनी आँखों से देखा और राजकुमार की प्राण-रक्षा की। इन कथाओं को पढ़कर कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसके मुख से धन्य-धन्य न निकले?

अब एक पितृ-भक्ति का दृष्टान्त भी लीजिये। स्विटजरलैंड में एक दरिद्र मनुष्य को एक अत्यन्त भयंकर एवं प्राण घातक रोग ने दबाया, पर उस बेचारे के पास इतना धन कहाँ जो वह अपनी चिकित्सा करा सकता। डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया कि यदि इसे पौष्टिक भोजन, औषध और स्वच्छ वायु न मिलेंगे तो यह अधिक दिन नहीं जी सकता। इस प्रकार की चिकित्सा के लिये द्रव्य की आवश्यकता थी। वह दीन मनुष्य न जाने किस प्रकार अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था। उसके लिये दस-बीस रुपये भी एक बड़ी रकम थे। उसके दो बालक दिन-रात अपने पिता के प्राण बचाने की चिन्ता में रहते थे। एक दिन उन दोनों ने सुना कि कोई विदेशी यात्री उकाब की एक जोड़ी बच्चों की तलाश में है और अच्छे दाम देने को कहता है। उन बालकों ने देखा कि पिता की प्राणरक्षा के लिये एक उत्तम साधन है। वे दोनों उकाब के बच्चों की खोज में पहाड़ों पर फिरने लगे। अन्त में उन्हें एक ऊँची दुर्गम पहाड़ी की चोटी पर एक घोंसला दिखाई दिया। वहाँ तक पहुँचना असम्भव-सा मालूम होता था, पर सच्चे प्रेमी के लिये कुछ भी कठिन नहीं है। उन अबोध दुधपिये बालकों ने अपने प्यारे बाप के लिये तनिक भी आगा-पीछा न किया। वे न जाने किस

प्रकार उस पर्वत के दुर्गम शिखर पर चढ़कर उकाब के दो बच्चे ले आये और उस यात्री से यथेष्ट धन प्राप्त किया। इस तरह अपने प्रिय पिता के जीवनदाता बनने की उन्होंने सुख्याति पाई।

अमेरिका के एक सज्जन का चरित्र सुनिये। एक रेलगाड़ी कैदियों से खचा-खच भरी ऐलमारा नामक स्थान को जा रही थी। बीच में एक दूसरी गाड़ी सामने से आती हुई दिखाई पड़ी। यदि ये दोनों आपस में टक्कर खा जातीं तो न जाने कितनी प्राण-हानि होती। इंजिन पर विलियम इंप्रेस नाम का एक इञ्जीनियर था। वह चाहता तो गाड़ी से कूदकर अपने प्राण बचा लेता, पर उसे ऐसे भयंकर समय में बेचारे कैदियों की जान बचाने के सिवा और कुछ नहीं सूझा, उसे अपनी रक्षा का तो स्मरण ही न रहा। सच्चे परोपकारी सज्जनों का यही हाल होता है। वे संकट पड़ने पर आत्मरक्षा को भूलकर औरों की रक्षा का ही उपाय सोचने लगते हैं। वह इञ्जीनियर अपने कर्तव्य में मग्न हो गया और इंजिन को गाड़ी लौटाने के अभिप्राय से घुमाने लगा। पर मुठभेड़ हो ही गई और इञ्जिन के चकनाचूर हो जाने से बेचारा इंप्रेस दब गया। उसके ऊपर का बोझ दूर करने पर जब उसका शरीर बाहर दिखाई दिया तब मालूम हुआ कि वह बॉय-लर से चिपका हुआ भर्ता बन रहा है और ऐसा जकड़ा है कि उसे जीते जी निकालना असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुस्साध्य है। पर तो भी कई लोग उसके निकालने की चेष्टा करने के लिये उसके समीप जाने लगे। इसपर उसने पुकार कर उन लोगों से कहा कि "भागो, बॉयलर फटना चाहता है। व्यर्थ प्राण मत खोओ।" ऐसे शूरवीर पुरुषों को सामने देखकर भीरु पुरुषों में भी वीरत्व आ जाता है। लोगों ने बॉयलर के फटने से तनिक भी भय न खाकर उसे निकालने की चेष्टा की, पर जीते जी नहीं निकाल सके।

एक नवयुवक को एक प्रकार का ऐसा रोग हो गया था कि किसी दूसरे के शरीर का जीवित चमड़ा निकालकर उसके शरीर के उस भाग पर लगाये बिना उसके बचने की कोई आशा न थी। माता-पिता, भाई-बहन आदि आत्मीय जनों में से किसी को साहस न हुआ कि अपने शरीर से दो बालिश्त खाल खींचने दें। निदान एक अज्ञात बाला से न रहा गया। वह अपने शरीर का चमड़ा देने को राजी हुई। डाक्टर ने बड़ी सावधानी से उसकी

खाल निकाली। रोगी तो अच्छा हो गया, पर हाय! उस वीरांगना ने बड़ा भयंकर कष्ट सहा और सहस्रों उपाय करने पर भी उसके प्राण न बचे। धन्य है उसका परोपकार! धन्य है वह भूमि जहाँ ऐसी स्त्रियाँ पाई जाती हैं।

कुछ समय हुआ, कलकत्ते के बङ्गालबैंक के खजाँची एक वृद्ध कान्यकुब्ज सज्जन (उनका नाम याद नहीं रहा) बीमार पड़े। उनकी जान उनके पुत्र ने अपने शरीर का चमड़ा देकर बचाई थी।

सदा परोपकार का अभ्यास करते रहने से ही अवसर पड़ने पर मनुष्य कुछ कर सकता है। यदि मनुष्य छोटी-छोटी-सी बातों में कर्त्तव्य-पालन करता रहे तो बड़े-बड़े कार्यों में फलीभूत हो सकता है। साधारणतः सभी को ऐसा अवसर प्राप्त नहीं होता। पर प्रतिदिन के साधारण व्यवहार में भी मनुष्य अनेक दिव्य गुणों का प्रकाश कर सकता है। घर में बाल-बच्चों, इष्ट-मित्रों अथवा अज्ञात जनों के साथ व्यवहार में सहनशीलता, सत्यप्रियता, स्वार्थ-त्याग, कर्त्तव्य-पालन आदि अनेक उत्तमोत्तम गुणों का अवलम्बन किया जा सकता है। ऐसे लोग चाहे जगत् में कीर्तिमान और यशस्वी न हों, पर उन्हें स्वयं एक प्रकार का अलौकिक आनन्द प्राप्त होता रहता है। कर्त्तव्य-पालन करनेवाले को सदा संतोष रहता है और इस जगत् में तथा दूसरे जन्म में उसका कल्याण होता है। कीर्तिमान् और यशस्वी होने की अपेक्षा इस प्रकार का आन्तरिक सन्तोष प्राप्त होना कुछ कम नहीं है।

—रघुवरप्रसाद द्विवेदी

पुरातन तथा आधुनिक सभ्यता

पुरानी सभ्यता का उद्देश्य सिंपुल लिविग ऐंड हाई थिंकिंग (Simple living and high thinking) अर्थात् 'साधारण जीवन और उच्च-विचार' था। हमारे पुराने लोग शून्य एकान्त स्थान में जन-समाज से बड़ी दूर किसी पर्वतस्थली या पवित्र नदी के तट पर स्वच्छ जलवायु में नीवार, साग-पात या कन्द-मूल-फल आदि खाकर रहते थे। बेश-कीमत दस्तरखान उनके लिये नहीं सजाया जाता था। पर विचार उनके ऐसे ऊँचे होते थे कि संसार की कोई ऐसी बात न बच रही, जिसपर उन्होंने खयाल नहीं दौड़ाया और जिसको अपने मस्तिष्क में नहीं रख लिया। इस समय की सभ्यता का जो चलन है, उसके साथ उनकी सभ्यता का मुकाबला करने से वे लोग जंगली और असभ्य रूड (Rude)

कहे जा सकते हैं। तब के लोगों को शान्ति बहुत प्रिय थी। जो जितना ही मन को वश में कर दमनशील और शान्त रहता था, वह उतना ही अधिक सभ्य समझा जाता था। इस समय शान्तिशील 'बोदा' समझा जाता है। मन को वश में करना तो दूर रहा; बल्कि मन को चलायमान और इन्द्रियों का अतिशय लालन करने की कितनी तदबीरें और सामग्रियाँ चल पड़ी हैं। फ्रांस में दिन में तीन बार लेडियों (महिलाओं) के फैशन बदले जाते हैं। फैशन, जो इस समय अंतिम सीमा को पहुँच रही है, वह सब सभ्यता ही का प्रसाद है। इसके सिवा लोभ, ईर्ष्या, ममता इत्यादि दोष जो इन्द्रियों को दमन करने से पैदा होते हैं, वे सब इस समय की शोभा और गुण हो रहे हैं। सारांश यह कि उस समय की सभ्यता का लक्ष्य केवल बाहरी उन्नति पर नहीं, वरन् भीतर की उन्नति में बिना बाधा पड़े बाह्य भौतिक मैटिरियल (Material) उन्नति उस समय लोगों को स्वीकृत थी। इस समय "मैटिरियल" (भौतिक) उन्नति पर जोर दिया जाता है, जिसका परिणाम यह है कि हम आध्यात्मिक विषय में दिन-दिन गिरते जाते हैं।

हमारी आधुनिक सभ्यता बिलकुल रुपये पर निर्भर है। रुपया पास न हो, तो आप सकल-गुण-गरिष्ठ शिष्ट-समाज के शिरमौर होकर भी श्रद्धास्पद नहीं हो सकते। सर्व-साधारण को जब यह निश्चय हो गया कि केवल रुपया सब इज्जत और प्रतिष्ठा का द्वार है, तब जैसे बने, वैसे रुपया इकट्ठा करना ही हमारा उद्देश्य हो गया और हमारी आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास दिन-पर-दिन होने लगा। किन्तु, तब के लोगों में ऐसा न था, आभ्यन्तरिक शक्तियों को विमल रख रुपये का लाभ होता हो तो वह लाभ उन्हें ग्राह्य था। एक कारण इसका यह भी कहा जा सकता है कि तब देश सब ओर से रँजा-पुँजा था, धन की कमी न थी। अब इस समय मुल्क में गरीबी बढ़ जाने से लोगों को रुपया कमाने में यत्न-स्ट्रगल (Struggle) विशेष करना पड़ता है। यूरोप और अमेरिका के आढ्यतम देशों में इस आधुनिक सभ्यता की पोल अभी इसीलिये नहीं खुलने पाती कि वहाँ कोशिश (Struggle) इतनी नहीं है। यहाँ सब भाँति अभाव और क्षीणता है, इससे इस वर्तमान सभ्यता की भरपूर पोल खुल रही है।

सभ्यता का, देश के जलवायु के साथ, बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी देश में प्राकृतिक नियमानुसार जो बात या जो बर्ताव जलवायु के अनुकूल पड़ता है,

वही वहाँ की सभ्यता समझी जाती। जैसे हमारा देश कृषिप्रधान है, तो जो कुछ यहाँ की खेती के अनुकूल या पृथ्वी की उपज को बढ़ानेवाली है, उसकी वृद्धि या उसका पोषण इस देश की सभ्यता का एक अंग है। जैसे गोरक्षा या गोपालन यहाँ की सभ्यता का श्रेष्ठ अंग है। सामयिक सभ्यता में गोधन की क्षीणता महापातक-सा देश भर को आक्रमण किये हैं। हमारे पूर्वज प्रकृति को छोड़ना पसन्द नहीं करते थे, वरन् प्रकृति में विकृति-भाव बिना लाये सहज में जो काम हो जाता था, उसी पर चित्त देते थे। आधुनिक सभ्यता, जो विदेश से यहाँ आई है, हमारी किसी बात के अनुकूल नहीं है; किन्तु इससे प्रतिदिन हमारी क्षीणता होती जाती है। भोग-विलास आधुनिक सभ्यता का प्रधान अङ्ग है। दरिद्र का विलासी होना अपना नाश करना है। देखिये :—

"अपर्युपरि पश्यन्तः सर्वे दरिद्रात।"

अर्थात्—अपने से अधिकवाले का अनुकरण करने से कौन नहीं दरिद्र हो जाता है? तस्मात् अन्त को यही सिद्ध होता है कि "साधारण जीवन और ऊँचा विचार" यही पुष्ट सभ्यता है। अस्तु—

जिन-दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार,
अब अलि रही गुलाब की, अपत कटीली डार।

—स्व० बालकृष्ण भट्ट

मनुष्य की बाहरी आकृति मन की एक प्रतिकृति है।

बुद्धिमानों ने वेदादि ग्रन्थो में मन के अनेक जुदे-जुदे काम लिखे हैं। यथा—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति;
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

अर्थात्—जो जाग्रत दशा में दूर-से-दूर चला जाता है, अर्थात् जो मनुष्य के शरीर में रहता हुआ भी दैवी शक्ति सम्पन्न है, जो सोती दशा में लय को प्राप्त होता है, अर्थात् न-जाने कहाँ-कहाँ चला जाता है, जो जागते ही फिर लौटकर आ जाता है, अर्थात् पहले के समान अपना सब काम करने लगता है, जो दूरगामी है, अर्थात् जहाँ नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं जा सकतीं, वहाँ भी पहुँच जाता है, जो भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों को जान सकता है, जो आकाशात्मक

है, जिनके प्रकाश से अतिवाहित हो इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में जा लगती हैं, वह मेरा मन कल्याण की बातों को सोचनेवाला हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव;
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं यविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

अर्थात्—अच्छा सारथी बागडोर के द्वारा जैसे घोड़ों को ले जाता है, वैसे ही मन प्राणिमात्र को सारथी के सदृश ले चलता है, जो कभी जीर्ण नहीं होता, अर्थात् शरीर में जैसे बाल्य, यौवन और बुढ़ापा आ जाते हैं, वैसे ही जिसमें बाल्य, यौवन और बुढ़ापा नहीं आते, जो अत्यन्त वेगगामी है, ऐसा मेरा मन कल्याण की बातों को सोचनेवाला हो।

इस मन की भावनाएँ या तरंगे जो प्रतिक्षण उसमें उठा करती हैं मनुष्य की बाहरी आकृति से प्रकट होती हैं। इसलिये इस बाहरी आकृति को यदि मन की एक प्रतिकृति कहा जाय, तो अनुचित न होगा। किसी के चेहरे को देखकर कोई कहता है कि इनके चेहरे से जनानापन बरस रहा है। यह जनानापन क्या चीज है? यही मन की एक प्रतिकृति है, जो सर्वथा उस प्रकृति के विरुद्ध है, जो पुरुषजाति की होनी चाहिये। पुरुषों के समान वीरता, उत्साह आदि पौरुषेय गुण स्त्रियों के मन में कहाँ रहते हैं। इसी तरह स्त्रियाँ भी बहुतेरी ऐसी होती हैं, जो कितनी बातों में मर्दों के कान काटती हैं, जिससे यही प्रकट होता है कि अनेक पौरुषेय गुण उनके मन में बसे रहते हैं। ऐसा ही शूरवीर का चेहरा कायर और भगोड़े से, नम्र का अभिमानी से, जिद्दी-हठीले का सरल-सीधे स्वभाववाले से, कुटिल का सरल से, चालाक का गावदी से नहीं मिलता! इतना ही नहीं, जगत के बाह्य प्रपंच का जो असर चित्त पर होता है, वह सब आदमी के चेहरे से प्रकट हो जाता है। किसी रूपवती सुन्दरी नारी को देख कामी, दार्शनिक या विरक्त योगी के मन में जो असर पैदा होते हैं और जो भावनाएँ चित में उठती हैं, वे सब अलग-अलग उन-उन लोगों के चेहरों से जाहिर हो जाती हैं। कामी कामातुर हो जाने पर आपे से बाहर हो जाता है, लाज और शरम को तिलांजलि देकर उससे मिलने की चेष्टाएँ करता है, दिन-रात विकल रहता है और अपनी कोशिश से कामयाब न हो कभी-कभी तो वियोग में जिन्दगी से हाथ धो बैठता है। ऐसे ही दार्शनिक तत्त्ववेत्ता

ज्ञानी उस सुन्दरी को पांचभौतिक पदार्थों का परिणाम मान उसके एक-एक अंग की शोभा निरख सृष्टिकर्त्ता की निर्माण-चातुरी पर मन ही मन प्रसन्न होता है। विरक्त ज्ञानी उसे हाड़, मांस, विष्ठा, मूत्र आदि मलिन और दूषित पदार्थों की समष्टि समझ मन में वैराग्य-प्रदीप के प्रकाश को अधिक स्थान देता है। इसी तरह धन देख चोर, साहू, लोभी, कदर्य के मन में जुदे-जुदे भाव उदय होते हैं, जिनकी तस्वीर प्रत्येक के चेहरे पर उतर आती है। चोर का मन धन देखते ही उसे लेने की फिकर में लगता है। उसका यह मानसिक भाव आँख और चेहरे से स्पष्ट हो जाता है। दियानतदार उस धन को साधारण वस्तु जान किसी का एक पैसा न लेना इस दृढ़ निश्चय को उस धन से अधिक मानता हुआ उसी के अनुसार बर्तता है। यह भाव उसकी उदार, प्रसन्न मुखच्छवि, ईशत् हास्य-युक्त फरकते हुए ओष्ठ आदि मर्दाने ढंग से प्रकट होता जाता है। लोभी और कदर्य का बाहरी आकार, जिसको रुपया ही सब कुछ है और जो "मर जैहौं तोहिं न भजैहौं" वाली कहावत का नमूना है, उसकी मलिन राक्षसी प्रकृति को अच्छी तरह से प्रकट करता है। बाहरी आकार से मन की बात पहचाननेवाले बुद्धिमान इसके द्वारा बड़े-बड़े काम निकाल लेते हैं। यह एक हुनर है। पुलिस के महकमे में कितने ऐसे ताड़बाज इस फन के उस्ताद हैं, जो देखते ही चोर, ठग या खूनी को पहचान लेते हैं जिससे साफ जाहिर है कि आकृति मन की प्रतिकृति है। इसी तरह किसी भक्तजन की मुखच्छवि से मन में भक्ति के उद्गार की बानगी जाहिर होती है। पहचाननेवाले कपटी, मक्कार, दाम्भिक से सरल-सीधे, सच्चे भक्त को चट पहचान लेते हैं। बुद्धिमानों के मन की उपमा मुकुर के साथ दी है। मुकुर में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसका नमूद बाहरी आकृति ही में होता है।

बाह्य आकृति सर्वोपरि मुख है, जिससे मानसिक भाव चट प्रतिबिम्बित हो जाता है। मन में किसी भी प्रकार की वेदना या विकार उत्पन्न होते ही फिर उसका छिपाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। मन की कोई बात यदि प्रकट होगी, तो मुख्यतः मुख ही के द्वारा। किसी मनुष्य को यदि कोई मानसिक वेदना है, या उसने चार दिन से कुछ नहीं खाया, या वह और किसी प्रकार की पीड़ा से आक्रान्त है, तो उसके लाख छिपाने पर मुख पर अवश्य ही कुछ

शिकन-सी मालूम पड़ेगी और उस पीड़ा का असर अवश्य मुख पर झलक पड़ेगा। यदि न झलके, तो वह योगी के समान है, जिसने मन को जीत लिया है। जिस समय चित्त में कुछ विकार रहता है, उस समय आदमी के चेहरे से वह मानसिक भाव चट प्रकट हो जाता है। जिस समय चित्त में क्रोध रहता है तो भौंहें चट चढ़ जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, चेहरा तमतमा उठता है। इसी तरह जब शोक का उदय मन में रहता है, तो बाह्य आकृति उदास, चेहरा उतरा हुआ, मुख मलिन, आँखों में आँसू डबडबाये रहते हैं। इसी तरह भयभीत का चेहरा जर्द, मुख सूखा हुआ, आकृति नितांत दीन-हीन होती है। जब चित्त प्रसन्न रहता है, तब बाह्य आकृति टटके फूले हुए गुलाब की-सी, चेहरा मनोहर रौनकदार मालूम होता है। ये सब लक्षण तात्कालिक चित्त और चेहरे के परिवर्तन में हैं। इसी तरह बहुत से चिह्न चेहरे या और-और अङ्गों के भी होते हैं; ये चिह्न, चाहे मनुष्य के हों या किसी पशु-पक्षी के हों, उनके मानसिक भाव को प्रकट करते हैं। मुख से मानसिक भाव प्रतिबिम्बित होता है। यह सामुद्रिक विद्या का एक सूत्र है जो मालूम होता है बहुत जाँच के बाद निश्चित किया गया है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में पंच महापुरुषों के लक्षण तथा एक-एक अध्याय में गौ, बैल, बकरे, मेढ़े, हाथी, घोड़े, ऊँट आदि पशुओं के अलग-अलग लक्षण दिये हैं। पंच महापुरुष के लक्षण जैसे बड़े-बड़े नेत्र, चौड़ा ललाट, उतार-चढ़ावदार सीधी सुग्गे की टोंट-सी नासिका, गड्ढेदार सीधी ठुड्डी इत्यादि भाग्यवानों के चिह्न हैं। कंजी आँखवाला, कोती गरदनवाला तथा पस्तकद अवश्य कुटिल और फसादी होंगे। एवं जिसके आगे के दो दाँत बड़े हों, वह मूर्ख न होगा। इसी प्रकार "क्वचित् खल्वाट निर्धनः" इस वाक्य के अनुसार यह प्रायः देखा गया है कि खल्वाट या गंजी चाँदवाला अर्थात् जिसके चाँद में बाल न हों वह कदाचित् ही निर्धन होगा। कानी आँखवाला साधु न होगा; आजानु लम्बबाहु अर्थात् जिसका हाथ इतना लम्बा हो कि खड़े होने पर घुटने तक छू जाय, वह बड़ा वीर, विक्रान्त, दानी, उदार प्रकृतिवाला होगा। स्त्रियों में जिसके शरीर में रोएँ अधिक हों, वह चंडी, कलहप्रिया, महाकर्कशा होगी और जल्द विधवा हो जायगी, इत्यादि। इसी से लिखा है—

"आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेंगितम् ।"

अर्थात्—चतुर लोग चेहरा देखते ही मन में क्या है; चट भाँप लेते हैं। सचमुच यही तो चतुराई है। चेहरा देखते ही तुम्हारे मन में क्या है, न जाना गया, तो चतुर और गावदी में अन्तर ही क्या रहा। साधारण मनुष्यों का मन टटोलना तो कुछ बड़ी बात नहीं है, अलबत्ता ऐसों का मन टटोलना कठिन है, जो या तो बड़े गम्भीर हैं या महाकुटिल हृदय के हैं। ऐसों ही के मानसिक भाव के विवेचन के लिये सामुद्रिक का यह सूत्र है—

"मुख से मानसिक भाव प्रतिबिम्बित होता है।"

तो सिद्ध हुआ कि मुख मानों एक मुकुर या दर्पण है, जिसमें चित्त की छाया पड़ा करती है। कोई मनुष्य भाग्यवान् है या अभागा, मूर्ख है या विद्वान्, चतुर है या गावदी, चालाक-सयाना है या सीधा-सादा इत्यादि, इन सब बातों का परिज्ञान आदमी के चेहरे ही से होता है और यह परिज्ञान केवल बुद्धिमान् ही को हो सकता है। यह बात केवल एक व्यक्ति पर ही नहीं, वरन् समस्त जाति पर सुघटित होती है। चेहरा या शरीर का निर्माण उस जाति की मानसिक शक्ति प्रकट करता है। फसड़ी नाक, मोटे होठ, मोटे बाल जैसे हबशियों के होते हैं, बुद्धितत्व के ह्रास के द्योतक हैं। जिनमें ये लक्षण मिलते हों, अवश्य उसमें बुद्धितत्व की कमी होगी। केवल यही नहीं, वरन् वह अक्ल का घोड़ा और शरारत का पुतला होगा। जानवरों में भी एक-एक गुण ऐसा देखा जाता है, जिससे उस विशेष गुण का उसीसे नाम पड़ गया है। जैसा "काकचेष्टा" अर्थात् कौए की-सी चेष्टा, "बकध्यान" बगुले के समान ध्यान लगाना। अब जिसकी चेष्टा कौए की-सी या ध्यान बगुले के समान हो या जिसके चेहरे पर कौए-बगुले का-सा भाव प्रकट होता हो, बस, जान लेना चाहिये कि उसमें उस जीव का कुछ गुण अवश्य है। इसी तरह "घोड़मुँहा" अर्थात् घोड़े का सा लम्बा मुँहवाला कुनही और जी का कपटी होगा। यही बात लुखरी-से मुँहवाले में होगी इत्यादि। और भारी सिरवाला बुद्धि का तीक्ष्ण और गम्भीर विचार में प्रवीण होगा। लंबकर्ण अर्थात् जिसके कान के नीचे की लौर लम्बी होगी, वह अवश्य दीर्घजीवी होगा। जिसकी जीभ प्रमाण से अधिक लम्बी होगी, वह या तो चटोरा या बड़ा बकवादी होगा। निदान "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति"

सामुद्रिक शास्त्र का यह सिद्धान्त बहुत ही ठीक है। इसीसे कालीदास आदि कवियों ने बड़े लोगों के शरीर के वर्णन में लिखा है—

"व्यूढोरस्को वृषस्कंधः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥"

इत्यादि अनेक श्लोक इस विषय में लिखे हैं।

—स्व० बालकृष्ण भट्ट

जो चमकत सो सुबरन नाहीं
All that glitters is not gold

दुनिया की बहुत-सी चीजें ऐसी हैं, जिनकी बाहरी चमक-दमक देखकर लोगों का मन लट्टू हो जाता है। पर, ऐसी चीजों में प्रायः कोई सार नहीं रहा करता, और जो उसपर भूल जाते हैं, उन्हें अन्त में हताश होना पड़ता है।

जो वस्तु बाहर से अच्छी लगे, वह भीतर से भी अच्छी हो, यह कोई जरूरी नहीं है। किन्तु, इसी भ्रामक सिद्धान्त के फेर में पड़कर कितने लोगों को धोखा खाना पड़ता है।

संसार में दो तरह की वस्तुएँ पाई जाती हैं—श्रेय और प्रेय। श्रेय उसे कहते हैं जो यथार्थ में कल्याण करे। प्रेय उसे कहते हैं जो थोड़ी देर के लिये आनन्द प्रदान करे। श्रेय पदार्थ में आन्तरिक गुण होता है, किन्तु उसके बाह्य रूप में प्रायः कोई आकर्षण नहीं होता। प्रेय पदार्थ के बाह्य रूप में बहुत आकर्षण होता है, पर उसमें कोई आन्तरिक गुण नहीं होता। संसार में जितने दुःख हैं, उनमें अधिकांश का कारण यही है कि लोग प्रय को ही श्रेय समझ बैठते हैं और उसीके अनुसरण में अपनी जिन्दगी का अधिक भाग बिता देते हैं।

मनुष्य की प्रवृत्ति स्वभावतः उच्छृङ्खल हुआ करती है। वह क्षणिक सुख की ओर—चमचमाती हुई चीज की ओर—दौड़ जाना पसन्द करती है। ऐसी दशा में बुद्धि उसके मार्ग में आ जाती है और उसकी लगाम कड़ी करने से आगे दौड़ने से उसे रोक देती है। इस प्रकार, नियन्त्रण पाने पर प्रवृत्ति की धारा स्पन्दित हो जाती है और वह फिर किसी दूसरे ही पथ पर अग्रसर होने लगती है। किन्तु एक दृष्टान्त से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जायगी। मनुष्य की मौलिक

प्रवृत्ति अनियन्त्रित अवस्था में ठीक थर्मामीटर के पारे की नाईं होती है। वह किसी वस्तु में जरा-सी चमक-दमक की गर्मी पाते ही फैलने लगती है। किन्तु जब बुद्धि उसे अच्छी तरह झकझोर डालती है, तब वह अपनी प्रकृति अवस्था नॉर्मल पॉइंट (Normal Point) पर पहुँच जाती है। जिनकी प्रवृत्ति बुद्धि की अपेक्षा अधिक बलवती होती है, वे ही अधिक चमक-दमक वाली चीजों के जाल में फँस जाते हैं। पाश्चात्य जगत् में इन दिनों बाहरी तड़क-भड़क का बाजार खूब गर्म है। बल्कि यदि यों कहें कि वहाँ की सभ्यता ही बाह्याकर्षण की भित्ति पर खड़ी है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसका कारण प्रवृत्ति की उच्छृङ्खलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

हमारे देश में भी, स्कूल-कालेज के अतिरिक्त विद्यार्थी पाश्चात्य सभ्यता की मृगमरीचिका के पीछे दौड़ रहे हैं। उन्हें सिनेमा के सौन्दर्य में ही जीवन का सच्चा आनन्द मालूम पड़ता है। उन्हें पालिश की हुई निकम्मी वस्तुएँ जितनी मनोहर जँचती है, उतनी सीधी-सादी, पर काम की चीजें नहीं। वे चमक के आधार पर ही वस्तुओं का मूल्य आँकते हैं। उन्हें यह बात शायद सूझती ही नहीं कि यह दुनिया काँच और मोम की नहीं, पर ठोस मिट्टी की बनी है। यदि दुनिया के साथ रहना चाहते हों, तो उन्हें काँच को छोड़कर मिट्टी का गुण ग्रहण करना चाहिये। उपर्युक्त बातों का आशय यह नहीं है कि संसार में जितने चमकते हुए पदार्थ मिलें, उन सबों को छोड़ दो; वरन् यह कि उनकी अच्छी तरह परख कर लो। संसार में असली गुणवाले पदार्थ बहुत कम मिलते हैं और नकली गुणवाले पदार्थ कहीं ज्यादा। और बहुधा लोग असल को छोड़कर नकल के पीछे ही दौड़ने लगते हैं।

आजकल बाजार में नकल—इमिटेशन (Imitation) शब्द चल पड़ा है, वह इस बात का साक्षी है। इमिटेशन सिल्क—(Imitation silk) (रेशम की नकल) इमिटेशन गोल्ड—(Imitation gold) (सोने की नकल) और इमिटेशन डायमण्ड—(Imitation Diamond) (हीरे की नकल) की जितनी खपत होती है, उसकी आधी भी असल की नहीं होती। मालूम होता है, कुछ दिनों में रही-सही असलियत भी गायब हो जायगी और संसार में नकल-साम्राज्य स्थापित हो जायगा।

हमारे आचार्यों का सिद्धान्त था कि वे भूलकर भी नकल के पीछे नहीं पड़ते थे। बाह्याडम्बर मात्र से ही घृणा थी। वे तड़क-भड़क और सजावट से दूर रहा करते थे। जिस बात में उन्हें तथ्य मिलता था उसीको ग्रहण करते थे। सत्यता और सादगी उनके जीवन का मूलमन्त्र थी। इसी तथ्य, प्रेम के कारण हमारे महर्षियों ने लौकिक, क्षणभंगुर पदार्थों की ओर ध्यान नहीं दिया। वे भोग-विलास की सामग्रियों को तुच्छ और निःसार समझते थे। वे आजकल की तरह बुद्धि का काम आँखों को नहीं सौंपते थे। जो वस्तु उनके विवेक की कसौटी पर 'बावन तोले पाव रत्ती' उतरती थी, उसीको वे यथार्थ वस्तु समझते थे।

इन्हीं यथार्थ वस्तुओं का वर्णन हमारे वेद-वेदान्त और उपनिषदों में पाया जाता है। इनमें ईश्वर का वह तेज वर्णित है, जिसके सामने झाड़फानुस की चमक कोई चीज नहीं। इनमें दया और प्रेम के वे कोमल भाव मिलेंगे, जिनके सामने क्रीम और पाउडर की कोई हस्ती नहीं। इनमें आत्मज्ञान की वह शलाका है, जिसके सामने सुनहली फ्रेम का चश्मा कुछ काम नहीं दे सकता। इनमें कर्त्तव्य का वह पक्का सहारा मिलता है, जो बाजार की पतली और लचलचाती छड़ी से कभी नहीं मिल सकता।

जो मनुष्य सत्य की राह पर चलता है, अगल-बगल की तितलियों को पकड़ने को नहीं दौड़ता, वह आँख मूँदकर अपने कर्त्तव्य-पथपर बढ़ा चला जाता है, तभी वह अपने निश्चित लक्ष्य पर पहुँच सकता है, अन्यथा नहीं। जो आकर्षण के पीछे दौड़ता है, वह अपनी मञ्जिल तय नहीं कर सकता और मोह के दलदल में फँसकर आजन्म भटकता ही रह जाता है। संस्कृत में एक श्लोक है—

"नारिकेल समाकाराः दृश्यन्ते च सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकाराः बहिरेव मनोहराः॥"

अर्थात्—जो वस्तुतः अच्छे पुरुष हैं, वे बाहर से नारियल के समान दीखते हैं। सूखे हुए नारियल के रुखड़े और रेशेदार छिलके को देखकर कोई नहीं कह सकता कि इसके अन्दर इतना रस छलकता होगा। इसी तरह, सज्जन के अन्तस्तल की सुन्दरता का अनुमान उसकी बाह्याकृति देखकर नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत जो दुर्जन होते हैं वे बेर के फल के सदृश केवल ऊपर से ही भले जान पड़ते हैं।

संसार की अधिकांश वस्तुओं के सम्बन्ध में ही यही दृष्टान्त लागू हो सकता है। जिन वस्तुओं से क्षणिक प्रलोभन हो, उनसे कोई स्थायी लाभ नहीं होता! उनके पीछे दौड़ने से बहुधा वही दशा होती है जो पतंग की दीपक के पीछे, मछली की चारे के पीछे दौड़ने से होती है।

अतएव बुद्धिमान् मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे आपात-मधुर, परिणाम-विष पदार्थों की ओर न दौड़, अपनी विवेचन-शक्ति के द्वारा सत् और असत् पदार्थों का निर्णय करते हुए श्रेय का ग्रहण और प्रेय का परित्याग करें तभी वे अपने उद्देश्य में कृतकार्य और जीवन में सफल हो सकते हैं।

—हरिमोहन झा

जैसा देश वैसा वेश

In Rome, do as Romans do.

'देशाचार' शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि सभी देशों में एक ही तरह का आचरण लागू नहीं हो सकता। देश की भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति के अनुसार ही उसके लिये उपयुक्त आचार की व्यवस्था होती है।

दो देशों में जितनी ही अधिक विभिन्नता, होगी, उतना ही उसके आचारों में अन्तर मिलेगा। हमारे देश की बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो यहाँ के लिये नितान्त उपयुक्त हैं, किन्तु कुछ देशों के लिये सर्वथा अनावश्यक हैं और कुछ देशों के लिये तो बिल्कुल ही हास्यास्पद हैं।

हमारे यहाँ पानी की प्रचुरता है, इसलिये शौच के उपरान्त गगरा भर पानी लेकर कुल्ली कर डालते हैं। किन्तु अरब के रेगिस्तान में, जहाँ पानी, पीने के लिये मुश्किल से दो घूँट, मिलता है, वहाँ यदि कोई ऐसा करने जाय तो पागल के सिवा और क्या समझा जायगा! इङ्गलैंड सर्द देश है वहाँ जाड़ा अधिक पड़ता है। अतएव वहाँ मेहमानों को चिमनी (अग्निस्तूप) के निकट बैठाने की चाल है। किन्तु यदि इसीकी देखादेखी भारतवर्ष में भी यह व्यवहार जारी हो जाय, तो बैसाख-जेठ के समय में कितने ही मेहमान जीते-जी झुलस जायँ और उनकी मेहमानदारी की आदत छूट जाय।

आजकल हमारे देश में नई रोशनी के लोग अपना देशाचार छोड़कर देशान्तर के आचार में रँगे जाते हैं। यह सचमुच ही बड़े ही दुःख की बात है।

अंगरेज जैसे शीतप्रधान देश के निवासियों के लिये कोट और पतलून भले ही आवश्यक जान पड़ें, किन्तु हम लोगों के लिये तो वह उपयुक्त नहीं। इस गर्म देश के लिये तो धोती और चादर ही सबसे अच्छी पोशाक है।

अंगरेज यदि अपने देशाचारजनित अभ्यास से छुरी-काँटे के द्वारा भोजन करते हैं, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु हमलोगों में जो सिर्फ उनकी देखा-देखी, आवश्यकता न रहते हुए भी खाने के लिये छुरी-काँटे का व्यवहार करते हैं, उनका आचरण उपहासास्पद होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कविसम्राट रवीन्द्रनाथ टैगोर का कहना है—'आचार, व्यवहार और सजावट वृक्ष के पौधे जैसा है। उसके उखाड़े जाने से वह सूखकर या सड़कर नष्ट हो जाता है। विलायती वेश-भूषा और अदब-कायदे के लायक मिट्टी यहाँ कहाँ? वह कहाँ से अपना अभ्यस्त रस चूसकर जीवित रहेगा? एक आध आदमी खर्च करके बनावटी तरीके से मिट्टी मँगा सकता है और रात-दिन होशियार रहकर और जी-जान से कोशिश करके उसे किसी तरह खड़ा रख सकता है। किन्तु केवल यह दो-चार शौकीनों से ही हो सकता है।

"जिसे पालकर सजीव नहीं रह सकते हैं, उसे घर में लाकर और सड़ाकर बिगाड़ने की क्या जरूरत है? इससे दूसरों का भी हर्ज होता है और अपनी भी मिट्टी पलीद होती है।"

उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है। हमारे यहाँ भेंट होने पर प्रणाम और आशीर्वाद से जो शिष्टाचार किया जाता है, उसका मुकाबिला 'शेकहैंड' नहीं कर सकता। पवित्र आसन पर बैठकर भोजन करने से जो तृप्ति होती है, वह टेबुल पर सजाकर खाने से नहीं। हमारे यहाँ पान-इलायची के सत्कार में जो मर्यादा है, वह बीड़ी-सिगरेट के आदान-प्रदान में नहीं।

हमारा देश सात्विक भावों का केन्द्र है। यहाँ जो रीति-रिवाज प्रचलित हैं उन सबों में सात्विक भाव भरे हैं। हाँ, यह बात दूसरी है कि समय के प्रवाह से उनमें बहुत-कुछ अनाचार आ घुसा है। हमें अनाचार को छाँटना होगा और देश-काल का विचार करते हुए आगे की ओर बढ़ना होगा। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अपने देशाचार को सर्वथा तिलाञ्जलि देकर दूसरे देश का आचार मँगनी कर लावें और पीछे दोनों से हाथ धो बैठें।

शेक्सपियर के मर्चेंट आफ वेनिस—(Merchant of Venice) में एक जगह उन राजकुमारों का वर्णन है जो पोर्शियाँ (Portia) के साथ विवाह करने की अभिलाषा से आये थे। वहाँ पोर्शिया (Portia) पोशाक की विचित्रता को लेकर एक राजकुमार की खूब ही खिल्ली उड़ाती है। वह अपनी सखी से कहती है, मालूम होता है, इन्होंने फ्रांस देश से पतलून, जर्मनी देश से कोट, और इटली देश से पगड़ी मँगनी कर ली है और अपना आचार-व्यवहार तो थोड़ा-थोड़ा सभी देशों से उधार ले लिया है।"

पोर्शिया की यह युक्ति उस राजकुमार के लिये लागू हो या नहीं, किन्तु बहुत से भारतवासियों के लिये तो एकदम ठीक लागू हो रही है। वे अँगरेजों की नकल करने में ही अपनी बहादुरी समझते हैं। वे समझते हैं कि साहबी पोशाक में डटकर निकलने से मूर्ख हिन्दुस्तानियों पर रोब छा जायगा। नकल भी तब अच्छी लगती है, जब समूची हो। किन्तु अधिकांश लोग नकल भी करते हैं तो अधकचरी। ऐसी नकल करनेवाले लोग अकल से सरोकार नहीं रखते, इसीसे शकल विचित्र बन जाती है। नीचे धोती, और ऊपर हैट! बदन में कोट और कन्धे पर चादर! मस्तक पर लम्बी-सी शिखा और मूँछ फ्रेंचकट! यह सब स्वांग नहीं तो और क्या है? ऐसे ही लोगों के लिये महाकवि अकबर ने कहा है—

"आदत जो पड़ी है हरदम से, वह दूर भला कब होती है।
रक्खी है चुनौटी पाकेट में, पतलून के नीचे धोती है।"

बहुत से लोग तो ऐसे हैं जो साहबाना ठाट में एक गज और भी आगे बढ़ जाते हैं। वे हिन्दुस्तानी होकर भी अँगरेजों की तरह बोलने की कोशिश करते हैं। वे नौकरों को 'तुम' की जगह 'टुम', 'और हम पूछते हैं' की जगह 'हम पूछना माँगटा है' कहना अधिक पसन्द करते हैं। यह तो हुई 'देशी मुर्गी विलायती बोल! ऐसे लोगों से भाषा, जाति और देश का उपकार क्या होगा?

हमारे एक परिचित 'सैन्स्कृत' पी० एच्० डी० (P. h. D.) थे। आप पर नख से शिख तक साहब बनने की धुन सवार थी। एक दफे आपसे कोई मिलने आया। दरबान ने कहा—'अभी बाबू भीतर हैं, थोड़ी देर में लौटकर

आइयेगा।" इसपर उक्त बाबू साहब ने उसे आठ आना जुर्माना कर दिया। "हमको बाबू क्यों कह दिया? हम साहब हैं, बाबू नहीं।"

ईश्वर न करे, यदि देश के सभी लोग इन्हीं बाबू साहब के समान बन जायँ तो यह आर्यावर्त्त छूटकर खासा अजायब-घर बन जाय। दुनिया में नव आश्चर्य (Nine wonders) के बदले दस आश्चर्य (Ten wonders) कहलाने लगें।

जो लोग देशान्तरों की यात्रा करते हैं, उन्हें अपने रहन-सहन में बहुत-कुछ अदल-बदल करना पड़ता है। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो काम ही नहीं चल सकता। इंगलैंड जाने पर हम केवल एक धोती ओढ़कर बाहर नहीं निकल सकते और अमेरिका में रसोइये को पाँव धोकर चौके में जाने के लिये बाध्य नहीं कर सकते।

किन्तु इसको 'आपद्धर्म' कह सकते हैं, कुछ अपने आचार का आदर्श (Standard) नहीं मान सकते। जो लोग अपने देश में भी आकर 'लंडन के साहब' बने रहते हैं, उनकी उपमा उस कौए से दी जा सकती है जो मोर का पंख लगाकर अपने को मोर समझ बैठता है। ऐसे लोगों से कभी जातीय उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। —हरिमोहन झा

युवक

युवावस्था मानव-जीवन का वसन्तकाल है। उसे पाकर मनुष्य मतवाला हो जाता है। हजारों बोतल का नशा छा जाता है। विधाता की दी हुई सारी शक्तियाँ सहस्र धारा होकर फूट पड़ती हैं। मदान्ध मातंग की तरह निरंकुश, वर्षाकालीन शोणभद्र की तरह दुर्द्धर्ष, प्रलयकालीन प्रभंजन की तरह प्रचण्ड, नवागत वसन्त की प्रथम मल्लिक-कलिका की तरह कोमल, ज्वालामुखी की तरह उच्छृङ्खल और भैरवी-संगीत की तरह मधुर युवावस्था है। उज्वल प्रभात की शोभा, स्निग्ध संध्या की छटा, शरच्चन्द्रिका की माधुरी, ग्रीष्म-मध्यान्ह का उत्ताप और भाद्रपदी अमावस्या की अर्द्धरात्रि की भीषणता युवावस्था में सन्निहित है। जैसे क्रान्तिकारी की जेब में बमगोला, षड्यंत्री की अण्टी में भरा-भराया तमञ्चा, रण-रस रसिक और वीर के हाथ में खड्ग, वैसे ही मनुष्य की देह में युवावस्था। १६ से ३६ वर्ष तक हाड़-चाम के सन्दूक में संसार-भर के हाहाकारों को समेटकर

विधाता बन्द कर देता है। बीस बरस तक यह झाँझरी नैया मँझधार तूफान में डगमगाती रहती है। युवावस्था देखने में तो शस्य-श्यामला वसुन्धरा से भी सुन्दर है, पर इसके अन्दर भूकम्प की-सी भयंकरता भरी हुई है। इसीलिये युवावस्था में मनुष्य के लिये केवल दो ही मार्ग हैं वह चढ़ सकता है उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर; वह गिर सकता है अधःपात के अँधेरे खन्दक में। चाहे तो त्यागी हो सकता है युवक, चाहे तो विलासी बन सकता है। वह देवता बन सकता है, तो पिशाच भी बन सकता है। वही संसार को वश कर सकता है तो वही संसार को अभयदान दे सकता है। संसार में युवक ही का साम्राज्य है। युवक के कीर्तिगान से संसार का इतिहास भरा पड़ा है। युवक ही रणचंडी के ललाट की रेखा है। युवक ही स्वदेश की यशो-दुन्दुभि का तुमुल निनाद है। युवक ही स्वदेश की विजय-वैजयन्ती का सुदृढ़ दण्ड है। वह महासागर की उत्ताल तरंगों के समान उद्‌दण्ड है। वह महाभारत के भीष्मपर्व की पहली ललकार के समान विकराल है, प्रथम मिलन के स्फीत-चुम्बन की तरह सरस है, रावण के अहंकार की तरह निर्भीक है, प्रल्हाद के सत्याग्रह की तरह दृढ़ और अटल है। अगर किसी विशाल हृदय की आवश्यकता हो, तो युवकों के हृदय टटोलो। अगर किसी आत्मत्यागी वीर की चाह हो, तो युवक-दल से माँगो। रसिकता उसीके बाँटे पड़ी है। भावुकता पर उसीका सिक्का है। वह छन्दः-शास्त्र से अनभिज्ञ होने पर भी प्रतिभाशाली कवि है। कवि भी उसीके हृदयारविन्द का मधुप है। वह रसों की परिभाषा नहीं जानता, पर वह कविता का सच्चा मर्मज्ञ है। सृष्टि की एक विषम समस्या है युवक। ईश्वरीय रचना-कौशल का एक उत्कृष्ट नमूना है युवक। सन्ध्या-समय वह नदी के तट पर घण्टों बैठा रहता है; क्षितिज की ओर बढ़ते आनेवाले रक्त-रश्मि सूर्यदेव को आकृष्ट नेत्रों से देखता रह जाता है; उस पार से आती हुई संगीत-लहरी के प्रवाह में तल्लीन हो जाता है। विचित्र है उसका जीवन। अद्‌भुत है उसका साहस। अमोघ है उसका उत्साह।

वह निश्चिंत है, असावधान है। लगन लग गई, तो रात भर जागना उसके बाएँ हाथ का खेल है; जेठ की दुपहरी, चैत की चाँदनी है, सावन-भादों की झड़ी मंगलोत्सव की पुष्प-वृष्टि है, श्मशान की निस्तब्धता उद्यान का विहंग-कल

कूजन है। वह इच्छा करे, तो समाज और जाति को उद्बुद्ध कर दे, देश की लाली रख ले, राष्ट्र का मुख उज्ज्वल कर दे, बड़े-बड़े साम्राज्य उलट डाले। पतितों के उत्थान और संसार के उद्धार का सूत्र उसीके हाथ में है। वह इस विशाल विश्व-रंगस्थान का एक सिद्धहस्त खिलाड़ी है।

अगर रक्त की भेंट चाहिये, तो सिवा युवक के कौन देगा ? अगर तुम बलिदान चाहते हो, तो तुम्हें युवक की ओर देखना पड़ेगा। प्रत्येक जाति के भाग्य-विधाता युवक ही तो होते हैं। एक पण्डित ने ठीक कहा है—"आज के युवक ही कल देश के भाग्य-निर्माता हैं। वे ही भविष्य की सफलता के बीज हैं।"

संसार के इतिहासों के पन्ने खोलकर देख लो, युवक के रक्त से लिखे हुए अमर सन्देश भरे हैं। संसार की क्रान्तियों और परिवर्तनों के वर्णन छाँट डालो, उनमें केवल ऐसे युवक ही मिलेंगे, जिन्हें बुद्धिमानों ने 'पागल छोकड़े' अथवा 'पथभ्रष्ट' कहा है। पर जो सिड़ी हैं, क्या खाक समझेंगे कि स्वदेशाभिमान से उन्मत्त होकर अपनी लोथों से किले की खाइयों को पाट देनेवाले जापानी युवक फौलाद के टुकड़े थे! सच्चा युवक तो बिना झिझक के मृत्यु का आलिंगन करता है; चोखी संगीनों के सामने छाती खोलकर डट जाता है, तोप के मुँह पर बैठकर भी मुस्कुराता ही रहता है, बेड़ियों की झनकार पर राष्ट्रीय गान गाता है और फाँसी के तख्ते पर अट्टाहासपूर्वक आरूढ़ हो जाता है। फाँसी के दिन युवक का ही वजन बढ़ता है, जेल की चक्की पर युवक ही उद्बोधन मंत्र गाता है, काल-कोठरी से अन्धकार में धँसकर ही वह स्वदेश को अन्धकार के बीच से उबारता है।

ऐ युवक! तू क्यों गफलत की नींद में पड़ा बेखबर सो रहा है ? उठ, आँखें खोल, देख, प्राची-दिशा का ललाट सिन्दूर-रंजित हो उठा। अब अधिक मत सो। सोना हो तो अनन्त निद्रा की गोद में जाकर सो रहो। कापुरुषता के क्रोड़ में क्यों सोता है ? माया, मोह-ममता त्यागकर गरज उठो।

तेरी माता, तेरी प्रातःस्मरणीया, तेरी परम वन्दनीया, तेरी जगदम्बा, तेरी अन्नपूर्णा, तेरी त्रिशूलधारिणी, तेरी सिंहवाहिनी, तेरी शस्यश्यामलाञ्चला माता आज फूट-फूटकर रो रही है। क्या उसकी विह्वलता तुझे तनिक भी चंचल नहीं करती ? धिक्कार है तेरी निर्जीवता पर! तेरे पितर भी नतमस्तक हैं तेरे इस नपुंसकत्व पर! यदि अब भी तेरे किसी अङ्ग में टुक हया बाकी हो तो

उठकर माता के दूध की लाज रख, उसके उद्धार का बीड़ा उठा, उसके आँसुओं के एक घूँट की सौगन्ध ले और उसका बेड़ा पार कर।

—श्रीबलवंतसिंह

इतिहास की उपयोगिता

इतिहास का ज्ञान मनुष्य-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अथवा यों कहिये कि इतिहास के बिना हम अपने जीवन के अभिप्राय को समझ ही नहीं सकते। किसी मोटी पुस्तक को खोलकर उसके बीच में कोई पंक्ति पढ़ जाइये और पुस्तक को बन्द कर दीजिये। अब क्या आप बता सकते हैं कि उस पंक्ति का वास्तविक अभिप्राय क्या है? पूर्वलिखित पंक्तियों से उसका क्या सम्बन्ध है? आप इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं दे सकते। मनुष्य-जीवन भी सृष्टि की बृहत् पुस्तक में की एक छोटी-सी पंक्ति मात्र है। पूर्ववर्ती बातों पर ध्यान दिये बिना उसे नहीं समझ सकते, पर पूर्ववर्ती बातें मालूम कैसे हो सकती हैं? उन्हें हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते, क्योंकि वे पीछे पीठ की ओर विलीन होती गई हैं। हमारी दृष्टि केवल वर्तमान और निकटतम भविष्य की परिधि में सीमाबद्ध है। भूतकाल की बातें आँखों के सामने नहीं आ सकती हैं। उन्हें देखने के लिये कोई दूरबीन काम नहीं आ सकती। उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिये केवल एक ही साधन है और वह है इतिहास। इसके द्वारा हम भूत-काल से वर्तमान का सम्बन्ध जोड़ सकते हैं और भविष्य का निरूपण कर सकते हैं।

इतिहास के अध्ययन से जितने लाभ होते हैं उनकी गणना नहीं हो सकती। संस्कृत साहित्य में इतिहास की परिभाषा यों लिखी गई है—

> "धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
> पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥"

अर्थात् इतिहास पूर्वकाल में हुई सच्ची घटनाओं को शृंखलाबद्ध यथावत् उल्लेख है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से परिमित मनुष्य की इच्छा को पूर्ण करने का उपाय बताता है। हमारे पूर्वज कौन थे, कैसे थे, क्या करते थे—इन बातों की जिज्ञासा होना मनुष्य के लिये स्वाभाविक है। इस जिज्ञासा का समाधान इतिहास के द्वारा ही हो सकता है। जिन पूर्वजों की कीर्ति का गान करके हम फूले नहीं समाते, जिनकी वीर गाथाओं को सुनकर हमारी जाति

गौरव से फूल उठती है, उनके नाम और चरित्र हमें इतिहास की बदौलत प्राप्त होते हैं। संसार के जिन महापुरुषों के जीवन-चरित्र को हम आदर के साथ पढ़ते और आदर्श समझते हैं। उनकी कृतियाँ हमें इतिहास की कृपा से ही उपलब्ध होती हैं। यदि संसार की जाति अभ्युदयशील है तो, उसका कारण हमें इतिहास के पृष्ठों में ढूँढ़ना चाहिये। उन्हीं पृष्ठों में हमें निदान और औषधि दोनों ही मिल जायँगे। हाँ, पहचान की योग्यता होनी आवश्यक है!

यदि हम चाहते हैं कि हम भविष्य में भूलों से बचें, तो हमें इतिहास का अवलोकन करना चाहिये, क्योंकि वह मनुष्य-जाति की सबसे अधिक बहुमूल्य बपौती है। उसके पन्ने-पन्ने में भूलों की कहानियाँ भरी पड़ी हैं। और भी बहुत कुछ है—शिक्षा है, उपदेश है; और साथ-ही-साथ मनोरंजन है।

इतिहास केवल महापुरुषों की जीवनी का उल्लेख-मात्र नहीं है—व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त जातिगत-जीवन भी एक प्रधान वस्तु है। मनुष्य-जीवन का सभी बातों का समाधान किसी खास महान् पुरुष की जीवनी के द्वारा होना असम्भव है, जातीय-जीवन के संकीर्ण विषयों का समाधान तो उक्त जीवन के द्वारा होनी असम्भव से भी बढ़कर है। जहाँ जीवनियों का कार्य रुक जाता है। वहीं से इतिहास के कार्य का प्रारम्भ होता है—यही इतिहास और जीवन-चरित्र में भेद हैं। जीवन-चरित्र से किसी व्यक्ति-विशेष के जीवन का हाल मालूम होता है, पर इतिहास किसी जाति के जीवन का सार्वभौम वृत्तान्त दिखता है। अब यह समझने में विलम्ब न होगा कि इतिहास के अध्ययन से क्या लाभ है।

आज इतिहास कोई साधारण वस्तु नहीं है, प्रत्युत विज्ञान का एक प्रधान अंग है। इस उत्कर्ष का साधक क्रमविकास के सिद्धान्त का कुण्ठित प्रभाव है। उन्नीसवीं शताब्दी में क्रमविकास के सिद्धान्त का यूरोप में प्रथम जन्म हुआ था और आज कोई ऐसा महत्व का विषय नहीं है, जिसमें इस सिद्धान्त ने अपना चमत्कार न दिखलाया हो। इतिहास पर भी इस सिद्धान्त का बड़ा प्रभावशाली विचार पड़ा है। आज इतिहास-लेखक केवल घटनाओं को भाषाबद्ध नहीं करते, बल्कि उनके तत्व की ओर भी ध्यान देने लग गये हैं, यहाँ तक कि राजनीति और इतिहास में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

इतिहास सत्य का सबसे बड़ा साक्षी है। उसे अपना पथ-प्रदर्शक बनाना

सत्य का अनुसरण करना है। इतिहास के दृष्टान्त काल्पनिक नहीं, वास्तविक होते हैं। उनसे चरित्र-निर्माण में अमूल्य सहायता मिल सकती है। संसार की वर्तमान प्रगति क्या है, और क्यों कर है, यह बतलाना इतिहास का ही काम है। इतिहास बच्चों के लिये मनोरंजन की सामग्री है, युवकों के लिये ज्ञान-प्राप्ति का साधन है; और बूढ़ों के लिये एक अनुभवी और अभ्रान्त मित्र है।

—हमारे इतिहास-परिचय से

राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का स्थान

राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का स्थान ठीक शरीर में प्राण के समान है। शरीर की स्थिति प्राण के साथ है और राष्ट्र का प्राण उसका साहित्य है। जिस राष्ट्र के पास अपना निज का साहित्य नहीं है वह राष्ट्र वास्तव में राष्ट्र ही नहीं कहा जा सकता।

पूर्वकाल में भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा संस्कृत थी। संस्कृत साहित्य का भण्डार पूर्ण था और राष्ट्र भी संसार भर में सबसे अधिक विद्या, बुद्धि, बल, सभ्यता आदि में सर्वश्रेष्ठ था। किन्तु अब देश में संस्कृत जाननेवालों की संख्या गगनमंडलस्थित प्रातःकाल के नक्षत्रों की भाँति यत्र-तत्र ही देखने में आती है, और उनमें भी उस भाषा को नित्य-प्रति व्यवहार में लानेवाला तो शायद एक भी नहीं है। तो भी भारत के राष्ट्रीय साहित्य के सिंहासन पर आज एक उसीका अधिकार पाया जाता है, और इस अधिकार से वह तब तक च्युत हुई नहीं कही जा सकती जब तक प्रान्तिक भाषाओं में से कोई ऐसी शक्ति और योग्यता न उपार्जन कर लेगी कि वह भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी अनेक प्रान्त विशिष्ट सुविस्तृत पवित्र भारत-भूमि पर के लिये पूर्णतया उपयुक्त हो सके। ये आज भारत के प्रत्येक प्रान्त की भाषा भिन्न-भिन्न स्वरूप की है। बंगाल और महाराष्ट्र आदि कुछ प्रान्तों की भाषा तो इतनी उन्नत हो गई है कि उनके साहित्य के अंग भी क्रमशः पूर्ण और पुष्ट हो रहे हैं। बंगला-साहित्य के अवयव अधिक पुष्टि और पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं और यही कारण है कि उस प्रान्त में उन्नति के चिह्न लक्षित होने- लगे हैं। किन्तु वह साहित्य राष्ट्र भर के लिये न उपयुक्त है और न हो सकता है। इसलिये प्रचलित भाषाओं में से किसी योग्य देशव्यापी भाषा को * राष्ट्रभाषा बनाना पड़ेगा। भारत की अवनति का एक यह

* हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है।

भी मुख्य कारण कहा जा सकता है कि उसके राष्ट्रीय साहित्य और नित्य व्यवहार की भाषा में भिन्नता पड़ गई है।

अँगरेजों की उन्नति क्रमशः उनके साहित्य के साथ-साथ हुई है। जिस द्रुतगति से उनका साहित्य बढ़ता गया है; उसी तीव्र वेग से राष्ट्र उन्नति करता गया है। संसार की विरली ही भाषा की शायद कोई ऐसी उत्तम पुस्तक होगी जिसका अनुवाद अँगरेजी में न हुआ हो।

पूर्वकाल में भारतवर्ष की भी असाधारण उन्नति का कारण एकमात्र उसके साहित्य की वृद्धि था। बार-बार विदेशियों के आक्रमण से कोटिशः हिन्दुओं के समर-भूमि में सदा के लिये शयन कर जाने से, सहस्रशः गुणा अधिक हानि नालन्दा के जगत्प्रसिद्ध विश्व-विद्यालयों और पुस्तकालयों को शत्रुओं द्वारा विध्वंस कर देने से हुई है। किसी राष्ट्र को पूर्णतया पददलित कर देने के लिये क्रमशः उसका साहित्य नाश करने के अतिरिक्त अन्य और सहज उपाय नहीं है। संस्कृत-साहित्यभंडार भस्म कर देने से मानों हिन्दू-जाति के नेत्र फोड़ दिये गये, राष्ट्र अन्धा हो गया। यद्यपि राष्ट्र नेत्र-विहीन हो गया था और साहित्य-भण्डार हुताशनार्पण कर दिया गया था, तो भी साहित्य के बचे-बचाये टूटे-फूटे अंगों ने प्राकृत-भाषा द्वारा जो कुछ कार्य कर दिखाया वह एक महत् कार्य कहा जा सकता है।

स्मरण रहे कि इस समय संस्कृत भाषा का लोप हो गया था, किन्तु प्रान्तिक भाषाओं में जो कुछ भाव था वह उसी साहित्य का छायांश था। और केवल उसी भाव ने प्रान्तिक भाषा द्वारा कार्य किया था और उसी के द्वारा सूर-तुलसी, रामदास, नानक, कबीर, चैतन्य, रामानुज, वल्लभ और धर्म-प्रवर्तक महात्माओं ने राष्ट्र के पुनरुद्धार करने का प्रयत्न किया और किसी अंश में उन्हें सफलता ने भी आलिंगन किया था। यह साहित्य का ही प्रभाव था कि इन तथा इनके पूर्ववाले महात्माओं द्वारा मुसलमानों से पूर्व में आनेवाले कुल विदेशी आक्रमणकारियों का पूर्णतया परिवर्तन कर उनको राष्ट्र में सम्मिलित कर लिया गया था।

यह ठीक है कि राष्ट्र का पूर्णोद्धार नहीं हुआ, किन्तु इन महापुरुषों ने राष्ट्र को वह सञ्जीवनी बूटी पिला दी कि शत्रुओं के हजार प्रयत्न करने पर भी राष्ट्र निर्जीव न हो सका। इसमें से कितने ही ऋषियों ने तो राष्ट्र ही नहीं, महाराष्ट्र निर्माण की नींव डाल दी थी। किन्तु साहित्य के सम्पूर्ण अङ्ग पूर्णतया पुष्ट न

होने एवं उसको किसी सुन्दर देशव्यापी भाषा का आधार न मिलने के कारण वह कार्य चिरस्थायी न हो सका, और राष्ट्र तथा महाराष्ट्र की उन्नति का भीम-वेग से उन्नतिपथ पर प्रथम अग्रसर होनेवाले पूर्ण साहित्य के अभाव में अकस्मात् बिना किसी बाह्यशत्रु द्वारा रुकावट डाले हुए अकाल में ही स्वयमेव अवरुद्ध हो गया। प्रयत्नशील महात्माओं के उद्योग में किसी प्रकार की त्रुटि न थी, किन्तु अवस्था उस समय कठिन उपस्थित हो गयी थी। साहित्य की मूल-भाषा से उस समय जन-साधारण का सम्पर्क छूट गया था। प्रान्तीय भाषाएँ भी पुष्ट न थीं। भाव का बीज मृतप्राय संस्कृत भाषा के साहित्य से लेकर, प्रान्तिक भाषा-द्वारा सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित कर घोर दुर्दिन के समय में राष्ट्र-निर्माण करना था। ऐसी अवस्था में उनको जो कुछ सफलता प्राप्त हुई वह किसी प्रकार से भी कम नहीं कही जा सकती। सफलता के चिर-स्थायी न होने कारण किसी देशव्यापी भाषा में साहित्य का सर्वाङ्ग-पुष्ट और पूर्ण न होना है। उस समय यदि कोई देशव्यापी भाषा होती और उसमें किसी प्रकार के साहित्य के सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग पुष्ट होते जाते या राष्ट्र को उन्नति के पथ पर आरूढ़ होने के पहले साहित्य को अग्रसर करने का अवसर मिलता तो जिस महाराष्ट्र-निर्माण का कार्य उन कर्मयोगियों ने आरम्भ किया था उसके एक महाप्रबल पराक्रमी चिरस्थायी महाराष्ट्र बन जाने में तनिक भी सन्देह न रहता। राष्ट्र-निर्माण में सबसे अधिक तो साहित्य के सर्वाङ्ग उत्कृष्ट होने से राष्ट्र भी उन्नत होता है। साहित्य की प्रबलता ही राष्ट्र को सुदृढ़ और प्रबल बनाती है। साहित्य में भी कविता का स्थान और सब अंगों में श्रेष्ठ है, साहित्य का मुख काव्य ही है।

काव्य द्वारा साहित्य के किसी भी अंग का वर्णन सहज में अंकित कर देते है। काव्य में किसी भाव को मनुष्य के हृदय-पट पर सहज में अंकित कर देने की अपूर्व और अलौकिक शक्ति होती है। काव्य में माधुर्य और लावण्य अधिक रहता है। काव्य का ही आश्रय लेकर कविवर भूषण ने महाराज शिवराज की रग-रग में वीर शक्ति का संचार कर दिया था, और वह उनको एक महत् कार्य सम्पादन करने के पूर्ण योग्य बनाते हुए एक बहुत बड़ा और विशाल राष्ट्रीय परिवर्तन करने में समर्थ हुआ था। संस्कृत-साहित्य-सेवियों ने साहित्य को सर्वाङ्ग-

सुन्दर और पुष्ट बनाने के लिये काव्य का आश्रय लिया था और भाषाकवियों ने भी इन्हीं का अनुकरण किया। रामदास, तुलसी, नानक आदि धर्म-प्रवर्तक महात्माओं ने अपने-अपने प्रान्तों की भाषाओं द्वारा छन्दोबद्ध उपदेश देना प्रारम्भ किया और उसका देश पर विलक्षण प्रभाव पड़ा। इन महात्माओं के अतिरिक्त और भी कितने ही भाषा-साहित्य-सेवी उत्पन्न हुए, किन्तु इन सबके द्वारा साहित्य के भक्ति, शृंगार और वीर आदि रस की अधिक वृद्धि हुई। साहित्य के प्रायः तीन ही अंग पुष्ट हुए। प्रान्तिक भाषाएँ प्रायः इन्हीं तीन विषयों से परिपूर्ण थीं और ये तीनों विषय अधिकतर काव्य के द्वारा भूषित किये गये थे। किन्तु उस विकराल दुर्दिन के समय में राष्ट्र को उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँचते हुए भी साहित्य के अन्यान्य अङ्गों के अंकुरित न होने के कारण—जहाँ का तहाँ, ज्यों का त्यों, पुनः दब जाना पड़ा। यदि साहित्य के अन्यान्य अंग भी उन्नत होते तो अकाल में ही राष्ट्रविप्लव का दारुण दृश्य न उपस्थित हो जाता। राष्ट्र का संगठन पूर्णतया उसके साहित्य पर निर्भर रहता है। उस समय भारत में राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, वाणिज्यनीति, युद्धनीति (केवल वीरता ही युद्धनीति नहीं कही जा सकती), भूगोल, खगोल विद्या, विज्ञानशास्त्र आदि विविध विषयों से साहित्य हीन था। अस्तु, जनसमूह में भी उन विषयों के ज्ञान का विकास न हुआ और राष्ट्र का उत्थान भी अधिक काल तक स्थिर न रह सका। इस स्थल पर कई मुख्य बातों पर विचार करना प्रयोजनीय है। प्रथम तो यह कि जिन तीन विषयों में प्रत्येक प्रान्त अपनी-अपनी भिन्न भाषा के साहित्य को पुष्ट कर रहा था और साहित्य ने जैसी उन्नति प्राप्त कर ली थी, वैसी उतने अल्प समय में कोई राष्ट्र प्रारम्भिक अवस्था में नहीं प्राप्त कर सकता, युगान्तरों का कार्य शताब्दियों में पूर्ण नहीं हो सकता। तब निश्चित रूप से यही कहा जा सकता है कि उत्कृष्ट पवित्र संस्कृत साहित्य के सहारे राष्ट्र एक दिन भूमण्डल के सर्वोच्च सिंहासन पर आरूढ़ था, उसके टूटे-फूटे अंगों के पवित्र भावों का प्रान्तिक भाषाओं में प्रदुर्भाव हुआ और उसने नवीन शब्दों में नवीन मार्ग पर उन्नति प्राप्त की थी। यहीं पर राष्ट्र में भिन्नता उत्पन्न हो गई तथा एक विशाल बलशाली राष्ट्र के अनेक छोटे-छोटे राष्ट्र बन गये। द्वितीय, देश-भर में सर्वत्र प्रायःअशांति का राज्य रहने के कारण विचारशील विद्वन्मंडली को साहित्य के अन्यान्य अंगों

की पूर्ति करने या उनपर विचार करने का तनिक भी अवसर न मिला और राष्ट्र में भी शेष सब विषयों का अभाव बना रहा तथा उनमें, राष्ट्र में, दूरदर्शिता न रह गई। तृतीय, साहित्य की संस्कृत-भाषा सहस्रों वर्ष से नष्ट होती चली आ रही थी और उसका स्थान प्राकृत तथा प्रान्त-प्रान्त की अन्यान्य भाषाएँ अधिकृत कर रही थीं। अस्तु, उन विविध प्रान्तिक भाषाओं की बाल्यावस्था रहने के कारण उनमें से किसी में भी राष्ट्रभाषा होने की पूर्ण योग्यता का परिचय न मिल सका।

साहित्य और राष्ट्र के सम्बन्ध के कारण और कार्य तुल्य हैं। देश के जन-समूह के चरित्र का गठन पूर्णतया तद्देशीय साहित्य पर निर्भर है और उसका विकास उसी सीमा तक पहुँच सकेगा, जहाँ तक उस साहित्य की भाषा का विकास पहुँचता होगा, साहित्य जिस भाषा में होगा उस भाषा की भूमि पर स्वभावतः उस साहित्य के सेवियों का प्रेम ढुलक पड़ेगा। भारतीय मुसलमानों की जन्म-भूमि यही देश है। इसी भूमि से ये उत्पन्न हुए। इसीके द्वारा इनका पालन-पोषण होता है। पर इनका साहित्य अरबी-फ़ारसी भाषाओं में होने के कारण इनका प्रेम भी अरब और फारस की ओर अधिक रहता है। इस समय वर्तमान भारत में यही अवस्था उपस्थित है। यहाँ शिक्षा अंगरेजी भाषा में दी जाती है। अंगरेजी साहित्य की दिन-प्रति-दिन वृद्धि हो रही है, और उसके भाव भी लोगों के हृदय में टक्कर खा रहे हैं। शिक्षित-समाज में राष्ट्रीयता, स्वदेश-भक्ति और स्वदेशोन्नति की चर्चा होने लगी है, किन्तु उनमें वास्तविक स्वदेश-भक्ति और स्वदेशोन्नति के चिह्न नहीं पाये जाते हैं। उनको इस बात का पता ही नहीं लगता कि उनका कथन तो देशोन्नति के अनुकूल होता है, किन्तु कार्य उसके प्रतिकूल होता है। साथ ही साथ अंगरेजी साहित्य अपना प्रभाव समाज पर डाले हुए हैं। अंगरेजों के ही आचार-विचार और आहार-व्यवहार की ओर लोगों का अनुराग अभी तक बना है और भारत के लिये एक राष्ट्र-निर्माण का कार्य कोसों दूर पड़ा हुआ है।

किसी राष्ट्र का निर्माण करने के पूर्व एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता रहती है, पश्चात् उसी भाषा में साहित्य को सर्वाङ्गपुष्ट करना पड़ता है। साहित्य के बिना न कोई राष्ट्र जीवित रह सकता है और न उसकी अपूर्णावस्था में कभी कोई राष्ट्र उन्नति प्राप्त कर सकता है। —महावीर प्रसाद शुक्ल

निबन्ध-माला

तीसरा खण्ड—आधुनिक विषय

चित्रपट या सिनेमा

(१) परिचय (२) परिभाषा—सिनेमा का इतिहास (३) फिल्म व्यवसाय (४) उत्पत्ति, विकास और प्रचार (५) सिनेमा से लाभ (६) शिक्षा-प्रचार में सहायता (७) रंगमंच और सिनेमा (८) सिनेमा से हानियाँ (९) मूक चित्र और सवाक् चित्र (१०) उपसंहार।

१. सिनेमा या चलचित्र विज्ञान की एक बहुत बड़ी देन है। विज्ञान के चमत्कारों को देखकर सचमुच अवाक् हो जाना पड़ता है। रजतपट पर चलती-फिरती, हँसती-बोलती और नाचती-गाती तस्वीरों को देखकर ऐसा कौन होगा जो विज्ञान का लोहा न मान ले। वास्तव में यह विज्ञान का स्वर्णयुग है। चारों ओर, जहाँ देखो—विज्ञान की ही तूती बोलती नजर आती है। सर्वत्र उसीका साम्राज्य हो रहा है। हर जगह उसीका बोलबाला है। सिनेमा मैजिक लैंटर्न का ही एक विकसित रूप है। मैजिक लैंटर्न का आविष्कार सतरहवीं सदी में वैज्ञानिक किरचर ने किया था।

२. सिनेमा का आविष्कार सन् १८९० ई० में टॉमस एडीसन नामक एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ने किया था। ये अमेरिका के रहनेवाले थे। भारतवर्ष में दादा साहब फाल्के ने सबसे पहले अपने एक भारतीय-फिल्म का निर्माण किया। सिनेमा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें सच्चे दृश्यों और घटनाओं की तस्वीरें उतर आती हैं। पर, मैजिक लैंटर्न में ये बातें सम्भव नहीं। सिनेमा में मिश्र की मीनार, हिमालय की गंगोत्री, आगरे का ताजमहल, ज्वालामुखी का प्रकोप, रेल की दुर्घटनाएँ, कालिदास, शेक्सपियर, रवीन्द्रनाथ, बंकिमचन्द्र, शरद्-चन्द्र और प्रेमचन्द्र के नाटकों और उपन्यासों के अभिनय देख लीजिये।

३. सिनेमा के चित्रों के लिये विभिन्न प्रकार के कैमरों से काम लिया जाता है। साधारणतः एक घुड़दौड़ के दृश्य को एक ही कैमरे से रजतपट पर नहीं दिखलाया जा सकता। इसके लिये कई तरह के कैमरों से काम लिया जाता है। विभिन्न प्रकार की गतिविधियों, चालों और हरकतों को दिखलाने वाले कैमरे भी अलग-अलग हुआ करते हैं।

जब किसी वास्तविक दृश्य को दिखलाने की आवश्यकता पड़ती है तब चित्र-निर्माता को उस स्थान पर जाना पड़ता है। बदरिकाश्रम, अमरनाथ, केदारनाथ, काशी, वृन्दावन आदि स्थानों के दृश्यों के लिये उन स्थानों पर जाना ही पड़ेगा। कुछ सूक्ष्म और जटिल दृश्यों को दिखलाने लिये चित्र-निर्माता को अधिक परिश्रम और अधिक व्यय करना पड़ता है। 'शकुन्तला' फिल्म में शकुन्तला की उंगली से दुष्यन्त-नामांकित मुद्रिका मालिनी में खिसक पड़ती है। उसी समय उसे एक बड़ी मछली निगल जाती है। इस दृश्य को रजतपट पर दर्शकों के सम्मुख रखने के लिये बहुत बड़ी रकम लग जाती है।

सिनेमा ने फिल्म-व्यवसाय का रूप ले लिया है। इसमें आये दिन करोड़ों की सम्पत्ति लगाई जा रही है। बड़े-बड़े पूँजीपतियों की लागत पर यह व्यवसाय पला जा रहा है। इसका कार्यक्षेत्र इन दिनों बड़ा ही विस्तृत होता जा रहा है।

इस समय विश्व में फिल्म-व्यवसाय के लिये सबसे बड़ा देश अमेरिका है। कुछ यूरोपियनों और अमेरिकनों ने इस व्यवसाय पर एकाधिकार स्थापित कर लिया है। इस समय हॉलीउड और कैलीफोरनियाँ का 'लॉस-एंगिल्स' फिल्म-व्यवसाय के सर्वप्रमुख केन्द्र हो रहे हैं। बम्बई और कलकत्ता—भारत के दो प्रमुख शहर फिल्म-व्यवसाय में अधिक अग्रसर हो चुके हैं। इस घुड़दौड़ में सबसे पीछे बिहार है। आशा है, निकट भविष्य में ही उसकी राजधानी पटना उसमें एक जानदार हिस्सा बँटावेगा।

४. उत्पत्ति के बाद ही विकास का क्रम आगे बढ़ता है। एक युग वह था जब कि रजतपट पर मूक चित्र दौड़ते दीखते थे। अभिनय का सारांश कुछ तो दृश्यों से और कुछ कथानकों के लिखित अंशों को पढ़कर ही समझा जा सकता था। संभवतः १९२९ से उन मूक चित्रों को वाणी मिलने लगी। अब तो सवाक

चित्र-पटों का युग है। इतना ही नहीं, बल्कि अब तो रंगीन चलचित्र भी बनने लगे हैं।

इस विकास-क्रम ने चलचित्रों में चार चाँद लगा दिये हैं। अब आप तरह-तरह की दृश्यावली को रजतपट पर देख लीजिये। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर—जिस किसी भी ऋतु के सर्वाङ्गीण पूर्ण दृश्य का अवलोकन कर लीजिये। गरजते बादल, कौंधती बिजली, उषा की मुस्कान, सन्ध्या की छटा, स्वर्ण-प्रभात, दूध बरसाती रजनी, जलता आसमान और टिमटिमाते तारे—सब कुछ आप सिनेमा में देख लेते हैं।

सिनेमा का दृष्टिकोण व्यावसायिक हो गया है। फिर भी साहित्य, संगीत और कला ही उसका जीवन है। नाटकों और उपन्यासों के आधार पर ही अभिनय दिखाया जाता है। चित्रों की शूटिंग दो प्रकार की होती है (१) इन-डोर और (२) आउट-डोर। बड़े-बड़े स्टूडियो (चित्रागार) में बहुत से कृत्रिम दृश्यों के साधन मौजूद रहते हैं। वास्तविक दृश्यों के लिये चित्र-निर्माताओं को खास-खास जगहों की सफर भी करनी पड़ती है।

५. सिनेमा से अनेक प्रकार के लाभ हैं और हो सकते हैं। ज्यों-ज्यों उसका दृष्टिकोण परिमार्जित होता जायगा, उससे हम आशातीत लाभ उठाते जायँगे।

इस समय सिनेमा मनोरंजन का सबसे सुलभ साधन समझा जा रहा है। दिनभर के कर्म-कोलाहल से श्रान्त-परिश्रान्त संसार घड़ी-दो-घड़ी की मौज के लिये—अपने मनोविनोद के लिये—सिनेमा-घरों की शरण लेता है। ऐसा कोई नगर नहीं; जहाँ एक-दो सिनेमा-घर न हों? आजकल दो-तीन बजे दिन से बारह बजे रात तक तीन-तीन प्रदर्शन होते रहते हैं।

६. शिक्षा-प्रचार के लिये यह नितान्त उपादेय बनाया जा सकता है। पाश्चात्य देशों में इसके द्वारा इतिहास, भूगोल, विज्ञान और कला-कौशल की शिक्षा दी जा रही है। युद्ध के युग में युद्ध-सम्बन्धी तरह-तरह की शिक्षाएँ इससे दी जाती हैं। कृषि-वाणिज्य की शिक्षा भी इसके द्वारा बड़ी आसानी से दी जा सकती है।

७. भारतीय रंगमंच से इसका अनिवार्य सम्बन्ध है। पौराणिक और सामाजिक किसी भी साहित्य का सफल अभिनय चाहे वह घटनात्मक हो

या भावात्मक, इसीके द्वारा दिखलाया जा सकता है। दृश्य-काव्य का प्रतिनिधित्व करनेवाला आज एकमात्र सिनेमा ही रह गया है। साथ ही भारतीय रंगमंच पर होनेवाले नाटकीय अभिनय को इसने बहुत बड़ा धक्का भी पहुँचाया है। आजकल यही कारण है कि नाटक उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते हैं। रंगमंच के पात्र सजीव और शरीरी होते हैं, पर रजतपट पर दौड़ने वाले उन अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के केवल छायाचित्र ही होते है। एक वास्तविकता के निकट है तो दूसरा उससे कोसों दूर। फिर भी यह कहना उचित ही होगा कि आज का सिनेमा-जगत भारतीय रंगमंच से विशेष प्रभावित है।

८. सिनेमा का दृष्टिकोण कलात्मक और व्यवसायात्मक है। उच्चकोटि का प्रेमाभिनय ही जहाँ एकमात्र उद्देश्य होना चाहिये, वहाँ सस्ते और गन्दे प्रेम का प्रदर्शन अक्षम्य अपराध समझा जायगा। कला का उद्देश्य लोकहित और जन-मंगल है। कुत्सित और नीच मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करनेवाला प्रेम बड़ा ही घातक और भयावह है।

सिनेमा का प्रचार तो दिन दूना और रात चौगुना होता जा रहा है। मजदूर से लेकर पूंजीपति तक—गरीब-अमीर, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष—सभी उसको देखने जाते हैं और देखने को लालायित रहते हैं। स्कूल और कालेज के विद्यार्थी इस ओर विशेष आकृष्ट हो रहे हैं, लेकिन उन्हें लाभ नहीं हानियाँ होती हैं। गन्दे प्रेम का प्रदर्शन उन्हें पथभ्रष्ट कर देता है। उठने के बजाय वे गिरने लग जाते हैं। आज नब्बे प्रतिशत विद्यार्थियों के फेफड़ों में कालकीट प्रवेश करते जा रहे हैं। उन्हें यक्ष्मा का शिकार बनकर अकाल ही कालकवलित होना पड़ता है। इसका एकमात्र कारण है—सिनेमा के गन्दे प्रदर्शन देखने की लत पड़ जाना। निरन्तर के जागरण और विद्युत्प्रकाश की तीव्रता से उनके नेत्र कमजोर हो जाते हैं। मानसिक ह्रास के आरम्भ होते ही उनके शारीरिक स्वास्थ्य को भी क्षय प्राप्त होने लगता है। अतएव सिनेमा में एक महान् परिवर्त्तन की आवश्यकता है। साथ ही कुछ अनैतिक चित्रों पर प्रतिबन्ध लगाने की भी अनिवार्यता प्रतीत होती है। 'सिनेमा' से सुधार के काम भी होते हैं। चाहे जिस तरफ का सुधार हो,

सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक इससे किया जा सकता है। हानिकारक चित्रों के बहिष्कार से सिनेमा अधिक ऊँचा उठाया जा सकता है। विद्यार्थियों के लिये शिक्षाप्रद चित्रों का निर्माण ही होना चाहिये। बाल-वृद्ध विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार सिनेमा के चित्रों द्वारा किया जाय; तो उससे समाज को अनन्त लाभ होंगे। तुलसी, सूर, समर्थ गुरु रामदास और कबीर इत्यादि के चित्रों के प्रदर्शन से हमारा बहुत बड़ा उपकार होगा। महाराणा प्रताप, झाँसी की रानी, रणजीत सिंह और वीर शिवाजी जैसे ऐतिहासिक चित्रों का निर्माण और प्रदर्शन परमावश्यक है।

इतना सब कुछ होते हुए भी सिनेमा-व्यवसाय को गिराना या ऊपर उठाना हम लोगों के हाथ में है। सरकार को इस ओर सतर्क रहना चाहिये। वैज्ञानिक आविष्कार का ध्येय लोक-मंगल के साथ ही जन-रंजन है। उसका दुरुपयोग करना अथवा सदुपयोग करना हमारे हाथ है। तब फिर क्यों नहीं उसका सदुपयोग करें ? सिनेमा का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। लेकिन उसमें क्रान्ति और परिवर्त्तन की समानरूप से जरूरत है।

विज्ञान अभिनव कार्य

(१) परिचय (२) उत्पत्ति और विकास (३) नर-संहार में वैज्ञानिक आविष्कारों का हाथ (४) वर्त्तमान युद्ध की भयंकरता की वृद्धि में इनका दुरुपयोग (५) इन आविष्कारों से लाभ—(क) वायुयान, (ख) युद्धपोत (ग) टैंकें (घ) सुरंगें (ङ) मोटरटैक्टर (च) अणुबम (६) उपसंहार।

बीसवीं शताब्दी विज्ञान का स्वर्णयुग है। विज्ञान के अभिनव आविष्कारों और कार्यों को देखकर—"आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है"—यह कथन अक्षरशः चरितार्थ होता है। आज विश्व के कोने-कोने में विज्ञान का डंका बज रहा है। उसकी विजय-वैजयन्ती फहरा रही है। विज्ञान-वाद ने भारतीय आत्मवाद को एक प्रबल आघात पहुँचाया है, उसकी जड़ें तक हिला दी हैं। भौतिकवाद का आज साम्राज्य है। आज मानव-जाति उससे भीत, चकित और संत्रस्त हो गई है। विज्ञान ने जल, स्थल और आकाश पर समानरूप से जय पा ली है।

वायुयान आकाशगामी रथ है। वायुपथ से आकाश-मार्ग में विचरने-वाला यह रथ नद-नदी, वन-उपवन और पर्वतशृंगों के ऊपर गर्दन ऊँची किये मँडरा रहा है। सभी उसके नीचे हैं—पद तले हैं। आज सारे संसार में वायुयान का प्रवेश है, प्रचार है, और सबके ऊपर उसका प्रभाव है, उसकी उपयोगिता का लोहा कौन नहीं मानता? वह व्योमविजयी है। थोड़े ही समय में बहुत बड़ी दूरी को तय करना यह क्या भूल जाने की बात है? सम्पूर्ण जगत् में आज आवागमन के साधन को किसने सुलभ कर दिया है? वायुयान ने। भारतवर्ष से इंगलैण्ड में आने-जाने में आज पहले का आधा वक्त भी नहीं लगता। रेलवे-स्टेशनों की भाँति इसके भी स्टेशन बने रहते हैं। इन्हें 'एरोड्रोम' कहते हैं।

वर्त्तमान युद्ध का सबसे बड़ा साधन वायुयान रहा है। उसीके संरक्षण में ही टैंकों की अमानुषिक और अद्भुत शक्ति की करामात देखने को मिलती है। ये वायुयान अपने शत्रुओं के विध्वंसक विमानों का सामना करते हैं। व्योमवाहिनी का युद्ध कितना महत्वपूर्ण और उपयोगी होता है—यह बात आज छिपी नहीं है। वायुयान ने विगत युद्ध में बहुत बड़ा काम किया है। वायुयान के कारण ही पोलैंड जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का पतन सिर्फ सोलह दिनों में हुआ। गगन में उड़ते हुए ये वायुयान चील के झपट्टों की तरह शत्रुओं के विमानों को मार गिराते थे—उनकी द्रुतगति क्या भुलाने की वस्तु है?

युद्ध के अतिरिक्त भी इससे अनेकों लाभ हैं। दूर की यात्रा, विशेषतया समुद्र यात्रा, के लिये अल्प समय लगने के कारण ही वायुयान विशेष मूल्यवान् हो उठा है। वैज्ञानिक आविष्कारों के दुरुपयोग और सदुपयोग की जिम्मेदारियाँ हम मानव पर हैं। उसके लिये हम जवाबदेह हैं।

देश की रक्षा में वायुयान का वरदहस्त रहा है। भारतवर्ष में आजकल—भारत-व्योमवाहिनी अर्थात् (Indian Flying Force) की स्थापना हो चुकी है। इसमें नौजवान भर्ती किये जा रहे हैं। जिनको उड़ने की, चलाने की और तत्सम्बन्धी अन्य अन्य बातों की जानकारी की शिक्षा दी जा रही है।

वायुयान से भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान 'वायरलेस' (बेतार का यन्त्र) को दिया जा सकता है। इसके कार्य वायुयान के स्थूल कार्यों की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म और उपयोगी हैं। वह वायरलेस का ही वरदान है कि विश्व

के प्रायः सभी प्रमुख देश परस्पर सम्बद्ध हैं—एक सूत्र में पिरोये हुए हैं। आज भारतवर्ष में रहनेवाले अपने घर में ही बैठकर दुनियाँ में कहाँ क्या हो रहा है!—सुन ले सकते हैं। भारत को इस यंत्र से खासकर राजनीति और वाणिज्य-व्यवसाय के समाचार विदेशों से मिलते रहते हैं।

प्राचीन युद्ध-प्रणाली को खदेड़ देनेवाले इस वैज्ञानिक युग ने वर्त्तमान युद्ध का कायाकल्प कर दिया है। दोनों में कितना दूरत्व है—कितना बड़ा परिवर्तन है? आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है। प्राचीनकाल में योद्धा लोग तीर-कमान और ढाल-तलवार से लड़ा करते थे। उस समय युद्ध की विजय युद्ध-कला पर थोड़ा, पर शारीरिक बल पर अधिक निर्भर करती थी। किन्तु आज का युग ही कुछ और है। उस युग का बिल्कुल विपरीत रूप है। आज के युद्ध में विजय-पराजय शारीरिक शक्ति पर नहीं—वैज्ञानिक यंत्रों के सफल-असफल प्रयोग पर निर्भर करती है। युद्ध के साधनों और सामानों का जितना आविष्कार आज हुआ है, शायद ही उससे पहले कभी हुआ हो।

आज मनुष्य-जाति संत्रस्त हो उठी है—मानवता काँप उठी है। क्यों? इसलिये कि वैज्ञानिक आविष्कारों के दुरुपयोग ने हमें कहीं का भी नहीं रहने दिया है। जल, स्थल और आकाश कहीं भी हमारी प्राण-रक्षा संभव नहीं। ऐसे-ऐसे गोलों की मार पड़ती है कि पृथ्वी के गर्भ में बने हुए तहखानों में भी आज का मानव सुरक्षित नहीं रह सकता। वहाँ भी महाकाल की दृष्टि ५०-६० फुट तक भूमितल को वेधती हुई पहुँच जाती है। जल के भीतर भी हमें अपने प्राणों की आशंका बनी रहती है। महाकाल का प्रवेश वहाँ भी टारपीडो और सुरंगों के रूप में अबाधित है। शैल शृंगों पर भी छिपकर मानव नहीं बच सकता। बम बरसाने वाले वायुयान यहाँ पलभर में पहुँच कर उसका काम तमाम कर देते हैं।

टैंक वर्त्तमान युद्ध-जनित आविष्कारों में प्रमुख है। यह भी विज्ञान की एक बहुत बड़ी देन है। यह स्थल-वाहिनी है। स्थलयुद्ध में इसकी उपयोगिता होती है इसके इंजिन में अमानुषिक और आसुरी ताकत है। विज्ञान ने यह साधन देकर स्थल पर अपनी विजय-पताका फहरा दी है। पृथ्वी पर इसका एक छत्र आधिपत्य है। यह कई दृष्टियों से सुविधा पूर्ण है। इस पर तीन ही मनुष्य कार्य करते हैं। एक टैंक को चलाता है। दूसरा मशीनगन और तोपों का उपयोग

करता है और तीसरा-यन्त्र द्वारा सन्देश भेजता है और प्राप्त करता है। इसकी चाल बड़ी तेज होती है। सीर्फ एक बार पेट्रोल भरकर इसको तीस-तीस, चालीस-चालीस मील प्रति घंटे की चाल से ले जा सकते हैं। यह टैंकों की ही ताकत थी कि गत युद्ध में जर्मनी की सेना मैजिनोलाइन तोड़ कर फ्रांस की सीमा में घुस आई थी।

जल-पोतों की आवश्यकता जल पर विजय पाने के लिये है। जलमार्ग से युद्ध करने के लिये ही इन जलपोतों की सृष्टि हुई है। इन पोतों पर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र सजाकर रख दिये जाते हैं। उनमें तोपें लगी रहती है। उन तोपों से हम शत्रुओं के जलयानों और वायुयानों से अपनी रक्षा करते हैं। इन तोपों पर कई तरह की मशीनगनें भी रक्खी जाती हैं। इनसे एक-एक मिनट पर सैकड़ों गोलियाँ निकलती हैं और शत्रुओं के वायुयानों को छेदकर चलनी कर देती है।

वैज्ञानिक आविष्कारों में सुरंगों का भी बड़ा महत्त्व है। वर्त्तमान में इसकी महत्ता उपयोगिता की दृष्टि से कहीं अधिक बढ़ गई है। सुरंगें पृथ्वी के अन्दर बनाई जाती हैं। जमीन के भीतर एक पतली और गहरी सुराख बनाकर उसमें विस्फोट पदार्थ भर दिये जाते हैं। बिजली की बैटरी या किसी प्रकार के दूसरे संघर्ष से उसका विस्फोट कर दिया जाता है। उस समय ज्वालामुखी के फटने से भयंकर आवाज होती है। शत्रुओं की टैंकें, मोटरें या फौजें जब सुरंग के ऊपर से जाती हैं, उस समय वह फूटकर उन्हें नष्ट कर डालती हैं। मजबूत से मजबूत सड़कों को यह छेद डालती है और उन्हें गड्ढा बना डालती हैं। सुरंगें शत्रु की गति को रोकनेवाली होती हैं। सुरंगें जिस प्रकार जमीन के अन्दर बिछाई जाती हैं उसी प्रकार समुद्र के भीतर भी।

मोटर-ट्रैक्टर का आविष्कार भी युद्ध की दृष्टि से कम उपादेय नहीं है। भारत-वर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। चिरकाल से यहाँ गोपाल और हलधर होते आये हैं। ऐसे उपजाऊ देश के लिये मोटर-ट्रैक्टर जैसे यन्त्र की नितान्त आवश्यकता है। मोटर-ट्रैक्टर एकड़ों जमीन को जोत सकती है, उनमें बीज बो सकती है और पकने पर उनमें उनमें लगी हुई फसलों को काट सकती है। भारत जैसे उर्वर देश के लिये इसकी उपयोगिता बड़ी महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक आविष्कारों ने ऐसे-ऐसे अस्त्रों को जन्म दिया है, जिनसे युद्ध की भयंकरता अपनी चरम सीमा पर आ पहुँची है। परिणाम सोचकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। नर-संहारक यन्त्रों में सबसे भयंकर, सबसे भयावह और सबसे अधिक बलशाली अणुबम है। इसके जैसा प्रभावशाली और सत्वर-विनाशक कोई अस्त्र नहीं है। महाभारत के ब्रह्मास्त्र से यह मिलता-जुलता है। सुनते हैं, महाभारत कालीन ब्रह्मास्त्र की शक्ति को मंत्रबल से शान्त किया जाता था। पर अभी अणुबम की शक्ति का कोई अवरोधक नहीं। बहुत संभव है, उसकी शक्ति का भी निरोधक कोई अस्त्र निकल आये। लेकिन वह भविष्य के गर्भ में है।

अणुबम बिल्कुल नवीन आविष्कार है। वर्त्तमान युद्ध में ही इसका जन्म हुआ है। जर्मनी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों के उर्वर मस्तिष्क की यह उपज है। इन दिनों इस पर अमेरिका का अधिकार है। रूस का दावा है कि उसने अणुबम से भी अधिक प्रभावशाली उसका अवरोधक अस्त्र ढूँढ़ निकाला है। वस्तुतः अणुबम विज्ञान की सबसे शक्तिशाली देन है। इसमें अमोघ शक्तियाँ हैं। इसने युद्ध की काया ही पलट दी है। यह महाकाल रुद्र का भ्रूभंग है। यह देखते ही देखते योजनों भूमि को भस्मसात कर सकता है। यह अणुबम की ही ताकत थी कि जापान ने निरस्त्र होकर मित्रराष्ट्रों के सम्मुख घुटने टेक दिये।

यह सच है कि विज्ञान ने इन साधनों को देकर देश-काल और पात्र पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया है। इन आविष्कारकों के कारण आज का युग अशान्तिमय—शान्ति से कोसों दूर भयावह और विपन्न हो रहा है। संहारक उपादानों को लेकर आज विज्ञान के दानव ने मानव को चुनौती दे दी है। रक्तरंजित होली खेलने वाला यह वैज्ञानिक युग मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है। शत्रु इसलिये कि उसका दुरुपयोग किया जा रहा है। वह मित्र भी हो सकता है बशर्ते कि उसका सदुपयोग किया जाय। अणुबम के कारण ही आज कई राष्ट्रों के अहंकार की कोई सीमा नहीं है, फिर भी विज्ञान हितकर है—अहितकर नहीं। 'उसका कोई दोष नहीं' दोष है उसके दुरुपयोग करने वालों का। विज्ञान को जीवन का साधन भी बनाया जा सकता है और मृत्यु का कारण भी।

बेसिक शिक्षा

(Basic Education)

(१) परिचय (२) वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली—उससे लाभ-हानि (३) उसमें परिवर्त्तन-परिवर्द्धन की आवश्यकताएँ (४) बापू की शिक्षा-योजना—बेसिक शिक्षा की विशेषताएँ (५) उसका पाठ्यक्रम और उल्लेखनीय बातें (६) उसके विकास और प्रचार के लिये केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों की प्रचेष्टाएँ (७) उपसंहार—निरक्षरता, अशिक्षा और बेकारी का निराकरण।

शिक्षा नागरिकता और राष्ट्रीयता की जननी है। हमारी सच्ची शिक्षा माता की कोमल गोद और मातृभूमि की रूखी-सूखी धूल से ही शुरू होती है। कोमलता और कठोरता-जैसी दो विरोधी परिस्थितियों में पलने वाला मानव ही सच्चा मानव हो सकता है। जीवन में साहित्य, संगीत और कला का जो महत्त्व है, उससे हस्तकौशल का—कताई-धुनाई, कपड़े बुनने और सीने-पिरोने की कीमत का कम नहीं। हाँ, यह स्थूल कला है—कला के रुखड़े और मोटे कार्य हैं, पर इसीसे ललित कला का जन्म होता है। पुस्तकों की विद्या ही यथार्थ विद्या नहीं है और न पुस्तकीय शिक्षा ही जीवन की सच्ची शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये—ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ ही जीविकोपार्जन जिस शिक्षा से हम भूखे साहित्यिक, भूखे कवि, लेखक और भूखे वकील बने रहते हैं, वह शिक्षा ही हमारी अपूर्ण है—अधूरी है। और वह तभी पूरी कहला सकती है जब हमारे जीवन की समस्या भी हल करती चले। जिस शिक्षा से जीवन के प्रश्न हल नहीं हो पाते, वह वास्तव में अधिक है।

शिक्षा का एक अर्थ प्रकाश है। अथच अशिक्षा अन्धकार का पर्याय है। इस प्रकाश को साथ लेकर हम इस जटिल और सघन बन-जैसे कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यही प्रकाश मेरा पथ-प्रदर्शक है। शिक्षा राह दिखलाती है—गुमराह नहीं करती। इससे हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं

कि वर्त्तमान स्कूलों और कालेजों की शिक्षा हमें अपने ध्येय तक पहुँचाने में असमर्थ है—हमें जीविका देने में असमर्थ है, इसलिये इसमें परिवर्त्तन, परिवर्द्धन की आवश्यकता अनिवार्य है।

आज भारतवर्ष एक संक्रान्ति काल से गुजर रहा है। युग-परिवर्तन हमारे ही साथ है। त्रेता, द्वापर की बात हम जानते हैं, पचास वर्ष पहले की बातें भी हमें नहीं भातीं—असार-सी लगती हैं। क्या कभी भी हम इस बात को सोचते हैं? युग-परिवर्तन देश, काल और परिस्थितियों का तकाजा है। अतएव हमारी शिक्षा-प्रणाली में भी परिवर्त्तन की एक क्रान्ति आई है।

बेसिक शिक्षा हमारी शिक्षा-प्रणाली में एक नया अध्याय जोड़ती है। सच तो यह है कि बेसिक-शिक्षा हमारी वर्तमान सदोष शिक्षा-प्रणाली के प्रति असन्तोष और अकर्मण्यता की प्रतिक्रिया का परिणाम है। आज इस वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध देश के कोने-कोने से आवाज उठाई जा रही है। इस अकर्मण्य और खर्चीली शिक्षा से कितनी हानियाँ हो रही हैं। यह बात प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति जानता है। इसने हमारे मनोवृत्ति को गुलाम और हमारी भावनाओं को चापलूस बना रक्खा है। आज हम थोड़े से ठीकरों के लिये किसी की हाँ में हाँ मिलाते हैं और किसी के पीछे अपनी दुम हिलाये फिरते हैं। वर्त्तमान शिक्षा का ही दुष्परिणाम है कि आज हम इतने नीचे गिर गये हैं। हमारा आर्य-देश यह भारत आज इतने नीचे क्यों आ गया है? क्या हमारा ध्येय विदेशी शिक्षा पाकर सरकारी दफ्तरों में नौकरी करना नहीं रह गया है? क्या हम क्लर्क की जगह पाकर फूले नहीं समाते हैं? क्या इसी निगोड़ी अशिक्षा के कारण हमारा नैतिक पतन नहीं होता आ रहा है? क्या यह कुशिक्षा का परिणाम नहीं है कि हम सम्मिलित कुटुम्ब से—उसके सौहार्द और सौजन्य से दिन-प्रतिदिन खिसक कर दूर होते नहीं जा रहे हैं? क्या हमें देशद्रोही बनाने में इस कुशिक्षा का दृश्य या अदृश्य हाथ नहीं रहा है?

आज के शिक्षितों के सामने बेकारी की समस्या मुँह बाये खड़ी है। आज हमारी शिक्षा हमारे लिये दोनों जून रोटी नहीं पैदा कर सकती। आज की

इस शिक्षा ने हमारे जीवन के रस को चूस डाला है—निचोड़ डाला है। आज की यह शिक्षा हमारी लाज नहीं ढक पा रही है।

आज की शिक्षा में—उसके उद्देश्य और प्रणाली में एक सामयिक परिवर्त्तन की आवश्यकता है। उसमें काट-छाँट करने का समय आ गया है। उसमें सड़े-गले अंगों को नश्तर लगाकर काट निकालना बहुत जल्दी आवश्यक हो गया है। यह एक अनुभव की बात है जिसे आज का भारत भली-भाँति समझ रहा है। परिवर्त्तन हो, परिवर्द्धन हो, शिक्षा-प्रणाली में सुधार और संशोधन हो—यह आज प्रत्येक शिक्षित भारतीय की पुकार है।

विश्ववन्द्य बापू ने बहुत बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया कि उन्होंने बुनियादी तालीम (बेसिक शिक्षा) का कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके सामने प्रस्ताव रक्खा था। उस समय तक कांग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो चुकी थी। वे ही क्यों, सारा भारत ही आज इस बात को जानता है और मुक्तकण्ठ से स्वीकार करता है कि वर्त्तमान अँगरेजी-शिक्षा-पद्धति लार्ड मेकाले की बनाई हुई, क्लर्कों को जन्म देनेवाली, मशीन है। उस समय ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के लिये क्लर्कों की जरूरत थी।

महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा की योजना 'वर्धा-शिक्षा-योजना' कहलाई। यह भी उसी अनुपम मस्तिष्क की उपज है। उनके स्तुत्य कार्यों में आज वर्धा-शिक्षा योजना भी प्रमुख है। इसमें कुछ आवश्यक उलट-फेरों के साथ इसको 'बेसिक-शिक्षा' नाम दिया गया है।

बेसिक-शिक्षा या बुनियादी तालीम आज की भारत सरकार का विशेष चिन्त्य प्रश्न है। इसमें चार बातें प्रमुख हैं—

(१) अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा—६ वर्ष की उम्र से १४ वर्ष तक के बच्चों के लिये निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का विधान।

(२) भारतीय (लोक-भाषा) की शिक्षा का माध्यम रक्खा गया है।

(३) शिक्षा में हस्तकलाओं (दस्तकारियों) को प्रमुख स्थान दिया गया है।

(४) बालक बालिकाओं को उनके घरेलू और सामाजिक वातावरण के अनुसार ही उन्हें शिक्षा देने की व्याख्या की गई है। उन्हें अनेक तथा विभिन्न विषयों का ज्ञान हो, इसके लिये उनके दैनिक जीवन में आनेवाले विषयों को

ही आधार मानकर हस्तकला को रखा गया है। इसे ही समन्वय या अनुबन्ध कहा जाता है।

वस्तुतः, बेसिक-शिक्षा-पद्धति का नवनिर्मित भवन इन्हीं चारों स्तम्भों पर टिका हुआ है। साथ ही इसमें पाठ्य-क्रम की भी कुछ बातें हैं। पहली बात यह है कि हमारी मनोवृत्ति को दूषित और पतित करनेवाली अंगरेजी भाषा का बहिष्कार होगा। दूसरी बात यह है कि हमें नागरिकशास्त्र का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना होगा।

हस्त-कला की शिक्षा को इस विषय के आचार्यों ने दो भागों में बाँटा है (१) अनिवार्य हस्तकला और (२) वैकल्पिक हस्तकला। अनिवार्य हस्त-कला में कताई-बुनाई और खेतीबारी के हल्के काम जैसे बाग लगाना, उसे पटाना अर्थात् बागवानी का साधारण ज्ञान रक्खा गया है। वैकल्पिक हस्तकला के लिये (१) कताई-बुनाई (२) कृषि (३) लकड़ी और धातु के उद्योग (४) चमड़े के धन्धे—थैला, मनिबेग, बेल्ट और जूते के काम सीखना (५) मिट्टी के काम, मिट्टी की मूरतें, चाय का सेट (डिश, प्याले), इत्यादि विषय हैं।

बालकों और बालिकाओं का पाठ्यक्रम प्रायः एक ही है। उम्र के लिहाज से जहाँ तक दोनों में सरलता और भाई-बहन का पवित्र सम्बन्ध बना रह सकता है वहीं तक—बालक-बालिकाओं की एक साथ पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था की गयी है। गृह उद्योग—अर्थात् गृहस्थी के लिये जरूरी धन्धों का ज्ञान प्राप्त करना इसमें अनिवार्य कर दिया है। अधिक उम्र के बाद उन दोनों की पढ़ाई-लिखाई के अलग-अलग प्रबन्ध किये गये हैं।

बेसिक-शिक्षा का मूलमन्त्र हस्तकला है। यह हस्तकला इस शिक्षा का मेरुदण्ड है। प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही हस्तकला की शिक्षा आसानी से दी जा सकती है। यह आजकल के शिक्षा-शास्त्रियों का अनुभूत विचार है। बेसिक-शिक्षा को वास्तविक और क्रियात्मक रूप देने के लिये घोर प्रयत्न किया जा रहा है। देश के शिक्षा विशारदों के मस्तिष्क और संचित द्रव्य इस कार्य में लगाये जा रहे हैं।

इस बेसिक-शिक्षा का गुरुद्वार है 'वर्धा' और इसके आदि प्रवर्तक हैं विश्व-वंद्य बापू। हस्तकला के साथ ही साथ अन्य विषयों का समन्वय भी इस शिक्षा की विशेषता है। यह अनुभव क्या है? गणित में उसकी प्रक्रिया (प्रोसेस) में

जिस तरह योग, गुणा और भाग का क्रम आता है, उसी प्रकार गुण्डी बनाने में कताई की मजदूरी निकालने में, सूत के नम्बर इत्यादि बातों में गणित का साधारण ज्ञान स्वयमेव हो जाता है। स्लेट-पेन्सिल लेकर अलग से सिर खपाने की कतई जरूरत नहीं होती। इतना होते हुए भी गणित-शिक्षा की यह प्रणाली क्लिष्ट तो है ही—अस्वाभाविक भी है। अनुबन्ध का मतलब यह है, हस्तकला के समय स्वाभाविक रूप से जो विषय सहज बोधगम्य हो—आसान दीख पड़े, भूगोल हो चाहे गणित—बालक-बालिकाओं को उसका ही ज्ञान कराया जाय। अनुबन्ध में बालक-बालिकाओं के घरेलू विषय हो सकते हैं, सामाजिक वातावरण हो सकता है—दूसरा नहीं।

बालक स्वभावतः व्यावहारिक कार्य को ही पसन्द करते हैं। हर वस्तु को देखकर बच्चा उसे उठा लेता है और उसका उपयोग करना चाहता है। इतना जरूरी है कि यह उन वस्तुओं का उपयोग करना नहीं जानता। फिर भी बालक-बालिकाओं की उत्सुकता व्यावहारिक कार्यकलाप की ओर विशेषरूप से खिंचती है। गणित और भूगोल का ज्ञान उन्हें करा देना इस प्रक्रिया के अनुसार बड़ा सरल होता है।

वास्तव में शिक्षा वही है जिसका हमारे दैनिक जीवन में साथ हो, उपयोग हो और उस पर प्रभाव हो; बेसिक-शिक्षा में यही विशेषता है। इसके अनुसार विषयों का ज्ञान कराया जाय तो हमारे बालकों को कई लाभ होंगे। पहला लाभ यह होगा कि बालक-बालिकों का मन आप से आप विषय का ज्ञान प्राप्त करने में लग जायगा। बिना सोचे-विचारे तोते की तरह रटने का दुर्गुण उनके पास नहीं फटकेगा। दूसरों को जो कुछ पढ़ाया जायगा, उसे वे बड़ी खूबी के साथ और बहुत जल्द सीख लेंगे। सबसे बड़ा लाभ होगा कि शिक्षा उनके दैनिक जीवन में घुल-मिल जायगी। वह उनके जीवन से किसी भी तरह अलग नहीं की जा सकेगी।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली, जो आजकल दूषित और उच्छिष्ट समझी जा रही है—हमारे दैनिक जीवन से कोसों दूर है। वह हमारे साथ है, साथ दे रही है और हमें आगे बढ़ा रही है—ऐसा नहीं कहा जा सकता।

हस्तकला के बाद मातृभाषा का स्थान आता है। बेसिक शिक्षापद्धति में यह दूसरा प्रमुख अंग समझा जाता है। इस विषय में प्रायः प्राच्य और पाश्चात्य

विद्वान एकमत हैं कि मातृभाषा के द्वारा ही जीवन की सच्ची शिक्षा मिल सकती है। बात यह है जैसा साँचा रहेगा वैसे ही सिक्का ढलेगा। जैसी माता होगी, वैसी उसकी भाषा होगी, वैसा ही बच्चा होगा और वैसी ही उसकी मातृ-भाषा होगी। संसार के इतिहास में आजतक पितृभाषा का नाम नहीं मिलता है। क्योंकि हमारी वाणी माता की गोद में ही फूटती है। हमारी प्रारम्भिक और सभी घरेलू शिक्षा मातृ-मन्दिर से ही शुरू होती है। माता का और मातृभाषा का सम्पूर्ण जीवन पर एकांगी प्रभाव पड़ता है। विदेशी भाषा के उद्भट विद्वान् होने पर भी आपके मुख से आकस्मिक शोक और हर्ष के समय मातृभाषा में उद्‌गार निकल ही पड़ेंगे।

आजतक अँगरेजी शासन से प्रभावित स्कूलों और कालेजों में हिन्दी भाषा की जो छीछा-लेदर हो रही है, वह पाठकों को ज्ञात ही है। हमारी मातृभाषा को दिनानुदिन विकृत और अस्वाभाविक कर देने की प्रचेष्टा होती रही है। बड़े खेद का विषय है कि आज हम अपने मनोगत भाव, हर्ष या शोक को प्रकट करने के लिये अपनी भाषा में उपयुक्त शब्द न पाने की शिकायत करते हैं और उन्हें अँगरेजी में बोलकर अपना माथा गौरव से ऊँचा करते हैं। यही है हमारी सबसे बड़ी कमजोरी—हमारे मानसिक और नैतिक पतन का मूल कारण।

नागरिकता को—नागरिक-शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन को वेसिक शिक्षा में एक महत्वपूर्ण स्थान मिला है। प्रचलित शिक्षा-पद्धति में इसकी नितान्त आव-श्यकता प्रतीत हुई है। इसकी अवहेलना से हमारी यह नूतन शिक्षण-पद्धति अपूर्ण रह जाती। हमारे नागरिक अधिकारों, कर्त्तव्यों का जब तक हमें ज्ञान नहीं होगा, हम कोरे के कोरे रह जायेंगे। इसीके पठन-मनन से हमारे अन्तःकरणों में समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा की भावनाएँ जाग सकती हैं।

बुनियादी तालीम के प्रचार-प्रसार के लिये भारत सरकार ने एँड़ीचोटी का पसीना एक कर दिया है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की विश्व-भारती में शान्ति-निकेतन और श्री निकेतन के बीच विनय-भवन की स्थापना की गई है। इसका शिलान्यास किया माननीय राजगोपालाचार्य चक्रवर्ती जी ने। इसकी सहायता के लिये प्रतिवर्ष ७५ हजार रुपये का दान मिला है। विद्यालय-भवन और शिक्षकों के आवास के लिये एक हजार कम पाँच लाख रुपये दिये गये हैं। यह बात

सन् १६४६ की है। इस समय विश्व-भारती के विनय-भवन में बेसिक शिक्षा-पद्धति का कार्यक्रम चल रहा है।

शान्ति-निकेतन के विनय-भवन से मिलता-जुलता दूसरा केन्द्र जामिया मिलिया में स्थापित किया गया है। केन्द्रीय सरकार की यह चेष्टा रहती आई है कि ये दोनों भारत के प्रमुख शिक्षा-केन्द्र रहें। संयुक्तप्रान्त में बेसिक-शिक्षा-पद्धति को वर्त्तमान-शिक्षा-पद्धति के साथ मिला देने की भरपूर चेष्टा हुई है। माननीय मंत्री सम्पूर्णानन्दजी ने इसकी सफलता के लिये कोई कोर-कसर उठा नहीं रक्खी है।

आशा है, आशा हीं क्यों, हमें तो दृढ़ विश्वास है कि बेसिक शिक्षा-प्रणाली द्वारा देश की शिक्षा पूरी समझी जायगी। शिक्षित युवकों की जीविका का प्रश्न नहीं उठेगा। बेकारी की भीषण समस्या का बड़ा ही सुखद अन्त होगा। ग्रामों से अरुचिकर शिक्षा बिदा लेगी। वहाँ हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली शिक्षा का प्रचार होगा। उद्योग-धन्धों से हमारी युग-युग की आई आर्थिक समस्या सुलझ जायगी। यह वैज्ञानिक शिक्षा हमारे जीवन के मार्ग को प्रशस्त कर हमें आगे बढ़ाती रहेगी।

---

१५ अगस्त

(भारतीय स्वतंत्रता-दिवस)

(१) भूमिका (२) भारतीय इतिहास का स्वर्ण-पृष्ठ (३) देश के नेताओं का त्याग—शहीदों की कुर्बानियाँ (४) विद्यार्थियों का त्याग और बलिदान (५) स्वतंत्रता प्राप्ति की पृष्ठ-भूमि की तैयारियाँ (६) कवियों और लेखकों ने भी हाथ बँटाया ; (७)कांग्रेस का स्तुत्य कार्य (८) भारत का विभाजन (९) सत्य और अहिंसा-जैसे अमोघास्त्रों का सफल प्रयोग (१०) उपसंहार—एकता और संगठन से ही इसे सुरक्षित और अकंटक रक्खा जा सकेगा।

१५ अगस्त स्वतंत्र भारत के इतिहास का सबसे सुन्दर स्वर्णपृष्ठ है—सबसे उज्ज्वल, सबसे मनोहर। यह दिवस बड़ा ही भाग्यशाली है। यह हमारी शताब्दियों से अपहृत स्वतंत्रता—वर्षों से गुमी हुई आजादी—को लेकर आ पहुँचा है। यह दिवस भारत के कलाकारों का—कवियों, लेखकों और इतिहास-कारों का—बहुत ही प्यारा है। इस पर तरुण कवियों ने अपने नव रसप्लावित हृदयों की उमंगें न्योछावर की हैं। लेखकों ने अपने लेखों—निबन्धों में—दिल खोलकर अपने मनसूबे प्रकट किये हैं। देशद्रोही छिद्रान्वेषियों ने अपने पके फफोले तोड़े हैं। चित्रकारों ने अपनी कुशल तूलिका से इसका आसमानी चित्र खींचा है। गवैयों ने बरसाती कजली और मल्लार की तानें अलापी हैं। नृत्यकारों ने अपनी अनोखी भाव-भंगियों से अपने मनोगत हर्षोल्लास को प्रकट किया है। क्यों ?

इसलिये कि, आज वंग के स्वप्नद्रष्टा कवि की कल्पना साकार हुई है। 'सुजलां सुफलां मलयजशीतलां शस्यश्यामलां मातरम्' की पंक्तियाँ सार्थक हुई हैं। इतना ही नहीं, राजनीतिज्ञों के मरुभूमि-जैसे शुष्क—नीरस हृदय में भी सावन के फुहारे पड़े हैं। परतंत्रता-ताप से संतप्त भारतभूमि पर इसकी अजस्र धाराएँ फूट पड़ी हैं। आज से यही होगा हलधर का हलकर्षण-दिवस।

१५ अगस्त हमारा एक राष्ट्रीय पर्व-दिवस है। जिस स्वतन्त्रता-यज्ञ का वर्षों पूर्व से अनुष्ठान होता आ रहा था, आज है उसकी पूर्णता। आज हमारी स्वतंत्रता लौट आई है। एक ऐसे दिन, ऐसे ही अवसर पर, भारतीयों ने 'दीपावली' मनाई थी। उस दिन भी राक्षसों की नृशंसता और क्रूरता के

शिकार होकर हमारी एक नहीं—हजारों भारतमाताएँ उसके कारागार में तड़प रही थीं। दानवता की चक्की में पिस जाती हुई मानवता कराह उठी थी। माता वसुन्धरा भी उसके चलते बार-बार काँप उठी थीं। उसका भी अन्त हुआ तो योगेश्वर श्रीकृष्ण के द्वारा ही। वह कृष्ण कंस के कारागार में बेड़ियों, हथकड़ियों से जकड़ी हुई भारतमाता देवकी की गोद में प्रकट हुआ था। आज भी इस दुःखिनी भारतमाता को मुक्त किया कारागारवासी मोहनदास कर्मचन्द गान्धी अहा! कितना साम्य है। भारत के इतिहास के अतीत और वर्त्तमान के दो अनुपम नररत्नों में!

१५ अगस्त के इस पुनीत अवसर पर हम भारतीयों को उन अमर शहीदों का रोमांचकारी स्मरण हो आता है, जिन्होंने गोलियों की बौछारों को अपने सीने से लगाया—जिन्होंने स्वतंत्रता के कोमल अंकुर को अपने हृदय के रक्त से सींचा। उन हुतात्माओं को क्या भारत का इतिहास कभी भूल सकेगा? जिन्होंने अपना जीवन समर्पण किया, अपने प्राणों को भेंट दी।

हमें आज उन भाई-बहनों का स्मरण हो रहा है, जिन्होंने सन् १९४२ के आन्दोलन में अपने जीवन की सारी उमंगों, सभी अरमानों और सभी साधों की बलि चढ़ा दी है। आजादी की लम्बी लड़ाई में लड़ते-लड़ते जिनके प्राण कण्ठगत हो चुके थे। जो आज भी जीवित हैं और अपनी सुख-सुविधाओं का बलिदान देते-देते थक चुके हैं, उन्हें भी यह दिवस याद रक्खेगा।

१५ अगस्त का यह दिवस चिरस्मरणीय है। आज से हमारा आकाश स्वतंत्र है। आकाश के चन्द्र-सूर्य और ग्रह-उपग्रह नक्षत्रादि स्वतन्त्र हैं। दिशाएँ प्रसन्न हैं। नदियाँ मन्द-मन्द मुस्कराती हुई बह रही हैं। आज हमारे देश के पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम, पवन-गगन सभी प्रसन्न हैं—विहँस रहे हैं; क्योंकि स्वतंत्र देश में सभी स्वतंत्र होते हैं।

सुना है, प्रजातंत्र रामराज्य में मूक पशु को भी वाणी मिली थी। वह भी अपना दुख-दर्द सुनाया करता था। राजा राम के दरबार में एक कुत्ते ने एक व्यक्ति पर यह अभियोग लगाया था कि उस व्यक्ति ने अकारण ही उसे पीटा है। यह कपोल-कल्पना नहीं है! यह है हमारे स्वतंत्र भारत के प्रजातंत्र की सच्ची परिभाषा। यह हमारे न्याय का ज्वलन्त प्रमाण और हमारे पूर्वजों की गौरव-गाथा का मूर्त्तरूप है।

१५ अगस्त सन् १९४७ को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र उद्घोषित किया गया। १४ अगस्त की रात के बारह बजे के बाद से भारत के प्रमुख नगरों में इस स्वतन्त्रता-दिवस को मंगल-आरती उतारी गई, इसका स्वागत-गान गाया गया। मंगलाचारपूर्वक हम भारतीय आगे बढ़कर इस स्वतन्त्रता देवी को ले आये। उस दिन हमारे राष्ट्रपिता जीवित थे। उन्होंने आगे बढ़कर माता की पद-धूलि ली। माता ने उन्हें अपने वक्ष से लगा लिया। अपूर्व मणि-कांचन योग।

१५ अगस्त है हमारा सिद्धि-दिवस। हमने अपनी चिर-संचित तपश्चर्या और निरन्तर की साधनाओं की सिद्धि प्राप्त की है। आज हमने अपनी पिछली सभी कमजोरियों पर विजय पाई है।

आज स्वतन्त्रता-संग्राम के अमर सेनानी के, जो आज हमारे बीच नहीं रहे, स्मरणमात्र से ही हमारा कण्ठावरोध हो जाता है, गला गद्गद् हो जाता है। १९४२ के अमर शहीदों के हम नाम गिनना नहीं चाहते। इसलिये कि उनका महान् त्याग है और वे मर जाने पर भी अमर हैं।

विश्ववंद्य बापू का त्याग एक आदर्श त्याग है। उनका जीवन ही हमारे लिये था, हमारी मातृभूमि की सेवा के लिये था। उनके न्याय का वर्णन करना इस लौह-लेखनी की शक्ति के बाहर की बात है। महामना बालगंगाधर तिलक, बंगकेसरी श्री चितरंजनदासजी, दिवंगत श्री मोतीलाल नेहरू, महर्षि श्री मदन-मोहन मालवीय, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री राज-गोपालाचारी, श्री बल्लभभाई पटेल, श्री सीमांत गांधी, देशरत्न श्री राजेन्द्रप्रसाद इत्यादि इने-गिने नेताओं ने इस १५ अगस्त की प्राप्ति के लिये कौन-सा त्याग नहीं किया है?

किसी देश के जागरण में महापुरुषों के ही हाथ रहते हैं; पर जागता है सबसे पहले विद्यार्थियों का दल ही। नवयुग का शंखनाद सुनकर विद्यार्थी अपने आपको वश में नहीं रख पाते। विद्यार्थियों ने स्वतन्त्रता के आन्दोलन में १९२० से ही भाग लेना शुरू किया था। लवण-सत्याग्रह में स्कूल और कालेज में निहत्थे विद्यार्थी पीटे गये। स्वयंसेवकों के जत्थों में वे गिरफ्तार होकर ब्रिटिश सरकार के जेलखानों को भरते गये। विद्यार्थियों ने आन्दोलन पर जान फूँक दी। महात्मा गांधी की आँधी में प्रोफेसरों ने प्रोफेसरी छोड़ी, वकीलों ने वकालत और विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेज छोड़े। विद्यार्थियों की निःस्वार्थ सेवा से आन्दो-

लन का सत्याग्रह एक बार ही प्रज्वलित हो उठा। सन् १९४२ ई० में 'अंगरेजों! भारत छोड़ो' के नारे ने जल-थल-नभ को मुखरित कर दिया। इस गगनभेदी आवाज से ही अंगरेजों की रूहें काँप उठीं। फिर क्या था? आ गया नादिर-शाही जमाना। हजारों नौ-जवान और हजारों भारत के नौ-निहाल गोली के घाट उतारे गये। यह थी—अगस्त की क्रान्ति।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति की पृष्ठभूमि में विद्यार्थियों का बलिदान चिरस्मरणीय है। उन्हीं शहीदों के त्याग की भित्ति पर आज की स्वतन्त्रता की अट्टालिका प्रतिष्ठित है। पानी में उठते बुलबुलों की तरह आज वे मिट गये हैं। उन सच्चे वीरों ने, नाम के लिये नहीं, देश के काम के लिये शीश चढ़ाये हैं।

१५ अगस्त की स्वतन्त्रता बड़ी महँगी पड़ी; अखण्ड भारत को खण्डित होना पड़ा। इसके दो टुकड़े करने पड़े। यह सौदा बड़ा ही महँगा पड़ा? अंगरेज तो भारत छोड़ गये, पर आज भी दाँत गड़ाये बैठे हैं। 'फूट डालो और भारत पर शासन करो'—उनकी इस नीति पर अब पानी फिर गया है।

युद्ध से जर्जर भारत को आजादी तो मिली, पर भरपेट रोटी न मिल सकी। क्यों? तिरंगा झण्डा तो मिला, पर नंगे तन को ढाँकने को कपड़ा न मिल सका। क्यों? क्योंकि अंगरेजों ने हमें चूसकर छोड़ दिया है। हमारी सारी सम्पत्ति को लड़ाई में स्वाहा कर डाला है। आज चिथड़े में आजादी मिली है। फिर भी हम आजाद हैं।

एक वर्ष तक भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य मिला था। आज हम पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्रता के नवजात शिशु को पूरा वर्ष भी न लगा था कि हमारे राष्ट्र के कर्णधार को विश्व के रंगमंच पर से बलपूर्वक हटा लिया गया।

आज एक वर्ष की प्रगति का सिंहावलोकन करने से हमारा हृदय बैठ जाता है। क्योंकि हम एक ही जगह, एक ही लीक पर अडिगभाव से खड़े हैं। आज नवजात स्वतन्त्र भारत के सामने बड़े-बड़े विकट प्रश्न हैं। आपसी फूट हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। कांग्रेस-विरोधी शक्तियाँ आज बरसाती वीरबधूटी कीड़ों की भाँति बढ़ती ही जा रही हैं—स्वतन्त्रता की जड़ खोदने पर तुली हुई हैं। परस्पर की इस विद्वेषाग्नि को शान्त करना देश के लिये बड़ा ही पथ्य होगा।

देश-विभाजन से सम्बद्ध आज कई समस्याएँ हमारे मार्ग में रोड़े अटका रही हैं—हमारे परिष्कृत पथ को कण्टकित कर रही हैं। फिर भी हमें सन्तोष है

कि हमारी सरकार को इन समस्याओं को सुलझाने में थोड़ी-बहुत सफलता मिली है। पाकिस्तान और भारत आज दोनों ही नवजात राष्ट्र हैं—दोनों ही यमल दोनों की सम्पत्ति के विभाजन और आर्थिक समझौते में भारत सरकार की दृष्टि उदार ही है।

देश-विभाजन का सबसे बुरा प्रभाव पड़ा है। पूर्वीबंगाल और पश्चिमी पंजाब के शरणार्थियों पर। वे आज कंगाल हो रहे हैं, खानाबदोश की जिन्दगी बसर कर रहे हैं। इस पर दलित मानवता के—कोटि शरणार्थियों के विकट प्रश्नों के सुलझाने में भी भारत सरकार को यथेष्ट सफलता मिली है।

देशी रियासतों का समस्याएँ-भी बड़ी विकट हैं। उन्हें भी उपेक्षा की दृष्टि से देखना भविष्य के लिए भयावह और घातक सिद्ध होगा। बृटिश सत्ता के, भारत से, उठ जाने पर देश का तिहाई हिस्सा स्वतंत्र हो गया। अब क्या था। देशी रियासतों के राजों की बाछें खिल गईं। अब स्वतन्त्र-भारत के सामने प्रश्न यह आ या कि इन देशी रियासतों को वैधानिक ढाँचे के अन्दर कैसे लाया जाय; इनको आपस में मिलाकर किस तरह काम चलाया जाय; इन रियासतों में प्रजातन्त्र मूलक उत्तरदायी शासन को श्रीगणेश क्यों कर दिया जाय।

किन्तु भारत की केन्द्रीय सरकार के मन्त्रिमण्डल के प्रयत्नों से आज ६०० से अधिक रियासतों की संख्या घट कर ३० से ज्यादा नहीं रह गई है। २१९ रियासतें जिनका क्षेत्रफल ८४७७७ वर्ग मील है और जन संख्या १३००१८ लाख है, अपने निकट के प्रान्तों में सम्मिलित हो जाना पड़ा है। प्रायः २२-२३ रियासतें, जिनका रकबा। ६०६१ वर्गमील और जनसंख्या १४-३७ लाख है, केन्द्रीय सरकार द्वारा शामिल क्षेत्रों में संगठित कर ली गई है। २६१ रियासतों को अच्छी तरह संगठित कर उनमें कई भाग कर दिये गये हैं। वे हैं—सौराष्ट्र, मत्स्य, विन्ध्य, राजस्थान, मध्यभारत और पटियाला। इनके अतिरिक्त बनारस, रामापुरा, त्रिपुरा, खासो पहाड़ा रियासतें और कूचविहार जैसी छोटी-छोटी रियासतों के एकीकरण के लिये केन्द्रीय सरकार बद्धपरिकर है।

१५ अगस्त को स्वतन्त्रता के इतिहास में हैदराबाद, काश्मीर और जूनागढ़ की समस्याओं ने एक विकट रूप धारण कर लिया था। इसमें जूनागढ़ और हैदराबाद के प्रश्न हल कर चुके हैं। काश्मीर उलझनें भविष्य की गर्भ में है। काश्मीर की समस्या को सरकार ने संयुक्त राष्ट्र-मण्डल को सुरक्षा

परिषद् में देकर अपनी न्याय-प्रियता का परिचय तो दिया; लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी शक्तियों को हमारे घर के झगड़े में हस्तक्षेप करने का एक बड़ा ही नायाब मौका मिल गया।

देश की आर्थिक समस्याओं के हल करने में अभीतक भारत सरकार को पूर्ण सफलता नहीं मिली है। हमारी रोटी और कपड़े की समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। चोर-बाजार पर अभी तक नियन्त्रण नहीं हो पाया है। सन् १९४६ से औद्योगिक उत्पादन के क्रमिक ह्रास में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यातायात की कठिनाइयाँ अभी तक बनी है।

हमारे देश के मजदूरों और पूँजिपतियों में अभी तक समुचित समझौता नहीं हो पाया है। वे एक दूसरे की सहानुभूति से—हार्दिक सहयोग से वंचित ही हैं। देश के औद्योगीकरण के लिये सरकार ने अभी तक कोई सुनिश्चित योजना ही नहीं तैयार की है। अधिक अन्न उपजाने में हमें जो साधन मिलने चाहिये, नहीं मिल रहें हैं।

इतना होते हुए भी हम सरकार को कटिबद्ध पाते हैं। १५ अगस्त का पुण्यदिवस कांग्रेस-जैसी महती संस्था के निरन्तर त्याग का परिणाम हैं। देश के प्रायः सभी महापुरुषों ने, इसके सभापति के पद को सुशोभित किया है।

सच तो यह है कि आज का दिवस महात्मा गांधी जी के सत्य और अहिंसा जैसे अमोघास्त्रों का ही सफल प्रयोग है। बृटिश जैसी शक्तिशाली राज-सत्ता को हिला देने की शक्ति बापू के सत्य और अहिंसा में प्रतिष्ठित हुई है।

वस्तुतः भारतवर्ष की स्वतन्त्रता, व्यक्ति की नहीं, समष्टि की है। एक के त्याग से नहीं—असंख्यों के त्यागों और बलिदानों पर मिली है। यह भारतीयों की स्वतन्त्रता है, वे चाहे अपने को समष्टि से भिन्न समझते रहें; पर हैं वे भी उसी समष्टि के अङ्ग। आज इस नवजात स्वतन्त्रता-दिवस की रक्षा के लिये संगठन और एकता की समान आवश्यकता है। वर्षों का कोढ़ एक रविवार से नहीं जाता। हम चाहे जितना भी चिल्लायें, काम धीरे-धीरे ही होगा। रामराज्य आयगा, पर धीरे धीरे। अकृष्ट पच्याभूमिः पुटके पुटके मधु—वाली कहावत चरितार्थ अवश्य होगी पर तुरत नहीं। धैर्य रखिये, वह दिन दूर नहीं—जब गोपालों और हलधारों को भरपेट मक्खन-मिश्री और रोटी मिलने लगेगी। हमारी प्रतिवर्ष यही कामना हो परमात्मा से यही प्रार्थना हो कि खण्डित भारत अखण्ड हो जाय।

हमारे समाज-निर्माता गांधी

(१) परिचय (२) प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा (३) अफ्रीका से सत्याग्रह की श्रीगणेश (४) असहयोग आन्दोलन (५) साधनों की प्रतिष्ठा तथा शिक्षादि विषयक नवीन योजनाएँ (६) देश-सेवा, महान् त्याग और आदर्श बलिदान (७) राजनैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण (८) सत्य तथा अहिंसा की प्रतिष्ठा (९) हरिजन-आन्दोलन से लेकर दिल्ली की धूमिल सन्ध्या तक (१०) गान्धीवाद अथवा गान्धीजी की दार्शनिक चिन्तन-धारा (११) हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या (१२) उपसंहार ।

विश्ववन्द्य बापू संसार की महान् विभूतियों में से एक हैं। वे आज भी अमर हैं। वास्तव में अमर वही है जिनकी कीर्ति जीवित है। हम आज उन्हें देश-निर्माता, समाज-निर्माता भले ही मानकर चुप हो जायँ, पर कल का आने वाला नवयुग उन्हें एक स्वर से विश्व-निर्माता उद्घोषित करेगा। आज हमें अपने राम, कृष्ण-जैसे पूर्वजों पर जो गर्व है, कल हमारे वंशजों को महात्मा गांधी पर भी वही गौरव होगा। इस बीसवीं सदी में—विज्ञान और भौतिकवाद के युग में—भी महात्मा गांधी जैसे पुत्ररत्न को जन्म देने के कारण ही भारत-भूमि का मस्तक सभी देशों से अधिक ऊंचा है। इस बात को प्राच्य और प्रतीच्य सभी मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं कि बापू सार्वभौम पुरुष थे—इस युग के सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे।

सदियों पूर्व से अंगरेजों के शासन का सिक्का जम जाने पर यहाँ से राष्ट्रीयता ने विदा ले ली थी। अपनी संस्कृति, अपना देश-प्रेम, अपना गौरवमय, स्वर्णमय इतिहास सभी कुछ भूलकर हम विस्मृति की गोद में गहरी नींद में सो गये थे। हममें जागरण का कोई भी सजीव लक्षण ही नहीं रह गया था। देश के शासन की बागडोर विदेशियों के हाथों थी उसी समय सन् १८६९ की दूसरी अक्टूबर को; काठियावाड़ प्रांत के पोरबन्दर राज्य के एक सम्भ्रान्त वैश्यकुल में हमारे प्राणप्रिय बापू का जन्म हुआ। आप के पिता कर्मचन्द गांधी उन दिनों राजकोट और बीकानेर के दीवान थे। बचपन से ही बालक मोहन पर अपनी व्रतोपवास-परता माता पुतली बाई का धार्मिक

प्रभाव पड़ा। सत्य और अहिंसा के बीज-मंत्र उन्हें अपनी माता की गोद में ही मिल गये।

आपका विद्यार्थी-जीवन साधारण ही रहा। भारत की सत्यानाशी बाल-विवाह की कुप्रथा के आप भी शिकार हुए। उस समय आपकी उम्र लगभग १४ साल की थी। जवानी में आसक्ति ने आ घेरा और आप के पैर भी जहाँ-तहाँ लड़खड़ाये। लेकिन एक अदृश्य शक्ति आपको सँभालती गई - ऊपर उठाती गई। सन् १८८७ में आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की और भावनगर कालेज में पढ़ने लगे। सन् १८८८ में अपनी माता से यह प्रतिज्ञा करके कि मैं मांस और मदिरा से दूर रह ब्रह्मचारी होकर विदेश में रहूँगा, आपने इङ्गलैण्ड को प्रस्थान किया। सन् १८९१ में आपने बैरिस्टरी पास कर ली और भारत को लौट आये।

बम्बई का पहला सौभाग्य था कि आपने अपनी वकालत वहीं शुरू कर दी। मुकदमे में झूठ के पाँव होते हैं। सत्य और मिथ्या का स्वाभाविक विरोध है। अतएव इन्होंने अपना वकालती पेशा छोड़ दिया और पोरबन्दर के एक फर्म के ४० हजार पौण्ड के दावे के देखभाल के लिये अफ्रीका चले गये।

सत्य और अहिंसा की प्रतिक्रिया यहीं आकर शुरू हुई। हृदय में उनके अंकुर निकल कर बढ़ चले। यहीं से सत्याग्रह का श्रीगणेश हुआ। आपको भरी अदालत में भारती पगड़ी उतारने को कहा गया। बस, आप उलटे पाँव ही अदालत से लौट आये। आन्दोलन का बीजांकुर वहीं निकला, जिसने आगे चलकर बरगद का रूप ले लिया। वहाँ आप जहाँ-जहाँ जाते—रेल में, गाड़ी में, होटल में, सैर-सपाटे में—हर जगह आपका खुला अपमान होने लगा।

ट्रांसवाल में भारतीय बिल्कुल नगण्य समझे जाते थे। उन्हें मताधिकार से भी वंचित किया था। वे वहाँ की सदर सड़कों पर नहीं चल सकते थे और वे अपनी भू-सम्पत्ति के ही स्वामी समझे जाते थे। वहाँ आबाल-वृद्ध-वनिता भारतीयों के शरीर-चिह्न लिये जाते थे। अँगूठे और शेष चारों उँगलियों के निशान तो छोटी-सी बात थी। कहने का मतलब यह कि भारतीयता वहाँ ठुकराई जा रही थी। इसका बिल वहाँ विरोध होने पर भी पास हो गया था। महात्माजी ने इसका घोर विरोध किया। यह है असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा। फल यह हुआ कि आपको अधिकारियों ने वहाँ के जेल में बन्द कर

डाला। दमन-चक्र के चलने से आन्दोलन ने भयंकर रूप लिया। गिरफ्तारियाँ होने लगीं। निरन्तर सत्याग्रह के फल-स्वरूप वहाँ की सरकार को झुकना पड़ा। वहाँ के सत्याग्रह में आपको पूर्ण सफलता मिली और आप फिर भारत लौट आये।

सफलता महापुरुषों का अनुसरण करती है और लक्ष्मी उद्योगियों का। बम्बई और पूने में आपका उचित स्वागत हुआ। कुछ दिनों के लिये आप श्री गोपाल कृष्ण गोखले के साथ रहने लगे। अहमदाबाद में आपने मजदूरों की समस्या के हल करने का बीड़ा उठाया और पूर्ण सफल हुए। बिहार के चम्पारन जिले में निलहे साहबों के बूटों के नीचे कुचली जाती हुई भारतीयता उद्धार के लिये अपने एँड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया। आपने अपने सत्याग्रह के द्वारा फसल नष्ट हो जाने पर गरीब किसानों का लगान माफ करवाया। तत्पश्चात् आपने भारत की अंगरेजी सरकार द्वारा बनाये गये रौलट ऐक्ट के विरुद्ध अपनी आवाज ऊँची की। हड़तालों, सभाओं और उपवासों से आन्दोलन में जान आ गई। इस समय पंजाब में इतिहास-प्रसिद्ध जालियाँवाला भयानक गोलीकांड हुआ, जिससे सत्याग्रह को यथेष्ट उत्तेजना और अपरिमेय बल मिला। उस समय सरकारी कामों और दफ्तरों का पूर्णरूप से बहिष्कार किया गया। फलस्वरूप आपको पूरे छः साल का कठिन दण्ड मिला।

सन् १९२४ में दिल्ली में हिन्दू-मुस्लिम दंगे की आग भड़क गई। आपने उस समय २१ दिन का लगातार उपवास किया। इसी वर्ष आपने कांग्रेस के सभापति के पद को सुशोभित किया। १९३० में लवण-सत्याग्रह की नींव डाली गई। यह आग इतनी भड़की कि देश के कोने-कोने तक फैलती चली गई। अनगिनत गिरफ्तारियों और मारपीट के होते रहने पर भी आन्दोलन जोर पकड़ता हो गया। सरकार ने लाचार होकर १९३१ में आपसे समझौता कर लिया।

गोलमेज की परिषद् में आपको इङ्गलैंड जाना पड़ा। पर वहाँ की विषय-परिस्थियों से आपको निराश लौट आना पड़ा। ठीक इसी समय सरकार ने अपने पहले समझौते को तोड़ डाला। आप गिरफ्तार कर लिये गये और यरवदा जेल में ठूँस दिये गये। अंगरेजों ने इस समय भारत के हरिजन-अछूतों को

अलग जातियाँ मानकर अपनी भेद-नीति से काम लिया। इसपर आपने आमरण अनशन का निश्चय किया। परिणाम यह हुआ कि सरकार को पृथक निर्वाचन को रद्द कर देना पड़ा।

हरिजन-आन्दोलन को आपने कारावास से ही छेड़ दिया। हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश, उनकी शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन, सफाई आदि के प्रश्नों पर लोगों का ध्यान बैठने लगा। उनके लिये आश्रम-निर्माण की योजनाएँ बनीं और सुधार के कामों में जोर-शोर से हाथ लगाये जाने लगे। अब आपने कठोरव्रत, दुष्कर साधना और दीर्घ संयम से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। साबरमती-आश्रम और वर्धा स्थित सेवाग्राम-आश्रम की पृष्ठभूमि में अछूतोद्धार की समस्या ही काम कर रही थी। उन्होंने उन दलित अछूतों के लिये नये-नये उपनिवेश बसाये। अपने आश्रम के आस-पास उनके बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और अन्यान्य सुधारों के लिये दाँतों पसीना बहाया।

महात्मा गान्धी जी के आश्रम महाभारत के धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र बन गये। सजीवता, कर्मण्यता और नवीन स्फूर्ति वहाँ लौटने लगी। एक बार फिर से इस मोहन ने कुरुक्षेत्र की अर्जुन-गीता का गान गाया। कर्म-योग की अनुप्रेरणाएँ मिलीं। आश्रम प्राणवन्त हो उठा। आलस्य और प्रमाद जैसे—दो प्रबल मानसिक शत्रु चर्खा-रव से ध्वस्त हो उठे, दूर जा भागे। हरी-भरी साग-सब्जी में कर्मयोग का पाठ दुहराया जाने लगा। चर्खे के मधुर संगीत में स्वालम्बन की वंशी एक बार फिर बज उठी।

इतना ही नहीं, शिक्षा विषयक नई-नई योजनाओं ने भी जन्म लिया। वे पनपीं और पल्लवित हुईं, बेसिक शिक्षा (बुनियादी तालीम) उसी आश्रम का मधुर प्रसाद है। आज इनके सम्मुख संसार के शिक्षा-शास्त्री नत-मस्तक हैं। आज बेसिक शिक्षा भारतव्यापिनी हो रही है। हमारे जीवन की समस्याओं को अकेली हल करने वाली इस व्यावहारिक शिक्षा-पद्धति ने अँगरेजों द्वारा प्रचलित वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली की तो कमर तोड़कर रख दी है।

विश्ववन्द्य बापू ने भारतीय समाज को दृष्टियों से देखा, उनका परीक्षण और निरीक्षण किया। भारतीय समाज रसातल को चला गया था। सुनते हैं, एक बार हिरण्याक्ष के भय से भीत होकर यह

धरित्री भी पाताल जाकर छिपी थी। सामाजिक रूढ़ियों को—सड़े-गले रस्म-रिवाजों और दकियानूसी विचारों को खदेड़ने में वे सदा अग्रसर और अडिग रहे।

भारतीय समाज, जिसको पक्षाघात ने एक ही बार जर्जर और विकलांग बना दिया था, वह अन्तिम दम तोड़ रहा था। अछूतों और अस्पृश्यों को अलग कर—जातीयता अपने ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रीयता के पैरों पर कुल्हाड़ी चला रही थी। सवर्ण हिन्दुओं का अत्याचार अपनी संकीर्णता की चरम सीमा पार कर रहा था। ऐसे ही आड़े काल हमारे बीच बापू आये। विश्ववन्द्य महात्मा पधारे।

बापू के कार्य-कलापों की समीक्षा से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उन्होंने धर्म को राजनीति का रूप दिया। सामाजिक दृष्टिकोण की प्रमुखता थी। क्योंकि, कई व्यक्तियों के मेल से समष्टि और कई समष्टियों के मिश्रण से समाज बनता है। समाज का निर्माण देश-निर्माण की भित्ति है। देश-निर्माण उसका विकसित और परिवर्द्धित रूप है। देशी-विदेशी जितने भी आन्दोलन उन्होंने चलाये, उनके मूल में समाज-निर्माण ही प्रधानतः काम कर रहा था। उसकी दृढ़ता और रक्षा के लिये, यदि ठोस प्रणाली पर काम न किया जाता तो नवराष्ट्र का निर्माण ही क्योंकर सम्भव होता। बापू का उद्देश्य था गिरी हुई भारतीयता का उत्थान तथा उसका नवराष्ट्र-निर्माण। उनकी दूरदर्शिता हमारी अगली सैकड़ों हजारों पीढ़ियों को बड़े गौर से—एक टक देख रही थी।

युग-युग की राजनीति ही धार्मिक आन्दोलन का रूप लेती है। रामानुज, रामानन्द, चैतन्य, दयानन्द और राजा राममोहन राय के यावज्जीवन के कार्य-कलापों की तालिका का पर्यवेक्षण हमें अनायास ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा देता है। बापू के हरिजन आन्दोलन, छुआ-छूत की विदाई और हिन्दू-मुस्लिम एकता के मूल में भी राष्ट्र-निर्माण की ही भावनाएँ हिलोरें ले रही थीं। हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार की प्रचेष्टा का कारण भी राजनीतिक ही था। एक भाषा-सूत्र में सारे भारत को गुम्फित कर देने की भावना ही उनमें बलवती हो उठी थी।

गान्धीवाद और कुछ नहीं—सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा भी कैसी, तो कर्मठ और निरलस। गान्धीवाद में वाल्मीकि के मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम, महाभारत के गीतागायक कृष्ण, अहिंसा के

एकनिष्ठ पुजारी बुद्ध, क्षमा के ईसा और सुधार के हजरत मुहम्मद—एक स्वर से—एक कतार में खड़े—बोल रहे हैं। मत-मतान्तरों के बहुमुखी पथ पर भारत किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा है। उसमें निश्चयात्मक बुद्धि नहीं रह गई है कि वह निर्मूल पथ से बढ़ चले। भारत ही क्यों; आज विश्व भी मार्गच्युत है—दिग्भ्रष्ट है। गुमराह बटोही पूरब को पश्चिम कह रहा है। सूर्योदय देखकर भी वह पूर्व को पश्चिम कहने में कोई भूल नहीं महसूस कर रहा है।

गान्धीवाद भारतीय चिन्तन-धारा में एक स्वतन्त्रवाद है। वादों के मूल में जहाँ तक तादात्म्य है—समन्वय है, इसमें भी आपको मिलेगा। राम और रहीम, कृष्ण और करीम की दार्शनिकता भारत में वेदान्त का पहला ही पाठ है।

सच तो यह है कि मानवमात्र की रक्षा के लिये गान्धीवाद का जन्म हुआ है। विश्व-शान्ति भी उसीमें अन्तर्निहित है। सामाजिक सुधरादि के प्रश्न सभी उसीमें अन्तर्भूत हैं। किन्तु भारत के विभाजन ने कुछ लोगों को इतना अघोर बना डाला कि वे बापू के अमर सन्देशों का गलत अर्थ लगा गये। हम गलती भी तो वहीं करते हैं, जहाँ हमारी दृष्टि ऊपर ही ऊपर रह जाती है, गहराई में नहीं उतर पाती। सागर की तरंगमाला का निरीक्षण सागर का पूर्ण निरीक्षण नहीं कहला सकता। यदि उसके रत्नाकर नाम की सार्थकता देखनी हो, तो गहराई तक उतर जाइये, रत्नराशि भी मिल ही जायगी।

बापू का त्याग महान् है, आदर्श महान् है और कार्य महान् हैं। उनका जीवन—अथ से इति तक—समाज, राष्ट्र और विश्वनिर्माण में ही बीता। हम अभागे भारतीय न तो उनका मूल्य ही आँक सकते और न उनकी सेवाओं का कुछ बदला ही चुका सकते। वे युग-प्रवर्त्तक पुरुष थे। उन्हें इस युग का अवतार कहने में हमें किसी प्रकार का संकोच हो ही नहीं सकता। बापू का शरीर अवश्य ही हमारे बीच से—भारतमाता की गोद से उठ गया है, पर उनकी आत्मा अभी भी हमारे साथ है। ३० जनवरी की धूमिल सन्ध्या ने उनके जीवन का अन्त कर दिया। उनकी निर्मम हत्या करके हम अभागे भारतीयों ने अपने इतिहास के पन्नों में कालिख पोत दी है। हमने घोर से घोरतम पाप किया है। इसका प्रायश्चित्त हम, वर्षों ,कौन कहे, युग-युगान्तर तक भी न कर पायेंगे।

———

भारतीय गाँव का पुनर्निर्माण

(१) भूमिका (२) गाँव के स्वास्थ्य के लिये सुधार की विधि (३) निरक्षरता-निवारण (४) दवा-दारू की सहायता (५) कृषि-सुधार (६) सहयोगी बंक (७) उपसंहार।

१. हमारे दादा कहते हैं कि उनके दादा जी के बचपन में भारत के गाँवों की अवस्था बहुत ही सुन्दर थी। उस समय गाँवों में उन्नति थी, आनन्द था, लोग स्वस्थ थे, राग-द्वेष नहीं था। इन दिनों की गाँवों की अवस्था पर ध्यान जाता है तो कहना पड़ता है कि हमारे गाँवों ने अपना पुरातन आनन्द खो दिया है और वहाँ मृत्यु, रोग और भुखमरी की प्रधानता हो गई है। गाँव में आलस्य का वास हो गया है और गृह-शिविर तो एकदम नष्ट ही हो गये हैं। खेती और उसके साधन नष्टप्राय की ओर हैं, कृषि के प्राण—चौपायों की अवस्था तो एकदम चिन्ता में डालनेवाली हो गई है। धीरे-धीरे चौपाये कम होते जा रहे हैं और जो हैं भी उनमें जान नहीं—प्राण नहीं। खेती के लिये सैकड़ों क्या, हजारों वर्षों से जो औजार हमारे हैं, उनमें भी कोई परिवर्तन नहीं है—यद्यपि संसार बहुत आगे बढ़ गया है।

२. गाँवों के पुनर्निर्माण के लिये अब यह आवश्यक हो गया है कि उनकी सारी कमियों को हम एकदम हटा डालें। सर्वप्रथम तो गाँवों के स्वास्थ की उन्नति पर पूर्ण ध्यान देना होगा। देखते हैं हैजे से, मलेरिया से, और दूसरे संक्रामक रोगों से, प्रतिवर्ष हजारों ग्रामीण अपने प्राण गवाते हैं। यदि यही नहीं रुका तो फिर सुधार का क्या महत्त्व!

प्रायः देखते हैं कि गाँववालों को पीने का स्वच्छ जल नहीं मिल रहा है। गाँव के पोखरे और छोटी नदियाँ नष्टप्राय हैं। इनमें से कई को फिर से खोदकर और शेष को मिट्टी से भर कर मैले पानी से छुटकारा पाना नितान्त आवश्यक है। कुओं में से भी कई को भर देना होगा और बदले उसके में ट्यूब-वेलों की गिनती बढ़ानी होगी।

गाँव से पानी बहुत शीघ्र निकल जाय, इसके लिये सुन्दर नालियों की व्यवस्था करना भी एक प्रधान कार्य है। क्योंकि नालियों के अभाव में गाँव में इधर-उधर पानी जमा हो जाता है। विशेषकर वर्षाकाल में तो इसके चलते गाँव की दुर्गति ही हो जाती है। परिणाम यह दिखाई पड़ता है कि मच्छड़ों की

तथा दूसरे विषैले कीड़ों की बढ़ती से रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। गंदे पानी के कारण गाँव की वायु भी अशुद्ध और गंदी रहती है।

३. गाँव में निरक्षर भट्टाचार्यों की बहुत बड़ी गिनती है। बहुत थोड़े-से पढ़े-लिखे मिलते हैं। निरक्षर भाई अपनी भलाई की बातों को कुछ भी नहीं समझ पाते। लाख समझाइये, परन्तु उनके कान पर जूँ भी नहीं रेंगती।

वे यह नहीं समझते कि स्वास्थ्य के लिये क्या करना चाहिये। खेती की उन्नति की नई विधियों से तो वे कोसों दूर रहना चाहते हैं। नागरिकता से तो वे कोसों दूर हैं। अतः, यह उचित है कि प्राइमरी स्कूलों में अनिवार्य शिक्षा हो जाय और बड़े, बूढ़ों के लिये रात्रि-पाठशालाएँ और सामयिक पाठशालाएँ खोली जायँ।

४. गाँवों में दवा-दारू की समुचित व्यवस्था न होने के कारण बहुत-से रोगी व्यक्ति अपने प्राण गवाँते हैं। इसलिये यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि उचित सेवा-सुश्रूषा की व्यवस्था की जाय और दातव्य औषधालयों को खोलकर बिना मोल लिये या अल्प मोल में औषधियाँ दी जायँ। किसी गाँव में अचानक कोई संक्रामक रोग फूट पड़े तो यह उचित है कि चलता-फिरता औषधालय वहाँ काम करने को पहुँच जाय और डाक्टर-वैद्यों के भेजने की व्यवस्था भी उसी तरह हो।

५. चौपायों की देखरेख और उनकी रक्षा की ओर ध्यान देना, गाँवों की उन्नति के लिये एक आवश्यक और प्रधान कार्य है। क्योंकि चौपायों के बिना खेती के कार्य और दूध-दही की व्यवस्था दोनों अधूरे ही रह जाते हैं। गाँव के लोगों को इस ओर उत्साहित करने की शीघ्र-से-शीघ्र आवश्यकता है। गाय-बैल के वंश के सुधार के लिये सुन्दर जाति के साँडों की खोज तो एक प्रधान स्थान रखती है।

हमारी खेती के लिये खाद की व्यवस्था बहुत ही बुरी है। गोबर और चर-पात की खाद तैयार करने की प्रक्रिया गाँववालों के सामने आदर्श रूप से दिखाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार गाय-गोरू को सुन्दर ढंग से पालने-पोसने में, कम-से-कम खर्च में, अधिक-से-अधिक दूध-दही पाने के लिये क्या करना चाहिये—इसकी शिक्षा के प्रचार की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

६. प्रतिवर्ष सुन्दर ही उपज हो—अच्छी फसल मिले—यह संभव नहीं।

कई साल फसल मारी जाती है, फल यह होता है कि गाँववालों को—किसानों को विपत्तियों का सामना करना पड़ जाता है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि वे भूखों मरने लगते हैं। उन्हें पेट के चलते अपने हल-बैल बेच देने पड़ते हैं या कड़े सूद पर महाजन से रुपये लेकर काम चलाना पड़ता है। इस प्रकार बहुत से लोग नष्ट और कंगाल हो जाते हैं। इस विनाश से बचने के लिये सहयोगी-बंक खोलने की व्यवस्था पर हमलोगों का ध्यान जाना चाहिये। ऐसे बंकों से अल्प सूद पर किसानों को खेती करने के लिये, बीज खरीदने के लिये, रुपये मिल जायँगे। यदि यह व्यवस्था चालू हुई तो निरीह किसानों को विपत्तियों से बहुत-कुछ छुटकारा मिल जायगा।

७. ऊपर सुधार के लिये हमने जो विधियाँ बताई हैं, उनको कार्यान्वित करने में द्रव्य की आवश्यकता है। यह द्रव्य गाँववालों के चंदों से, धनी-मानियों के दानों से और सरकार की समुचित सहायता से प्राप्त होता है। जबतक सहयोग के ये उपाय काम में न आयेंगे और जबतक सरकार इस कार्य में मुख्यतः हाथ न बँटायेगी तबतक गाँवों का पुनर्निर्माण होना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है और ऐसी अवस्था में गाँव और नर्क में कम ही भेद रह जायगा।

भारत का राष्ट्रीय झंडा

(१) भूमिका (२) परिचय (३) राष्ट्रीय झंडे की उत्पत्ति का इतिहास (४) रंगों के अर्थ तथा उनके परिवर्तन (५) आधुनिक अर्थ (६) झंडे का महत्व (७) उपसंहार।

१. यदि हम अपने देश के इतिहास को उलटें तो हमें पता चलेगा कि हमारे देश में बहुत दिनों से राष्ट्रीय झंडे का बहुत सम्मान होता आ रहा है। आज के सभ्य कहे जानेवाले देशों के निवासी जब झंडे का नाम भी नहीं जानते थे, उस समय हमारा झंडा आसमान में उड़ता था। भगवान् रामचन्द्र के समय में हमारे देश का झंडा संसार के बहुत बड़े भागों में लहराता था। किसी समय जावा, सुमात्रा आदि देशों में भी हमारे देश का झंडा लहराता था।

महाभारत काल में हमारे देश में बहुत-से राज्य थे, और प्रत्येक का अपना-अपना झंडा था। किन्तु, उस जमाने में भी संसार के बहुत बड़े भागों में अर्जुन के 'कपिध्वज' का बड़ा आदर था। अशोक ने भी अपने धर्म-चिह्न को सम्पूर्ण एशिया में फैलाया था।

२. झंडा राष्ट्र का निशान है। प्रत्येक स्वतंत्र देश का अपना स्वतंत्र राष्ट्रीय झंडा होता है। गुलाम राष्ट्र के झंडे का वह आदर नहीं। जो देश किसी देश का मालिक होता है, वह उस देश में भी अपना झंडा फहराता है। गुलाम की इमारतों पर, सरकारी भवनों पर, सार्वजनिक स्थानों पर, विजयी देश का झंडा फहराता है। इससे यह प्रकट होता है कि उस देश पर उसी झंडेवाले का अधिकार है।

३. समय की परिवर्तनशीलता के कारण हमारे देश में भी कुछ समय तक विदेश का झंडा—'युनियन जेक' लहराता रहा। इधर समीपी भूत में हमलोग अन्धकार में पड़े थे—हमारा कोई निश्चित झंडा नहीं था। हिन्दुओं का भगवा झंडा था, मुसलमानों का चाँद-सितारोंवाला झंडा था, इस तरह सम्पूर्ण भारत का कोई निश्चित झंडा नहीं था।

१९२१ में जब महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया तब उन्हें एक ऐसे झंडे की आवश्यकता महसूस हुई जो सारे भारत का राष्ट्रीय झंडा बन सके और सारा देश उसके नीचे स्वतंत्रता के संग्राम में आगे बढ़ सके। बहुत सोचकर उन्होंने तिरंगे झडे का सृजन किया।

४. इसमें तीन रंग थे—गहरा लाल, हरा और सफेद। लाल रंग हिन्दुओं का राष्ट्रीय चिह्न था, हरा मुसलमानों का और सफेद अन्य जातियों का। उसके बीच में चर्खे का चिह्न था, जो अपने घरू उद्योग-धंधों को प्रोत्साहित करने और अपनी आर्थिक समस्याओं को सुलझाने की प्रेरणा देता था।

इसी झंडे के नीचे आजादी की लड़ाई शुरू हुई। १९३१ में कांग्रेस ने इस झंडे के रंगो में कुछ परिवर्तन कर दिया। लाल रंग के स्थान में केसरिया रक्खा गया एवं रंगों के अर्थों को भी बदल दिया गया। जातीयता के स्थान पर केसरिया, श्वेत और हरीतिमा से क्रमशः धीरत्व, एकता और शान्ति के अर्थ लिये गये। इसी झंडे के नीचे भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई आगे बढ़ी। हजारों युवकों ने इस झडे की शान रखने के लिये अपने आपको गोलियों के सामने रख दिया। हमने इसे ऊँचा रखने के लिये कुर्बानियाँ की।

५. १५ अगस्त '४७ को हमारा देश स्वतंत्र हुआ। 'यूनियन जैक' का साया भारत के सर से उतरा। उसके स्थान पर हमारा अपना राष्ट्रीय झंडा संसद-भवन पर लहराने लगा। हमलोगों के मनोरथ पूरे

हुए। उस अवसर पर झण्डे में कुछ परिवर्तन भी हुए। इसके चर्खे के स्थान पर अशोक-चक्र का चिन्ह गहरे नीले रंग से अंकित किया गया। यह चक्र अशोक का राज्य-चिन्ह था। सारनाथ से जो अशोकस्तम्भ प्राप्त हुआ है, उसपर अशोक का यही धर्म-चक्र अंकित है। अशोक ने सम्पूर्ण संसार को भगवान् बुद्ध की अहिंसा, भ्रातृत्व और एकता के सन्देश दिये थे। हमारा यह राज्य भी उन्हीं आदर्शों को मानता है। अतः उसी धर्म-चक्र को झण्डे पर अंकित किया गया। केसरिया रंग से त्याग, श्वेत से सत्य और पवित्रता तथा हरे रंग से धरती की हरीतिमा का अर्थ लिया गया। अशोक चक्र से समानता और गति का भाव प्रकट होता है। यह चर्खे से कुछ कलात्मक भी लगता है। यह हमलोगों के प्राचीन गौरव का स्मारक है, तथा इसका अर्थ भी बहुत विस्तृत है।

६. राष्ट्रीय झंडा स्वतन्त्र देश का सम्मान है। राष्ट्र का प्रतीक है। किसी देश की राजनीति में उस देश के झण्डे का अपमान कोई नहीं देख सकता। राष्ट्रीय झण्डे की सम्मान-रक्षा के लिये हजारों-लाखों प्राण दे देते हैं।

७. यही चक्र-चिन्ह से अंकित तिरंगा झण्डा हमारा राष्ट्रध्वज है, हमारा गौरव है और हमारे स्वतन्त्रता-संग्राम की कहानी है। हमलोग झंडा-दिवस पर, स्वतन्त्रता दिवस पर २६ जनवरी को इसे प्रत्येक घर के ऊपर फहराते हैं—इसे सदा ऊँचा रखने की—इसके गौरव को बनाये रखने की—प्रतिज्ञा करते हैं। हमलोगों का कर्त्तव्य है कि अपना जीवन देकर भी इसके मान पर आँच न आने दें।

वन का महत्व

(१) भूमिका (२) भारत का वन (३) वनों से लाभ (४) भारत के वनों की वर्तमान अवस्था (५) वन-विनाश से हानियाँ (६) समस्या का निदान (७) उपसंहार।

१. हमारे देश के इतिहास में वनों का बहुत बड़ा महत्व है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनि लोग बन ही में रहते थे। हमारे पूर्वज वनों का महत्त्व समझते थे। इसलिये वे वनों को अपने जीवन का एक आवश्यक अङ्ग मानते थे। बनों से उन्हें प्रेम था, वे तरुओं को पूजा करते थे और उनका पालन करते

थे। हमारे धर्म-ग्रन्थों ये वन बहुत ही पवित्र माने गये हैं। वृक्षा-रोपण बहुत बड़ा पुण्य माना जाता है। ऋग्वेद में तरुओं की महिमा गाई गई है। वृक्ष काटना घोर पाप माना गया है। हमारे पुराणों में वृक्ष-ध्वंस करनेवालों के लिये कठोर दण्ड का विधान है। हमारे पूर्वज तो देवरूप मानते थे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—"अश्वत्थाः सर्ववृक्षाणां" अर्थात् वृक्षों में पीपल मैं हूँ। अग्निपुराण में घर बनानेवाले से कहा गया है कि घर के उत्तर में पलाश, पूरब में वट, दक्षिण में आम तथा पश्चिम में पीपल के वृक्ष लगाने चाहियें। घर के आगे फुलवारी लगानी चाहिये। आज भी हमारे यहाँ वट, पीपल और आम के वृक्षों की पूजा होती है। स्त्रियाँ इस पूजा में अधिक भाग लेती हैं।

२. हमारी संस्कृति वन-प्रधान है। हम तरुओं का महत्व नहीं भूल सकते। हमारे ऋषि-मुनि वनों में ही पले थे। हमारे सारे धर्म-ग्रन्थों की रचना तरुओं के आश्रम में ही हुई है। काव्यों में प्रकृति का अनोखा वर्णन मिलता है। हमारे पूर्वज तरुओं के आश्रय में रहते थे—उन्हीं के दिये फल खाते थे, रस पीते थे—वल्कल पहनते थे। उनके कुसुमों की सुरभि से सिक्त वायु में साँस लेते थे और इसी के बल पर सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहते थे। प्राचीन भारत में बनों की कमी नहीं थी। पंचवटी के वनों को भारतवासी कैसे भूल सकते हैं—जहाँ भगवान् राम ने आश्रय ग्रहण किया था! अशोक वन के साथ भारतीय संस्कृति का जाज्वल्यमय प्रतीक सती सीता की कथा जुड़ी हुई है। सुकुमारी शकुन्तला बनों की गोद में पलकर ही बड़ी हुई थी जो बिना वृक्षों को जलदान दिये अन्न ग्रहण नहीं करती थी। तपोवन में ही सम्राट भरत खेल-कूद कर बड़े हुए थे, जिनके नाम पर भारत है। खाण्डव वन, काम्यक वन, आदि को महाभारत से निकाला कैसे जा सकता है? नैमिषारण्य में शौनक मुनि ने हमें महाभारत की कथा सुनाई थी। हम वृन्दावन को कैसे भूल सकते हैं—जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने आनन्द और भक्ति की पावन रसधारा बहाई थी! बुद्ध भगवान् को वट-वृक्ष के नीचे ही ज्ञान प्राप्त हुआ था! कहाँ तक गिनाया जाय! हमारी संस्कृति के जो सर्वश्रेष्ठ और सुन्दर भाग हैं वे वनों की ही देन है।

३. अब प्रश्न उठता है कि हमारे पूर्वजों को बनों से इतना प्रेम क्यों था? क्योंकि हमारे पूर्वज वनों का महत्व समझते थे। प्रकृति के ऊपर ही

समस्त विश्व निर्भर हैं। प्रकृति में वनों का बहुत बड़ा स्थान है। बन आँधियों के वेग को रोकते हैं, उन्हें छिन्न-भिन्न कर देते हैं। पृथ्वी पर मनुष्य के अस्तित्व के लिये वृक्ष आवश्यक है। क्योंकि वे ही मिट्टी के प्रमुख रक्षक हैं। वृक्ष पर्वतों को स्थिर रखते हैं, पवन को ठंढा और शुद्ध रखते हैं, पक्षियों और जानवरों की रक्षा करते हैं। वन वर्षा के कारण हैं, वर्षा से अन्न की उत्पत्ति होती है और अन्न से मनुष्य जीवित रहते हैं। वन भूमि की उर्वरा शक्ति को कायम रखते हैं। हमें तरह-तरह की जड़ी-बूटियाँ देते हैं, हमें ईंधन देते हैं, काम के योग्य लकड़ी देते हैं, जिनके बल पर रेल, जहाज आदि चलते हैं। वृक्षों से ही कागज, दियासलाई, गोंद, भाँति-भाँति की दवाइयाँ और तेलों की उत्पत्ति हुई है। वृक्ष हमें सुन्दर पौष्टिक और स्वादिष्ट फल देते हैं। वृक्ष की छाया हमारे मानस को शान्ति देती है, बनों के मनोहर दृश्य हमें नई प्रेरणा देते हैं। कुसुमों का सुवास हमारे दिमाग में तरावट लाता है। यदि हम वृक्षों को काट भी डालें तो भी वे हमें सुन्दर फल ही देंगे। उन्हें अपने मानापमान का कुछ ध्यान नहीं। दुष्ट हो या साधु, वे सबका सम्मान करते हैं—सबको एक-सी छाया देते हैं, एक-से फल देते हैं, एक-सी शान्ति देते हैं।

४. इधर हम वृक्षों के महत्त्व की आधुनिकता की रंगीलियों में पड़कर भूल गये। हम अपने वृक्ष-पूजक पूर्वजों को मूर्ख और जंगली समझने लगे। वनों को हम हेय दृष्टि से देखने लगे। वृक्षों को केवल धन कमाने का साधन—लकड़ी मानने लगे। बन का हमारे जीवन के साथ जो अविच्छिन्न सम्बन्ध है, उसे हम भूल गये। फल यह हुआ कि वृक्ष लगाने की ओर से हमारा ध्यान हट गया। धड़ाधड़ जंगल साफ होने लगे, वृक्ष कटने लगे। भारत के वन समाप्तप्राय हो चले। जहाँ हमारे पूर्वज, आम, वट और पीपल आदि के वृक्ष लगाना पुण्य समझते थे,—वहाँ—उन्हीं के उत्तराधिकारी वृक्षारोपण के नाम पर गमलों में विशी 'क्रोटन' लगाने में ही अपनी महत्ता समझने लगे।

५. इन सबका फल यह हुआ है कि वन न रहने के कारण वर्षा ठीक समय पर नहीं होती है और आज हम फल, अन्न के लिये त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। हरे-भरे मैदान रेगिस्तानों में परिणत होते जा रहे हैं। जो भूमि 'सुजलां सुफलां शस्य श्यामलां' थी, वही उजाड़ नजर आ रही है। जहाँ के अन्न से

कई देश पलते थे, वही देश आज अन्न के लिये दूसरों का मुहताज हो रहा है। हमने वृक्षों का, देवताओं का और ऋषियों का अपमान किया है, उसका फल हम आज भोग रहे हैं। आज हम विदेशों से हजारों रुपयों की खाद मँगाते हैं, पर अपने यहाँ की खाद को जला देते हैं। गोबर अत्यन्त उपयोगी खाद है जिसे लोग लकड़ी के अभाव में जला डालते हैं और इस तरह अपने खेतों की उपज बढ़ाने का एक सुन्दर उपाय नष्ट कर देते हैं। पौष्टिक हरे-चारे के अभाव में हमारे पशु पौष्टिक और अधिक परिमाण में दूध नहीं दे पाते। फल यह हुआ है कि जहाँ दूध घी की नदियाँ बहती थीं, वहीं लोग आज एक-एक बूँद दूध के लिये तरस रहे हैं।

६. इन सब समस्याओं का एक ही निदान है—और वह है अधिक-से अधिक वृक्ष लगाना और वृक्षों का पालन करना। जब हमारा देश वृक्षों से हरा-भरा बन जायगा तब पूर्ववत् वर्षा होने लगेगी और हमारा अन्न-संकट दूर हो जायगा। कुछ आधुनिकता के लोभी वृक्षारोपण को हेय समझते हैं। उनसे वे देहाती किसान कहीं अच्छे हैं, जो आज भी वृक्षों की पूजा करते हैं और वृक्षों का काटना पाप समझते हैं। उन्हीं आधुनिकतावादियों के कुविचारों के कारण हमारा देश आज सर्वनाश के पथ पर खड़ा है। सर्वत्र अन्न के लिए त्राहि त्राहि मच रही है, जनता में रोष छाया हुआ है। असन्तोष की ज्वाला धधक रही है। यदि हमें अपना कल्याण करना है तो हमें वृक्षों को पुनः उसी देवत्वभाव से देखना पड़ेगा—जिस भाव से उन्हें हमारे पूर्वज देखते थे। हमारी स्त्रियों के मन में फिर शकुन्तला जैसा भाव लाना पड़ेगा।

७. हमलोगों को उचित है कि जहाँ की भूमि अन्न उपजाने लायक न हो, वहाँ वृक्ष लगायें। प्रत्येक ग्राम में एक ऐसा जंगल रहना चाहिये जहाँ से ग्राम-वासियों को पर्याप्त परिमाण में लकड़ी और चारा मिल सके। हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने इस ओर पूरा ध्यान दिया है। सरकार की ओर से प्रतिवर्ष 'वृक्षारोपण सप्ताह' मनाया जाने लगा है, उसमें मजदूर से लेकर राष्ट्रपति तक भाग लेने लगे हैं। हमारा यह प्रयास अवश्य मङ्गलमय होगा। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि अधिक-से-अधिक परिमाण में वृक्ष लगायें, वृक्षों को देववत् समझकर उनका आदर करें और पुत्र के समान उनका पालन करें। इसीसे हमारा कल्याण होगा।

पुस्तकालय (लाइब्रेरी)

१. परिचय । २. प्राचीन पुस्तकालय । ३. वर्त्तमान आवश्यकता । ४. चलते-फिरते पुस्तकालय । ५. उपसंहार ।

१. पुस्तकालय तो उसे ही कहेंगे जहाँ पुस्तकों का संग्रह हो । पुस्तकालय में केवल पुस्तकें ही नहीं रहतीं, पत्र-पत्रिकाएँ भी रहती हैं । जो पुस्तक पढ़ना चाहता है, वह पुस्तक पढ़ता है । दूसरा, समाचारपत्र पढ़ता है ।

बहुधा पुस्तकालय किसी व्यक्ति के पुस्तक-दान से प्रारम्भ होते हैं या सदस्यों के मासिक शुल्क-संग्रह से । समय-समय पर विद्याप्रेमी धनी-मानी लोग आर्थिक सहायता करते हैं । सर्वाङ्गपूर्ण व स्वावलम्बी पुस्तकालय भारतवर्ष में बहुत थोड़े हैं ।

२. प्राचीन काल में पुस्तकालयों का महत्व बहुत था । छापे की कला का अस्तित्व था ही नहीं । जो भी ग्रंथ तैयार होते थे वे बहुधा हस्तलिखित होते थे । संग्रह भी होता था । तो किसी राजा, महाराज या धनी के पास, जो विद्या-प्रेमी के नाते गरीब विद्वानों को पुरस्कृत कर या उनसे ग्रंथ मोल लेकर उनका संग्रह किया करते थे । बहुधा लेखकों के पास ही ग्रंथ लिखे हुए रह जाते थे । अतएव, आज पुस्तकालयों का जो रूप है वह एकदम भिन्न है । छापे की सुविधा के कारण पुस्तकें छप जाती हैं और पुस्तकालयों द्वारा उनका संग्रह सहज ही संभव होता है ।

३. वर्त्तमान सामाजिक अवस्था के अनुसार पुस्तकालयों की आवश्यकता अनिवार्य है । संसार के सकल ज्ञान का भंडार पुस्तकों, समाचारपत्रों आदि के कारण सुलभता से सबको प्राप्त होता है । जो अध्ययन करेगा, अवलोकन करेगा उसीको पता रहेगा कि कहाँ क्या हो रहा है । सीमित आयवाले के लिये यह सम्भव नहीं कि वह इतना पैसा खर्च कर सके जिससे उसके ज्ञान-वर्द्धन की भूख शान्त हो । अधिकांश लोगों की आर्थिक स्थिति ऐसी है कि वे कुछ भी नहीं खरीद सकते । इसी कारण सार्वजनिक पुस्तकालयों की आवश्यकता है और भी बढ़ जाती है । गरीब जनता पुस्तकालयों से बहुत लाभ उठा सकती है । जिनके पास कुछ खर्च करने की शक्ति है उनको चाहिये कि वे अपने आसपास के पुस्तकालयों को नियमित मासिक चन्दे देकर उनकी सहायता करें और स्वयं अपने ज्ञान को वर्द्धित करें ।

पढ़े-लिखे लोगों को तो पुस्तकालयों से और भी अधिक लाभ होते हैं। साधारण आयवाले के लिये मोटी-मोटी और बहुमूल्य पुस्तकें खरीदना संभव नहीं। ऐसे लोग पुस्तकालयों से लाभ उठा सकते हैं। वहाँ सन्दर्भ ग्रंथ उपलब्ध होते हैं जिनसे विषय-विशेष का अध्ययन सुविधा से प्राप्त कर सकते हैं।

आजकल संसार के प्राय; सभी देशों में पुस्तकालय हैं। जहाँ नहीं हैं, वहाँ खुलते जा रहे हैं। कहीं-कहीं तो उन-उन देशों की सरकारों की ही देख-रेख में पुस्तकालयों का संचालन होता है। देहातों में रहनेवालों की सुविधा के लिये चलते-फिरते पुस्तकालयों की व्यवस्था बहुत-देशों में हो रही है। ग्रामोपयोगी विषयों की पुस्तकों का, कुछ मनोरंजन करनेवाली पुस्तकों का और कुछ ग्रामोन्नति सम्बन्धी पुस्तकों का चलते-फिरते पुस्तकालयों में संग्रह होता है। इसके लिये विशेष प्रकार की लारी जैसी गाड़ियाँ तैयार की जाती हैं। उनमें पुस्तकें सजी-सजाई रहती हैं और लोगों को उनकी उपयोगिता समझानेवाले और प्रतिपादित विषयों की जानकारी देनेवाले विज्ञ लोग घूम-घूम कर लोगों की ज्ञान-वृद्धि में सहायता करते हैं।

४. हमारे देश में पुस्तकालयों की उपयोगिता की ओर सरकार और जनता का ध्यान अब गया है। स्थान-स्थान में सार्वजनिक पुस्तकालय खुलते जा रहे हैं। सरकार भी अपनी ओर से ऐसे पुस्तकालयों को रुपयों या पुस्तकों से सहायता पहुँचा रही है।

दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि बहुत-से लोग उत्साह की उमंग में पुस्तकालयों की स्थापना तो कर देते हैं, पर व्यवस्था ठीक न होने से कुछ दिनों बाद ऐसे पुस्तकालय बन्द हो जाते हैं और उनकी पुस्तकों को स्वार्थी लोग हड़प लेते हैं।

एक बात और भी है। केवल सरकार के भरोसे बैठने से काम नहीं चलेगा। जनता का भी कर्त्तव्य है कि वह इस महान् लोकोपयोगी पुण्यकार्य में स्वयं दत्त-चित्त हो जाय। जो भी पुस्तकालय खोले जायँ, लोगों को चाहिये कि अधिक-से अधिक संख्या में उनके सदस्य बनकर उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनावें। इससे वे पुस्तकालय नित नई ज्ञान-वर्द्धन की सामग्री एकत्र कर अपने पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर सकेंगे। पुस्तकों की सतत देखभाल

करने, उसको सुरक्षित रखने, और नया संग्रह जुटाने के लिये धन की नितान्त आवश्यकता है।

५. सारांश यह है कि ज्ञानवर्द्धन की ऐसी व्यवस्था से जनता का जो लाभ होगा उसका मूल्य आँकना कठिन है। यदि मनुष्य शिक्षित है, उसका मन सुसंस्कृत है, तो पुस्तक से बढ़कर दूसरा उसका कोई मित्र नहीं। इसलिये आशा करनी चाहिये और विशेषकर पढ़े-लिखे देश के युवक नागरिकों का कर्त्तव्य होगा कि वे इस लोक-हितकारी-कार्य का महत्त्व समझें और उसको उन्नत बनाने में अपने अमूल्य समय का थोड़ा अंश व्यय करें।

सर्वोदय

(१) भूमिका (२) सर्वोदय क्या है? (३) इसकी आवश्यकता (४) इसके लाभ (५) सर्वोदय समाज (६) उपसंहार।

१. आज के जमाने में हम देखते हैं कि संसार में नाना प्रकार की अनीतियाँ फैल रही हैं। राग, द्वेष, लोभ और ईर्ष्या को ही अधिकांश लोग सद्गुण समझ रहे हैं। संसार विनाश के पथ पर रात-दिन अग्रसर हो रहा है। इस युग को लोग आर्थिक युग के नाम से पुकारते हैं। इस समय अधिकांश लोग अर्थ के दास बन गये हैं। रुपयों के लिये ईमान बेचना, दूसरों का गला काटना आदि बातें बहुतेरे लोगों का पेशा हो गई हैं। लोग केवल धन कमाना चाहते हैं, चाहे वह नीति से हो, या अनीति से। अपने कर्त्तव्य को भूल मानव 'हा धन, हा धन' चिल्ला रहा है। धन क्यों इकट्ठा करना चाहिये—यह लोग नहीं समझते। धन का दुरुपयोग करते हैं। अपने स्वार्थ के आगे किसी का दुःख नहीं देखते।

२. प्राचीन काल से ही हम परोपकार को अपना धर्म मानते आये हैं। हमारे पूर्वजों ने सदा आत्मिक गुणों पर ही ध्यान दिया। सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा आदि गुण ही उनके भूषण रहे। प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनि विद्या-दान देते थे, लेकिन उसके बदले उन्हें धन की कामना नहीं होती थी। व्यापारी धन जमा करते थे, किन्तु अपने स्वार्थ के लिये नहीं, वरन् समाज के स्वार्थ के लिये। धर्मोपदेशक मरतेदम तक लोगों को सत्य का ही उपदेश देते थे, किन्तु इसके लिये उन्हें किसी वस्तु की कामना नहीं रहती थी। चिकित्सक प्राणियों की चिकित्सा करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। समाज में सबको समान

अधिकार था। सभी अपने परिश्रम पर जीते थे। दूसरे के परिश्रम पर सुखचैन मनाने की प्रथा न थी। दूसरे का हित करके ही लोग सुखी होते थे। इन्हीं भावनाओं का नाम 'सर्वोदय' है। सर्वोदय का अर्थ है—जिससे सबका उदय हो—उन्नति हो। किसी का भी अकल्याण न हो।

३. हम यदि शान्तिपूर्वक विचार करें तो जान पड़ेगा कि आज सारा संसार एक असह्य ताप के कारण जल रहा है। सृष्टि विनाश के पथ पर चली जा रही है। महायुद्ध की ज्वालाएँ विश्व को झुलसा रही हैं। भुखमरी जनता को अपने चंगुल में फँसा रही है। बाहर से जो राष्ट्र-सम्पन्न दीखता है उसके अन्दर अनाचार की प्रचंड भट्ठी धधक रही है। सात्विक गुणों के अभाव के कारण मानवता पशुता में परिणत होती जा रही है। अधिकांश धनी अपने धन के बल पर गरीब जनता का शोषण कर रहे हैं, स्वार्थपरों के हाथों में पड़ने के कारण धन से मानव-हित के बदले अहित हो रहा है। विश्व के संहार के लिये गोले-बारूद तैयार हो रहे हैं।

हमें यद्यपि स्वराज मिल गया है फिर भी हम सुखी नहीं हैं। जनता में अशान्ति एवं असंतोष की आग धधक रही है। आखिर इन सबका कारण क्या है? प्राचीन काल में हमारा देश क्यों सम्पन्न और सुखी था तथा आज क्यों दुःखी एवं संतप्त है? इसका कारण स्पष्ट जान पड़ता है कि हममें उन सात्विक गुणों का अभाव हो गया है, उसकी जगह पर हमने अनीतियों को अपनाया है अतः जब तक हम अपने में मानवीय गुणों का समावेश नहीं करेंगे—सर्वोदय की भावना को नहीं जगायेंगे तब तक हमारा कल्याण नहीं हो सकता, हम सुखी नहीं हो सकते।

४. अपने पूर्वजों की सुख-शान्ति के किस्से सुनकर हमारे अन्दर एक हूक-सी उठती है कि काश, हम भी उतने ही सुखी होते। अपने देश के अतीत पर हम गर्व करते हैं, सोचते हैं कि क्या हमारा देश पूर्ववत् गौरवशाली नहीं बन सकता? हमारी भूमि फिर स्वर्ण-भूमि नहीं बन सकती? किन्तु हम यह नहीं सोचते कि हमारे पूर्वजों में और हममें कितना अन्तर हो गया है। भूमि तो अब भी तो वही है, किन्तु लोग स्वर्ण के बदले लोहे के बन गये हैं। अतः हमारी स्वर्णभूमि लौहभूमि में परिणत हो गई है। हमारे पूर्वज सन्तोष को परम सुख और स्वार्थ को महान पाप मानते थे। स्वयं भूखों रहकर भी दूसरों को खिलाते थे, दूसरों को सुखी करके ही आप सुख का अनुभव करते थे। इसीसे

वे परम सुखी थे। देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। सुख और शान्ति की नदियाँ बहती थीं। यदि आज भी हम उनके बताये पथ पर चलें, मानव-कल्याण का अपना उद्देश्य बनावें, सर्वोदय की भावना को हृदय में स्थान दें तो हम भी वैसे ही सुखी बन सकते हैं। उस समय हमारे राग, द्वेष, ईर्ष्या, गरीबी, अनाचार सभी भाग जायँगे। किन्तु आज तो हममें से अधिकांश—"स्वार्थ मूल मंत्रस्य परमार्थं सर्वस्व नाशनम्" को ही मूल मंत्र समझ बैठे हैं। आज बहुत से अर्थशास्त्री संतोष को पाप कहा करते हैं, इसलिये हमारी यह अवनति है।

५. हमारे राष्ट्रपिता बापू विश्व की इस अवस्था पर अत्यन्त दुःखी रहा करते थे। जिस समय वे दक्षिणी अफ्रिका में थे उसी समय 'जॉन रास्किन' की लिखी 'अंटु दिस लास्ट' नामक ग्रंथ उन्हें पढ़ने को मिला। उस ग्रन्थ में हमारे आर्य सिद्धान्त की भावनाओं की पुष्टि की गई है। वे सिद्धान्त ये हैं—"(१) सबके भले में अपना भला समझो (२) वकील और नाई दोनों के कामों की कीमत एक-सी होनी चाहिये, क्योंकि आजीविका का हक दोनों को एक-सा है और (३) मजदूर का और किसान का, अर्थात् परिश्रम का जीवन ही सच्चा जीवन है।" बापू ने अपने जीवन को इसी साँचे में ढाला। उन्होंने देखा कि भारतीय नवयुवक पाश्चात्य प्रभाव में आकर उसी कुरीतियों का अन्धानुकरण कर रहे हैं। इससे उनके हृदय पर चोट लगी। आगे चलकर इन्हीं सिद्धान्तों पर 'सर्वोदय-समाज' की स्थापना हुई। अब तो पाश्चात्य देश के भी बहुत से विचारक यह मानने लगे हैं कि इन्हीं भावनाओं से विश्व का कल्याण हो सकेगा और वे इसी पथ पर चलने का प्रयास भी कर रहे हैं। हर्ष की बात है कि 'सर्वोदय-समाज' अपना प्रभाव जनता पर डालता जा रहा है। उसका प्रचार एवं प्रसार बढ़ता जा रहा है। वह दिन दूर नहीं, जब उसकी शाखाएँ विदेशों में भी खुलेंगी और उनके द्वारा अधिकाधिक विश्व-कल्याण हो सकेगा।

६. विदेशियों द्वारा हमारे देश की अनेक बड़ी क्षतियाँ हो चुकी हैं। धन लूटे गये हैं, महल तोड़े गये हैं, जनसंहार हुआ है। किन्तु सबसे बड़ी जो हमारी क्षति हुई है, वह है हमारा सांस्कृतिक ह्रास। हमने हद दर्जे की स्वार्थ-

परता तथा पैसे को ही परमेश्वर मानना दूसरों से सीखा है। पाश्चात्य प्रभाव में आकर हम यह भूल रहे हैं कि धन साधन है, साध्य नहीं। साध्य है 'मानव-हित'। मनुष्य धन का दास नहीं, धन मनुष्य का दास है। जब धन को ही साध्य मानकर उनके दास बन जाते हैं तब उस धन द्वारा विश्व को महान् क्षति होती है। वह धन किसी को शान्ति नहीं देता वरन् अशान्ति फैलाता है। अब पाश्चात्य देशवाले भी अपनी भूल को समझने लगे हैं और वे इसके सुधार के लिये लग पड़े हैं। हमें भी अब इन कुरीतियों को छोड़कर मानवोचित गुणों को—सर्वोदय की भावनाओं को अपनाना चाहिये।

हमारे गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—"परहित बस जिनके मन माहीं, तिनकहँ जग दुरलभ कछु नाहीं।" इस छोटी-सी चौपाईं में कितना महत्व भरा हुआ है? यह सोलह आने सच है। इसी पर अमल करने से हमारी उन्नति होगी। अतः सबको सर्वोदय की भावनाओं को अपनाकर विश्व-कल्याण में लग जाना चाहिये।

अनुवाद
TRANSLATION
Section I
अनुवाद क्या है ?

अनुवाद का अर्थ है भाषान्तरित करना—अर्थात् किसी एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में प्रकट करना। यों तो भाव प्रकट करने के कितने उपाय हैं, जैसे, संकेत द्वारा, भावभङ्गी के द्वारा अथवा अस्फुट शब्दों के द्वारा, किन्तु इन सबको अनुवाद में नहीं गिनते। यथार्थ अनुवाद उसका नाम है जिसमें प्रस्फुट शब्दों के द्वारा भाव व्यक्त किया गया हो। भाषा क्या है? भाषा मानो भावरूपी शरीर की पोशाक है। जब हम एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते हैं तब मानो भाव का असली परिच्छेद हटाकर उसे अपना पहनावा पहना देते हैं। परन्तु पहनावा ऐसा होना चाहिये जो भाव-रूपी शरीर में ठीक-ठीक बैठ जाय। न उसे इतना तङ्ग होना चाहिये कि भाव के किसी अङ्ग पर अनुचित दबाव पड़े, न इतना ढीला होना चाहिये कि भाव की शक्ल ही बेडौल हो जाय।

यों तो किसी भाषा से किसी दूसरी भाषा में अनुवाद हो सकता है, किन्तु इस पुस्तक में अनुवाद शब्द से अँगरेजी का हिन्दी रूपान्तर विवक्षित है।

अनुवाद के भेद

अनुवाद मुख्यतः तीन प्रकार से किया जाता है।

(१) छायानुवाद (Free Translation)—

मूल भाषा का तथ्य (spirit) लेकर स्वतन्त्र रीति से जो अनुवाद किया जाता है, उसे 'छायानुवाद' कहते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है मौलिकता (originality)। इसमें कृत्रिमता (artificiality) लेशमात्र नहीं रहती। सुनने पर मालूम होता है जैसे बिल्कुल मौलिक रचना हो। इस तरह

का अनुवाद करने के लिये विशेष भाषानिपुणता एवं प्रतिभा की आवश्यकता होती है। साहित्यिक दृष्टि से छायानुवाद का मूल्य बहुत ही बढ़ा-चढ़ा होता है।

नोट—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'दुर्लभबन्धु' Shakespeare के 'The Merchant of Venice' नामक नाटक का अनुवाद है। इसी तरह पं० श्रीधर पाठक का 'एकान्तवासी योगी' Goldsmith के 'The Hermit' नामक खण्डकाव्य का अनुवाद है। इन दोनों अनुवादों में अनुवादकों ने अपनी प्रतिभा के बल से पूरी मौलिकता भर दी है। पढ़ने पर यही मालूम होता है कि बिल्कुल नई चीज पढ़ रहे हैं। ये दोनों अनुवाद-ग्रन्थ छायानुवाद के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते ।

(२) भावानुवाद (Faithful Translation)—

इस तरह के अनुवाद में अनुवादक को उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती, जितनी छायानुवाद में। उसे देखना पड़ता है कि मूल भाषा का भाव कहीं छूटने तो नहीं पाया। भावानुवाद तभी सफल समझा जा सकता है, जब उसमें मूल भाषा का पूरा-पूरा मतलब निकल आवे। मान लीजिये अँगरेजी में किसी ने व्याख्यान दिया। आपको उसका हिन्दी में रूपान्तर करना है, अँगरेजीवाले व्याख्यान को सुनकर श्रोता के मन में कभी वीर-रस का संचार होता है तो कभी करुण-भाव का उदय होता है। अब आपके अनूदित व्याख्यान में ठीक वे ही बातें होनी चाहिये। मूल व्याख्यान सुनने से जो भाव जिस स्थल पर उठते हैं, आपका व्याख्यान सुनने से भी वही भाव उस स्थल पर उठने चाहिये। भावानुवाद में मूल भाषा के शब्दों को तोड़-मरोड़ कर सकते हैं, वाक्यों को आगे-पीछे कर सकते हैं, मुहावरों को अपने साँचे में ढाल सकते हैं, लेकिन भावों को इच्छानुसार घटा-बढ़ा नहीं सकते। भावानुवाद तात्पर्य में, आकार-प्रकार में, मूल भाषा से बिल्कुल मिलता-जुलता है। इसमें न अपनी ओर से नमक-मिर्च लगा सकते हैं, न लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँध सकते हैं। जो बात जिस उद्देश्य को लेकर जिस ढङ्ग से कही गई है, उस बात को, उसी उद्देश्य से और जहाँ तक हो उसे उसी ढंग से कहना पड़ता है।

नोट—महात्मा गाँधी के लेख जो 'Young India' में रहते थे उनका अनुवाद 'हिन्दी नवजीवन' में निकला करता था। उनके 'My Experiment on Truth' का अनुवाद भी हिन्दी-भाषा में हुआ है। ये सब भावानुवाद के अच्छे नमूने हैं।

(३) अविकल या शाब्दिक अनुवाद (Literal Translation)—

इस अनुवाद में अक्षरशः मूल भाषा का अनुकरण करना पड़ता है। मूल लेखक जिस लीक पर चला है, उस लीक पर से जरा भी हटने की गुंजाइश नहीं। पद-संगठन और वाक्य-योजना का क्रम उसी प्रकार रहता है। अनुवादक अपनी वैयक्तिक शैली (Individual style) को इच्छानुसार विकास नहीं करने पाता। इस प्रकार के अनुवाद में स्वाभाविकता एवं मौलिकता का समावेश करना बड़ा ही दुस्तर कार्य है। नहीं तो, सामान्यतः ऐसा देखा जाता है कि अनुवाद में मूल भाषा की बदबू आ जाती है।

तुलनात्मक विवरण—

छायानुवाद में मूल भाषा के भाव का उसी तरह बोध होता है, जिस तरह छाया से शरीर का आभास मिलता है। भावानुवाद में मूल भाषा के भाव का उसी तरह से परिचय मिलता है, जिस तरह चित्र के द्वारा मनुष्य का शरीर व्यक्त होता है। छायानुवाद में मूलवस्तु का ढाँचा मात्र मालूम होता है, पर भावानुवाद में उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग झलकने लगते हैं। किन्तु अविकल अनुवाद मानों प्रतिबिम्ब स्वरूप है। उसमें मूल वस्तु इसी तरह उतर आती है, जिस तरह फोटो में शरीर का नक्शा उतर आता है।

विद्यार्थी के लिये कौन-सा अनुवाद उपयुक्त है—

प्रवेशिका कक्षा के लिये जो अनुवाद आवश्यक है, उसमें विद्यार्थी को मूल-भाषा का पूरा-पूरा अनुसरण करना पड़ता है। उसे किसी भाव को घटाने-बढ़ाने या छोड़ देने का अधिकार नहीं रहता। परन्तु भाषा शैली निर्द्धारण करने में उसे काफी स्वतन्त्रता रहती है, अतएव स्कूल-कालेज के विद्यार्थियों के लिये 'भावानुवाद' के मार्ग पर चलना ही ठीक है।

अनुवाद के लिये आवश्यक सूचनाएँ—

१. The order of words may be changed in a manner which will suit the diction of the translator.

मूल भाषा का जो शब्द-क्रम रहता है, उसे अक्षुण्ण रखने के लिये अनुवादक बाध्य नहीं है। वह अपनी भाषा की शैली के अनुसार उसमें परिवर्त्तन कर सकता है। जैसे—"Bid him go to the kid." इस वाक्य का अनुवाद यदि मूल भाषा के क्रम से किया जाय तो होगा—"हुक्म दो उसे

जाने को पास बकरी के बच्चे के।" बहुत सी किताब की कुञ्जियों में इस तरह का अनुवाद देखने में आता भी है। पर यथार्थ में यह अनुवाद नहीं, अधोवाद है। इसमें भाव और भाषा दोनों की मिट्टी पलीद की जाती है। इस प्रकार का अनुवाद साहित्य का गला घोंटनेवाला है। मान लीजिये, इस वाक्य का अनुवाद करना है—"Man must earn his bread by the sweat of his brow". अब यदि इसका अनुवाद यों किया जाय कि 'आदमी को चाहिये हासिल करनी अपनी रोटी पसीने से अपनी भौंह के' तो इसे सिवा अनुवादक की बेवकूफी के और क्या कहेंगे ? ऐसे स्थान पर इस तरह लिखना चाहिये—'उसे अपने पसीने की कमाई खानी चाहिये' अथवा 'उसे परिश्रम के द्वारा उपार्जन कर खाना चाहिये', इत्यादि। कहने का तात्पर्य यह है कि अँगरेजी के *syntax* पर न जाकर हिन्दी के उद्देश्य-विधेयानुसार वाक्य-विन्यास करना उचित है।

२. Some words may be totally omitted in translation.

अनुवाद में मूल भाषा के किन्हीं ऐसे शब्दों को छोड़ सकते हैं जिनके बिना भी मतलब पूरा-पूरा निकल जाय। जैसे—"The sun shines" इसका अनुवाद 'वह सूर्य चमकता है' ऐसा न कर सिर्फ 'सूर्य चमकता है' इस प्रकार करना उचित है।

३. Some new words may be inserted in translation without having their exact counterparts in the original piece.

अनुवाद में प्रयोजनानुसार कोई ऐसा शब्द भी रख सकते हैं जिसका ठीक पर्य्याय मूल भाषा में नहीं है। जैसे—*It rains* का अनुवाद करेंगे "पानी बरसता है"। इसी तरह "What are you about ?" का अनुवाद किया जायगा, "आप किस बात में लगे हुए हैं ?"

४. A number of words may be translated into a single word.

अँगरेजी के कई शब्दों का अनुवाद कभी-कभी हिन्दी के एक ही शब्द द्वारा हो सकता है। जैसे—"A lady *shut up in the zenana*= असूर्यम्पश्यानारी", इसी तरह "I am *at a loss to determine what to do*= मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हूँ।"

५. One word may be rendered into many words according to the convenience of the translators.

अनुवादक अँगरेजी के किसी शब्द को सुविधानुसार कई शब्दों में तोड़मरोड़ कर अनुवाद कर सकता है। जैसे—"He is a *turn coat*" इसका अनुवाद इस प्रकार कर सकते हैं—"वह मनुष्य कच्चे सिद्धान्त का है।" इसी तरह—"He is a *time server*"="वह मनुष्य समय के अनुसार अपनी नीति बदलता रहता है।"

६. The order of clause may be inverted in translation.

मूल भाषा के खण्डवाक्यों का क्रम अनुवाद में परिवर्तित किया जा सकता है। जैसे—"You may take it, *if you please*". इसका अनुवाद करेंगे, "यदि आपकी इच्छा हो तो इसे ले सकते हैं।" यहाँ मूलभाषा का उत्तरार्द्ध अनुवाद का पूर्वार्द्ध है। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो अनुवाद भद्दा और अस्वाभाविक जान पड़ेगा। इसी तरह "Love all *while you live in the world*" का अनुवाद होगा, "जब तक संसार में रहो सबके साथ प्रेम रक्खो।"

७. An active voice may be rendered into passive voice and vice versa.

कर्तृवाच्य का अनुवाद कर्मवाच्य में और कर्मवाच्य का अनुवाद कर्तृवाच्य में करने से यदि सुन्दर जान पड़े, तो ऐसा कर सकते हैं। जैसे—"*I am unable to walk*". यह वाक्य अँगरेजी में Active voice [कर्तृवाच्य] में है। इसका अनुवाद, यदि चाहें तो भाववाच्य में कर सकते हैं—"मुझसे चला नहीं जाता।" इसी तरह, "*I have been given to understand*" यह वाक्य कर्मवाच्य में है, पर इसका अनुवाद कर्तृवाच्य में किया जायगा। जैसे—"मेरे सुनने में आया है।" इसी प्रकार और भी समझना चाहिये।

८. A piece in Direct Narration may be changed into one of Indirect Narration and vice versa.

अनुवादक का अधिकार है कि सुविधानुसार परोक्ष उक्ति को प्रत्यक्ष उक्ति में अथवा प्रत्यक्ष उक्ति को परोक्ष उक्ति में बदल सकता है। जैसे—He said

to me, '*Go at once*' [Indirect Narration] = उसने मुझे तुरत चले जाने को कहा, [Indirect Narration] इसी तरह, He said *that he could do the work easily* (Indirect Narration) = उसने कहा—"मैं यह काम आसानी से कर सकता हूँ।" [Direct Narration]

नोट—उक्ति-परिवर्त्तन तथा वाच्य-परिवर्त्तन तभी करना उचित है, जब उससे रचना में कुछ सुन्दरता बढ़ जाती हो। अन्यथा सभी स्थलों में बिना विशेष आवश्यकता के भी ऐसा करना सदोष समझा जाता है।

६. Many sentences in English may at times, be translated into a single sentence in Hindi.

कभी-कभी अँगरेजी के एकाधिक वाक्यों का अनुवाद हिन्दी में एक ही वाक्य द्वारा हो सकता है। जैसे—The sun rose. The darkness disappeared. The birds began to twitter in the sky. ये अँगरेजी के तीन वाक्य हैं। इनका अनुवाद करने के लिये यह कोई जरूरी नहीं है कि अनुवादक तीन ही वाक्य लिखे। वह चाहे तो इसे दो या एक ही वाक्य में अनुवाद कर सकता है। जैसे—सूर्योदय होने पर अन्धकार का नाश हुआ और पक्षिगण आकाश में कलरव करने लगे। In private life, he was amiable. In private life, he was even fond of amusement. In public life, he was reserved. In public life, he was a rigorous advocate for justice.

इसका अनुवाद यों करें—"पारिवारिक जीवन में वे मिलनसार तथा विनोदप्रिय भी थे, परन्तु सार्वजनिक जीवन में वे संयत तथा न्याय के कट्टर पक्षपाती थे।"

१०. One sentence in English may be translated into many sentences in Hindi.

अँगरेजी का कोई वाक्य यदि बहुत बड़ा हो; तो उसे तोड़कर हिन्दी के कई वाक्यों में अनुवाद कर सकते हैं; जैसे—"We have lost in Rama Mohan Roy a real gem—an irreparable loss, the loss of a man who was a great benefactor of mankind, a true friend of India, a gentleman of liberal mind,

founder of the Brahma Samaja, to which many of the educated people of India belong." यह एक ही वाक्य है, किन्तु इसका अनुवाद यदि बहुत-से छोटे-छोटे वाक्यों में बनाकर किया जायगा तो बहुत उत्तम होगा। जैसे—"राममोहन राय की मृत्यु हो गई। आपकी मृत्यु से हमलोगों को बड़ी ही क्षति हुई है। इस क्षति की पूर्ति होना असम्भव है। आप सचमुच में रत्न-स्वरूप थे। आप मनुष्य जाति के महान् उपकारी थे। भारतवर्ष के सच्चे हितैषी थे। आपका हृदय अतिशय उदार था। ब्रह्म-समाज की स्थापना आप ही के द्वारा हुई थी। उक्त समाज में भारतवर्ष के बहुतेरे शिक्षित व्यक्ति सम्मिलित हैं।" '६ वाक्य'

अग्रिम पाठों को देखने से उपर्युक्त बातें अच्छी तरह समझ में आ जायँगी।

Section II

Noun संज्ञा

संज्ञा के भेद—Classification of Nouns.

जिस तरह गणित-विद्या जानने के लिये अङ्कों का ज्ञान आवश्यक है, उसी तरह अनुवाद-कला जानने के लिये शब्दों का ज्ञान होना आवश्यक है। शब्दों में भी सबसे प्रधान संज्ञा है। अनुवादरूपी महल खड़ा करने के लिये सब प्रकार के शब्दों की आवश्यकता होती है। उसमें कोई सुर्खी का काम करता है, कोई चूने का, कोई सिमेंट का और कोई पानी का। परन्तु Noun (संज्ञा) ईंट का काम करता है। इसके बिना नींव ही नहीं डाली जा सकती है। अतएव हम सर्वप्रथम संज्ञा-प्रकरण से ही प्रारम्भ करते हैं।

अंगरेजी में पाँच प्रकार की संज्ञाएँ मानी जाती हैं। उनमें व्यक्ति-वाचक संज्ञा का रूप तो सभी भाषाओं में प्रायः एक-सा ही रहता है। सहमूवाचक संज्ञाओं का अनुवाद हिन्दी में सामान्यतः 'झुण्ड', 'समूह' आदि शब्दों के द्वारा किया जाता है। द्रव्यवाचक और जातिवाचक संज्ञाओं का अनुवाद तो प्रायः रूढ़ि शब्दों के द्वारा ही होता है। अतएव इन संज्ञाओं के अनुवाद में विशेष रचना-कला की अपेक्षा नहीं रहती। अब रही भाववाचक संज्ञाओं की बात। इनमें अधिकतर रचना-कला की अपेक्षा रहती है। जैसे अँगरेजी में इनका रूप अधिकांशतः यौगिक प्रत्ययों के द्वारा बनता है, वैसे ही हिन्दी में भी विविध प्रत्ययों के संयोग से। जैसे अँगरेजी में Hero (noun) से Heroism, Deep (adjective) से Depth, और To think (verb) से Thought आदि Abstract Noun बन सकते हैं, वैसे ही हिन्दी में वीर (संज्ञा) से वीरता, गम्भीर (विशेषण) से गाम्भीर्य्य, विचारना (क्रिया) से विचार आदि भाववाचक शब्द बन सकते हैं।

इस पाठ में यही दिखलाया जायगा कि अँगरेजी के किस suffix का अनुवाद हिन्दी के किस प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हो सकता है। आशा है, अग्र-लिखित नियम छात्रों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे।

Abstract Nouns

अँगरेजी के जिन भाववाचक शब्दों (Abstract nouns) के अन्त में -tion हो, उसका अनुवाद कहीं-कहीं 'अन' प्रत्ययान्त शब्दों से किया जाता है। ऐसे शब्द तत्सम होते हैं। जैसे—

Assertion	कथन	Selection	निर्वाचन
Attraction	आकर्षण	Correction	संशोधन
Alteration	परिवर्त्तन	Meditation	ध्यान
Attention	ध्यान	Amalgamation	सम्मिश्रण
Ablution	स्नान	Consolation	आश्वासन
Donation	दान	Sensation	स्पन्दन
Distribution	वितरण	Reflection	अनुशीलन
Observation	निरीक्षण	Agitation	आन्दोलन
Inspection	पर्यवेक्षण	Pacification	शमन
Recitation	भजन	Solution	समाधान
Prevention	निवारण	Conversation	संभाषण
Refutation	निराकरण	Formation	निर्म्माण
Persecution	निर्यातन	Reputation	सम्मान
Imitation	अनुकरण	Accusation	दोषारोपण
Invitation	निमंत्रण	Description	वर्णन
Restriction	नियन्त्रण	Compilation	सङ्कलन
Protection	पालन	Edition	संस्करण
Friction	संघर्षण		

किन्तु कहीं-कहीं ऐसे शब्दों का अनुवाद हिन्दी में दूसरी ही तरह किया जाता है। जैसे—

Addition	जोड़	Education	शिक्षा
Subtraction	घटाव	Instruction	उपदेश
Multiplication	गुणा	Erudition	विद्या, पांडित्य
Examination	परीक्षा	Ostentation	दिखावा, ठाटबाट
Remuneration	पुरस्कार	Action	कर्म
Termination	अंत	Emotion	भाव

Proposition	प्रतिज्ञा, साध्य	Volition	इच्छा
Section	विभाग	Affection	स्नेह
Direction	दिशा	Duration	टिकाव
Election	चुनाव	Introduction	परिचय
Revolution	विप्लव	Situation	स्थिति
Composition	रचना	Motion	गति
Explanation	व्याख्या	Position	स्थिति
Connection }	सम्बन्ध	Concentration	मनोनिवेश
		Salvation	मुक्ति, निर्वाण
Relation }		Co-operation	सहयोग
Resolution	प्रस्ताव	Translation	अनुवाद
Superstition	अंधविश्वास	Enumeration	गणना
Condition	दशा	Exertion	परिश्रम, उद्योग
Annihilation	नाश	Imagination	कल्पना

अँगरेजी के बहुत-से अन्यान्य शब्द भी ऐसे हैं, जिनका अनुवाद करने के लिये हिंदी में 'अन' प्रत्ययांत शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। जैसे—

Rise	उत्थान	Death	मरण
Fall	पतन	Music	गान
Attack	आक्रमण	Food	भोजन
Government	शासन	Drink	पान
Travel	भ्रमण, देशाटन	Sleep	शयन
Walking	विचरण (टहलना)	Weeping	क्रन्दन
Life	जीवन		

अँगरेजी के जिन भाववाचक शब्दों के अंत में Ship, ty, ity, y, ness आदि suffix लगे रहते हैं, उनका अनुवाद हिंदी में त्व, ता, य आदि प्रत्यय लगाकर किया जाता है। जैसे—

(a)—S*hip*

Lordship	प्रभुत्व	Teachership	शिक्षकत्व
Leadership	नेतृत्व	Guardianship	निरीक्षकता

Scholarship	विद्वत्ता	Managership	अध्यक्षता
Friendship	मित्रता	Presidentship	सभापतित्व

(*b*) *ty*—

Humanity	मनुष्यत्व	Individuality	व्यक्तित्व
Hospitality	आतिथ्य	Responsibility	उदारदायित्व
Authority	आधिपत्य	Utility	उपयोगिता
Sovereignty	राजत्व	Unity	एकता
Modesty	नम्रता	Honesty	साधुता
Poverty	दरिद्रता	Enmity	शत्रुता
Sensuality	कामुकता	Punctuality	समयदक्षता
Liberality	उदारता		

(*c*)—*ness*

Foolishness, Silliness	मूर्खता	Idleness	आलस्य
		Manliness	मनुष्यत्व
		Gentleness	सौजन्य
Wickedness, Naughtiness	दुष्टता	Narrowness	संकीर्णता
		Niggardliness	कृपणता
Baseness, meanness	नीचता	Selfishness	स्वार्थपरता
Cleverness	चतुरता	Cleanliness	स्वच्छता
Politeness	नम्रता	Likeness	समानता

लेकिन कहीं-कहीं ऐसे Abstract Nouns (भाववाचक शब्दों) का हिन्दी अनुवाद और ही तरह से किया जाता है ।जैसे—

(*a*) *ty*—

Propriety	शुद्धता, योग्यता	Affinity	सम्बन्ध
Opportunity	अवसर	Agility	फुर्ती
Electricity	विद्युत	Velocity	वेग
Property	सम्पत्ति	Society	समाज
Satiety	तुष्टि		

(*b*) *ness*—

Kindness	दया	Truthfulness	सत्य
Forgiveness	क्षमा	Carelessness	असावधानी
Madness	उन्माद	Thriftlessness	फिजुलखर्ची
High-handedness	जबर्दस्ती	Stinginess	कंजूसी
Righteousness	धर्म		

(*c*) *ship*—

Kinship	सम्बन्ध	Scholarship	छात्रवृत्ति
Worship	पूजा	Courtship	विवाह के हेतु प्रेम-निदर्शन

(*d*) *ment*—

Contentment	सन्तोष	Amendment	सुधार
Agreement	स्वीकृति	Sentiment	भाव

(*e*) *ism*—

Hinduism	हिन्दूधर्म	Antagonism	विरोध
Buddhism	बौद्धधर्म	Criticism	समालोचना
Mesmerism	सम्मोहिनी विद्या	Pessimism	नैराश्यवाद
Theism	आस्तिकवाद	Optimism	आशावाद

अँगरेजी के जिन भावाचक शब्द के अंत में ry, ship, age, ing आदि प्रत्यय लगे रहते हैं, उनसे बहुधा वृत्ति या रोजगार [profession] का बोध होता है। ऐसे शब्दों का हिन्दी-अनुवाद करने में 'पन' 'गिरी' 'वृत्ति' या तदर्थक प्रत्यय वाले शब्दों का व्यवहार किया जाता है। जैसे—

(*a*) *ry*—

Beggary	भिक्षावृत्ति	Carpentry	बढ़ईगिरी
Cookery	रसोईगिरी	Nursery	धात्रीकर्म
Robbery	डकैती, राहजनी	Surgery	शल्यक्रिया
Slavery	गुलामी	Foppery	बाबूगिरी
Embroidery	सूचीकर्म	Forgery	जालसाजी
Housewifery	गृहिणीपन		

(*b*) *age*—

Brokerage	दलाली	Bondage	गुलामी

(*c*) *ship*—

Clerkship	किरानीगिरी	Workmanship	कारीगरी
Judgeship	जजी		
Police-inspectorship	दरोगागिरी		

(*d*) *ing*—

Drawing	चित्रकला	Begging	भिखमंगी
Sewing	सिलाई	Printing	छपाई
Darning	रफ़ूगर	Binding	जिल्दसाजी
Weaving	बुनाई	Digging	खुदाई
Thieving	चोरी	Surveying	नाप-जोख

Miscellaneous

नीचे अँगरेजी के कुछ भाववाचक शब्दों के हिन्दी-पर्याय दिये जाते हैं—

Appearnce	आकृति	Misery	दुःख
Radiance	प्रभा	Pleasure	आनन्द
Temperance	मिताचार	Pain	कष्ट
Ignorance	अशिक्षा	Fear	भय
Impertinence	धृष्टता	Hope	आशा
Perseverance	अध्यवसाय	Anger	क्रोध
Indigence	दारिद्र्य	Hatred	घृणा
Eloquence	वक्तृता	Love	प्रेम
Science	विज्ञान	Feeling	भाव
Conscience	विवेक	Sympathy	सहानुभूति
Self-reliance	स्वावलम्बन	Loyalty	राजभक्ति
Alliance	सहयोग	Pride	अहङ्कार
Prudence	दूरदर्शिता	Thrift	मितव्ययिता
Consequence	परिणाम	Knowledge	ज्ञान
Maintenance	निर्वाह	Self-respect	आत्म-गौरव

Experience अनुभव
Patience धैर्य
Happiness सुख
Genius प्रतिभा
Wealth धन
Health स्वास्थ्य
Strength बल
Power शक्ति
Energy शक्ति
Fortune भाग्य
Memory स्मृति
Reason विवेक
Conception धारणा
Fancy कल्पना
Faith विश्वास
Intellect बुद्धि
Understanding समझ
Wisdom बुद्धिमानी
Study अध्ययन
Recapitulation पुनरावृत्ति
Self-control आत्म-संयम
Self-restraint आत्म-दमन

Language भाषा
Literature साहित्य
Nature प्रकृति
Self-consciousness आत्म परिचय
Self-dependence आत्म-निर्भरता
Dependence पराधीनता
Independence स्वतन्त्रता
Discontent असन्तोष
Avarice लोभ
Passion मनोविकार
Sentiment भावुकता
Luxury विलासिता
Exercise व्यायाम
Welcome स्वागत
Address अभिनन्दन
Farewell बिदाई
Virtue धर्म
Vice पाप
Beginning प्रारम्भ
End अवसान

अभ्यास—Exercise

Translate into Hindi:—

Knowledge is power. Prudence is the mother of virtue. Patience and perseverance overcome all mountains. Cleanliness is next to godliness (ईश्वरता). Punctuality is the salt of business. Honesty is the best policy (सर्वोत्तम नीति). Time is money. Contentment is better than riches

(ऐश्वर्य). Health is wealth. Diligence is the mother of fortune. Frankness in speech (स्पष्टवादिता) is the sign of open-heartedness (सरल-हृदयता). Fair dealing (स्पष्ट व्यवहार) and honest behaviour (शुद्ध आचरण) find respect everywhere. Cheerfulness (प्रफुल्लता) is a quality which preserves the equanimity of the heart (हृदय की एकनिष्ठता) in prosperity (अभ्युदय) as well as adversity (विपत्ति). Self-control is at the root of all improvement (सभी उन्नतियों का मूल). Resistance of temptations (प्रलोभनों का निराकरण) is quite essential to a man who wants to achieve success (सफलता प्राप्त करना) in the battle of life (जीवन-यात्रा में). Honest labour is the secret of success (सफलता का गुप्त रहस्य). A firm determination (दृढ़ संकल्प) conquers all obstacles and difficulties (सभी विघ्नबाधाओं को). Selfishness lies at the root to all evils. Failures (असफलताएँ) are the pillars (स्तम्भ) of success. Temperance is life, sensuality is death. Truthfulness knows no fear. Constant discharge of duties (अनवरत कर्त्तव्य-पालन) is the key to happiness (सुख की कुञ्जी). Where ignorance is a bliss, it is folly to be wise. Conscience is the mother of virtue (धर्म की जननी). Knowledge, Love and Goodness are three sisters.

Section III

Adjective—विशेषण

अँगरेजी भाषा में मुख्यतः तीन प्रकार के Adjective पाये जाते हैं—

(i) Simple — साधारण

(ii) Nominal — तद्धित

(iii) Verbal — कृदन्त

इन Adjectives (विशेषणों) का हिन्दी अनुवाद करने में विद्यार्थियों को कभी-कभी बड़ी अड़चन पड़ जाती है। किस शब्द के लिये कौन-सा हिन्दी-पर्याय देना ठीक होगा, इसी उधेड़बुन में उन्हें घंटों तक माथापच्ची करनी पड़ती है, फिर भी अनुवाद ठीक नहीं हो पाता। इन्हीं कठिनाइयों को दूर करने के लिये हम भिन्न-भिन्न प्रकार के विशेषणों का अनुवाद करने की रीतियाँ बतलाते हैं। विद्यार्थियों को चाहिये कि इस प्रकरण को ध्यान-पूर्वक पढ़ जायँ।

Simple Adjective का अनुवाद अपेक्षाकृत सरल होता है। अतएव हम पिछले दोनों प्रकार के Adjectives का वर्णन करते हैं।

I. Nominal Adjectives.

(१) अँगरेजी में जिन Adjectives (विशेषणों के अन्त में) 'al' रहता है; उनका अनुवाद प्रायः 'इक' प्रत्ययान्त शब्दों से किया जाता है। जैसे—

Physical	शारीरिक	Theoretical	सैद्धान्तिक
Mental	मानसिक	Practical	व्यावहारिक
Spiritual	आध्यात्मिक	Corporal	शारीरिक
Moral	नैतिक	Metaphysical	आध्यात्मिक
Psychological	मनोवैज्ञानिक	Internal	आभ्यन्तरिक
Social	सामाजिक	Natural	प्राकृतिक

Individual	वैयक्तिक	Oral	मौखिक
Real; Actual	वास्तविक	Nasal	सानुनासिक

किन्तु इस नियम के अपवाद भी बहुत-से मिलते हैं; जैसे—

External	वाह्य	Penal	कानूनी
Corporeal	शरीरी (जन्तु)	Verbal	जबानी
Sexual	इन्द्रियसम्बन्धी	Central	केन्द्रीय
Artificial	कृत्रिम	National	जातीय
Initial	आदिम	Rational	चैतन्ययुक्त
Annual	सालाना (वार्षिक)	Naval	जहाजी
Grammatical	व्याकरण-सम्बन्धी	Technical	शिल्पविषयक
Logical	तर्कसंगत	General	सामान्य
Legal	वैध, न्याय	Special	विशेष
Frugal	मिताहारी		

(२) अँग्रेजी में जिन Adjectives के अन्त में 'ous' रहता है, उनसे प्रायः किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के स्वभाव का परिचय मिलता है। हिन्दी में उनका अनुवाद करने के लिये 'णिनि' 'इक' 'कारी' 'मान्' 'मय' आदि प्रत्ययों का प्रयोग करते हैं। जैसे—

Fictitious	काल्पनिक	Sonorous	शब्दमय
Censorious	छिद्रान्वेषी	Efficacious	गुणकारी, गुणद
Luminous	प्रकाशमय	Jealous, Malicious	डाही
Poisonous } Venomous }	विषमय विषाक्त	Superstitious	अन्धविश्वासी
		Amorous	प्रेममय
		Frivolous	विनोदी, खिलवाड़ी
Gaseous	वायवीय	Vaporous	वाष्पीय
Pernicious	हानिकर	Infectious	संक्रामक
Avaricious	लोभी	Piscivorous	मत्स्याहारी
Capricious	छली	Carnivorous	मांसाहारी
Luxurious	विलासी	Graminivorous	तृणभोजी
Nutritious	पुष्टिकारी	Omnivorous	सर्वभक्षी

नोट—निम्नलिखित पर्य्याय भी स्मरणीय हैं—

Auspicious	शुभ	Sensuous	इन्द्रियपरायण
Inauspicious	अशुभ	Delicious	सुस्वादु
Pious	पवित्र	Luscious	सरस
Impious	अपवित्र	Porous	सछिद्र
Timorous	कादर, भीरु	Populous	जनाकीर्ण
Ferocious	भयानक	Melodious	श्रुतिमधुर
Sagacious	चतुर	Spacious	प्रशस्त
Pendulous	दोलायमान	Tremendous	भयंकर
Tremulous	कम्पायमान		

(३) अँग्रेजी में जिन Adjectives (विशेषणों) के अन्त में en अथवा y (suffix) लगा रहता है, उनका अनुवाद प्रायः 'मय' प्रत्ययान्त शब्दों के द्वारा किया जाता है। जैसे—

Golden	स्वर्णमय	Earthen	मृणमय
Silvery	रजतमय	Muddy	कर्दममय
Brazen	पित्तलमय	Sandy	बालुकामय
Leaden	सीसकमय	Hilly	पर्वतमय
Wooden	दारुमय	Flowery	पुष्पमय

(४) कालवाचक शब्दों के बाद 'ly' लगाकर जो Adjectives बनाये जाते हैं, उनका अनुवाद प्रायः 'इक' प्रत्ययान्त शब्दों के द्वारा किया जाता है। जैसे—

Daily	दैनिक	Half-yearly	अर्द्धवार्षिक
Weekly	साप्ताहिक	Fortnightly	पाक्षिक
Monthly	मासिक	Timely	सामयिक
Yearly	वार्षिक	Untimely	असामयिक

(५) अँग्रेजी में जिन Adjectives (विशेषणों) के अन्त में 'ary' रहता है, उनका हिन्दी-अनुवाद प्रायः 'इक' प्रत्ययान्त शब्दों के द्वारा किया जाता है। जैसे—

Imaginary	काल्पनिक	Customary	स्वाभाविक
Temporary	सामयिक	Honorary	अवैतनिक
Contemporary	समसामयिक	Stipendiary	वैतनिक

(६) जिन विशेषणों के अन्त में 'some' रहता है, उनका अनुवाद करने के लिये प्रायः 'कर' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे—

Troublesome	कष्टकर	Wholesome	स्वास्थ्यकर

अपवाद—

Handsome	सुन्दर	Quarrelsome	झगड़ालू

(७) जिन विशेषणों के अन्त में less रहता है, उनका अनुवाद प्रायः 'हीन' अथवा 'रहित' लगाकर करते हैं। जैसे—

Sightless	दृष्टिहीन	Childless	सन्तानहीन
Luckless	भाग्यहीन	Endless	अन्तरहित
Penniless	द्रव्यरहित	Tailless	लांगूलरहित
Shameless	लज्जाहीन	Brainless	मस्तिष्करहित
Testeless	स्वादरहित		

अपवाद—

Godless	नास्तिक	Careless	असावधान

(८) अँगरेजी में बहुत-से Adjectives (विशेषण) y प्रत्यय के योग से बनते हैं। हिन्दी में ठीक इसी तरह (ई) प्रत्यय के योग से इनके समानार्थक बन जाते हैं। जैसे—

Wealthy	धनी	Merry, Jolly	विनोदी
Angry	क्रोधी	Busy	श्रमी
Happy	सुखी	Silly	अज्ञानी
Healthy	बली	Naughty	उत्पाती, उपद्रवी
Haughty	घमण्डी	Greedy	लालची, लोभी
Lazy	आलसी	Sorry	दुखी

(९) अँगरेजी में बहुत-से Adjectives (विशेषण) 'ic' प्रत्यय के योग से बनते हैं। हिन्दी में 'इक' प्रत्यय के योग से उनके पर्याय बन जाते हैं। जैसे—

Scientific	वैज्ञानिक	Metaphysic	आध्यात्मिक
Specific	वैशेषिक	Analytic	वैश्लेषिक
Electric	वैद्योतिक	Synthetic	सांयोगिक
Frantic	औन्मादिक	Dogmatic	सैद्धान्तिक

Philosophic	दार्शनिक	Collectivistic	सामूहिक

किन्तु अपवाद भी कम नहीं मिलते—

Antic	अद्भुत	Septic	विषमय
Romantic	मनोहर	Pathetic	करुणामय
Terrific	भयङ्कर	Apathetic	उदासीन

II. Verbal Adjectives.

(१) अँगरेजी में जो Adjectives (विशेषण) verb (क्रिया) के बाद able अथवा ible प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं, उनका अनुवाद करने में प्रायः 'तव्य' 'अनीय' और 'य' प्रत्ययान्त शब्दों से काम लेते हैं। जैसे—

Knowable	ज्ञेय, ज्ञातव्य	Insurmountable	अलंघ्य
Perceptible	दृश्य	Unbearable	असह्य
Touchable	स्पृश्य	Invisible	अदृश्य
Audible	श्रव्य	Inconceivable	अबोध्य
Eatable, Edible	खाद्य	Indomitable	अदम्य
Readable	पठनीय	Incredible	अविश्वसनीय
Comprehensible	बोधगम्य	Impracticable	असाध्य
Agreeable	उपादेय	Insoluble	अविज्ञेय
Desirable	वांछनीय	Illegible	अपाठ्य
Detestable	हेय	Invincible	अजेय
Commendable	श्लाघनीय	Unintelligible	अबोध्य
Contemptible	हेय	Indivisible	अविभाज्य
Acceptable	ग्रहणीय	Impassable	अगम्य
Admirable	प्रशंसनीय	Incurable	असाध्य
Impenetrable	अभेद्य, प्रभेद्य		

(२) अँगरेजी में जो Present Participle विशेषण की तरह व्यवहृत होते हैं; उनका हिन्दी-अनुवाद प्रायः 'शतृ, शानच्' आदि प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के द्वारा होता है। जैसे—

Awaking dream	जाग्रत् स्वप्न
Ablazing fire	ज्वलन्त अग्नि

The seeming world दृश्यमान जगत्
Trembling lips कम्पायमान अधर

किन्तु हिन्दी भाषा में सब जगह पूर्वोक्त प्रत्ययों का व्यवहार नहीं हो सकता है। ऐसी दशा में यथावसर उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करना उचित है। जैसे—

A sleeping person निद्रित व्यक्ति
A living language जीवित भाषा
A gurgling stream कलकलवाहिनी नदी
A heartrending news हृदय-विदारक समाचार
An impending danger आसन्न विपद्
The foaming ocean फेनमय समुद्र
The lying-in-room सूतिकागृह
The dying man मरणासन्न मनुष्य
The thrilling news उद्वेगजनक समाचार
The charming prospect मनोहर दृश्य
A dariing thief साहसी चोर
A crying shame नितान्त लज्जा
The raining cloud सजल जलद
A tottering cottage पतनोन्मुख कुटीर
A firing speech जोशीला भाषण
The lying culprit मिथ्याभाषी अपराधी
An enterprising youth उत्साही युवक
Mourning clothes शोकसूचक वस्त्र
Bathing room स्नानागार
Dining room भोजनागार
Drawing room उपनिवेशागार
Rhyming couplets सानुप्रास छन्द
Playing fawns क्रीड़ासक्त मृगशावक
Printing Press मुद्रणालय
A wandering hermit रमता योगी
Running water बहता पानी

A walking stick टहलने की छड़ी
A writing table लिखने का टेबुल
Drinking water पीने का पानी
Boiling milk खौलता हुआ दूध
Opening song मङ्गल गान
Engineering Department भूविद्या-विभाग

(३) अँगरेजी में जो Adjectives (विशेषण) Past Participle के द्वारा बने होते हैं, उनका हिन्दी-अनुवाद प्रायः 'क्त' प्रत्यान्त शब्दों के द्वारा होता है; जैसे—

A printed news मुद्रित समाचार
A concealed fact गुप्त विषय
An educated man शिक्षित व्यक्ति
A respected lady सम्मानित महिला
A new-born child सद्यःजात शिशु
A dead language मृत भाषा
A deserted house परित्यक्त भवन
Worn-out cloth जीर्ण-शीर्ण वस्त्र
A defeated enemy पराजित शत्रु
A conquered country विजित देश
Obstructed motion अवरुद्ध गति
A wounded tiger आहत व्याघ्र
Distilled water विशुद्ध जल
Unexpected calamity अप्रत्याशित विपत्ति
An astonished girl विस्मित बालिका
An unknown person अपरिचित व्यक्ति
A full-blown lotus प्रस्फुटित कमल
The above-mentioned rule पूर्वोक्त नियम
Well-composed verse सुरचित पद्य
A nicely written book सुलिखित पुस्तक
A well furnished house सुसज्जित गृह

An enchanted serpent वशीभूत सर्प (मंत्रमुग्ध सर्प)
An enclosed garden परिवृत उद्यान
A besieged town-अवरुद्ध नगर
Robbed property अपहृत सम्पत्ति
Combined armies सम्मिलित सेनाएँ
Collected money सञ्चित द्रव्य
A tamed bird पालित पक्षी
An annihilated tribe विलुप्त जाति
An emancipated विभक्त सम्प्रदाय
An adorned house सुशोभित भवन
An ornamented poem अलंकृत कविता
An accused person अभियुक्त पुरुष
A reputed scholar प्रसिद्ध विद्वान्
A celebrated physician विख्यात चिकित्सक
Satisfied conscience सन्तुष्ट आत्मा

(४) किन्तु कहीं-कहीं Participal Adjective का अनुवाद दूसरे-दूसरे शब्दों में भी करते हैं। जैसे—

A civilised country सभ्य देश
An enlightened nation सुसभ्य जाति
An adopted son दत्तक पुत्र
A disappointed man निराश मनुष्य
Saturated air आर्द्र वायु
A dried lake शुष्क सरोवर
The ashamed boy लज्जित बालक
The enraged man क्रोधित मनुष्य
Unheard-of event अश्रुतपूर्व घटना
The chained soldier शृङ्खलाबद्ध सैनिक
The wished-for object वांछनीय सामग्री
Antiquated history प्राचीन इतिहास
The famished people अकाल-पीड़ित मनुष्य

The diseased man रोगी मनुष्य
The diceased man मृत व्यक्ति
The afflicted family शोकग्रस्त परिवार
A haunted house भूतग्रस्त गृह

अभ्यास—Exercise.

Translate into Hindi :—

Untimely death (असामयिक मृत्यु) Irrelevent (अप्रासङ्गिक) talk. Premature repentence. Lofty ideal. (उच्च आदर्श). Chronological order. A posthumus child. Divine Law (ईश्वरीय नियम). Logical fallacies. A hilly tract (प्रदेश). Golden ornaments. An ambitious king. Impenetrable mystery. Illegible handwriting (हस्तलिपि). A navigable river. A sensational news. A bloodless revolution. A gurgling stream. A tempting (लुभावना) show (दृश्य). Collected (संचित) money. Wonderful (अद्भुत) genious (प्रतिभा). Visionary prospects. Mysterious (रहस्यमय) suicide (आत्महत्या). Rigorous imprisonment (सपरिश्रम कारावास) The all-pervading. Being (सर्वव्यापी).

Section IV

Noun Phrases.

(i) Formed with the combination of an adjective (or participle) and a noun (जो विशेषण और विशेष्य के संयोग से बनते हैं)—

An absent-minded man अन्यमनस्क पुरुष
Blank verse भिन्नतुकान्त कविता
A bosom friend अभिन्न-हृदय मित्र, अंतरंग मित्र
Wonderful presence of mind आश्चर्यजनकप्रत्युत्पन्नमतित्व
Burial service श्राद्धसंस्कार
Nuptial ceremony वैवाहिक उत्सव
Capital punishment प्राणदण्ड
Direct evidence प्रत्यक्ष प्रमाण
Circumstantial evidence अनुमान प्रमाण
Closing hours अन्तिम समय
Crying shame नितान्त लज्जा
An illiterate man निरक्षर मनुष्य
A skilful artist चतुर शिल्पी
An auspicious moment शुभ लग्न
Inevitable result अवश्यम्भावी परिणाम
Unspeakable joy अनिर्वचनीय आनन्द
Impending danger आसन्न विपत्ति
National character जातीय चरित्र
Individual property वैयक्तिक सम्पति
Reversionary heir भावी उत्तराधिकारी
Serious disease उत्कट पीड़ा, सख्त बीमारी

Serious matter गम्भीर विषय
Deplorable condition शोचनीय अवस्था
Heart-rending news हृदयविदारक संवाद
Permanent settlement चिरस्थायी प्रबन्ध
Untold gold अपरिमित धन
Dishevelled hair आलुलायित केश, बिखरे बाल
Wistful eye सतृष्ण नयन
Indispensable consequence अनिवार्य फल
Unprecedented event अभूतपूर्व घटना
Honorary secretary अवैतनिक सचिव
Assistant editor सहकारी सम्पादक
The late minister भूतपूर्व मंत्री
Legislative assembly विधान-सभा
Executive committee कार्यकारिणी समिति
Rustic villager गँवार देहाती
Clever citizen चतुर नागरिक
Local newspaper स्थानीय समाचारपत्र
Qunquennial festival पञ्चवार्षिक उत्सव
Decennial settlement दशवार्षिक प्रबन्ध
The agricultural college कृषि महाविद्यालय
The present principal वर्तमान प्रधानाध्यापक
A boarding house छात्रावास
Co-operative association सहयोग-समिति
Theatrical company नाटक-मंडली
Microscopic instrument सूक्ष्मदर्शकयन्त्र
Research society अनुसंधान विषयक संस्था
Municipal arrangement नागरिक व्यवस्था
Military Department सेना विभाग
Chemical process रासायनिक प्रक्रिया
Historical event ऐतिहासिक घटना

Epic Age पौराणिक युग
The Golden Age सत्ययुग
The Iron Age कलियुग
International League अन्तर्राष्ट्रीय संघ
Ordinary member साधारण सदस्य
Provincial Government प्रान्तीय सरकार
Literary criticism साहित्यिक समालोचना
Religious debates धार्मिक विवाद
Surgical operation शल्य चिकित्सा
Trading company व्यावसायिक समिति
Liquid substance तरल पदार्थ
Experimental use आनुभूतिक प्रयोग
Nervous system स्नायुजाल
Reasoning faculty तर्कना शक्ति
A barran tract अनुर्व्वर प्रदेश
Landed property स्थावर संपत्ति
Moveable property अस्थायी संपत्ति
Settled conviction ध्रुव विश्वास
Matured age परिणत वयस
Matchless beauty अनुपम सौन्दर्य
Favourable wind अनुकूल वायु
Condign punishment उचित दंड
Meet reward उपयुक्त पुरस्कार
An extravagant desire उत्कट अभिलाषा
A joint family सम्मिलित परिवार
A far-fetched meaning कष्टकल्पित अर्थ
A mineral substance खनिज पदार्थ
A restless boy चञ्चल बालक
A close relationship घनिष्ठ सम्बन्ध
An inquisitive student जिज्ञासु विद्यार्थी

Conjugal love दाम्पत्य प्रेम
An indomitable foe दुर्दान्त शत्रु
Retentive faculties धारणाशक्ति
Domestic happiness पारिवारिक सुख
A wild animal वन्य पशु
Family quarrels पारिवारिक कलह
Social rites सामाजिक व्यवहार
Religious vow धार्मिक व्रत
Economical condition आर्थिक दशा
Mental affliction मानसिक क्लेश
Corporeal-punishment शारीरिक दण्ड
A lonely place निभृत स्थान
Hidden purpose निहित अभिप्राय
A concealed matter गुप्त विषय
A strange secret विचित्र रहस्य
A monthly magazine मासिक पत्र
A time-honoured custom परम्परागत रीति
A ludicrous effort हास्यास्पद प्रयास
A dead language मृत भाषा
Dead silence पूर्ण निस्तब्धता
Pitchy darkness सूचीभेद्य अन्धकार
Fierce war भीषण युद्ध
A horrible event लोमहर्षक घटना

(ii) Noun Phrases formed by two nouns joined by a preposition.

A man of rank प्रतिष्ठित मनुष्य
A man of genius प्रतिभावान् पुरुष
A man of high position उच्चपदस्थ व्यक्ति
A man of talents गुणवान् मनुष्य
A man of learning विद्यावान् मनुष्य

A man of war योद्धा मनुष्य
A beast of burden भारवाही पशु
A beast of prey मांसाहारी पशु
Change of air वायुपरिवर्तन
Sense of duty कर्त्तव्यबुद्धि
A vow of silence मौनव्रत
A sliegbt of hand हस्तकौशल
A deed of gift दानपत्र
The ocean of grief शोक-सागर
Want of money द्रव्याभाव
A matter of regret खेदनीय विषय
The rites of hospitality आतिथ्य सत्कार
A source of income आय का उपाय
The burden of proof प्रमाण का भार
Loss of money अर्थनाश
Hoard of wealth धनसंचय
Tears of joy आनन्दाश्रु
A paragon of beauty अद्वितीय सुन्दरी
A jewel af a poet कविरत्न
The ideal of life जीवन का आदर्श
The battle of life जीवन-संग्राम
Radiation of heat ताप-किरण
Desire of wealth धनलिप्सा
The dawn of intellect ज्ञानोदय
A boy of tender years अल्पवयस्क बालक
Girl of the same age समवयस्क बालिका
The fountain of happiness सुखस्रोत
A gang of robbers दस्युदल
A flock of bird पक्षीवृन्द
The slave of Passions इन्द्रियलोलुप मनुष्य

The bed of a river नदी गर्भ
The current of thought विचार-धारा
Negotiations of peace सन्धि-प्रस्ताव
Concentration of mind मनोयोग
A matter for consideration विवेच्य विषय
An infant at the breast स्तनपायी शिशु
Animal of the sea सामुद्रिक जन्तु
Troops in army सशस्त्र सैन्य
A man in distress विपत्तिग्रस्त मनुष्य
A cry in the wilderness अरण्य रोदन
The stars in the sky गगनस्थ नक्षत्र समूह
The house in front सम्मुखस्थ गृह
Means to an end लक्ष्य-प्राप्ति का साधन
The struggle for existence जीवन संग्राम
A tree in bloom कुसुमित वृक्ष
A river in flood बाढ़ से भरी नदी या बढ़ियारी नदी
The height of folly मूर्खता की चरम सीमा
An apple of discord कलह का मूल कारण
The apple of one's eye आँख का तारा
The point of view दृष्टिकोण
A jack of all trades हरफनमौला
A man of spirit तेजस्वी पुरुष
A voice from heaven आकाशवाणी
A blot from the blue अनभ्र वज्रपात
A poet of the first water उत्कृष्ट कवि
A large number of men बहुसंख्यक जन
A row of trees वृक्ष-पंक्ति
The ravings of a mad man उन्मत्त प्रलाप
The sum and substance of the lecture भाषण का सारांश अथवा मुख्य तात्पर्य

The proceedings of the meeting सभा की कार्यवाही
The election of candidates उमीदवारों का चुनाव
The command of the Collector जिलाधीश की आज्ञा
The decision of the court अदालत का फैसला
The charge of defamation मानहानि का अभियोग
The propaganda of the movement आन्दोलन का प्रचार
The usages of the modern times आधुनिक समय की रीतियाँ
The highest degree of the university विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि

(iii) Noun Phrases—formed by nouns which go in pairs:—

Day and night दिवारात्रि
Merits and demerits दोष-गुण
Weal and woe सुख-दुख
Flesh and blood रक्त-मांस
Meat and drink अन्न-जल
Heart and soul मनःप्राण
Man and money धन-जन
Food and clothing अन्न-वस्त्र
Hand and foot हाथ-पैर
Gods and Goddesses देवी-देवता
Heaven and Earth आकाश-पाताल
Heaven and Hell स्वर्ग-नरक
King and queen राजा-रानी
Knife and fork छुरी-काँटा
Science and art कला-विज्ञान
Virtue and vice पाप-पुण्य
Friend and enemy शत्रु-मित्र
Bow and arrows धनुष-बाण
Bag and baggage बोरिया-बँधना

Kith and kin कुटुम्ब-परिवार
Men and women स्त्री-पुरुष
Pen and ink रोशनाई-कलम
Sword and shield ढाल-तलवार
Land and water जल-थल
Husband and wife पति-पत्नी
Life and death जीवन-मरण
Stuff and nonsence वाहियात-खुराफात
Mind and matter जड़-चेतन
Caste and creed जाति-वंश

अभ्यास—Exercise.

Translate into Hindi :—

A vivid sensation. The nervous system. A golden opportunity. The royal dynasty. The solar system (सौर मण्डल). The terrestrial region. Utopian scheme (हवाई मण्डल). A Herculean task. The gift of the gab (वाचाशक्ति). The final goal (अन्तिम लक्ष्य). The original (आदिम) inhabitants. The initial letter. The crack of doom (महाप्रलय). The crux of the question. A debt of honour. A maiden speech. Preliminary education (प्राथमिक शिक्षा). A thorough knowledge. A solemn pledge. An economical problem. A political party. The rising sun (उदीयमान सूर्य). A perplexing question. A useful exercise.

Section V.

Adjective Phrases.

(i) Adjective Phrases—formed with a participle and a noun joined by a preposition—

Devoted to duty कर्त्तव्यपरायण

Addicted to drinking पानासक्त

Loaded with the chains of slavery दासत्वशृङ्खलाबद्ध

(Eyes) sparkling with joy हर्षोत्फुल्ल (लोचन)

(A river) flowing towards the ocean सागराभिमुख प्रवाहिनी नदी

Measured by the point of a needle सूच्यग्र परिमित (भूमि)

Adorned with flowers कुसुम शोभित (उद्यान)

Well-stocked with fish मत्स्यपरिपूर्ण (सरोवर)

Fresh flowers clad in the attire of vernal beauty वासन्ती सुषमा सज्जित नव प्रसून

A princess shut up in the zenana असूर्य्यम्पश्या राजकुमारी

The beauty of nature affording pure pleasure to the eye विमलानन्द-दायिनी प्रकृति-शोभा

A tree bending under the weight of its fruits फल-भारावनत वृक्ष

A married lady wearing a white dress शुक्लाम्बरा नववधू

A balloon sailing in the sky आकाशचारी वायुयान

A man having the good of his country at heart स्वदेश हितचिन्तक पुरुष

The universe abounding with endless mysteries असीम रहस्य-पूर्ण जगत

An article filled with moral lessons नैतिक शिक्षा-परिपूर्ण निबन्ध

Conduct befitting a gentleman भद्रोचित व्यवहार

A man following the customs of his own family कुलाचार पालक मनुष्य

A lady accomplished with all qualities सर्वगुण-सम्पन्न महिला

The sea agitated with mountain-waves उत्ताल तरंग-शोभित समुद्र

Absorbed in meditation ध्यान-मग्न

Reduced to a skeleton अस्थिचर्मावशिष्ट,कंकालमात्र

Given up to idleness आलस्यपरायण

Accompanied with wife सपत्नीक

Well-versed in logic तर्क-शास्त्र में व्युत्पन्न

Well-versed in Mathematics गणित विद्या में निपुण

According to means विभवानुसार, साधनानुसार

A story based upon false rumour मिथ्याप्रवाद-मूलक **कथा**

An heir deprived of his all सर्वस्व वंचित उत्तराधिकारी

A man involved in debts ऋणग्रस्त मनुष्य

Beset with anxieties चिन्तान्वित

Surrounded with thorns कंटकावृत

Fraught with danger भयास्पद

Gifted with eloquence वक्तृत्व-शक्ति-सम्पन्न

A flower hidden with leaves पत्राच्छादित पुष्प

A book approved by the text-book committee पाठ्यपुस्तक निर्वाचिनी समिति के द्वारा स्वीकृत पुस्तक
Laid up with fever ज्वराक्रान्त
Confined to bed शय्याग्रस्त
Mounted on a chariot रथारूढ़
Studded with gems मणिमुक्ता खचित
Overwhelmed with grief शोकाभिभूत
Superstition arising from fear भयजनित अंधविश्वास
The hurt resulting death मृत्यु-जनक (प्राणसंहारक)
The earth bearing every burden सर्वसहा पृथ्वी
Released from the jail कारागार विमुक्त
A body regulated by exercise व्यायामगठित शरीर
Eyes filled with tears अश्रुपूर्ण नयन
A voice choked with sighs अवरुद्ध कण्ठ
Milk mixed with water जलमिश्रित दुग्ध
People stricken with poverty दारिद्र्यपीड़ित मनुष्य
A lady born in a respectable family सम्भ्रान्त कुलोत्पन्न महिला
A rule handed down from generation to generation परम्परागत नियम

(ii) Adjective Phrases—formed with an adjective and a noun joined together by a preposition (or, by the connection 'as'):—

A proposal consistent with reason युक्तियुक्त प्रस्ताव
Fickleness natural to youth बालसुलभ चंचलता
Red with rage आगबबूला
Wild with fear भयाकुल
Quick of foot द्रुतपद; शीघ्रगामी
Quick of hand लघुहस्त
Swift of eye सूक्ष्मदर्शी

Dull of hearing श्रुतिमन्द
Destitute of energy शक्तिहीन
Laconic in speech अल्पभाषी
Sweet to the taste मधुरास्वादी
Food like the nectar अमृतोपम भोजन
Sweet at present but bitter in the long run आपात मधुर परिणाम विष
Desirous of knowledge ज्ञानलिप्सु
Greedy of wealth अर्थलोलुप
Liable to punishment दण्डाधिकारी
Injurious to health स्वास्थ्यापहारक
Beneficial to the conntry देश के लिये कल्याणकारी
Skilful in painting चित्रकारी में निपुण
Expert in dancing नृत्य-कला में विशारद
Averse to religion धर्म-विरुद्ध
Inconsistent with law न्याय-विरुद्ध
Envious of each other परस्परद्वेषी
Obedient to one's mother मातृ-भक्त
Familiar with human nature मानव स्वभाव से परिचित
Suitable to the occasion समयानुकूल
Useful for students छात्रोपयोगी
Indicative of pleasure प्रसन्नता-सूचक
Void of common sense विवेकशून्य
White as alabaster संगमरमर-सा सफेद (स्फटिक-श्वेत)
White as milk दुग्धोज्ज्वल, या दूध-सा सफेद
Red as blood लाल टहाका
Black as jet कालाकुचकुच
Cold as ice तुषार शीतल
Light as a feather पँख सा हलका
Soft as down रुई-सा गुलगुल

Hard as stone प्रस्तर कठोर
Sweet as honey मधु-सा मधुर
Tall as a palmyra tree ताड़-सा लम्बा
Black as a thunder-cloud घनश्याम
As bright as silver रजत-शुभ्र
As clear as crystal स्फटिक-स्वच्छ
As soft as butter नवनीत-कोमल
As still as a statue मूर्ति-सा निश्चल
As wise as Soloman वृहस्पति-सा बुद्धिमान्
As slender as a thread मृणालवत् (धागे-सा पतला)
As green as grass दूर्वादल श्याम
As round as a ball कन्दुकाकार गोल
As dark as pitch सूची-भेद्य अन्धकार
As swift as lightning विद्युन्निभ-चंचल (बिजली-सा तेज)
Mild in speech मधुर-भाषी
Frugal in expenses मितव्ययी
Temperate in habits संयमी
A good-for-nothing fellow निकम्मा आदमी
A well-to-do man लक्ष्मीपात्र मनुष्य
Well-up in practical wisdom व्यावहारिक बुद्धि में निष्णात
Proficient in action क्रिया-कुशल
Fond of literature साहित्य-प्रेमी
Fond of luxury विलास-प्रिय
Pleasant to the eye नेत्राभिराम
Unpleasant to the ear कर्णकटु
Loyal to the Government राजभक्त
Hostile to the country देशद्रोही
The face radiant with beauty लावण्ययुक्त मुखमंडल
Eyes bright with the lustre of joy हर्षोत्फुल्ल लोचन

The greatest saint on the face of the earth पृथ्वीतल का सर्वश्रेष्ठ महात्मा

(iii) Adjective Phrases—formed by compound words—

The famine-stricken people दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्य
A rack-rented tenantry करपीड़ित प्रजा-मंडली
A heart rending story हृदय-विदारक कथा
A new-born child सद्यःप्रसूत शिशु (नवजात शिशु)
A half-dead serpent मृतप्राय सर्प
The horror-stricken public भयाक्रान्त जनता
A chicken-hearted fellow कादरात्मा मनुष्य
Mean-spirited नीचात्मा
Narrow-minded संकीर्ण हृदय
Broken-hearted भग्न हृदय
Mealy-mouthed मनहूस
Block-headed कुन्दजेहन
Crack-brained खब्तुलहवास
Low-minded क्षुद्रहृदय
Self-loving स्वार्थप्रिय
Ease loving आरामपसंद
Beautiful-looking सुन्दराकृति
A do-little youth अकर्मण्य युवक
A hole and-corner policy गुप्त नीति
A time-honoured custom चिरप्रचलित प्रथा
A cock-and-bull story नानी की कहानी
An outspoken man स्पष्टवादी मनुष्य
A dog in-the-manger policy श्वान-वृषभ-न्याय
A well-furnished house सुसज्जित गृह
Lip-deep sympathy मौखिक सहानुभूति
Blood-red लालटेसू

Stone-deaf वज्रबधिर
Nose-clipt नकटा
Squint-eyed ऐंचाताना
Half-naked body अर्द्धनग्न शरीर
Half-awake state अर्द्धजागृतावस्था
A well-written book सुलिखित पुस्तक
A fair and squire man स्पष्टवादी मनुष्य

(iv) Miscellaneous Adjective Phrases :—

Sanctified by the utterance of incantations मन्त्रोच्चारण से पूत (जल)
Horrified at the sight of fierce atrocity नृशंस अत्याचार कोदेखकर भयभीत
Proportionate to merit योग्यता के अनुसार
Possessed of men and money धन-जन से परिपूर्ण
Proud of caste and creed जातिवंश का अभिमानी
Intoxicated with power प्रभुत्व के मद से मत्त
Profitable to the country देश के लिये लाभदायक
Overcome with fatigue श्रम से क्लान्त (थकान से चूर-चूर)
Conversant with all sciences सर्व विद्या-विशारद
Deserving of all praise सर्वप्रशंसायोग्य
Steeped in the darkness of ignorance अविद्यारूपी अन्धकार में मग्न
Proceeding on the path of advancement उन्नति के पथ पर अग्रसर
Born in a well-to-do family सम्पन्न परिवार में प्रादुर्भूत
The sight causing the hair to stand on end रोमांचकरी दृश्य
Transported for life आजन्म निर्वासित
A competition open to all सार्वजनिक प्रतियोगिता

A gesture extremely abhorent to the eye अत्यन्त घृणोत्पादक भावभङ्गी

A style ornamented with high-flown expressions चमत्कृत उक्तियों से अलंकृत शैली

A drama replete with pathetic scenes करुणोत्पादक दृश्यों से भरा हुआ नाटक

The stage filled up with specators दर्शक-मण्डल से परिपूर्ण रङ्गस्थल

The Universal being knowing the secret of every one's heart सर्वान्तर्यामी परमात्मा

अभ्यास—Exercise

Translate into Hindi :—

An old-aged man. A care-worn person. A way-worn (श्रान्त) traveller. A hen-pecked husband. A dog-eared page. A weevil-eaten tree. A three-legged stool (तिपाई). A kind-hearted (दयालु) lady. As gay as a lark. As poor as a church-mouse. Happy as the day is long. Tainted with corruption. Highly admired by all. Ashamed of past sins. Suited to the occasion. Nine thousand strong. Arrayed in squares. Well-stocked with fish (मत्स्यपूर्ण) Armed with a spear. Singing in a chorus. Betrayed by a friend. Mindful of promise. Lying on death-bed (मृत्युशय्या पर पड़ा).

Section VI

Adverbial Phrases

अँग्रेजी भाषा में किसी Paragraph को उठा लीजिये। उसमें बेशी नहीं तो दस-पाँच Adverbial Phrases जरूर ही मिल जायँगे। अँगरेजी भाषा में इनकी बड़ी अधिकता है। विद्यार्थी और जगह तो किसी-किसी सूरत से निबह भी जाते हैं, लेकिन Adverbial Phrases के नजदीक आकर बहुधा गड़ब । कभी-कभी तो बिल्कुल अर्थ का कायापलट ही कर देते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिये इस पाठ में तरह-तरह के Adverbial Phrases एवं उनके समानार्थवाचक क्रियाविशेषणों की सूची दी जाती है। यदि इसे छात्रगण ध्यानपूर्वक देख जायँगे तो पद-पद पर अनुवाद में सहायता मिलेगी।

Adverbial Phrases देने के पहले अँगरेजी के कुछ साधारण Adverbs [क्रिया-विशेषण] एवं उनके हिन्दी-पर्य्याय भी बतला देना अच्छा होगा। नीचे कुछ ऐसे क्रिया-विशेषण दिये जाते हैं, जिनका साधुभाषा में अधिकतर व्यवहार होता है।

(i) Adverbs ending in "ly"—

Nicely सुचारु रूप से

Justly न्यायपूर्वक

Regulary नियमित रूप से

Clearly स्वच्छतापूर्वक

Generally सामान्यतः

Specially विशेषतः

Abundantly प्रचुर परिमाण में

Gently शिष्टतापूर्वक

Truthfully सत्यतापूर्वक

Sincerely निश्छल भाव से

Wonderfully आश्चर्य्य रूप से

Politely नम्रतापूर्वक
Openly स्पष्टतया
Cheerfully प्रसन्नतापूर्वक
Amiably स्नेहपूर्वक
Reverently श्रद्धापूर्वक
Obstinately दुराग्रहपूर्वक
Successfully सफलतापूर्वक
Partially आंशिक रूप से
Fully पूर्णरूप से

(ii) Adverbial Phrases formed by a preposition and a noun —
In fact; in truth वास्तव में, यथार्थतः
In short संक्षेपतः
In brief सारांश में
In general सामान्यतः
In particular विशेषतः
In the main मुख्यतः
In the first place प्रथमतः
In the second place द्वितीयतः
By nature स्वभावतः
At last अंततः
In good faith धर्म्मतः
In plain स्पष्टतः
In private खानगी में, एकान्त में
In public प्रकाश्यतः, बारेआम
In secret चुपचाप, गुप्त रीति से
In the end अन्त में
In the long run अन्ततोगत्वा
By chance संयोग से
At the outset प्रारम्भ में

In conclusion उपसंहार में
On foot पैदल
On horseback घोड़े पर
At hand निकट में
In time समय पर
In the meantime इसी बीच में
On the occasion इस अवसर पर
On this condition इस शर्त पर
Without delay बिना विलम्ब, शीघ्र
All of a sudden अकस्मात्
By mistake गलती से
Through oversight असावधानी से
At a glance एक ही नजर में
By turns बारी-बारी से
At random स्वेच्छापूर्वक
At pleasure इच्छानुसार
By all means सर्वथा
By no means किसी तरह नहीं
In all respects सब प्रकार से
In all कुल, सब मिलाकर
By good luck सौभाग्यवश
In no time तुरन्त, शीघ्र
At no time कभी नहीं
By the way प्रसंगवशात
By the by अच्छा तो भला
In the extreme नितान्त, अतिशय
In despair नैराश्यभाव से
In consequeuce परिणामतः
With attention ध्यानपूर्वक
By main force बल-प्रयोग द्वारा

With care सावधानी से
In order क्रमानुसार
In a file पंक्ति-बद्ध होकर
Without hesitation मुक्तकंठ से
In haste शीघ्रता में
In a hurry हड़बड़ी में
By lots झुराड-के-झुराड
In a large number बड़ी संख्या में
In a small quantity अल्प परिमाण में
In open terms खुल्लमखुल्ला; साफ-साफ
In succession क्रमशः
By force बलपूर्वक
With kindness दयापूर्वक, कृपया
In the open air खुले मैदान में
After a long time चिरकाल के अनन्तर
In an evil hour अशुभ लग्न में
In an auspicious moment शुभ घड़ी में
To this effect इस आशय का
Under these circumstances ऐसी दशा में
In alphabetical order अकारादि क्रम से
In disguise छद्मवेश
In an instant एक ही पल में
In a whisper एकान्त में फुसफुसाकर
In broad daylight दिन-दहाड़े
On the whole मोटा-मोटी
On all hands सर्वसम्मति से
On every side चारों ओर
On that ground उस कारण से
For this reason इस हेतु से
Of one's own accord स्वेच्छानुसार

With clasped hands बद्धाञ्जलि होकर
With girded loins कटिबद्ध होकर
On reliable authority विश्वस्त सूत्र से
On the other hand पक्षान्तर में
To the contrary प्रत्युत, बल्कि उसके विपरीत
With a lavish hand मुक्तहस्त से
In a polite manner नम्र भाव से
In a plaintive voice कातरस्वर से
To some extent कुछ अंश में
In a great measure बहुत अंश में
In a chocked voice गद्‌गद कंठ से
With a steadfast look निर्निमेष दृष्टि से
At the eleventh hour समय बिताकर, बहुत देर से
At the last stage अन्तिम समय में
For good सदा के लिये

(iii) Adverbial phrases formed by two prepositions governing their objects :—

In course of time काल-क्रम से
In process of time समय के चक्र से
In order of merit योग्यतानुसार
By return of post लौटती डाक से
From head to foot आपादमस्तक
From top to the toe नख-से-सिर पर्यन्त (आमूलचूल)
To the best of my knowledge जहाँ तक मैं जानता हूँ
To the best of my ability जहाँ तक मेरी शक्ति है
In accordance with Shastras शास्त्रानुकूल
In the nick of time ठीक समय पर
As far as practicable यथासाध्य
For the sake of religion धर्म के खातिर
Instead of idolatry मूर्तिपूजा के स्थान पर

By way of comparison तुलनात्मक दृष्टि से
By way of an example दृष्टान्तस्वरूप
In point of fact वस्तुतः
In the twinkling of an eye देखते ही देखते (पल मारते)
In the presence of others दूसरों के सामने
Behind the back of anybody किसी के परोक्ष में
From beginning to end आदि से अन्त तक
At the top of one's voice सप्तम स्वर में; खूब जोर से
At the top of one's speed अत्यन्त वेग से
At the call of duty कर्त्तव्य की पुकार पर
At this time of life इस वयस पर
With a spirit of revenge प्रतिहिंसा के भाव से
By reason of illness अस्वस्थता के कारण
On account of poverty दरिद्रता के कारण
On the score of enmity शत्रुता की वजह से
At the dead of night आधी रात के समय
In the depths of winter कड़ाके की सर्दी में (जाड़े के मध्य में)
In the middle of spring वसन्त के मध्य में
At the beginning of summer ग्रीष्म-ऋतु के आदि में
At the end of the fourth century चतुर्थ शताब्दी के अन्त में
In view of this fact इस विषय को देखते
In connection with the proposal इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में
With reference to your letter आपके पत्र के विषय में

(iv) Adverbial Phrases formed by words which go in pairs :—

Again and again पुनः-पुनः, बार-बार
By and by शीघ्र ही
Day by day दिनानुदिन
One by one एक-एक करके

Bit by bit थोड़ा-थोड़ा
On and on निरन्तर
Off and on कभी-कभी
Once and again बार-बार
Over and over again पुनः-पुनः
Drop by drop बूँद-बूँद
Little by little थोड़ा-थोड़ा
Step by step क्रम-क्रम से
Far and near आस-पास
Far and wide चारों ओर
Face to face आमने-सामने
Some day or other किसी-न-किसी दिन
Here and there इधर-उधर
To and fro इधर-उधर
Up and down इधर-उधर
Now and again ठहर-ठहर कर
Side by side अगल-बगल
Through and through साङ्गोपाङ्ग

(v) Adverbial phrases formed by a participle followed by the preposition "to"—

According to the Shastras शास्त्रों के अनुसार
According to one's ability यथाशक्ति
According to the usage of that country उस देश की प्रथा के अनुसार
According to your advice आपके उपदेशानुसार
According to the best of my belief जहाँ तक मेरा विश्वास है
Agreeable to the journey यात्रा के अनुकूल
Owing to the mutual jealousy पारस्परिक द्वेष के कारण
Owing to my absence मेरी अनुपस्थिति के कारण

Owing to the failure of rains अनावृष्टि के कारण
Owing to want of means द्रव्याभाव के कारण
Corresponding to the doctrines of Hinduism हिन्दू-धर्म के सिद्धान्तों के अनुरूप
On behalf of the committee समिति की ओर से
By virtue of your aid आपकी सहायता के प्रसाद से
By dint of his indefatigable industry उसके अनवरत उद्योग के प्रभाव से
By way of joke दिल्लगी के तौर पर
By means of regular exercise नियमित व्यायाम द्वारा
By force of habit अभ्यास के सहारे
For fear of enemy शत्रु के भय से
For want of necessary means उपयुक्त साधनों के अभाव से
In case of any accident कोई दुर्घटना हो जाने पर
In defiance of law कानून के विरुद्ध
In course of conversation वार्त्तालाप के सिलसिले में
In favour of the accused अभियुक्त के पक्ष में
In honour of the birth day जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में
In opposition to your statement तुम्हारे कथन के विरुद्ध
In keeping with the custom रीति के अनुसार
In quest of food आहार के अन्वेषण में
In return for your kindness आपकी दया के बदले
In respect of age उमर के लिहाज से
In proportion to labour परिश्रम के अनुरूप
In the face of the wind वायु के प्रतिकूल
In the teeth of danger विपत्ति के मुख में
In the hope of acquisition धनप्राप्ति की आशा से
In the guise of an ascetic संन्यासी के रूप में
On the eve of journey यात्रा के पूर्व
On the side of Duryodhan दुर्योधन की ओर से

On pretence of virtue धर्म के बहाने
On the point of death मृत्युशय्या पर
On the brink of ruin सर्वनाश के मुख में
In respect to your abilities आपकी योग्यता के सम्बन्ध में
With an eye to the future भविष्य की ओर लक्ष्य रखकर

Miscellaneous Adverbial phrases

Ready made बना-बनाया
Topsy-turvy उलटा-पलटा
Tug-of-war खींचातानी
Chaotic irregularity अन्धाधुन्ध
Helter-skelter हड़बड़ी में
Of different sorts भाँति-भाँति के
In post haste दौड़ा-दौड़ी
All day long सारा दिन; दिनभर
All the year round सालभर
Point blank स्पष्ट शब्दों में
The other day उस दिन
On the 1st of January ultimo गत पहली जनवरी को
On the 15th instant इसी पन्द्रहवीं को
On the 31st proximo आगामी ३१ को
At three A. M. तीन बजे रात को
At three P. M. तीन बजे दिन को

सूचना—Ante-meridium (A. M.) पूर्वाह्न (आधी रात से दोपहर तक) Post-meridium (P. M.) अपराह्न (दोपहर से आधी रात तक)

Incognito छद्मवेश में

Ne plus ultra चर्मबिंदु या जिससे अच्छा और कोई भी दूसरा न हो। यत्परोनास्ति।

As regards my qualifications मेरी योग्यता के सम्बन्ध में
As matters now stand ऐसी परिस्थिति में
Without allowing the grass to grow under one's feet देखते-ही-देखते

For convenience's sake सुभीते के ख्याल से
Up till now अद्यावधि; अभी तक
Up to the seventh page सातवें पृष्ठ तक
As it were मानो
After all कुछ भी हो
At once तत्क्षण
Nothing at all बिलकुल नहीं
From start to finish आद्योपान्त
With this view इस उद्देश्य से
On the face of it बाह्यतः; प्रत्यक्षतः
On the spur of the moment क्षण की उत्तेजना में
Under the sway of momentary impulse क्षणिक उत्तेजन के वशीभूत होकर

However अस्तु
In the twinkling of an eye पलभर में
In status quo पूर्ववत्

Section VII

Idioms—मुहावरे

अँग्रेजी भाषा में बहुत Idioms [मुहावरे] अपना खास अर्थ रखते हैं। उनका अनुवाद करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। विद्यार्थियों को उचित है कि पहले उनका अभिप्राय समझकर पीछे उसी भाव को हिन्दी-भाषा में प्रकट करें। नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जाने की आशङ्का है । ऐसे अनेक Idioms हैं, जिनका यदि हिन्दी में अविकल भाषान्तर कर दिया जाय तो वह बेमतलब का जुमला बन जायगा। यदि कुछ मतलब भी निकलेगा तो मूल आशय से उसमें आकाश-पाताल का अन्तर रहेगा । जैसे—"It is raining cats and dogs." यह एक Idiomatic expression [मुहावरेदार वाक्य] है। अब यदि पृथक्-पृथक् शब्दार्थों को लेकर इसका हिन्दी-अनुवाद किया जाय तो यों लिखा जायगा, "कुत्ते और बिल्लियाँ बरस रही हैं।" इसी तरह "He is playing ducks and drakes with his money." इसका अनुवाद होगा, "वह अपने धन के साथ बत्तक और बत्तकियाँ खेल रहा है।" किन्तु ये दोनों बात ऊटपटाँग हैं । इनसे बेसिर-पैर की बातों के सिवा और कुछ मानी नहीं निकलते । वास्तविक आशय कोसों दूर है। अब, यदि यथार्थ-रूप से दोनों का अनुवाद किया जाय तो ये वाक्य निकलेंगे, [१] मूसलधार पानी बरस रहा है, [२] वह अपना रुपया पानी की भाँति बहा रहा है। अतएव अनुवाद के लिये यह आवश्यक है कि दोनों भाषाओं के मुहावरों का पूरा-पूरा ज्ञान हो। आगे अधिकतर व्यवहार में आनेवाले कुछ English Idioms और उनके हिन्दी अनुवाद दे दिये जाते हैं--

He saw the light in 1880. सन् १८८० ई० में उसका जन्म हुआ।

You are laughing in the sleeve तुम मन-ही-मन हँस रहे हो।

I am in my teens. मेरी अवस्था बीस साल के भीतर ही है।

He took umbrage at my words. उसने मेरा कहा बुरा माना।

You fight shy of my presence. तुम मुझसे आँख चुराते हो।

This house is about to fall. यह घर गिरने-गिरने पर है।

He is dead against widow marriage. वे विधवा-विवाह के घोर विरोधी हैं।

It is all over with him. उनका देहावसान हो गया।

He has been up and doing. वे प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं।

He was born with a silver spoon in his mouth. उनका बड़े घराने में जन्म हुआ था।

You are born under a lucky star. तुम्हारा जन्म अच्छे ग्रह में है।

The patient is past cure. रोगी की हालत बचने लायक नहीं है।

Your advice is worth its weight in gold. आपका उपदेश अमृत के समान है।

He is set upon going to Banaras. वे काशी जाने पर तुले हुए हैं।

I am no party to this intrigue. इस षड्यन्त्र में मेरा हाथ नहीं है।

All things were at sixes and sevens. सब चीजें तितर-बितर हो रही थीं।

I am at one with your proposal. मैं आपके प्रस्ताव से सहमत हूँ।

I am at a loss to determine what to do. मैं किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहा हूँ।

They are at daggers drawn with each other. दोनों में खूब तनातनी है।

Mr. Gokhale was in the chair. गोखले महाशय सभापति थे।

He is in a fix. वह बड़ी मुश्किल में है।

I am between the horns of a dilemma. मैं दुविधा में पड़ा हुआ हूँ।

Kalidas is in the van of Indian poets. कालिदास भारतीय कवियों में अग्रगण्य हैं।

He is in the good books of his master. वह अपने मालिक का दुलरुआ है।

He is always on the alert. वह सर्वदा चौकन्ना रहता है।

The bank is on its last legs. बैंक का दिवाला निकलने पर है।

He is a bit out of sorts. उसका जी कुछ सुस्त है।

You are out of your senses. तुम्हारे होशहवाश दुरुस्त नहीं हैं।

He is in a temper (or out of temper). वह गुस्से से चूर है।

He is under-age now. वह अभी नाबालिग है।

He is off his head. उसका दिमाग बिगड़ गया है।

This is the order of the day. यह आजकल की रीति है।

He is my right hand man. यह मेरा दाहिना हाथ है।

He was at his wit's end. उसकी बुद्धि चकरा गई।

He carries matters with a high hand. वह जबर्दस्ती करता है।

It did not catch my eye. इसपर मेरी दृष्टि नहीं पड़ी।

He has caught a Tartar. उसका अच्छे से पाला पड़ा है।

They came to close quarters दोनों में मुठभेड़ हो गई।

His life was cut off in its bloom उसका जीवन अकाल-कवलित हो गया।

He has cut the Gordian knot. उसने भारी धनुष को तोड़ डाला है; उसने बड़ी बीहड़ गुत्थी सुलझा दी है।

I left no stone unturned. मैंने अपने भरसक कुछ उठा नहीं रखा।

He moved heaven and earth to do this work. उसने इस काम के लिये आकाश पाताल एक कर डाला।

He picked a quarrel with me. उसने मुझसे झूठमूठ की लड़ाई ठानी।

This matter was put in black and white. यह बात लिख ली गई।

I am out of pocket. मेरा हाथ खाली है।

My hands are full now. अभी मुझे फुर्सत नहीं है।

He learns his lessons by rote वह अपना सबक तोते की तरह रटता है।

He fell a prey to the disease. वह रोग का शिकार हो गया।

His speech fell flat on the audience उनके व्याख्यान का प्रभाव श्रोताओं पर कुछ नहीं पड़ा।

I have nothing to do with this subject. मुझे इस विषय से कुछ सरोकार नहीं पड़ा है।

I wash my hand of this business. मैं इस काम से हाथ धोता हूँ।

This law will press heavily upon the poor. इस कानून से गरीबों पर कड़ी बीतेगी।

He calls a spade a spade. वह उचित वक्ता है।

It is a Herculean task. वह बड़ी टेढ़ी खीर है।

You pull on well with him. तुमसे उसकी खूब पटती है।

He pocketed the insult. उसने चुपचाप अपमान सहन कर लिया।

Get this by heart. इस विषय को हृदयंगम कर लो।

He will make a good pleader. वह अच्छा वकील होगा।

He plumes himself upon learning वह अपनी विद्या पर घमंड करता है।

He beat a hasty retreat वह उलटे पाँव भाग गया।

I wiil take him to task. मैं उसे खूब फटकारूँगा -

You have taught me a good lesson. तुमने मुझे अच्छा सबक सिखाया है।

Do not try to throw dust into my eyes. मेरी आँखों में धूल झोंकने की कोशिश मत करो।

Do not pick holes in another's coat. दूसरे का छिद्रान्वेषण मत करो।

It will come to no good. इसमें कुछ फायदा नहीं होगा।

This word has cut me to the quick. इस वाक्य से मैं मर्माहत हो गया हूँ।

He has got into hot water. वह बड़ी कठिनता में पड़ गया है।

They have given currency to the rumour. उन्होंने यह अफवाह उड़ा दी है।

He took French leave. वह भाग गया।

The murderer got off Scot-free. हत्यारा बेदाग बच गया।

I always give him a wide berth. मैं सर्वदा उन्हें दूर ही से प्रणाम करता हूँ।

The matter has got wind. यह खबर गर्म है।

It will go hard with you. तुम मुश्किल में पड़ जाओगे।

They keep body and soul together. वे किसी तरह प्राणरक्षा करते हैं।

He took up the gauntlet. उसने बीड़ा उठा लिया।

This law has become a dead letter. वह कानून जारी नहीं है।

He was sentenced to capital punishment. उसको फाँसी की सजा हुई।

He is not equal to the task. उससे यह काम होने का नहीं।

He was born and bread in India. वह हिन्दुस्तान में पाला-पोसा गया।

The long and short of the matter is this. विषय का सारांश यही है।

He wormed out the secret. वह भेद ताड़ गया।

He did me a world of good. इससे मुझे बड़ा ही लाभ पहुँचा।

It will stand you in good stead. इससे तुम्हें बहुत उपकार होगा।

This is a moot point. यह विवादास्पद विषय है।

He looks to the mere chance. वह प्रारब्ध पर बैठा है।

This opportunity slipped through my finger. यह मौका मेरे हाथ से छूट गया।

The thief was caught red-handed चोर सेंध पर पकड़ गया।

He is dead shot. उसका निशाना अचूक होता है।

I have cut off connection. with him, मैंने उससे सब सम्बन्ध छुड़ा लिया है।

This does not hold good here. यह नियम यहाँ नहीं लगता है।

I did him a good turn. मैंने उसका उपकार किया।

He is as good as his word. वह बात का पक्का है।

There was a dead calm. वहाँ एकदम सन्नाटा था।

All I ask is a fair deal and no favour. मैं केवल न्याय चाहता हूँ, कृपा नहीं।

He is gone for good. वह हमेशा के लिये बिदा हो गया।

He is a man in thousand. वह हजार में एक है।

This is very kind of you. यह आपकी बड़ी कृपा है।

What is the bone of discontent ? असन्तोष का मूल क्या है ?

He lives beyond his means. वह अपनी औकात से बाहर खर्च करता है।

He laid fault at my door. उसने अपना दोष मेरे सिर मढ़ दिया।

His business is at a low ebb. उसका कारबार मंदा है।

He was beside himself with joy. वह आनन्द से अधीर हो गया।

I shall abide by your advice. मैं आपके आदेशानुसार चलूँगा।

He lives in clover. वह सुख से दिन बिताता है।

He cast it in my teeth. उसने मुझे सचेत किया।

I found real friend in you. तुम मेरे सच्चे हितैषी निकले।

You are reasoning in a fallacious circle. तुम्हारे विवाद में अन्योन्याश्रय का दोष है।

He left me in the lurch. उसने विपत्ति में मुझे छोड़ दिया।

All his efforts ended in smoke. उसकी सारी चेष्टाएँ विफल हुईं।

He lives from hand to mouth. वह लूट लाता है, कूट खाता है।

He poured oil on the troubled waters. उसने हलचल शान्त कर दी।

I shall pay him back in his own coin. मैं उसको अच्छा पलटा दूँगा।

It cannot be helped. इसका कोई चारा नहीं है।

He is a man of principle. वह पक्के सिद्धान्त का आदमी है।

He can make both ends meet with much difficulty. वह बड़ी मुश्किल से गुजर कर सकता है।

The accused will be made an example of. अभियुक्त को ऐसा दण्ड दिया कि वह दृष्टान्त-स्वरूप बन जायगा।

You threw cold water upon his zeal. तुमने उसके जोश को ठण्ढा कर दिया।

It does not stand to reason. यह बात युक्तिसङ्गत नहीं है।

He has stepped into the shoes of his father. वह अपने पिता के पद पर नियुक्त हुआ है।

I must do it by hook or by crook. चाहे जैसे हो मैं इस कामको आवश्य करूँगा।

He makes much ado about nothing. वह जरा-सी बात के लिये इतना तूलकलाम करता है।

You must take the bull by the horns. तुम्हें वीरता-पूर्वक विपत्ति का सामना करना चाहिये।

He is undone. उसका सत्यानाश हो गया।

He breathed his last. वह सदा के लिये सो गया।

He paid the debt of nature. वह पञ्चत्व को प्राप्त हुआ।

He went to the next world. उसका परलोक-वास हो गया।

He gave up the ghost. उसका प्राणान्त हो गया।

He is no more. वह अब संसार में नहीं है।

The time is up. समय हो गया।

The task is over. यह पाठ समाप्त हो गया।

Section VIIi

Proverbs लोकोक्तियाँ

जिस तरह हमलोग हिन्दी कहावतों का प्रयोग करते हैं, उसी तरह अंग्रेजी में अक्सर Proverbs का व्यवहार होता है। विद्यार्थियों को बहुधा इन proverbs का अनुवाद करने में कठिनता हो जाती है। अतएव हम नीचे कुछ अंग्रेजी Proverbs के हिन्दी पर्याय दे देते हैं।

1, A bad workman quarrels with his tools. चले न जाने आँगन टेढ़।

2. A bird in hand is worth two in the bush. नौ नगद न तेरह उधार।

3. A new broom sweeps better. नया नौकर शेर मारता है।

4. A rolling stone gathers no moss. बहता पानी निर्मला।

5. Once bit twice shy. दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है।

6. Cut your coat according to your cloth. तेतो पाँव पसारिये जेती लम्बी सौर।

7. All is well that ends well अन्त भला तो सब भला।

8. To strain at gnat and sawllow a camel. गुड़ खायें गुलगुलों का परहेज।

9. An idle man's brain is the workshop of the devil. खाली मन शैतान का अड्डा।

10. To kill two birds with one stone. एक पंथ दो काज।

11. Go out for wool and come home shorn. चौथे गये छब्बे होने दूबे होकर आये।

12. Out of the frying pan into the fire. गये नमाज छुड़ाने रोजा गले पड़ा ।
13. Many a little makes a mickle. बूँद-बूँद तालाब भरे ।
14. Penny wise Pound foolish. अशर्फी की लूट कोयले पर मुहर ।
15. Every dog has his day. बारह बरस पर कोढ़ी के भी दिन फिरते हैं ।
16. Every miller draws water to his own mill. सभी अपना-अपना स्वार्थ चाहते हैं ।
17. Two of a trade connot agree. दो तलवारें एक म्यान में नहीं रह सकतीं ।
18. Birds of the same feather flock together. चोर-चोर मसिऔरे भाई ।
19. To make a mountain of a molehill. तिल का ताड़ बनाना ।
20. To harp on the same string. गाये हुए गीत को गाना ।
21. To blow one's own trumpet. अपना ही राग अलापना । अपनी ही डफली बजाना ।
22. To follow the beaten track. पुरानी लकीर का फकीर होना ।
23. To build castles in the air. ख्याली पोलाव पकाना । मनमोदक खाना ।
24. To say ditto हाँ-में-हाँ मिलाना ।
95. To give tit for tat. मुँहतोड़ जवाब देना । अदले का बदला चुकाना । शंठ प्रति शाठ्यम् ।
26. To count one's chickens before they are hatched. गाछे कटहल ओठें तेल ।
27. There are black sheep in every society. काबुल में भी गधे होते हैं ।

28. Do not cry before you are out of the wood. जंगल से छूटकर तब मंगल मनाना चाहिये ।
29. Physician, heal thyself. परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
30. Take the beam out of your own eye before you seek to remove the mote from mine. पहले अपनी खबर लो, पीछे औरों की सुध लेना ।
31. Prosperity begets friends, adversity tries them. जब लौं सम्पति प्रीत है विपति पड़े अनरीत ।
32. Coming events cast their shadows before. होनहार बिरवान के होते चीकने पात ।
33. A friend in need is a friend indeed. विपद पड़े जो कर गहे सोई साँचो मीत ।
34. Make hay while the sun shines. Strike the iron while it is hot. जब लौं शर छूटे नहीं, तब लौं सधै निशान ।
35. Let bygones be bygones. बीती ताहि बिसारिये । गतस्य शोचना नास्ति
36. Time is money. समयो हि महाधनम् ।
37. Health is wealth. एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत ।
38. Silence is golden. सबसे भलो चुप्प ।
39. Art is long and time is fleeting. स्वल्पश्च जीवो बहुला च विद्या ।
40. Necessity is the mother of invention. आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है ।
41. Necessity knows no law. बुभुक्षितः किन्न करोति पापम् ।
42. To the pure, everything is pure. मन चंगा त कठौती में गंगा ।

43 Virtue must prevail in the long run. यतो धर्मस्ततो जयः ।

44. Self-praise is no recommendation. अपने मुँह मियाँ मिट्ठू ।

45. A man is known by the companv he keeps. संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।

46. Misfortune seldom comes alone. विपद् अकेले नहीं आती ।

47. A soft answer turneth away wrath. मधुर वचन सों क्रोध नसाहीं ।

48. Forgiveness is the noblest revenge. क्षमा साधु प्रतीकारः ।

49. Fine words butter no parsnips. खाली बातों से पेट नहीं भरता ।

50. Something is better than nothing. अकरणान्मन्दं करणं श्रेयः । नहीं से कुछ अच्छा ।

51. Half a loaf is better than no loaf. सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः ।

52. Union is strength. एकता ही बल है ।

53. Too many cooks spoil the broth. बहुत हाथ सों काज नसाय । बहुत योगी की हानि ।

54. Uneasy lies the head that wears the crown. राजा को नींद कहाँ !

55. Out of sight, out of mind. आँख से ओझल मन से बाहर ।

56. Rome was not built in a day. कारज धीरे होत है काहे होत अधीर ।

57. The excess of everything is bad. अति सर्वत्र वर्जयेत् ।

58. As we sow, so we must reap. जो जस करहि सो तस फल चाखा।
59. A tree is known by its fruits. फलेन परिचीयते।
60. Might[1] is right. जिसकी लाठी उसकी भैंस।
61. Handsome is that handsome does. काम प्यारा है, चाम नहीं।
62. One swallow does not make a summer. अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता।
63. A drowning man will catch at a straw. डूबते को तिनके का सहारा।
64. Like master like men. यथा राजा तथा प्रजा।
65. Empty vessels sound much. अधजल गगरी छलकत जाय।
66. Barking dogs seldom bite. जो गरजता है सो बरसता नहीं।
67. Man proposes, God disposes. होइहैं सोई जो राम रचि राखा। होता है वही जो मंजूरे खुदा होता है।
68. What is lotted cannot be blotted. करम गति टारे नाहिं टरे। भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है।
69. Where there is a will, there is a way. जहाँ चाह तहाँ राह।
70. A word is enough to the wise. अक्लमन्द को इशारा काफी है।
71. Apparel oft proclaims the man. वासः प्रधाने खलुयोग्यताया:।
72. Pride must fall. अतिगर्वोद्धतो बाली।
73. Too much familiarity breeds contempt. अति-परिचयादवज्ञा। मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जराय।
74. Distance lends enchantment to the view. दूर का ढोल सुहावना। घर का योगी जोगड़ा बाहर का योगी सिद्ध।

75. All that glitters is not gold. पीत वरन चकमक करै, सबै न सुरबन होय।

76 To cast pearls before swine. बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद -

77. The wearer best knows where the shoe pinches. जाके पाँव न फटै बिवाई, सो क्या जाने पीरा पराई।

78. Patience is bitter, but its fruit is sweet. सब्र के गाछ में मेवा फलता है।

79. While there is life, there is hope. जबतक साँस तबतक आस।

80. Black will take no other hue. सूरदास की काली कमरिया चढ़े न दूजो रंग।

81. To cherish a serpent in one's bosom. साँप को दूध पिलाकर पोसना।

82. To slay the slain. मरे को मारना।

83. To break a bruised reed. जले पर नमक छिड़कना।

84. To err is human. मुनीनाञ्च मति-भ्रमः

85. To lock the stable door when the steed is stolen. अब पछताये होत क्या, चिड़ियाँ चुँग गई खेत।

86, Much cry and little wood. बह्वारम्भे लघु क्रिया।

87. Well begun is half done. पहले मारे सो मीर।

88. Measure for measure. जैसी करनी वैसी भरनी।

89. To rob Peter to pay Paul गाय मार कर जूता दान।

90. It is never too-late to mend. सुबह का भूला यदि शाम को लौट आये तो भूला नहीं कहलाता।

91. The burnt child dreads the fire. दूध का जला, मठा फूँक-फूँक कर पीता है।

92. There is many a slip between the cup and the lip. श्रेयांसि बहु विघ्नानि।

93. Too much courtesy; too much craft. अति भक्ति चोर का लक्षण है।
94. Ill-got ill-spent. पाप का धन प्रायश्चित्त में हो जाता है।
95. The grapes are sour. खट्टे अंगूर कौन खाय।
96. To count one's chickens before they are hatche . पानी में मछली नौ-नौ कुटिया बखरा।
97. To be between Scylla and Charybdis. जल में मगर थल में बाघ।
98. No one knows the weight of mother's burden. बाँझ क्या जाने प्रसव की पीड़ा।
99. God never sends mouths, but he sends meat. पेट दियो करतार ने, सोई दिहैं अहार।
दास मलूका कहि गयो, सबके दाता राम।
100. Nothing venture, nothing have. नहिं सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।
101. Fortune favours the brave. उद्योगिनं पुरुषसिंह-मुपैति लक्ष्मीः।
102. Riches have wings. सदा न थिर रहे।
103. A little leak will sink a great ship. छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवन्ति।
104. Time and tide wait for no man. गया वक्त फिर लौट आता नहीं। समय किसी के लिए रुका नहीं रहता।
105. There is no rose without a thorn. बिनु छाया परकास नहिं बिनु काँटा न गुलाब।
106. A honey tongue, a heart of gall. मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे, हृदिहालाहलं विषम्।
विष कुम्भं पयो मुखम्।
107. It takes two people to make a quarrel. एक हाथ से ताली नहीं बजती।

108. Fools give feasts and wisel men eat them. अन्हरा धन संचय करै ठगवा ठकि-ठकि खाय।

109. A stitch in time saves nine. आगे वाले को ठेस, पिछला हुशियार।

110. A gift horse is not to be looked at in the mouth. मँगनी के बैल के दाँत नहीं देखना चाहिए।

111. All covet, all lose. अतिलोभो न कर्त्तव्यः।

112. Who is to bell the cat. भीषण सिन्धु तरंग में पहले पैठे कौन।

113. Haste is the mother of waste. हड़बड़ काम शैतान का।

114. Woe the time, woe the manner. न वह राम न वह अयोध्या।

115. A little learning is a dangerous thing. नीम हकीम खतरे जान।

116. Look before you leap. बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछताय।

117. It was a nine days' wonder. चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात।

118. Wolves may lose their teeth, but not their nature. चोर चोरी से गया तो क्या, तुम्बाफेरी से जाय तब न।

119. What cannot be cured must be endured. यस्य नास्ति प्रतीकार; शिरोधार्यो हि तद्बुधैः।

120. Prevention is better than cure. अग्रशोची सदा सुखी।

121. Pull your hat on the wind's side. जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै।

122. A man without a purpose is like a ship without a rudder. बिना टेक नर होत है, नाव बिना पतवार।

123. Inscrutable are the ways of death. कालस्य कुटिला गतिः ।

124. Change of fortune is the lot of life. चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।

125. Every one thinks his own geese. ग्वालिन अपने दही को खट्टा नहीं कहती ।

126. If the sky falls we will catch larks. न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी ।

127. Trade is the mother of furtune. व्यापारे वसते लक्ष्मीः ।

128. Self-preservation is the first law of nature. घर में दिया जलाकर मस्जिद में दिया जलावे ।

129. United we stand, divided we fall. अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।

130. Whatever God does, does for the good. ईश्वर जो कुछ करता है सब अच्छे ही के लिये करता है ।

Section IX

Specimens of Translation

अनुवाद का उदाहरण

Historical and Biographical

[ऐतिहासिक तथा जीवन-चरित्र सम्बन्धी]

[Paragraphs अनुच्छेद]

Not a shadow passed over the face of Rama as he listened to this demand. Nor did those outside the palace, who saw him a few minutes later, perceive in him the slightest sign of mental trouble. Fully agreeing with Kaikeyi that the king's word must at all costs be kept, touching his father's feet with his head and seeking in vain to offer him consolation, he cheerfully gave the pledge his step-mother required, and turned away as happily as he had come, to make preparation for his departure. He had recognised in his mind, the moment he heard the words of Kaikeyi, that she was merely voicing the will of some power behind herself.

[Ent. Ex. 1909]

रामचन्द्र ने जब यह आदेश सुना तब उनके मुख-मण्डल पर विषाद की छाया तक नहीं दीख पड़ी। इतना ही नहीं कुछ क्षणों के उपरान्त जब राजमहल के बाहर लोगों ने उन्हें देखा तब भी उनमें मानसिक दुःख का अणुमात्र चिह्न नहीं पाया गया। "चाहे जिस प्रकार हो राजा की बात रह जानी चाहिये" इस बात में रामचन्द्रजी कैकेयी की इच्छा से पूर्णतया सहमत हो गये। उन्होंने अपने पिता के चरणों में सिर टेककर उन्हें बहुत तरह समझाया

किन्तु सब निष्फल हुआ। तब उन्होंने हर्षपूर्वक विमाता की इच्छा पालन करने के लिये उन्हें वचन दिया और जिस प्रकार प्रसन्नचित्त से वहाँ आये थे, ठीक उसी प्रकार वनगमनार्थ प्रस्तुत होने के लिये प्रस्थान किया। उस समय उन्होंने समझ लिया कि यह आदेश कैकेयी का नहीं है, बल्कि यह किसी बाहरी शक्ति की इच्छा का प्रतिध्वनिस्वरूप है।

We are also told that Ajatsatru fortified his capital, Rajgriha, in expectation of an attack about to be made by king Pradyala of Ujjaini. It would be most interesting to know whether the attack was ever made, and what measure of success it had. We know that afterwards in the fourth century B. C. Ujjaini had become subject to Magadh, and that Asoka, when a young man, was appointed Governor of Ujjaini, but we know nothing else of the intermediate stages which led to the result.

[Cal. I. A. 1909]

यह भी कहा जाता है कि उज्जयिनी के राजा प्रद्याल द्वारा आक्रमण होने की आशंका से अजातशत्रु ने अपनी राजधानी, राजगृह को (दुर्गादि द्वारा) सुरक्षित किया। यह आक्रमण कभी हुआ या नहीं और इसमें कितनी सफलता हुई, यह जानना अत्यन्त ही मनोरञ्जक होगा। हमें यह विदित है कि पीछे चतुर्थ शताब्दी (खीष्टाब्द के पूर्व) उज्जयिनी मगध के अधीन हो गया था और कुमार अशोक उसके शासक नियुक्त हुए थे। किन्तु किन-किन मध्यवर्ती घटनाचक्रों के द्वारा ऐसी अवस्था आई, यह हमलोगों को कुछ मालूम नहीं है।

Vidyasagar was a very generous and charitable man. From his earliest years he helped the poor and needy to the utmost of his power. As a boy at school, he often gave the little food he had to eat, to another boy who had none. If one of his

school fellows fell ill, little Ishwar would go to his house, sit by his bed and nurse him. His name became a household word in Bengal. Rich and poor, high and low, all loved him alike. No beggar ever asked him for relief in vain. He would never have a porter at his gate lest some poor man who wished to see hime might be turned away.

[Patna Uni. Matric 1918]

विद्यासागर अत्यन्त ही उदार एवं दानी थे। आपने बाल्यावस्था से ही दीन-दुखियों की सहायता करने में कुछ उठा न रखा। जब आप पाठशाला के छात्र थे, तब आपके जलपान के लिये जो कुछ थोड़ी सामग्री रहती थी उसमें से बहुधा कुछ निकालकर ऐसे विद्यार्थी को दे देते थे जिसके पास कुछ नहीं रहता था। जब सहपाठियों में से कोई बीमार पड़ जाता, तब बालक ईश्वर उसके घर जाते, उसके पास बैठते और उसकी शुश्रूषा करते थे। आपका नाम बंगाल के घर-घर में फैल गया। क्या अमीर, क्या गरीब, क्या छोटे, क्या बड़े, सब उनके साथ एक-सा प्रेम रखते थे। कोई भिक्षुक उनके पास याचना कर विफल नहीं हुआ। उन्होंने अपने फाटक पर कभी दरबान नहीं रखा। यह इसलिये कि कोई गरीब आदमी मिलना चाहे तो कभी निकाल न दिया जाय।

Pratap Sinha became the Rana of Mewar after his father's death, but he had no capital and was without any means. His kindred and clans were dispirited by defeat, after defeats but they yet possessed their noble spirit. So he thought to recover Chitore. Then hostilities began between the Rana and the Moghals, Pratap was single-handed, he had to oppose the combined efforts of the Empire. Therefore he had to flee from rock

to rock, and feed his family with the fruits of his native hills, and bringup his son, Amar Sinha, in the midst of savage beasts. In the face of these difficulties he was undaunted and did not swerve from his firm resoluation.

पिता की मृत्यु के अनन्तर प्रतापसिंह मेवाड़ के राजा हुए। किन्तु न उन्हें राजधानी थी, न विभव। हार खा-खाकर उनके सगे सम्बन्धी निरुत्साह हो चुके थे, किन्तु तो भी उनका आत्म-तेज नहीं गया। उन्होंने चित्तौर का पुनरुद्धार करने की ठानी। राना में और मुगलों में युद्ध छिड़ गया। राना अकेले थे और उन्हें सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य की सम्मिलित शक्तियों का सामना करना था। अतएव उन्हें एक पहाड़ से दूसरे पर भागना पड़ता था। अपने परिवार को पहाड़ी फल खिलाकर रखना पड़ता था और अपने पुत्र अमरसिंह को जङ्गली पशुओं के बीच में रखकर पालना पड़ता था। इन कठिनाइयों के होते हुए भी वे अटल रहे और अपने दृढ़ संकल्प से जरा भी विचलित नहीं हुए।

The first authentic account of Bengal is found in the history of Ceylon. It is recorded in that history that there was a hing of Bengal named Sinhabahu, whose eldest sone Bijay Sinha, on being expelled for tyranny embarked on a voyage, taking seven hundred men with him. After suffering a great deal, he reached the island of Lanka and became king by conquering its inhabitants. On the death of Bijay, his nephew, Panduvas went from Bengal and ascended the throne of Lanka. Panduvas was the founder of the royal line of Lanka, and the island too its name Sinhala, Ceylon, from the reigning Sinha family.

बंगाल का सार्वप्रथम प्रमाणिक विवरण सिंहल के इतिहास में पाया जाता है। उसमें लिखा है कि वंग देश में सिंहबाहु नामक एक राजा था। उसका जेष्ठ पुत्र विजयसिंह प्रजा-पीड़न करने के कारण देश से निकाल दिया गया। उसने सात सौ आदमियों के साथ जहाज पर रवाना हो समुद्र-यात्रा की। वह बहुत क्लेश सह लङ्का में जा पहुँचा। वहाँ के अधिवासियों को जीतकर वह वहाँ का राजा हुआ। विजयसिंह की मृत्यु होने पर उसका भतीजा पाण्डुवास वंग देश से जाकर लंका की राजगद्दी पर बैठा। पाण्डुवास लंका के राजवंश का पहला पुरुष और सिंहवंश का राजा हुआ। इसीलिये इस द्वीप का नाम सिंहल हुआ है।

The precious diamond called the Koh-i-noor now adorns the crown of the Empress of India. It was originally the property of the Hindu kings of Ujjain from whom it passed into the hands of Muhammadans. At last Ranjit Singha recovered it from Shah Suja, the last sovereign of the Doorani line. In 1849, when the English occupied the Punjab, It was taken with other valuable spoils. What changes time works! The prince whose father possessed this invaluable gem is now (1889) wandering homeless in the Russian territories.

कोहेनूर नामक बहुमूल्य हीरा आजकल भारतेश्वरी के मुकुट को सुशोभित कर रहा है। पहले पहल यह उज्जयिनी के हिन्दू राजाओं के अधिकार में था। उनसे यह यवनों के हाथ में चला गया। अन्त में रणजीतसिंह ने दुर्रानी वंश के अन्तिम राजा शाहशुजा से इसका उद्धार किया। १८४९ ई० में अँगरेजों ने पञ्जाब पर अधिकार किया, तब यह हीरा लूट-पाट की और बहुमूल्य वस्तुओं के साथ ले लिया गया। समय क्या ही परिवर्त्तनशील है! जिसके पिता के पास यह अमूल्य रत्न था, वही राजकुमार आजकल (१८८९) निराश्रय होकर रूस देश के प्रान्तों में मारा-मारा फिर रहा है।

Sir Philip Sydney was a brave soldier, a poet and the most accomplished gentleman of his time. At the battle of Zutphen after having two horses killed unber him he received a wound while in the act of mounting a third, and was carried bleeding and faint to the camp. Men wounded in battle usually suffer from extreme thirst, but water at such a time is not easily found. A small quantity was brought to allay the thirst of Sir Philip; but as he was raising it to his lips, he observed that a poor wounded soldier who was carried past at the moment, looked at the cup with wishful eyer. The generous Sydney instantly withdrew it untasted from his mouth and gave it to the soldier, saying, "The necessity is yet greater than mine"

[Cal. Uni. Matric, 1912, Patna Uni. 1923,
Bhagalpur Zilla School, Test, 1927]

सर फिलिप सिडनी साहसी योद्धा एवं अपने समय के सर्वगुणसम्पन्न भद्र पुरुष थे। आप कवि भी थे। जुटफेन के युद्ध में, जब आपके दो घोड़े निहत हो चुके और आप तीसरे पर सवार हो रहे थे, तभी आप घायल हो गये। बेहोशी की हालत में ही आप खीमे में लाये गये। शरीर से शोणित की धारा बह रही थी। युद्धक्षेत्र में आहत मनुष्य स्वभावतः तृषार्त हो उठते हैं, किन्तु ऐसे समय में जल मिलना दुर्लभ रहता है। सर फिलिप के तृषा-निवारण के लिये थोड़ा सा जल लाया गया। पर ज्यों ही आपने उसे होठों से लगाया कि आपकी नजर एक अभागे घायल सिपाही पर जा पड़ी, जो उनके सामने होकर लिवाया जा रहा था। आपने देखा कि सिपाही सतृष्ण नयनों से जल-पात्र की ओर देख रहा है। उदाराशय सिडनी ने तत्क्षण जल को बिना चखे ही हटा

लिया और यह कहते हुए सिपाही को दे दिया कि, "तुम्हारी आवश्यकता मेरी आवश्यकता से भी बढ़कर है।"

Kalidas is known as the Shakespeare of India. His name has been immortalised in the history of Sanskrit literature. He was at the head of the celebrated nine gams which adorned the court of Vikramaditya. The poems and dramas of Kalidas have elicited unreserved prase not only from Indian scholars but even from European critics like Maxmuller. The age in which Kalidas flourished and the place where he was born are matters of dispute. But true genius is independent of time and place and although the century of Kalidas is far remote, his fame is shining with undiminished grandeur even in our own days.

कालिदास भारतवर्ष के शेक्सपीयर (सर्वश्रेष्ठ कवि) कहे जाते हैं। संस्कृत साहित्य के इतिहास में उनका नाम अमर हो गया है। विक्रमादित्य के दरबार को जो प्रसिद्ध नवरत्न शोभायमान कर रहे थे, उनमें कालिदास अग्रगण्य थे। भारतीय विद्वानों ने ही नहीं, प्रत्युत यूरोप के मैक्समूलर प्रभृति समालोचकों ने भी मुक्तकण्ठ से कालिदास के काव्यों और नाटकों की प्रशंसा की है। कालिदास किस युग में विद्यमान थे, उनका जन्म-स्थान कहाँ था, ये सब विवादास्पद विषय हैं। किन्तु वास्तविक प्रतिभा को देश-काल की अपेक्षा नहीं रहती। यद्यपि कालिदास की शताब्दी को बीते हुए बहुत दिन हो गये तथापि उनकी धवल कीर्त्ति आज भी देदीप्यमान है।

Mahatma Gandhi is unanimously looked upon as the greatest man of the world to-day. This is no undeserved epithet. The ideals of self-sacri

and love of truth which he has brought before the world's eye are simply adorable. His message of truth has awakened the sleeping population of India. But Gandhiji, like all other divine personages, belongs not only to particular country, but the whole worlds. His philanthrophic mission is examplary in the history of mankind. It is no wounder if the future progeny looks upon him as the incarnation of God Himself.

आजकल महात्मा गान्धी सर्वसम्मति से संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष माने जाते हैं। महात्माजी सर्वदा इस पद के अनुरूप (पात्र) हैं। आत्म-त्याग और सत्य-प्रेम के जो आदर्श उन्होंने संसार के समक्ष ला रक्खे हैं, वे स्तुत्य हैं। उनके सत्य-संदेश ने भारत की गुप्त जनता को जगा दिया है। किन्तु गांधीजी, और-और दिव्य महात्माओं की नाईं, केवल किसी खास देश के नहीं वरन् सारे संसार के हैं। उनका परोपकार व्रत मनुष्य जाति के इतिहास में दृष्टान्त स्वरूप है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि भावी सन्तान उन्हें साक्षात् ईश्वर का अवतार ही समझने लगें।

Section X

Narrative Paragraph

[गल्पात्मक अनुच्छेद]

A poor boy was employed at the house of a lady of rank as a menial servant. One day finding himself in the lady's dressing-room and perceiving no one there he waited a few moments to take a view of the beautiful things in the apartment. A gold watch, richly set with diamonds, caught his attention, and he could not forbear taking it in his hand. Immediately the wish arose in his mind, "Ah ! if I had such a one !" After a pause, he said to himself, "But if I take it, I shall be a thief." "and yet" continued he, "nobody sees me" No body ! does not God see me, who is Present everywhere." Overcome by these thoughts, laying down the watch, he said, "No ! I had much rather be poor, and keep my good conscience, than be rich and became a rogue."

एक दरिद्र बालक किसी सम्भ्रान्त महिला के यहाँ सेवा-टहल के लिये नियुक्त हुआ था। एक दिन वह उक्त महिला के शृंगार-भवन में जा पहुँचा और वहाँ किसी दूसरे को न देखकर कमरे की सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं का निरीक्षण करने के लिये कुछ देर ठहर गया। उसका ध्यान एक सोने की घड़ी पर आकर्षित हुआ जिसमें बहुत-से मूल्यवान् हीरे जड़े थे। उससे घड़ी हाथ में लिये बिना नहीं रहा गया। तुरंत ही उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई "अहा ! यदि मुझे भी एक ऐसी घड़ी रहती !" जरा ठहरकर उसने अपने मन में कहा—

"यदि मैं इसे ले लूँ तो चोर बन जाऊँगा।" पर मुझे कोई देखता तो नहीं है। "कोई नहीं! क्या सर्वव्यापी परमेश्वर मुझे नहीं देख रहा है।" इस तरह की भावनाओं से अभिभूत होकर उसने घड़ी को रख दिया और कहा—"नहीं नहीं, शठतापूर्वक धन उपार्जन करने की अपेक्षा निर्धन रहकर अपनी आत्मा को निर्मल रखना श्रेयस्कर है।"

A distinguished philosopher was asked by the king of Syracuse, what is God? He desired a day to think upon it. When the day was ended, he desired two days and when these day elapsed he desired four days more. Thus he constantly doubled the number of days in wnich he desired to think of God before he would give an answer. The king at length expressed his surprise at his behaviour, upon which the Poet replied, "The more I think of God, the less am I able to comprehend."

Cal. Uui. Inter. 1909]

सीरेकस देश के राजा ने एक प्रसिद्ध दार्शनिक से पूछा कि ईश्वर क्या है? उस (दार्शनिक) ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये एक दिन की मुहलत चाही। जब वह दिन बीत गया तब उसने और दो दिन की मुहलत चाही। जब ये दो दिन समाप्त हो गये, तब उसने चार दिन माँगे। इसी तरह वह ईश्वर सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर पर विचार करने के लिये लगातार द्विगुणित अवधि का समय माँगने लगा। अन्त में राजा ने उसके व्यवहार पर आश्चर्य प्रगट किया। तब उसने उत्तर दिया—'जितना ही अधिक मैं ईश्वर के विषय में विचार करता हूँ उतनी ही बुद्धि चक्कर खाने लगती है।"

In Calcutta, the earthquake caused great excitement among the people in the northern division of the town. As soon as it became known that the

earth was shaking, people came running out of their houses into the streets. As usual on such occasions, the women began to blow their favourite conchces and the almost simultaneous blowing of thousands of conches caused a tremendous hubbub. Many theories were advanced by superstitious people to account for the occurrence. The most popular among them was that Vasuki, who bears the earth on her shoulders, sometimes seeks relief in a change of position and shifts the globe from one shoulder to another, hence the earthquake.

कलकत्ते में, भूकम्प के कारण, शहर के उत्तरीय विभाग के अधिवासियों में बड़ी उत्तेजना फैली। ज्योंही यह मालूम हुआ कि पृथ्वी हिल रही है; त्योंही लोग अपने घरों से दौड़े हुए सड़कों पर आये। जैसा कि इन अवसरों पर होता है, स्त्रियों ने एक बार ही शङ्खध्वनि करना शुरू किया और हजारों शङ्खों की ध्वनि से एक भीषण कोलाहल पैदा हो गया। इस घटना के कारण ढूँढ़ निकालने के लिये अन्य-विश्वासी लोगों ने अनेक सिद्धान्त निकाले। उनमें सबसे अधिक प्रचलित सिद्धान्त यह था कि वासुकी देवी जो पृथ्वी को अपने कन्धों पर लिये रहती है कभी-कभी विश्राम के लिये अदल-बदल करती है और पृथ्वी को एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर लेती है। इसीसे भूकम्प होता है।

Once upon a time the mice being sadly distressed by the persecution of the cat, called a meeting to decide upon the best means of getting rid of this continual annoyance. Many plans were discussed and rejected. At last, a young mouse got up and proposed that a bell should be hung round the cat's neck. that they might for the future

always have notice of her coming. This proposition was hailed with the greatest applause, and was agreed to unanimously, upon which an old mouse got up and said that he considered the contrivance most ingenious, but he had only one short qnestion to put, namely which of them it was who would bell the cat.

एक समय मूसों ने बिल्ली के उपद्रव से अत्यन्त दुःखित होकर, यह विचारने के लिये एक सभा की कि निरन्तर उत्पात से छुटकारा पाने का सब से बढ़िया कौन उपाय है। बहुत से उपाय वाद-विवाद के अनन्तर अस्वीकृत हुए। अन्त में एक जवान चूहे ने उठकर प्रस्ताव किया कि बिल्ली के गले में एक घंटी लटकाई जानी चाहिये, ताकि भविष्य में सर्वदा उन्हें बिल्ली के आगमन की सूचना मिलती रहे। इस प्रस्ताव का तुमुल हर्षध्वनि के साथ स्वागत हुआ और यह सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। इस पर एक बूढ़ा चूहा उठा और बोला, "मेरी समझ में यह उपाय वस्तुतः चमत्कार पूर्ण है। किन्तु मुझे केवल एक छोटा-सा प्रश्न पूछना है। वह यह कि 'बिल्ली के गले में घंटी बाँधेगा कौन !"

A dispute once rose between the Wind and the Sun, as to which was the stronger of the two; and they agreed to put the point upon this issue that whichever soonest made a traveller take off his cloak, should be accountd the more powerful. The Wind began, and blew with all his might and main. But the stronger he blew, the closer the traveller wrapped his clock around him, and the tighter he grasped it with his hands. Then broke out the Sun, with his welcome beams he dispersed the vapour and the cold; the traveller felt the genial warmth, and as the Sun shone brighter and

brighter, he sat down, overcome with the heat, and cast his cloak on the ground.

एक समय सूर्य और वायु में विवाद छिड़ा कि दोनों में अधिक बलवान कौन है। अन्त में इन्होंने इस बात पर निपटेरा रक्खा कि जो एक पथिक का लबादा सबसे शीघ्र उतरवा देगा, वही अधिक बलवान् समझा जायगा। वायुराज ने प्रारम्भ किया और लगे अपनी सारी शक्ति लगाकर बहने। पर ज्यों-ज्यों वायु का वेग प्रचण्ड होता गया, त्यों-त्यों वह पथिक और भी सटाकर अपने लबादे को लपेटने लगा और दोनों हाथों से खूब कसकर थाम लिया। तब सूर्य देवता प्रकट हुए। अपनी सुखद किरणों से उन्होंने जाड़े और कुहासे का विनाश कर डाला। यात्री को सुखदायक गर्मी मालूम हुई। जब सूर्य का प्रकाश निरन्तर बढ़ता ही गया, तब वह बैठ गया और गर्मी से क्लान्त होकर अपने लबादे को जमीन पर रख दिया।

It was considerably past midnight. One morning in the sultry month of April, a human figure was seen moving in a street of Kanchanpur, a village about six miles to the north-east of the town of Burdwan. There was no moon in the heavens as she had already disappeared behind the trees on the western skirts of the village, but the sky was it up with myriads of stars, which were regarded with superstitions awe by our nocturnal pedestrian as if they were the bright eyes of men who once lived on the earth and had since passed into the realm of Indra. Perfect stillness reigned everywhere, except when it was interrupted by the barking of dogs or the yells of the village watchmen, two or three of whom often Joined in a chorus

and sent forth those unearthly shouts which so often disturb the sleep of the peaceful inhabitants.

[Bengal Peasant life]

प्रचण्ड वैशाख का महीना था। आधी रात से कुछ ऊपर हो चला था। काञ्चनपुर नामक ग्राम में सड़क पर चलता हुआ एक मनुष्य दृष्टिगोचर हुआ। यह गाँव बर्दवान से लगभग ३ कोस उत्तर-पूर्व के कोने में बसा था। इस समय गगन-मंडल से चन्द्रदेव तिरोहित हो चुके थे। ग्राम के पश्चिम प्रान्तवर्ती वृक्षों की ओट में उनका अस्त हो गया था। किन्तु असंख्य तारागणों के आलोक से आकाश प्रकाशित था। हमलोगों का निशागामी पथिक कुसंस्कारजनित भय के कारण सोचने लगा कि पृथ्वीतल के जो मनुष्य मरकर इन्द्रलोक चले गये हैं, उन्हीं के उज्ज्वल नेत्रसमूह नक्षत्र के रूप में विराजमान हो रहे हैं। चारों ओर गम्भीर निस्तब्धता का साम्राज्य फैला हुआ था। केवल कुक्कुर का भीषण रव और पहरेदारों की उत्कट चीत्कार-ध्वनि बीच-बीच में निस्तब्धता भंग कर रही थी। कभी-कभी दो-तीन पहरेदार एक साथ मिलकर विकट चीत्कार से शान्तिप्रिय ग्रामवासियों की निद्रा में व्याघात पहुँचा रहे थे।

There was a Brahmin in the city of Vana whose name was Deva Sarma. At the equinoctial feast of Dasahara, he obtained for his Dakshina gift a dish of flour, which he took into a potter's shed, and there lay down in the shade among the pots, with a staff in hand. As he thus reclined, he began to meditate—'I shall sell this meal for ten couree-shells and with them I shall purchase some of these pots and sell them at an advance. All that money I shall invest in betel-nuts and make a new profit from their sale; so go on trafficking till I get a lakh of rupees—what's to prevent me? Then I shall marry four wives and one at least will

be beautiful and young and she will be my favourite. Of course, others will be jealous, but if they quarrel and trouble me, I will belabour them like this, and therewith he flourished his staff to such a purpose as to smash his meal-dish and several of the potter's jars. The potter, rushing out, took him by the throat and turned him off. So ended his speculations.

बर्द्वान नगर में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। महाविषुव संक्रान्ति के उपलक्ष्य में उसे एक ढकना सत्तू दक्षिणा में मिला। उसे लेकर वह एक कुम्हार के घर गया और हाथ में लाठी लिये हुए—बर्त्तनों के बीच छाया में सो रहा। लेटे-लेटे वह सोचने लगा—इस सत्तू को मैं दस कौड़ी में बेचूँगा। इन कौड़ियों से मैं कुछ बर्त्तन खरीदूँगा और उन्हें मैं अधिक मूल्य पर बेच दूँगा। वे रुपये मैं सुपारी के व्यापार में लगाऊँगा और उसके विक्रय से भी लाभ उठाऊँगा। इसी तरह व्यापार करते-करते एक लाख रुपया जमा कर लूँगा। इस विषय में मुझे विघ्न ही क्या हो सकता है? उसके बाद मैं चार विवाह करूँगा। कम-से-कम एक भी तो उनमें रूपवती और युवती होगी। वह मेरी प्रियतमा होगी। अन्य स्त्रियाँ अवश्य ही उससे ईर्ष्या करेंगी, किन्तु यदि वे लड़-झगड़कर मुझे तंग करेंगी तो मैं उन्हें ठीक कर दूँगा। यह कहकर इस तरह लाठी चलाई कि सत्तू का बर्त्तन और कुम्हार के कितने ही घड़े चकनाचूर हो गये। कुम्हार ने झट निकल ब्राह्मण को गरदनिया दे निकाल बाहर किया। इस तरह उनकी सारी भावनाओं का अन्त हुआ।

———

Section XI

Reflective Paragraphs

[विचारात्मक अनुच्छेद]

He really is a gentleman who thinks for the good of others, who does not think of himself, who, desiring to make life pleasant to all is genial, bright and kind; courteous in manner and in speech, self-denying; and willing to sacrifice himself for the good of his fellowmen. The perfect gentleman must be unselfish, refined in feeling noble in thought. And any man who forgets himself and lives a life of regard for others, is sure, by the very fact of that life, to have some refinement and some nobility. Thus the simple husband in a village who gives up his leisure and personal comfort for the comfort and improvement of his fellows, who listens with enthusiastic devotion to the sacred call of Duty, this man howsoever poor, and uneducated is at heart a gentleman.

जो दूसरे की हितकामना करता है; जो अपने स्वार्थ के लिए चिन्ता नहीं करता, जो अपने जीवन को सबके लिये सुखद बनाना चाहता है, जो सर्वदा प्रफुल्ल, हृष्ट और सदय रहता है, वचन और व्यवहार में विनयी होता है, जो संयमी, स्वार्थत्यागी और परहित के निमित्त आत्म-बलिदान करने के लिये प्रस्तुत रहता है, वही यथार्थतः सज्जन पुरुष है। वास्तविक सज्जन निःस्वार्थ होता है। उसकी मनोवृत्ति निर्मल होती है; उसके विचार समुन्नत होते हैं। जो व्यक्ति स्वार्थ-चिन्ता को

भूलकर परोपकार-व्रत में जीवन-यापन करता है, उसके स्वभाव में आप-ही आप सभ्यता एवं उदारता का समावेश हो जाता है। इसी कारण जो गाँव में रहनेवाला सरल-प्रकृति किसान अपने आराम और व्यक्तिगत सुख को दूसरे के सुख और अभ्युदय के हेतु तिलाञ्जलि देता है, उत्साहपूर्वक कर्तव्य के पवित्र आह्वान का आदर करता है, वही, दरिद्र और अशिक्षित होते हुए भी वास्तविक सज्जन है।

Be grateful to your parents. The time was when you were cast wholly on their kindness, when you could neither speak nor walk, when you were only a burden and care to them. But did they forsake you? When you were sick, how tenderly did they hang over you. When you were in want of anything, how cheerfully did they toil to supply your need. Surely there cannot be a greater monster than an ungrateful child. Place confidence in your parents; you should have no secrets, which you are unwilling to tell them. If you have done wrong, you should openly confess it and ask their forgiveness. If you wish to undertake anythink ask their consent.

[Cal. Uni. Matric 1910]

माता-पिता के प्रति कृतज्ञ होओ। एक ऐसा समय था जब तुम सभी प्रकार से उनकी दया पर अवलम्बित थे। तब तुम न बोल सकते थे, न चल-फिर सकते थे; उस समय तुम उन लोगों के केवल भार एवं चिन्तास्वरूप थे; किन्तु उन्होंने तुम्हारा परित्याग किया? जब तुम बीमार पड़ जाते थे तब वे कितना स्नेहपूर्वक तुम में लगे रहते थे। जब तुम्हें किसी वस्तु का अभाव होता था तब वे कैसी प्रसन्नता के साथ तुम्हारी आवश्यकता-पूर्ति के लिये प्रयत्न करते थे! वास्तव में कृतघ्न सन्तान की अपेक्षा जघन्य पिशाच कोई नहीं। अपने माता-पिता में विश्वास रखो। तुम्हें ऐसे गुप्त विषय नहीं रखने चाहिये जो

उनके सामने प्रकट करने में अनिच्छा ज्ञान पड़े। यदि तुमने गलती की है तो तुम्हें स्पष्टतया स्वीकार कर उनसे क्षमा माँगनी चाहिये। यदि तुम किसी काम में हाथ डालना चाहते हो तो उनकी सम्मति पूछ लो"।

We must take plenty of exercise. To make the body strong we must use it. The parts that are most used become the strongest, and those we use least will be the weakest. The arms of the black-smith are very strong because he uses them so much. Ours are weaker than his because we use them so much less. The man who works regularly every day becomes strong, while the idle man becomes weak. The boy who works and plays in the open air grows strong and healthy, but the boy who sits indoors and does not take exercise grows up to be a weak and unhealthy man. It is best to take our exercise in the open air and sunlight. Games like football and cricket are good for boys. When no games can be played a brisk walk in the open air is quite as good. Brisk walking is one of the easiest and best of exercises. [Cal. Uni. Matric 1914]

हम लोगों को यथेष्ट मात्रा में व्यायाम करना चाहिये। शरीर को सबल बनाने के लिये उसका सञ्चालन करना आवश्यक है। शरीर के जो अंग सबसे अधिक संचालित होते हैं, वे सर्वापेक्षा बलवान् हो जाते हैं और जो अङ्ग सबसे कम संचालित होते हैं, वे सर्वापेक्षा निर्बल बन जाते हैं। लुहार की बाहें बड़ी मजबूत होती हैं क्योंकि वह उनका बहुत अधिक उपयोग करता है। हमलोगों की बाहें कमजोर होती हैं, क्योंकि हम लोग उनका कम उपयोग करते हैं। जो मनुष्य नियमित रूप से प्रतिदिन काम करता है, वह बलवान् हो जाता है और आलसी मनुष्य दुर्बल ही होता जाता है। जो लड़का खुली हवा में काम करता

है और खेलता है वह स्वस्थ एवं सबल बन जाता है; किन्तु जो बालक घर के भीतर बैठा रहता है और व्यायाम नहीं करता, वह दुर्बल एवं अस्वस्थ बन जाता है। खुली हवा और प्रकाश में व्यायाम करना सबसे अच्छा होता है। गेंद और क्रिकेट के समान खेल लड़कों के लिये अच्छे होते हैं। जब कोई खेल नहीं खेला जा सकता, तब खुली हवा में तेजी के साथ टहलना भी वैसा ही अच्छा होता है। तीव्र गति से टहलना भी सबसे अधिक सरल एवं उत्कृष्ट व्यायाम है।

In order to keep our bodies strong and healthy, we should take regular exercise. Football, cricket, running, jumping, walking are all most useful for keeping us in good health. And when we enjoy a game, we get pleasure as well as health from it. So you should all take part in the games that are played as school, for it is as much our duty to keep our bodies strong as it is to fill our minds with knowledge.

If our bodies are weak and sickly, our minds too are likely to be sickly and unhealthy. A good brain should have healthy body to live in.

(Cal. Uni. Matric 1915)

शरीर को सबल एवं स्वस्थ रखने के हेतु हमें नियमित व्यायाम करना चाहिये। गेंद, क्रिकेट, दौड़ना, कूदना, टहलना ये सब हमें स्वस्थ बनाये रखने के हेतु अत्यन्त उपयोगी हैं। जब हमलोग किसी खेल का आनन्द लूटते हैं, तब हमें स्वास्थ्य एवं आनन्द दोनों ही प्राप्त होते हैं। अतएव पाठशाला में जो-जो खेल खेले जाते हैं, हम सबों को उनमें भाग लेना चाहिये। क्योंकि हमलोगों के लिये शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखना उतना ही कर्त्तव्य है जितना मन को विद्या से भरना। दुर्बल एवं रुग्ण शरीर रहने से मन के भी दुर्बल एवं

रुग्ण हो जाने की सम्भावना रहती है। उत्तम मस्तिष्क को रहने के लिये स्वस्थ शरीर चाहिये।

Biographies of great, but especially of good men, are most instructive and useful, and they are helps, guides, and incentives to others. Some of the best are almost equivalent to gospels teaching high living, high thinking, and energetic action for their own and the world's good. The valuable examples which they furnish of the power of self-help, of patient purpose, resolute working and steadfast integrity, issuing in the formation of a truly noble and manly character, exhibit in language not to be misunderstood, what it is in the power of each to accomplish for himself.

महापुरुषों के विशेषतः सत्पुरुषों के जीवन-चरित्र अत्यन्त ही शिक्षाप्रद एवं उपयोगी होते हैं। वे दूसरे के लिये सहायक, पथ-प्रदर्शक एवं प्रोत्साहक होते हैं। कई श्रेष्ठ जीवन-चरित्र तो प्रायः धर्मशास्त्र के समान उन्नत जीवन, उच्च विचार एवं अपने तथा संसार के उपकार के लिये उत्साहपूर्ण कर्म की शिक्षा देते हैं। ये जीवन-चरित्र स्वावलम्बन की शक्ति, स्थिर संकल्प, अटल कार्यानुष्ठान, अविचल साधुता आदि गुणों के बहुमूल्य दृष्टान्त प्रदर्शित करते हैं। इन्हीं गुणों के द्वारा यथार्थतः महान् एवं मनुष्योचित चरित्र का निर्माण होता और उनके उदाहरण स्पष्टाक्षरों में यह बतलाते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में अपने लिये कितनी उन्नति करने की शक्ति है।

It is true that a sense of duty may at times render it necessary for you to do that which is displeasing to your companions. But if it seem that you have a kind spirit, that you are above selfishness, that you are willing to make sacrifices of your own conveni-

ence to promote the happiness of your associates, you will never be in want of friends. You must not regard it as your misfortune, but as your fault, when others do not love you. It is not beauty, it is not wealth, that will give you friends. Your heart must glow with kindness if you would attract to yourself the esteem and affection of those by whom you are surrounded.

[Ent. Ex. 1908]

यह बात सत्य है कि कभी-कभी कर्त्तव्य-ज्ञान के अनुरोध से तुम्हें ऐसा करना आवश्यक पड़ता है, जो तुम्हारे साथियों को अप्रिय जान पड़े किन्तु यदि यह सत्य है कि तुम्हारा चित्त दयालु है, तुम स्वार्थ से परे हो और तुम्हें अपने सहचरों के सुख-साधन के निमित्त अपनी व्यक्तिगत सुविधा को तिलाञ्जलि देने की इच्छा रहती है तब तुम्हें मित्रों का कभी अभाव नहीं होगा। यदि दूसरे लोग तुम्हारे साथ प्रेम नहीं रखते तो तुमको इसे अपना दुर्भाग्य नहीं वरन् अपना अपराध समझना चाहिये। मित्रों का मिलना न सौंदर्य से होता है, न धन से। यदि तुम अपने चारों ओर के पास-पड़ोस का स्नेहभाजन एवं श्रद्धापात्र बनना चाहते हो तो तुम्हारा अन्तःकरण दया के भाव से ओत-प्रोत रहना चाहिये।

Our character is very much affected by the company we keep. The mind of youth is very susceptible, is capable of quickly receiving impressions, hence a youth quickly imbibes the disposition of his companions. Boys are spoiled in youth if they keep company with bad boys and impsove if their companions are of good disposition and character. In the choice of friends and playmates boys cannot be depended upon, for their judgment is not ripe and they cannot resist the temptations which bad companions put in

their way. The paths of vice are full of charms for the youthful minds, and boys like such companions as lead them to these paths.

हमलोग जो संगति रखते हैं उसका प्रभाव हमारे चरित्र पर बहुत कुछ पड़ता है। युवक का चित्त बहुत ही कोमल होता है, उसकी अनुकरण-प्रवृत्ति अत्यन्त ही प्रबल होती है। इसीसे युवा पुरुष बहुत शीघ्र अपने संगियों के स्वभाव को ग्रहण कर लेता है। दुष्ट लड़कों की संगति में पड़ जाने के कारण बालक बचपन में ही खराब हो जाते हैं। मित्रों और खेल के साथियों के निर्वाचन में लड़कों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, क्योंकि उनका विचार पक्का नहीं होता और बुरे साथी जो प्रलोभन उनके मार्ग में रखते हैं, उनका वे संवरण नहीं कर सकते। पाप के मार्ग तरुण बालकों को बड़े ही मनोहर प्रतीत होते हैं और बालक ऐसे ही साथियों को पसन्द करते हैं जो उन्हें इन मार्गों पर ले जाते हैं।

It must be admitted that unmixed and complete happiness is unknown on earth. No regulation of conduct can altogether prevent passions from disturbing our peace and misfortunes from wounding our heart. But after this concession is made, will it follow that there is no object on earth which deserves our persuit, or that all enjoyment becomes contemptible which is not perfect? Let us survey our state with an impartial eye, and be just to the various gifts of Heaven.

यह बात माननी पड़ेगी कि विशुद्ध एवं पूर्ण सुख संसार में अज्ञात है। हमलोग अपने आचरण का कितना ही नियन्त्रण क्यों न करें, मनोविकारों को शान्ति भंग करने से, तथा विपत्तियों को हृदय पर आघात करने से संपूर्णत: नहीं रोक सकते। किन्तु यह स्वीकार करने पर भी क्या यह निष्कर्ष निकलता है कि संसार का कोई पदार्थ हमलोगों के लिये अनुकरणीय नहीं है, अथवा जो सुख किसी अंश में अपूर्ण हो वह एकदम उपेक्षणीय है? हमलोगों को उचित है

कि पक्षपात-रहित होकर अपनी अवस्था पर विचार करें और ईश्वर ने जो अनेकानेक वस्तुएँ हमें प्रदान की हैं उनकी न्यायपूर्वक समीक्षा करें।

No person can be happy without friends. The heart is formed for love, aud cannot ba happy without the opportunity of giving affection. But you cannot receive aflection unless you will give it. You cannot find others to love you uuless you will also love them. Love is ouly to be obtained by giving cheerful and obliging disposition. You cannet be happy without it. If your companious do not love you, it is your own fault. They cannot help loving: if you be kind and friendly. If you are not loved, it is good evidence that you do not deserve to be loved.

[Entr. Ex. 1908]

मित्रों के बिना कोई मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। हृदय प्रेम के लिये ही बना है और जब तक इसे प्रेम के आदान-प्रदान का अवसर नहीं मिलता, तब तक यह सुखी नहीं हो सकता। किन्तु यदि तुम स्वयं स्नेह प्रदान नहीं कर सकते तो तुम्हें भी स्नेह नहीं मिल सकता है। जब तक तुम दूसरे को प्यार नहीं करोगे, तबतक दूसरे भी तुम्हें प्यार करनेवाले नहीं मिलेंगे। प्रेम का पाना केवल पारस्परिक प्रतिदान पर निर्भर है। इसलिये प्रफुल्लित तथा परोपकारिणी प्रकृति का अनुशीलन करना बहुत ही आवश्यक है। इसके बिना तुम सुखी नहीं हो सकते। यदि तुम्हारे संगी तुमसे स्नेह नहीं रखते तो यह तुम्हारा ही दोष है। यदि तुम सदय एवं मित्रवत्सल बनोगे तो वे तुम्हें प्यार किये बिना न रह सकेंगे। यदि तुम किसी के प्रेमपात्र नहीं हो तो वह काफी प्रमाण है कि तुम प्रेम करने के पात्र नहीं हो।

The special advantage of union is that what we cannot do singly may easily be accomplished with others. Those who act in union are sure to succeed, notwithstanding their weakness and poverty. There is no work that cannot be done through union, and the strength of union is unlimited. Single drops of rain-water are in themselves very trifling things, but when they come down together for a long time, they turn into a stream which sweeps away everything before it by the force of its current. It is union that makes water such a powerful agent in nature.

एकता का विशेष गुण यह है कि जो कार्य हम अकेले नहीं कर सकते, वह दूसरों के साथ मिलकर आसानी से किया जा सकता है। जो एक साथ मिलकर काम करते हैं, वे चाहे निर्बल और दरिद्र ही क्यों न हों, पर काम कर ही लेते हैं। ऐसा कोई काम नहीं है जो एकता के द्वारा संपन्न नहीं हो सकता। एकता के बल की सीमा नहीं है। वर्षा की एक बूँद बहुत ही तुच्छ है, पर जब देर तक बूँदे बरसती हैं, तब धारा बह चलती है और उसके सामने जो कुछ पड़ता है, उसे अपने प्रवाह में बहा ले जाती है। यह एकता ही है जिसके कारण सृष्टि में जल इतना बलवान् तत्त्व बना है।

If you would profit by our reading, we must be careful not only to select proper books, but also to pursue them aright. The same book will affect its readers differently according to the purpose with which they read it. The butterfly flits over the flower-bed, gathering nothing, the spider collects poison from it; but the bee finds and stores up honey; and so the object for which you go to a book, will determine the kind of fruit it

will-yield you. The same volume may be made to minister to instruction, or to rational amusement, or a mere morbid love of excitement. The child takes off the lid of a tea-kettle for sport, the house-wife for use, but James Watt for science, which ended in the improvement of the steam-engine.

[Test Paper, Cal. Uni.]

यदि हमलोग पढ़कर लाभ उठाना चाहें तो हमलोगों को केवल उपयुक्त पुस्तकों के निर्वाचन पर ही ध्यान रखना नहीं होगा प्रत्युत् उनका वास्तविक अनुशीलन करना होगा। पाठकों के अध्ययन के उद्देश्यानुसार एक ही पुस्तक से भिन्न-भिन्न फल मिलता है। तितली फूल पर बैठकर चली जाती है और कुछ भी संग्रह नहीं करती, मकड़ा उससे विष एकत्र करता है, किन्तु मधुमक्खी उससे मधु ग्रहण कर संचय करती है। इसी प्रकार जिस उद्देश्य से पुस्तक का आश्रय लेते हो वह उद्देश्य ही इस बात का निश्चय कर देगा कि इस पुस्तक से तुम्हें क्या लाभ होगा। एक ही पुस्तक से सदुपदेश, मानसिक विनोद अथवा केवल उत्तेजना का अहितकर प्रेम—ये सब भिन्न उद्देश्य सध सकते हैं। चाय की केटली का ढँकना लड़का खेल के लिए उठाता है, गृहिणी गृहकार्य के लिए उठाती है लेकिन जेम्स वाट ने उसे विज्ञान के लिए उठाया था, जिसके द्वारा वाष्पीय यन्त्र की उन्नति हुई।

To live for others is to love others; and only those can rightly do this—so I belive—who dwell near to God. It is the divine light, the divine love, the divine gentleness which makes men true gentle-men. If we love Him, if He lives in our hearts, we shall love our brethren too. This is the noblest life of a man, though it is not mentioned in books on political economy. But there are things, the use of which is beyond calculation of wordly goods and earthly uses; things such as love and honour and soul of man which cannot be bought with

price and which do not die with death. And we, who hope to live beyond this world, must not leave these things out of the lesson of our lives. —Ruskin.

[Test Paper, Cal. Uni.]

परोपकार के लिये जीना और दूसरों के प्रति प्रेम दिखलाना एक ही बात है। मेरा विश्वास है, जो ईश्वर को सामने रखकर जीवन-यापन करते हैं, वे ही वस्तुतः दूसरों को प्रेम कर सकते हैं। केवल ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान, ईश्वरीय प्रेम और ईश्वरीय मृदुता ही मनुष्य को वास्तविक सज्जन बना सकती है। यदि हमलोग उसको प्यार करते हैं, यदि हमलोगों के हृदय में वह निवास करता है तो हमलोग सब मनुष्यों को भ्रातृवत् प्यार कर सकेंगे। यद्यपि अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख नहीं है तथापि यह मानव-जीवन में सर्वापेक्षा बहुमूल्य धन है। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जिनकी उपयोगिता का मूल्य ऐहिक वस्तुओं और सांसारिक व्यवहारों द्वारा निर्धारण नहीं किया जाता है। प्रेम, सम्मान एवं आत्मा ये सब न धन देकर खरीदे जा सकते हैं और न मृत्यु से ही नष्ट हो सकते हैं। हमलोग जो परलोक में विश्वास रखनेवाले हैं, इन बातों को मनुष्य-जीवन की शिक्षा से पृथक् नहीं कर सकते।

It is much better to give hope and strength and courage than money. The best help is not to bear the troubles of others for them, but to inspire them with courage and energy to bear their burden for themselves, and meet the difficulties of life bravely. To help others, is no easy matter, but reqires a clear head, a wise judgement, as well as a warm heart. We must be careful not to undermine independence in our anxiety to relieve distress. It is important, therefore, so far as possible, not so much to give a man bread, as to put him in the way of earning it, not to

give direct aid, but to help others to help themselves. The world is so complex that we all must inevitably owe much to our neighbours, but as far as possible, every man should stand on his own feet.

[Ent. Ex. 1909]

अर्थदान की अपेक्षा आशा, बल और साहस का दान करना विशेष उपकारी है। दूसरों का दुःख अपने सिर पर लेने की अपेक्षा सर्वोत्तम सहायता यह है कि उनमें अपना भार आप उठाने के लिये साहस एवं शक्ति का संचार कर दिया जाय जिससे वे जीवन की कठिनाइयों का वीरतापूर्वक सामना कर सकें। दूसरों की सहायता करना कुछ सहल विषय नहीं है। इसके लिये निर्मल मस्तिष्क, विलक्षण विचार-शक्ति एवं सहृदय अन्तःकरण की आवश्यकता है। हमें सावधान रहना चाहिये, जिसमें दूसरों के कष्ट निवारण करने की धुन में उनकी स्वतन्त्रता न जाती रहे। अतएव जहाँ तक हो सके, किसी मनुष्य को अन्नदान करने की अपेक्षा अन्नोपार्जन का उपाय दिखाना और सीधी तरह सहायता न कर उसे स्वावलम्बन का मार्ग बतलाना अधिकतर उपयोगी है। यह संसार एक ऐसा जटिल स्थान है कि हम सबों को बहुत-कुछ अपने प्रतिनिवेशियों का ऋणी रहना पड़ता है। किन्तु यथासम्भव प्रत्येक मनुष्य को अपने पैरों पर खड़े होने की चेष्टा करनी चाहिये।

Of the deeply religious nature of the Greeks, we have got sufficient proof, if we look for it. In the tragedies of Sophocles there is a most deep-toned recognition of the enternal justice of Heaven and the unfailing punishment of crime against the laws of God. I believe, you will find in all histories of nations that this has been at the root and origin of them all, and that no nation which did not contemplate this wonderful universe with an awe-stricken and reverential belief that there was a great Unknown, Omnipotent and All-wise and All-just

being—no nation ever came to very much. If a man did forget that, he forgot the most important part of his mission in the world.

—Carlyle.

यदि हम खोजें तो इस बात का काफी प्रमाण मिल सकता है कि ग्रीस निवासियों की प्रकृति नितान्त धार्मिक थी। सोफोक्लस के वियोगान्त नाटकों में ईश्वर की चिरन्तन न्यायप्रियता की गम्भीर अनुभूति देखने में आती है और ईश्वर के नियमों के उल्लंघन करने से जो अनिवार्य दण्ड मिलता है उसका भी अभ्रान्त परिचय प्राप्त होता है। तुम लोग पृथ्वी की सब जातियों के इतिहास में देखोगे कि धर्मानुराग ही उन लोगों की उन्नति का मूल है और जो जाति विस्मय तथा भक्ति के साथ यह नहीं सोचती है कि इस विचित्र संसार के सभी मनुष्यकृत कार्य एक महान् अज्ञेय सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वत्र न्यायपरायण पुरुष के द्वारा नियन्त्रित होते हैं, वह जाति कभी विशेष उन्नति लाभ नहीं कर सकती है। जो मनुष्य इस सत्य को भूल गया है, वह इस संसार में अपने आगमन का प्रधान उद्देश्य भूल गया है।

Section XII

Historical Passages

[With hints]

1.

Translate into Hindi:—

In India a noble civilisation (विशिष्ट सभ्यता) began at least 3500 years ago (कम-से-कम साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व). this civilisation still survives down to the present day (वह सभ्यता आज तक भी वर्त्तमान है). Long before Greece and Rome were heard of in history, the Vedas and Upnishads had been composed (वेदों और उपनिषदों की रचना हो चुकी थी). The great Budhist movement (बौद्धमत का आन्दोलन) which transformed (रूपान्तरित कर दिया) all Asia, had its origin and early growth (उत्पत्ति एवं प्रारम्भिक विकास) before the age of the great Pericles of Athens. It is no empty phrase (निरी कपोल-कल्पना नहीं है) therefore to call India the "mother" among the civilisations of the world (संसार की सभ्यता का उद्भवस्थान भारतवर्ष को बताना). Roman and Greek civilisations have passed away; Egypt has perished utterly (मिस्र देश नेस्त-नाबूद हो गया). But India has not perished (भारतवर्ष में प्राण बाकी हैं). She still produces men of genius (प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति) in religion, philosophy and art. Thus this ancient country (प्राचीन भूमि) may be said to possess perpetual youth (सनातन नवीनता).

[Bhagalpur Zilla Sohool 1927.]

2.

When all was ready (सब कुछ प्रस्तुत होने पर) Drona the preceptor, entered the arena (रङ्गस्थल) in pure white garment (श्वेत परिच्छेद से युक्त होकर) and offered up prayers to the praise and glory of God (ईश्वर की स्तुति और महिमा). Then the young princes (तरुण राजकुमार) arranged in garments of different colours entered the arena to show their strange feats (अद्भुत कौशल). Each young man carried his bow and arrows (धनुषबाण) and respectfully saluted the feet of his preceptor (श्रद्धापूर्वक पैर छूकर गुरुओं को प्रणाम किया) and awaited his commands (उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे). Each one, then, in turn (बारी-बारी से) exhibited his skill (अपनी कला का प्रदर्शन किया) by shooting arrows at the butt (लक्ष्य स्थान पर निशाना साधकर) first on foot, and then mounted (रथारूढ़ होकर) in succession (क्रमशः) upon a horse, and elephant, and a chariot. Next followed mock fights (कृत्रिम युद्ध) with the sword and the buckler (ढाल तलवार के साथ).

Wheeler's History of India.

3.

Humayun, in many respects (बहुत अंशों में) was like the English king Stephen. In private life, (पारिवारिक जीवन में) he was an honourable gentleman (माननीय भद्र पुरुष), a brave and gallant (शूर-वीर) though not skilful, soldier and a generous openhearted (उदार एवं स्वच्छ-हृदय) man. As an administrator (शासनकर्त्ता) he was a failure. He never attempted to look ahead (अग्रशोची होना), to establish a definite scheme of Government (शासन की निश्चित व्यवस्था स्थापित करना). His natural abilities (स्वाभाविक योग्यता) were very much weakened by his

fondness for opium which he took to excess (सीमाधिक मात्रा में). It was said of a Roman emperor that he had all the makings of a king (सभी राजोचित गुण), but his misfortune was that he was called upon to rule; the same may be said of Humayun (हुमायूँ के विषय में भी यही कहा जा सकता है). Brave, courteous (शिष्ट), generous (उदार), kind, in an age of cruelty, he had all the kingly qualities, but he was unable to use them for the benefit of his people (अपनी प्रजा के हितार्थ).

(Patna Collegiate School, 1927)

4.

It was signal peculiarity (मुख्य विशेषता) in the mind of Nepoleon that his decisions appeared to be instinctive (सहज स्वाभाविक) rather than deliberative (तर्कना-मूलक). With the rapidity of the lightning flash (बिजली की तरह विद्युद्वेग से) his mind contemplated all the considerations upon each side of a question (प्रश्न के हर एक पहलू पर) and instantaneously (तत्क्षण) came to the result. The judgments apparently (देखने में) so hasty, combined all the wisdom which others obtain by the slow and painful process of weeks of deliberation and uncertainty (सप्ताहों के निरन्तर एवं कठिन तर्क तथा अनिश्चय के उपरान्त). Thus in the midst or innumerable (असंख्य) combinations of the field of battle, he never suffered from a moment of perplexity (किंकर्त्तव्यविमूढ़ता). He never hesitated between this plan and that plan, but immediately decided upon that very course (उसी निश्चय पर पहुँच जाते थे) which the most slow and nature

deliberation (क्रमबद्ध एवं परिपक्व विचार) would have guided him.

(Madhubani H.E School, 1928)

5.

Sir Issac Newton was of a very mild and equal (स्थिर) temper, and was seldom or never seen in a passion (क्रोध). He had a little dog which he called Diamond. He was one day called out of his study (पाठागार), where all his papers and writings were lying upon the table. His dog happened to jump upon the table and overturned (उलटा दिया) a lighted candle, which set fire to all his papers, and consumed (भस्मीभूत कर दिया) them in a fow moments (देखते ही देखते). In this way he lost the fruit of his labour (परिश्रम का फल नष्ट हो गया). But when he came into his study and saw what had happened. (जो हो चुका था) he did not strike the little dog but only said, "Ah Diamond! thou little knowest the mischief (क्षति) thou hast done" Though Issac New on was a very wise and learned man (विद्वान् और बुद्धिमान्), he was not proud of his learning (विद्या पर घमण्ड नहीं करते थे), but was very meek and humble. He was kind to all, even to the poorest and meanest (तुच्छ से तुच्छ) man. Though he was wiser than most other men, yet he said a little before he died, that all his knowledge was as nothing when compared with what he had yet to learn.

6.

No doubt (निस्सन्देह) the hand of Sivaji was strong (शिवाजी का प्रबल पराक्रम था). His brain (मस्तिष्क)

was quick to invent plans of conquest (विजय के साधन). But could the noble Mahratta do all his exploits (रणकौशल) alone ? Who had aided him to grow so mighty (शक्तिशाली) ? It was his spearmen, mounted on hardy ponies, ready to go anywhere and to do anything for the prince they loved so long as he allowed them, in due season, to go back to their land and sow the seed and reap the crops. These honest peasants, tilling the soil in patience and industry (धैर्य एवं परिश्रम के साथ) were the foundation (नींव; मूल स्वरूप) of the golden glory (तेजोमयी महिमा) of the Mahratta king.

(Motihari Zilla School, 1929)

7.

Alexander, the Great (महाप्रतापी सिकन्दर) was not only courageous (साहसी) but as well as loving. His mother was a lady of violent disposition (तीव्र स्वभाव) and gave him much trouble. Nevertheless, when out in Asia on his conquests, he sent her many rich presents (बहुमूल्य उपहार) as tokens of his affection (स्नेह के चिह्नस्वरूप) and entreated her all the while (बराबर) to leave his Governor, Antipater, alone in managing state affairs (राजकीय प्रबन्ध का सचालन करने के लिये) in his absence (अपनी अनुपस्थिति में). This only irritated her (इस पर वह बिगड़ उठी) and she sent a sharp reply (कड़ा उत्तर) which the son bore submissively (नम्रतापूर्वक सहन किया). On one occasion (एक अवसर पर) she had been so troublesome to Antipater that he could not refrain from sending his master letters

complaining of her conduct (चिट्ठियों में उसके व्यवहार की निन्दा लिखकर भेजी). But Alexander only said, "Antipater does not know that one single tear of my mother (मेरी माँ का केवल एक बूँद आँसू) is able to blot out hundreds of his epistles."

(Cal. Uni. Text paper.)

8

The death of Nelson was felt in England as someshing more than public calamitty (सार्वजनिक विपत्ति) Men started at the intelligence (समाचार) and turned pale, as if they heard of the loss of a bear friend (किसी प्रिय मित्र की मृत्यु का संवाद). An object of eur admiration and effection (स्नेह और प्रसंशा का पात्र) of our pride and of our hopes, was suddenly (अकस्मात्) taken away from us, and it seemed as if we had never, till then, known how deeply we loved and reverenced him (उनके प्रति प्रेम और आदर का भाव कितना घना था). What the country had lost in its great naval hero (नाविक शूर) the greatest of our own and of all former times was scarcely taken into the account of grief.

—Southey.

9

The district of Gaya and Patna which may be taken as roughly corresponding in area (क्षेत्रफल में) with the ancient kingdom (प्राचीन राज्य) of Magadha was one of the latest portions of North India to come under the influence of Aryan civilisation (आर्यसभ्यता), from the oldest writings in Sanskrit (संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों से) we learn that Tirhut and

Awadha contained settled Aryan colonies (उपनिवेश) centuries Magadha was known at all.

In course of time, however, the kingdom of Magadha rapidly rose in power. The capital was at Rajgrih, the first prominent king who reigned there being Bimbisara. He was Buddha's famous patron (पृष्ठ-पोषक) and it was during his reign that the Buddha became enlightened at Buddhagaya and founded the Budhist religion (बौद्ध-धर्म की स्थापना की). At that time, the city of Patna, which was subsequently to become the capital of Magadh (मगध की राजधानी) under one of Bimbisara's descendants (वंशज) was a village lying between the Sone and the Ganges, and was fortified during Buddha's life-time under the orders of Ajatsatru to repel the incursions (आक्रमण का बचाव करने के लिये) of the vajjians who had entered North Bihar through the Himalayas and occupied Tirhut (तिरहुत पर अधिकार कर लिया था).

(Patna Uni. 1925)

10

Once upon a time, there ruled over Vidarbha, a mighty king named Bhima. But although his armies were victorious, (विजयी) and his treasury (भण्डार) overflowed with riches (धन से परिपूर्ण) he was unhappy for he had no children (वह निःसन्तान था). One day, however, his unhappiness ceased. For there came to him as a guest a **rishi** named Damana. As befitted an **Aryan** king, Bhima treated the **rishi** with generosity (सौजन्यपूर्वक ऋषि की

अभ्यर्थना की) and both he and his queen poured treasures and gifts into his lap. The **rishi** was pleased and he in turn promised the royal couple (राजदम्पति) that they would be blessed with three sons and a daughter. In due time the **rishi's** promise came to pass (यथासमय ऋषि का आशीर्वाद सफल हुआ) and Bhima's queen bore him three sons and a daughter. And to honour the **rishi** (ऋषि के सम्मानार्थ) the king called one son Dama, another Danta and the third Damana, and the daughter he ealled Damayanti. The three sens grew up strong and brave and tall, as befitted Aryan princes. But Damayanti grew into a maid so fair and beautiful that all India could not furnish another to match her (किन्तु दमयन्ती ऐसी अनुपम सुन्दरी लावण्यमती किशोरी हुई, जिसके समान सम्पूर्ण भारतवर्ष में और कोई नहीं हुई).

(Pat. Uni. Matric, 1923)
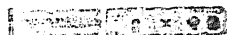
Section XIII

Narrative Paragraphs

[With hints]

1.

Translate into Hindi :—

There came once to king Satrujit, the prince's father, a worthy Brahmin (सुयोग्य ब्राह्मण), leading a noble steed, and said, "O king, a certain evill Daitya is grievously troubling me (एक दुष्ट दैत्य मुझे बहुत ही सता रहा है) in my hermitage (तपोवन में). Day and night (दिन रात) he assumes the form of a lion, elephant or other beast (सिंह, हाथी अथवा किसी अन्य पशु का रूप धारण कर लेता है) and when I am engaged in some act of devotion (जब मैं पूजा-पाठ के कृत्य में लगा रहता हूँ) the foul fiend (वह अधम पिशाच) interrupts the same (उसमें विघ्न डालता है) and robs me of the hard-earned fruit of my austerity (मुझे अपनी तपस्या के कठिनोपार्जित फल से वञ्चित करता है). Thus vexed (इस तरह से सताये जाने पर) one day, in the heaviness of my heart (उदास हृदय से) I sighed deeply (मैंने दीर्घ निःश्वास त्याग किया) and thereon fell from heaven this horse, and a voice was heard (आकाशवाणी हुई) saying, "This steed is Kuvalaya. Take him to king Satrujit; for his noble son, mounted thereon shall slay the base Danava (नीच राक्षस का वध कर डालेगा) who vexes thee

and shall win to hemself a deathless name (अक्षय कीर्ति प्राप्त करेगा)".

(Cal. Uni. 1914)

2.

The old king. worn out with age (जराजर्जर) and tired with the fatigues of Government (राज्य-शासन के भार से ऊबा हुआ) determined to take no further part in state affairs (निश्चय किया कि अब से राज्य-कार्य में भाग नहीं लूँगा), but to leave the management to younger strengths (तरुण सन्तानों के जिम्मे), that he might have time to prepare for death which must at no long period ensue (अपनी निकटवर्तिनी मृत्यु के लिए प्रस्तुत होने का समय मिले). With this intent (इस अभिप्राय से) he called his three daughters to him, to know from their own lips (उन्हीं के मुँह से सुनने के लिये) which of them loved him best (कौन उसके प्रति सबसे अधिक प्रेम रखती थी), that he might part his kingdom in such proportions (उसी अनुपात से अपना राज्य उन तीनों में विभाजित कर सके) as their affection for him should seem to deserve. (जितना वे अपने प्रेम के अनुसार पाने योग्य हों).

(Calcutta Uni. 1912)

Additional Hint—पूर्वोक्त उद्धरण का अनुवाद करने में विद्यार्थी एक Sentence को हिन्दी के कई वाक्यों में तोड़ सकते हैं। इससे अनुवाद में विशेष सुविधा होगी।

3.

"Oh what misery (हा दैव)? What more misery is written on my forehead (न जाने और कौन सी विपत्ति मेरे कपाल में लिखी है ?) But, really, it is a great shame (यह बड़ी लज्जा का विषय है) that mother should beat you. I must speak to her (मैं अवश्य ही उससे कहूँगा)."

"But what will speaking do (लेकिन कहने से क्या होगा) ? Do you think she will change her nature on account of your speaking to her (क्या तुम्हारे कहने से उसका स्वभाव बदल जायगा ?) She will no more leave off her bad temper than the charcoal will leave off its colour by being washed (जिस तरह कोयले का कालापन धोने से नहीं छूटता)." "What do you propose then (तब तुम्हारा क्या विचार होता है) ?" "I propose (मेरा विचार) ! you will never do what I tell you (जो मैं कहूँगा उसे तुम हर्गिज नहीं करोगे). If I were you (यदि मैं तुम्हारी जगह पर होता) I would have sent her away from the house (मैंने उसे घर से निकाल दिया होता) and provided for her in same other house (और किसी दूसरे घर में उसका इन्तजाम कर दिया होता)."

(Cal Uni .1912)

4.

Iago was artful (छली) and had studied human nature deeply (मानव स्वभाव का गम्भीर अध्ययन किया था), and knew that of all the torments which afflict the mind of men (जो यन्त्रणाएँ मनुष्य के हृदय में शूल देती हैं), for beyond bodily torture (शारीरिक वेदना से कहीं अधिक) the pains of jealousy were the most intolerable (नितान्त असह्य) and had the sorest sting (मर्मान्तक पीड़ा देनेवाला). If he could succeed in making Othello jealous of Cassio, he thought it would be an exquisite plot of revenge (प्रतिशोध के लिए बढ़िया षड्यन्त्र), and might end in the death of Cassio or Othello or of both ; he cared not (परवा नहीं). Thus the plotting mind of Iago conceived a horrid scheme of revenge (प्रतिशोध का भीषण उपाय) which should

involve both Cassio, the Moor, and Desdemona in one common ruin (एक ही साथ सत्यानाश में).

(Cal. Uni. 1913)

5

A controversy prevailed among the beasts of the field (एक बार ग्राम्य पशुओं में विवाद छिड़ा) as to which of the animals deserved the most credit of producing the greatest number of whelps at a birth (कि एक बार में सबसे अधिक सन्तान प्रसव करने की शाबासी किस जानवर को मिलनी चाहिए). They rushed clamorously (शोर मचाते हुए) into the presence of the lioness and demanded of her the settlement of the dispute (विवाद की निष्पत्ति). "And you", they said, "how many sons have you at a birth ?" The lioness laughed at them and said, "Why ! I have only one; but that one is altogether a thorough-bred lion ! The value is in the worth not in the number (गुण का मूल्य होता है, न कि संख्या का).

(Cal. Uni. 1911)

6.

I once saw a little boy, on a public-occasion (किसी सार्वजनिक अवसर पर) while thousands were gazing at him with an unaffected astonishment (अकृत्रिम आश्चर्य के साथ), climb the lightning rod (तार के छड़) on the lofty spire of a meeting house (सभा भवन के ऊँचे गुम्बज पर). The wind blew high (हवा जोरों से बह रही थी), and the rod shook and trembled (थर-थर काँप रहा था); but up he went (किन्तु वह ऊपर चढ़ता ही गया) till he reached the vane. All, every mement, expected to

see him fall (सब कोई मन में कह रहे थे कि वह अब-न-अब गिरा ही चाहता है). But what was our amazement (हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा) to see him mount the vane and place him little feet up to it, throwing his arms aloft in the air, and turning round, as the wind turned his shaking foot-hold ! He stood there till weary, and came down at his leisure (आराम के साथ नीचे उतर गया).

(Cal. Uni. 1913)

7.

"What is the matter, dearest (क्या बात है, प्रियतमे ?) why are you weeping ?" asked Madhava as one night on entering his bed-room and shutting the door, he found his wife sitting by the bed-side and weeping. As Malti did not speak but went on sobbing and weeping (रोती-सिसकती ही रही), Madhava again said, "Do tell me, what is troubling you (कहो, तुम्हें किस बात की चिन्ता है ? Do speak, O my life ! and break your mind to me (हृदय की बात मुझसे खोल कर कहो). Am I not the lord of your life ? In your present state, it is not good for you to cry. इस अवस्था में तुम्हें रोना धोना उचित नहीं); some evil thing may happen (कौन जाने कोई अनिष्ट न हो जाय). Do speak and tell me what it is."

"O lord of my life ! (हे प्राणेश्वर !)" gushed out Malti, her utterance all-choked with sigh (रुँधे हुए स्वर से). "I have no wish to live (मुझे जीने की इच्छा नहीं). My life has become a burden to me (अपना जीवन मुझे भारस्वरूप लगता है. I shall be happy if I die now.

The wind will enter into my bones when I die and I shall have rest. O gods! take me, take me!"

(Cal. Uni. 1914)

8.

When he had done speaking (जब उसका बोलना खतम हो गया), an old shepherd who had great experience in all that related to the seasons (जो ऋतु सम्बन्धी बातें जानने में बड़ा अनुभवी था) and had considerable knowledge of the country between our mountains and those of Persia, spoke as follows—If we go, we must go immediately (यदि जाना ही है तो इसी क्षण जाना उपयुक्त होगा; for a day's delay might stop us (क्योंकि एक दिन का विलम्ब होने से हम लोगों का जाना रुक सकता है). The snows on the mountains are already beginning to melt, and the torrents will be so swollen in another week (दूसरे सप्ताह में इतने सोते उमड़ चलेंगे) that we shall not be able to get the sheep across them. Besides (इसके अलावा) it is now about three weeks to the day when the sun enters the sign of the ram (जब सूर्य्य मेष संक्रान्ति में चले जायँगे) at which time our ewes will, please God (ईश्वर करे) bring forth in plenty and they ought to have performed their journey and be at rest long before that time."

(Cal. Uni. 1910)

9.

It happened once to Robinson Crusoe that as he was running on the summit of a hill, he made a stretch to seize a goat with which he fell over a cliff and lay senseless for the space of three days (तीन दिन तक बेहोश पड़ा रहा), the lengths of which he

measured by the moon's growth. The manner of life grew so very pleasant that he never had a sad moment, his nights were untroubled (रातें निश्चिन्त बीतती थीं) and his days joyous (आनन्दमय) from a life of temperance and exercise. It was his custom to use fixed hours and places for the worship of God (ईश्वरोपासना) which he performed aloud to keep up his power of speech (अपनी वाक्-शक्ति अक्षुण्ण रखने के लिये).

(Cal. Uni. 1913)

10.

A father had a family of sons who were perpetually quarreling among themselves (सर्वदा लड़ते-झगड़ते रहते थे). When he failed to heal their disputes by his exhortations (प्रबोधनों के द्वारा), he thought, he might readily prevail by an example. So he called his sons and asked them to bring him a buudle of sticks. Then having tied them in a faggot he placed it in the hands of each of them in succession and told them to break it into pieces. They all tried in vain (सब के सब कोशिश कर हार गये). He next unloosed the faggot and gave them the sticks to break one by one. He then addressed them in these words—"My sons, if you remain united, no one will be able to harm you. But if you are divided among yourselves, you will be broken as easily as these sticks".

11.

One day when the prince Sidhartha with a large

retenue (दलबल के सहित) drove through the eastern gate of the city on the way to one of his parks (राजोद्यान), he met on the road an old man broken and decrepit. One could see the veins and muscles over the whole of his body, his teeth chattered, he was covered with wrinkles (बदन में झुर्रियाँ पड़ गई थीं), was blad and hardly able to utter hollow and unmelodious sounds. He was bent on his stick and all his limbs and joints trembled. "Who is that man ?" said the prince to his coachman—"He is small and weak, his flesh and blood are dried up (रक्त-मांस सूख गया है), his muscles stick to his skin, his head is white (उसके बाल सफेद हो गये हैं), his teeth chatterd; his body is wasted away leaning on his stick, he is hardly able to walk, stumbling at every step. Is there something peculiar in his family or is this the common lot of all created beings ?"

12.

There was in a school a great boy who abused the younger ones (छोटे सहपाठियों को गाली देता था) so much that the teacher took the votes of the school (पाठशाला के लड़कों की राय ली) whether he should be sent away altogether or not (कि उसे एकदम निकाल बाहर करना चाहिये कि नहीं). All the smaller boys except one voted that he should be sent away. That one had been very badly used by the big fellow; and yet he voted that his tormentor should be allowed to stay (जो बालक उसको तङ्ग करता था उसे रहने दिया जाय).

"Why did you vote for him to stay ?" asked the teacher. "Because" said the child, "If he is expelled, perhaps, he will not learn any more about God, and so will become more wicked still". "Do you forgive him then ?" asked the teacher again. "Yes. I do." siad the child, "father and mother, and you will forgive me when I do wrong; God forgives me too—and I must do the same (ईश्वर भी मुझे क्षमा प्रदान करता है और मुझको भी वैसा ही करना उचित है).

—Clarke.

Section XIV

Reflective Passages

[With hints]

Translate into Hindi :—

Sweet language (मधुर भाषण) will multiply friends and a fair speaking tongue (स्पष्ट भाषण) will multiply kind greetings. Be in peace with many (बहुतों के साथ मेल रक्खो); nevertheless have but one counseller in a thousand (हजार में एक को परामर्शदाता बनाओ). If thou wouldst get a friend, prove him first (पहले परीक्षा कर लो), and be not hasty to credit him (विश्वास करने में उतावली मत करो), for some man is a friend for his own occasion (कोई-कोई मनुष्य अपने मतलब के यार होते हैं) and will not abide in the days of the trouble (विपत्ति में तुम्हारा साथ नहीं दे सकते हैं). A faithful friend is a medicine of life (विश्वस्त मित्र जीवन के लिये औषध-स्वरूप है). He is a strong defence, and he that hath found such a one, has found a treasure (खजाना). Forsake not an old friend, who so casteth a stone at the birds frayeth them away and he that upbraideth his friend breaketh friendship (मित्र का तिरस्कार करना मानो मैत्री-सूत्र को छिन्न करना है), for upbraiding of pride or disclosing of secrets (रहस्योद्घाटन), or a treacherous wound, every friend will depart.

(Northbrook School, Darbhanga)

2.

Many persons think lightly of sin (बहुत से लोग पाप

को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं). They suppose (उनकी समझ में) that it can be taken away by giving some piece to beggars or bathing in the Ganges (गङ्गा-स्नान). If a thief were brought before a judge (न्यायाधीश), would he be set free because he had given some alms or washed in some stream looked upon as sacred. Much less can we be freed by such means (इन उपायों के द्वारा) from the guilt of sin (पाप के दोष से विमुक्त हो सकते हैं). Some crimes are so great that the punishment is imprisonment for life (आजन्म कारावास). The guilt of sin is so enormous that its penalty is everlasting punishment (चिरन्तन दण्ड).

(Gaya Zilla School, 1929)

3.

In the morning the mind is calmed (प्रातःकाल न मन शान्त रहता है); the temptations of the day have not beset you ; the duties of the day (दिन-भर के काम) have not filled the mind (मस्तिष्क को आक्रान्त किये हुए नहीं रहते). Before you go to the duties of the day, to its cares, anxieties (फिक्र, तरद्दुद) and temptations, begin the day with prayers. Temptations (प्रलोभन) you will certainly meet (तुम्हें अवश्य ही मिलेंगे); trials of virtue and patience will overtake you, and many times before night you will need the aid of your Father to shield you (रक्षा के लिये ईश्वर की सहायता आवश्यक होगी). Go to Him, and ask His counsel to guide you. His power to uphold you, His presence to cheer you, His spirit to sanctify you.

4.

If we are industrious (उद्यमशील), we shall never starve (कभी भूखों नहीं मर सकते), for "At the working man's house (कार्यशील मनुष्य के घर पर), hunger looks in but dares not enter (क्षुधादेवी झाँकती रहती हैं, किन्तु प्रवेश करने का साहस नहीं करतीं)". Nor the bailiff nor the constable enter (प्यादे-चपरासी भी घुसने नहीं पाते), for industry pays debts, while despair increaseth them (उद्योग से ऋण चुकते हैं, किन्तु नैराश्य से और बढ़ते हैं). Diligence is the mother of good luck (उद्यम-शीलता ही सौभाग्य की जननी है), and God, gives all things to industry. Them plough deep while sluggards (निठल्ले) sleep and you shall have corn to sell and to keep.

5.

There is an intimate connection (घनिष्ठ सम्बन्ध) between mind and body. A sound physical health is necessary to keep the mind sound and cheerful. It often happens that a man possessing mental qualities of the first water (उत्कृष्ट मानसिक गुण) becomes a worthless creature for want of healthy and active physique (स्वस्थ एवं सक्रिय शरीर). It is extremely sad (नितान्त शोचनीय) that many students are quite indifferent to their health. They should bear in mind that health is the most valuable possession (सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति) of a man. Without it, one can hardly pull on.

(Text Question 1928, Patna)

6.

No kind of indolence hurts the health more than the modern custom (आधुनिक रीति) of lying

abed long into the morning. This is the general practice in great towns. The inhabitants of cities (नगर-निवासी) seldom rise before eight or nine o'clock; but the morning is undoubtedly (निस्सन्देह) the best time for exercise (व्यायाम के लिये सर्वोत्तम समय) while the stomach (आमाशय) is empty, and the body refreshed with sleep. Besides, the morning air (प्रभातकालीन वायु) braces and strengthens the nerves (स्नायुओं को); and in some measure, answers the purpose of a cold bath (शीत-स्नान). Let any one who has been accustomed to lie abed till eight, rise by six, spend a couple of hours in walking, riding or active diversion (क्रियात्मक विनोद) without doors, and he will find his spirits cheerful and serene (शान्त), his appetite keen (तीक्ष्ण क्षुधा) and his body braced and strengthened (ओजस्वी एवं बलवान्).

(I. A. Cal. Uni. 1917)

7.

In order to rise early, I would earnestly, (साग्रह) recommend (अनुरोध) an early hour for retiring (शयन करने के लिये). There are many other reasons for this (इसके लिये और भी अनेक कारण हैं). Neither your eyes nor your health are so likely to be destroyed. Nature seems to have so fitted things (प्रकृति ने प्रायः इस प्रकार की व्यवस्था कर दी है) that we ought to rest in the early part of the night (रात्रि के पूर्वार्द्ध में विश्राम लेना चाहिये). Remember that one hour of sleep before mindnight is worth more than two after that time. Let it be the rule with you (इसे अपना नियम बना रखो) that your light should be extinguished by ten o'clock (दस

बजते-बजते रोशनी बुझा दी जाय) in the evening (रात में). You may then rise at five and have seven hours to rest which is about what nature requires.

Todd's manual.

8.

The lot of our Indian peasant (हमारे भारतीय किसान) is certainly a pitiable one (निस्सन्देह शोचनीय है). He labours under many disadvantages. (उसे बहुत-सी कठिनाइयों को झेलना पड़ता है). In the first place (प्रथमतः) he is illiterate (निरक्षर) and does not, therefore, care to know more than he has inherited from his ancestors (जो अपने पूर्वजों से प्राप्त हुआ है). He ploughs his tiny piece of land from morning to evening (सुबह से शाम तक) and if the season favours him (यदि ऋतु उसके अनुकूल हुई), earns what barely suffices to meet his yearly demands (जिसके द्वारा मुश्किल से साल-भर का खर्च चल सकता है). He does not grumble to pay his rent (मालगुजारी देने में उतना नहीं कुड़बुड़ाता है), so much as he does for the loss of his plough, cattle by hinderpest or like fell disease (गोटी या इसी तरह की कोई भयंकर बीमारी). Forced labour he is required to perform now and then (कभी-कभी उसे बेगारी भी करनी पड़ती है), exorbitant interest he pays to the Shylock Bania (उसे मक्खीचूस बनियों को कड़ा सूद देना पड़ता है). His social expenses add the last burden on the camel's back (सामाजिक खर्चे तो उसके सिर पर और भी भारी बोझ जकड़ देते हैं). He lives in debt over head and ears (वह सिर से पैर तक ऋण में डूबा रहता है), and yet does not care to save anything for the morrow (कल के लिये कुछ भी बचाने की फिक्र नहीं करता).

9.

Perseverance is a prime quality (उत्कृष्ट गुण) in every pursuit (प्रत्येक कार्यक्षेत्र में). Men fail much oftener from want of perseverance (अध्यवसायहीनता के कारण) than from want of talent and good disposition (बुद्धि तथा उत्तम प्रकृति के अभाव से). As the success was not to the hare but to the tortoise, so the need of success in study. (अध्ययन में सफलता की आवश्यकता) is not to him, who is in haste, but to him, who proceeds with an even step (जो समान गति से चलता है). It is not to a want of taste or desire or of disposit-ion to learn that we have to ascribe scarcity of good scholars so much as to the want of patient perseverance (धैर्ययुक्त अध्यवसाय). Out of every ten who undertake a task (जो किसी काम में हाथ डालते हैं), there are perhaps nine who abandon it in despair (निराश होकर छोड़ देते हैं), and this too merely for want of resolution to overcome the first approaches of weariness (परिश्रान्ति के पूर्व रूपों पर विजय प्राप्त करने के लिये) ।

(Northbrook School, Darbhanga—1928.)

10.

Time is the only gift or commodity of which every man who lives has just the same share. The passing day is exactly of the same dimensions (परिमाण) to each of us, and by no contrivance (किसी कौशल से) can any one of us extend its duration by so much as a minute or a second. It is not like a sum of money, which we can employ in trade or put out to interest (सूद में लगाना) and thereby add to or multiply its amount. Its amount is unalterable.

We cannot "make it breed". We cannot keep it by us. Whether we will or not (हम चाहें या नहीं), we must spend it, and all our power over it, therefore, consists in the manner in which we spend it. Part with it we must, but we may give it either for something or nothing.

(Pat. Uni. Matric. 1922)

11

Candid criticism (स्पष्ट समालोचना) should be neither benevolent nor hostile, its business is to judge impartially and without bias (निष्पक्षपात होकर). The true critic can discharge his duty (कर्त्तव्य का पालन कर सकता है) if he impresses his readers with an idea (पाठकों के हृदय पर यह भाव अङ्कित कर दे) that on the particular work of art which is the subject of his scrutiny (जो उसका विवेच्य विषय है) he has a special right (विशेष अधिकार) to be heard by reason of his superior scholarship (प्रकाण्ड विद्वत्ता), knowledge, higher gifts of appreciation (मर्मज्ञता) or technical training. He must possess a keen insight (सूक्ष्म दृष्टि); a supple mind, a quick grasp (आशुधारण) and be ready to take in all impressions; he must not allow the object of his survey to be distorted by his own likes and dislikes; he must be wholly free from bias, bias of individual tastes (व्यक्तिगत रुचि), bias of education, bias of creed, sect, party, class and nation (वर्ण, धर्म, जाति, दल और सम्प्रदाय).

The relation between Poetry, Music and Dancing (काव्य, संगीत और नृत्य) is of a very intimate nature.

In their early history, those three arts were united (सम्मिलित) and it was only in the course of time that little by little their way parted. Poetry had its beginning (कविता का जन्म) in religious rites (धार्मिक अनुष्ठान), and religious ceremonies (उत्सव) in all countries and at all times have been associated with singing and in early times (प्राचीन काल में) also with dancing. The same impulse which gave utterance to the poetic manner, also gave rise to melody (राग) or the modulation of voice (स्वर का आलाप). Music and poetry are twin sisters so to say (मानो सगी बहनें हैं); they have the same origin (दोनों का उद्भवस्थान एक ही है); they were prompted by the same occasions (एक ही अवसर के उद्गार हैं)। They were united in song, and so long as they continued united they tended without doubt to heigten and exalt each other's power.

13

Ambition (महत्त्वाकांक्षा) raises a secret tumult in the soul, it inflames (प्रज्वलित करता है) the mind, and puts it into a violent hurry of thought. It is still reaching after an empty imaginary good, that has not the power in it to abate or satisfy it. Most other things we long for can allay the cravings of their proper senses (इन्द्रियों की लालसा शान्त करते हैं), and for a while set the appetite at rest. But fame is a good so wholly foreign to our natures (हमारी प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध) that we have no faculty in the soul adapted to it, nor any organ in the body to relish it. It may indeed fill the mind with a giddy kind

of pleasure, but it is such a pleasure as makes a man restless and uneasy (चंचल और अशांत) under it; and does not so much satisfy the present thirst (तात्कालिक तृष्णा) as it excites fresh desires and sets the soul on new enterprises—Addison.

14.

Conscience testifies that there is a God who is good and just; and society and history, on the whole, confirm its testimony (इसके साक्षित्व को पुष्ट करते हैं). But there are a multitude of moral evils (नैतिक दोष) in the world, and these may seem to warrant an opposite inference (प्रतिकूल निष्कर्ष) or at least so to counterbalance (खंडन करना) what has been adduced as evidence for the goodness and justice of God (ईश्वर की उत्तमता तथा न्यायपरता का प्रमाण) as to leave us logically unable to draw any inference regarding his moral character (उनके नैतिक चरित्र के सम्बन्ध में). We must consider, whether those evils really warrant an antitheistic conclusion (नास्तिकवाद सिद्ध करते हैं).

15.

Belief in conscience and belief in God are most intimately connected and mutually support each other. In the darkest hour, through which a human soul can pass, whatever else is doubtful, this at least is certain—If there be no God and no future state, even then it is better to be generous than selfish, better to be chaste (संयतेन्द्रिय) than licentious (विलासपरायण), better to be brave than to be coward. Blessed beyond all earthly blessedness

is the man (संसार में वह पुरुष धन्य है) who in the temptatuous darkness of his soul (आत्मा के संदेहरूपी निविड़ अंधकार में) has obstinately (दृढ़तापूर्वक) clung to moral good. Blessed in such an hour is he who, feeling himself to be sinking in gloomy waters (अथाह समुद्र में डूबता हुआ), cries to God, Who is able to rescue him from the abyss (जो उसे पाताल से उद्धार करने में समर्थ है) and clings to that justice in heaven (स्वर्गीय न्याय) which is the pledge that justice will be done on earth below. Faith in duty (कर्त्तव्य में विश्वास) helps us to faith in God (ईश्वर में विश्वास). Faith in God helps us to faith in Duty. Duty and God, God and duty ; that is the full truth (अखिल सत्य).

—:*()*:—

Section XV

Epistolary Paragraphs

[i. e. with full translation

1.

A letter from George V, King and Emperor of India to Lord Minto, the Ex-Viceroy of India.

I have received with profound appreciation the expression of sympathy and loyalty conveyed in your Excellency's message from the princes and people of all races and creeds in my Indian Empire on the occasion of the death of my dearly loved father, the King Emperor. I am deeply touched by this expression of universal sorrow for his death. He always remembered with affection his visit to India and its welfare was ever in his thoughts. From my own experience, I know the profound loyalty felt for my throne by the princes and people of India to whom I desire that my acknowledgements of the homage they have tendered to me on my accession may be made known. The prosperity and happiness of my Indian Empire will always be to me of the highest interest and concern as they were to the late King Emperor and the Queen Empress before him.

(भारत सम्राट् पञ्चम जॉर्ज की ओर से भूतपूर्व वायसराय लार्ड मिन्टो के नाम पत्र)

मेरे पूज्य पिता सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु के समय मेरे भारत साम्राज्य की

सकल जाति एवं धर्मावलम्बी प्रजाओं ने तथा राजे-मण्डली ने जो सहानुभूति एवं राजभक्ति प्रकट की है. वह आपके पत्र से विदित हुई है।और अत्यन्त आदर के साथ उसे ग्रहण करता हूँ। महाराज की मृत्यु पर सारी जनता ने शोक प्रकाश किया है, इससे मेरा हृदय पूर्णतया प्रभावित हुआ है। महाराज अपने भारत-भ्रमण की बात सर्वदा बड़े अनुराग के साथ स्मरण करते थे। उनके हृदय में भारत की शुभ-कामना सदैव जागृत रहती थी। मेरे सिंहासन के प्रति भारत के राजकीय वर्ग एवं प्रजावर्ग को जो प्रगाढ़ राजभक्ति है, वह मैं अपने अनुभव से जानता हूँ। मेरे सिंहासनारोहण के समय उन लोगों ने जो सम्मान प्रदर्शन किया है, मैं उसे ग्रहण करता हूँ। मेरी इच्छा है कि यह बात उन तक पहुँचा दी जाय। भारत साम्राज्य का अभ्युदय और मंगल जिस प्रकार स्वर्गीय सम्राट् एडवर्ड और उनकी पूर्ववर्तिनी महारानी विक्टोरिया के लिये सर्वाधिक मनोयोग एवं घनिष्टता का विषय था, मेरे किए भी वैसा ही रहेगा।

2.

Sir,

You are aware that it is the intention of their Imperial Majesties, the King Emperor and Queen Empress to hold on the 12th Dec. next, an Imperial Durbar at Delhi, in order to celebrate in India the coronation which took place in June last in England. The proceedings will last for about ten days, and as it is the wish of his Excellency, the Viceroy, that every facility should, on this important occasion, be given to the leading organs of the press, I am directed to invite you to be a guest of the Government of India for the period commencing on the 6th December 1911, in special camp which will be pitched for the purpose.

I am to enclose a memorandum, that explains the arrangements made in the camp.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Secretary, Durbar Committee.

महाशय,

सम्राट् भारतेश्वर और सम्राज्ञी भारतेश्वरी की इच्छा है कि गत जून महीने में इंगलैंड में जो राज्याभिषेक का उत्सव मनाया गया था उसी के उपलक्ष्य में आगामी १२ वीं दिसम्बर को दिल्ली में दरबार किया जाय। उत्सव की कार्यवाही प्राय: दस दिन तक रहेगी। बड़े लाट साहब की इच्छा है कि इस महत्वपूर्ण अवसर पर प्रमुख समाचारपत्रों को सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जायँ। अतएव मुझे आपको निमन्त्रण देने की आज्ञा मिली है। आप छः दिसम्बर से लेकर उत्सव की समाप्ति तक भारत सरकार के अतिथि स्वरूप होकर रहें। इस निमित्त जो खास शिविर गाड़ा गया है, उसी में आपका डेरा रहेगा।

इसके साथ ही मैं एक स्मारक पत्र भेजता हूँ, जिसके द्वारा शिविर-सम्बन्धी सब बातें मालूम होंगी।

निवेदक—
मंत्री, दरबार-समिति

3.

Dear Child,

Your long silence has made us extremely anxious. I thought to have called on you at school, but owing to the sudden illness of your mother, I was compelled to abandon the purpose.

I have been told that you do not take good care of your health these days. If it is so, it is a matter of extreme regret. You must pay primary attention to your health and secondary attention

to your studies. No amount of learning can compensate the loss of physical strength and of the natural vivacity of a healthy person. Neglect of health is a crime which brings about its own punishment.

However, I expect that you will now try to lead a regular life as regards diet, exercise, etc. and thus bring me satisfaction. Hoping this will find you in the midst of cheers.

Yours affectionately,
Father.

प्रिय वत्स,

बहुत दिनों से तुमने पत्र नहीं लिखा इससे हमलोग चिन्तित हैं। मेरा इरादा था कि स्कूल आकर तुमसे मिलूँ। लेकिन तुम्हारी माँ एकाएक बीमार पड़ गईं। इसलिए यह विचार छोड़ना पड़ा।

मुझे ज्ञात हुआ है कि आजकल तुम अपने स्वास्थ्य पर उचित ध्यान नहीं देते। यदि यह सत्य है, तो वास्तव में बड़े ही खेद का विषय है। तुम्हें उचित है कि सर्वप्रथम अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दो और तत्पश्चात् अपने अध्ययन पर। शारीरिक बल एवं आरोग्य-जनित स्फूर्ति के अभाव को कोई भी विद्या पूरी नहीं कर सकती। स्वास्थ्य की उपेक्षा एक ऐसा अपराध है, जिसका फल लगे हाथ मिल जाता है।

अस्तु, मैं आशा करता हूँ कि तुम अब आहार-विहार इत्यादि में नियमित रूप से जीवन-यापन करने की चेष्टा करोगे। आशा है, तुम कुशलपूर्वक होगे।

तुम्हारा स्नेही, पिता।

Epistolary Paragraphs
(With hints)

1.

My Dear Mohan,

You sent me a letter some time ago asking my advice (परामर्श) as to your future plan (भविष्य कार्य-क्रम).

I sent you words (संवाद भेजा) through your father (तुम्हारे पिता के द्वारा) asking you to see me at Patna, but you did not turn up (उपस्थित नहीं हो सके). I learnt with regret that you are wasting your valuable time and energy (बहुमूल्य समय एवं शक्ति). You ought to have stood a candidate for Executive Service for which you had a fair chance (उत्तम सुयोग). If the committee had not taken you on in Provincial Service, they would have doubtless (निस्सन्देह) selected you for the Subordinate Service from which you could have got on later (पीछे उन्नति लाभ कर सकते थे). What is the use of sitting idle at home (घर पर बेकार बैठने से) and leading a monotonous life ? At your age, you should be knocking about (घूमना-फिरना) in quest of a suitable job (उपयुक्त जीविका के अन्वेषण में) to be established in life. You should realise your responsibility (दायित्व) that rests on you for the maintenance of your family (परिवार-पोषण के निमित्त).

Bacha has recovered from asthma (कासश्वास) but had again an attack of fever. We are all well and trust this will find you cheerful.

Yours affectionately,
J. Kumar.

2.

My dear friend,

Your brother has given me such account (खेद-जनक संवाद) of your health, and the Indian papers (भारतीय समाचारपत्रों ने) which I have received have notices for your severe illness (कठिन रोग की चर्चा की है).

It may be that this latter may not reach you at all, for you may have passed into eternal silence (अनन्त निद्रा की गोद में) before it reaches India. I cannot help hoping, however, that health may be restored to you (आरोग्य लाभ करें). Perhaps (सम्भव है) you may be spared to years of useful works, still I anxiously look for news of you.

You have often done good work for your own people (अपने लोगों का उपकार) and for the Government at trying times (कठिन समय में) and you have shown unchanging friendship (एकनिष्ठ मित्रता) for me since I first met you (मेरे प्रथम साक्षात्कार के समय से ही). I am sensible of this and grateful (कृतज्ञ) to you. You have my kindliest sympathy (आन्तरिक सहानुभूति) at this time.

With best wishes,
(आपका शुभ-चिन्तक)
I am your sincere friend,
(अमायिक बन्धु)
A. L. H. Phraser.

3.

My dear father (पूज्य पिताजी).

I have not heard from you for nearly a fortnight, (दो सप्ताह से आपका समाचार ज्ञात नहीं हुआ है). Please let me know at your early convenience (यथासम्भव शीघ्र ही सूचित करें) how you are all doing (कि आप लोग कैसे हैं). As for myself, I am enjoying good health and am getting on well with my studies (अध्ययन-कार्य अच्छी तरह चल रहा है).

Brother came here yesterday. He is gone to Maternal uncle's house (मामा के घर) to-day, and will return home after he has settled the terms of agreement.

Our Annual Examination (वार्षिक परीक्षा) commences on the 15th of January next. As regards my preparations, I am almost confident of my success in Mathematics and History, (मुझे लगभग विश्वास है कि गणित और इतिहास में उत्तीर्ण हो जाऊँगा) but I am shaky about my result in Hindi Composition (किन्तु हिन्दी-रचना में मेरा परीक्षा-फल कैसा निकलेगा इस विषय में मुझे सन्देह है). For this purpose, I am on the lookout for a tutor to coach me in the subject.

With kindest regards for mother and for yourself.

I remain,
Your affectionate son,
Murli Manohar.

---

4 Specimen Copy.

My dear Murli Manohar,

Your letter of the 20th instant is at hand (तुम्हारी बीस-तारीख की चिट्ठी पहुँची). I was absent from home on some business which prevented me from writing to you so long. (मैं किसी काम से बाहर गया था जिसके कारण इतने दिनों से तुम्हें पत्र नहीं लिख सका). I returned home the day before yesterday (परसों). Here we are all well

(हमलोग सभी सकुशल हैं). Do not be anxious on our account (हम लोगों के लिये अँदेशा मत करना).

I am glad to know that you are getting on well with your studies and pray to God to help you to pass the Annual Examination and to obtain promotion (ईश्वर से मनाता हूँ, तुम वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होकर पदोन्नति लाभ करो). It is, however, a matter of regret that you are deficient in your own vernacular. I hope you will try to procure a useful book on the subject and try to make up your deficiency as soon as possible.

Your mother sends her blessing to you and wishes you to come as soon as the examination is over.

I am,
Your affectionate father,
Bishwanath Prasad.

5.

Dear Sir,

I have come to know (मुझे ज्ञात हुआ है) that you have recently published a very nice book on Hindi Composition and Translation. I have been told that the book is a well-written treatise upon the subject, and is extremely useful for students (छात्रों के हेतु अत्यन्त उपयोगी). If I have been rightly informed, I am ready to purchase a hundred copies of the book, and distribute them among my students. You

will kindly let me know (कृपा कर आप सूचित करें) the nature of the book, the name of its author, and the rate of commission which you usually grant to school masters.

Hoping from you an earliest reply with necessary details (आवश्यक विवरण सहित).

I remain,
Yours very sincerely,
Badri Narayan Kumar.

—:0:—

Section XVI

Conversational Paragraphs

Canute and his courtiers

[Scene—The Seaside—The tide coming in]

Canute (to his courtiers)—"Will that terrible element be still at my bidding?"

First courtier—"Yes, the sea is yours; it was made to bear your ships upon its bosom and to pour the treasurers of the world at your royal feet."

Can.—"Is not the tide coming up?"

Second court.—"Yes, my liege; you may perceive the swell already."

Can.—"Bring me a chair, then, set it there upon the sands".

First court.—,'Where the tide is coming up?"

Can.—"Yes, set it just here."

Second court., (aside)—"I wonder what he is going to do."

First court., (aside)—"Surely he is not such a fool as to believe us."

Can.—"O mighty ocean! thou art my subject, my courtiers tell me so, and it is thy bounden duty to obey me. Thus then I stretch my sceptre over thee and command thee to retire. Roll back thy swelling waves, not let them presume to wet the feet of me, their royal master."

कैन्यूट और उसके सभासदगण

[दृश्य—समुद्र का तीर—ज्वार आ रहा है]

१. कैन्यूट (दरबारियों के प्रति —"क्या यह भयंकर जलराशि हमारी आज्ञा से स्थिर हो सकती है ?"

२. प्रथम दरबारी—"हाँ महाराज ! अवश्य । समुद्र तो आपका ही है । आपके जलयानों को अपने वक्षःस्थल पर वहन करने के लिए और संसार की धन-सम्पत्ति को महाराज के श्रीचरणों में अर्पित करने के लिए ही तो इसकी सृष्टि हुई है ?"

३. कैन्यूट—ज्वार तो आ रहा है न ?"

४. द्वितीय दरबारी—"जी महाराज ! तरंगें तो नजर आने लगीं ।"

५. अच्छा, तो एक कुर्सी लावो और उसे रेत पर रखो ।

६. प्रथम दरबारी—"जहाँ ज्वार आ रहा है ?"

७. कैन्यूट—"हाँ, ठीक वहीं ।"

८. द्वितीय दरबारी(स्वगत)—"न मालूम महाराज क्या करने जा रहे हैं ?"

९. प्रथम दरबारी (स्वगत)—"महाराज ऐसे मूर्ख तो नहीं हैं जो हमारी बात का विश्वास कर बैठे हों ।"

१०. कैन्यूट—"हे शक्तिमान्सागर ! तुम मेरी प्रजा हो, मेरे दरबारी मुझसे ऐसा ही कह रहे हैं । मेरी आज्ञा का प्रतिपालन करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है । इसलिए मैं अपने राजदण्ड को उठाकर तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि पीछे से हट जाओ । अपनी उत्तुङ्ग तरङ्गों की प्रति-निवृत्त करो । मैं तुम्हारा राजा और प्रभु हूँ । तुम्हारी तरङ्गमाला मेरे दोनों चरणों को सिक्त न करने पावे ।"

2.

Teacher—"I am glad to see you. Are you quite well ?"

Pupil—"Quite well, sir, by your grace."

Teacher—"It is long since I last saw you. What school are you at now ?"

Pupil—"I am at the Patna City School now"

Teacher—"Is it, I didn't know that. How long have you been there ?"

Pupil—"Since February last."

Teacher—"Well, how do you get on with your studies there ? And your teachers—do they take good care of you ?"

Pupil...."Very well, sir, as for our teachers they are all very kind to us."

Teacher—"How is your father now ?"

Pupil—"Not very well, sir. He is now suffering from a bad cough."

Teacher—"Is it so ? I am sorry to hear of it. Take care that his case is not neglected. He is indeed of very delicate constitution, I see."

Pupil—"Just so, sir, but fortunately he is under the treatment of a good physician."

Teacher—"Good-bye, then, I don't wish to detain you further."

Pupil—"Good-bye, sir."

शिक्षक—"तुम्हें देखकर बड़ी खुशी हुई। अच्छे तो हो न ?"

छात्र—"जी हाँ, आपके आशीर्वाद से अच्छा हूँ।"

शिक्षक—"तुम्हें देखे बहुत दिन हो गये। अब कहाँ पढ़ते हो ?"

छात्र—"मैं पटना सिटी स्कूल में पढ़ता हूँ।"

शिक्षक—" हाँ, मैं यह नहीं जानता था। पटना सिटी स्कूल में कितने दिन से पढ़ते हो ?"

छात्र—"गत फरवरी से।"

शिक्षक—"अच्छा, तुम्हारी पढ़ाई कैसी होती है ? तुम्हारे शिक्षक तो भली-भाँति खबर लेते हैं ?"

छात्र—"जी, शिक्षकगण हमलोगों पर बड़ी कृपा रखते हैं।"

शिक्षक—"तुम्हारे पिता अब कैसे हैं ?"

छात्र—"वह खूब स्वस्थ नहीं हैं। आजकल बुरी तरह खाँसी से पीड़ित हैं।"

शिक्षक—"हाँ, शोक की बात है। सावधान रहना, गफलत न होने पावे। मैं समझता हूँ उनकी प्रकृति बड़ी कोमल है।"

छात्र—"जी हाँ। सो तो है ही। किन्तु भाग्यवश वह सद्वैद्य की चिकित्सा में हैं।"

शिक्षक—"अच्छा, तो नमस्ते। मैं तुम्हें अधिक देर तक रोकना नहीं चाहता।"

छात्र—"अच्छा, प्रणाम"

Conversational Paragraphs

(With hints)

Charles—You gave me the definition (परिभाषा) of a horse some time ago. Pray, Sir, how is a man defined ?

Father—That is worth inquiring. Let us consider, then. He must either stand by himself or be ranked among the quadrupeds. (चतुष्पदों की श्रेणी में परिगणित हो सकता है); for there are no two-leged animals (द्विपद जीव) but birds which he certinly does not resemble.

Charles—but how can he be made a quadruped ?

Father—By setting him to crawl on the ground in which case he will as much resemble a baboon, as a baboon set on his hind-legs resembles a man. In reality, there is a little difference between the arms of a man and the fore-legs of a quadruped and in all other circumstances of internal structure

(आन्तरिक संगठन) they are evidently formed upon the same model (एक ही साँचे में ढले हुए होते हैं).

Charles—I suppose that we must call him a digitated quadruped, that generally goes upon its hind-legs.

Father—A naturalist (पदार्थवेत्ता) could not reckon him otherwise, and accordingly, Linnaeous has placed him in the same division with apes, baboons and bats.

—Evenings At Home.

2.

Child—There are many sorts of metals, are there not ?

Father—Yes, several ; and if you have mind, I will tell you about some of them, and their uses.

Child—pray, do it (कृपा कर कहिये).

Father—Well, then, first, let us consider what a metal is (पहले हमलोग इस पर विचार करें कि धातु क्या है). Do you think you should know it from a stone.

Father—How could you distinguish it ?

Child—A metal is bright and shining.

Father—True (ठीक), brilliancy is one of the qualities of metal (धातु का वह भी एक गुण है कि उसमें चमक होती है). But glass and crystal are very bright too.

Child—But one may see through glass and not through a piece of metal.

Father—Right, metals are brilliant, but opaque. Theyare not transparent (अपार-दर्शक). The thinest plate of metal that can be made will keep out the light as effectually as a stone-wall.

3.

Landlord—Good morning to you, Kesho.

Kesho—Ah ! is it your honour (अहा ! श्रीमान् पधारे हैं) ? How do you do, Sir ! How are madam and all the good family ?

Landlord—Very well, thank you, and how are you and all yours ?

Kesho—Thank your honour—all pretty well (सब कुशल ही हैं). Will you please sit down ? Set out the chair for his honour, Moti ?

Landlord—What, Jadu is in the field I think.

Kesho—Yes Sir, with his two eldest sons, sowing and harrowing (जोतने-बोने).

Landlord—You do very rightly. With industry and sobriety, there is no fear of their getting living, come what may (चाहे जो हो).

Kesho—That is true, Sir, and we have reason enough to be thankful that we are able and willing to work and have a good landlord to live under.

Landlord—Good tenants deserve good landlords and I have been long acquainted with your value (बहुत दिनों से मैं तुम्हारा गुण जानता हूँ).

4.

Pupil—Are not men of great learning and knowledge wise men ?

Teacher—They are so, if that knowledge and learning are employed to make them happier. But it too often happens that their speculations are of a kind beneficial neither to themselves nor to others (उनके विचार इस प्रकार के होते हैं जिनसे न अपना लाभ हो

सकता है न दूसरों का) and they often neglect to regulate their tempers while they improve their understandings.

Pupil—But is not a philosopher and a wise man the same thing ('दार्शनिक' और 'बुद्धिमान' तो एक ही बात है न ?)

Teacher—A philosopher is properly a lover of wisdom and if he searches after it with a right disposition, he will probably find it oftener than other men (दार्शनिक वस्तुतः ज्ञान का प्रेमी है और यदि वह सच्चे भाव से उसका अन्वेषण करे तो दूसरों की अपेक्षा सुगमता से प्राप्त कर सकता है).

Pupil—I have read of the Seven Wise Men of Greece. What were they ?

Teacher—They were men distinguished for their knowledge and talents (ज्ञान तथा बुद्धि के लिये प्रख्यात), and some of them for their virtues too. But wiser than them all was Socrates (सुकरात), whose chief praise was that he turned philosophy from vain and fruitless disputation (व्यर्थ वितंडाबाद) to the regulation of life and manners, and that he taught (जिस ज्ञान का वह प्रचार करता था, उसका स्वयं आदर्श-स्वरूप था).

5.

Lucy made herself as small as she could, and waited for the German soldier to ride further off. After a time he did so. Then she hopped through the hedge (झाड़ी), darted across the road, and, hid herself amidst the wheat. On and on, she crawled across ditches, through hedges (झाड़ियों और खन्दकों को

पार करती हुई), until at last she reached the gate of the fort. A soldier saw her and cried, "Where are you going ?"

"I want to speak to the captain" said Lucy, "I want to see him at once." "What ?" replied the man, "Do you think that the captain has time to talk to you ?" "Yes," said the child, "he must find time. I must see him."

"You cannot see him," said the man. "He is too busy." "I must, I will see him," cried the child. "You will lose the fort if you do not let me see him. Please send for him (कृपया उनको बुला भेजिये)."

The soldier called a man and told him to go to the captain (सेनानायक) and say that a little girl wished to speak to him.

After a time the captain came to the gate of the fort. He knew the little girl and when he saw her, he said—"What, are you Lucy ? What are you doing here ?"

"I have come," she said, "to tell you that the Germans are in our village. They have shut up our people in their houses. They are waiting till night. Then they will come and take the fort."

"Oh ! will they ?" said the captain, "We will see about that." At once he gave orders to his men and they made ready to meet the foe (शत्रु का सामना करने के लिये तैयार हुए).

P. U.—1937.

Paragraphs

(Without Hints)

1.

All the great religious teachers of mankind have insisted on this: that men ought not to live for themselves alone. We ought not, they have said, to spend all our time and energy in getting just what we want for ourselves, power and money and importance in the world: we ought to serve something greater than ourselves, whether a god or a cause or fellow-men. It is by serving this something greater that men will forget themselves, and so achieve happiness. This is what the great religions have taught, and it is one of the most important of the things that civilization means.

[P. U.—1947]

2

The League of Nations was set up after the last war in order to provide a sort of law-court for nations, to which they could bring their disputes for settlement. Just as private persons, who quarrel, no longer fight in the street but go to law, so it was hoped quarrelling nations who would previously have gone to war to settle their disputes would now go to the League of Nations instead. The League represents all the important nations of the world and although it is not yet strong enough to prevent wars, it may one day become so.

Thus, in the League of Nations lies one of tne chief hopes for the world.

[P.U.—1947]

1.

Gandhiji does not want merely peaceful relations with other countries, he wants peace inside India too. For this reason he wants Hindu-Muslim unity. He believes that India cannot achieve anything unless Hindu and Muslims learn to live like brothers and work for their common motherland. He has said many a time that this problem is nearest his heart and that though it has baffled him, he would work for it till the last day of his life. So he stands for peace amongst the various communities of India as well as amongst the various classes of India. He wants the capitalist to understand the labourer and the zemindar the tenant. He wants there to be peaceful relations between one community and another and between one class and another.

2.

Everyone should love his own country; and everyone who loves his country wants it to be free. But we do not always mean just the same thing by Freedom or Liberty. Sometimes, when we say that people have been champions of liberty, we mean that they have fought against oppression of every kind—oppression by tyrant kings or tyrant soldiers, oppression of the weak by the strong. But sometimes we mean that champions of liberty have

been ready to suffer and to die in fighting the one kind of oppression which is most hateful of all—oppression by foreign rulers or conquerors. There were some who succeeded and some who failed, some who died fighting and some who were foully done to death but the name of all alike are held in honour as national heroes.

[P.U.—1948.]

1.

Pan like tobacco, played a great part in the reception of guests. In those days the morning occupation of the women in the inner apartments consisted in preparing piles of pan for the use of those who visited the outer reception room. Deftly they placed the lime on the leaf, smeared catchue on it with a small stick, and putting in the appropriate amount of spice, folded and secured it with clove. This prepared pan was then piled into a brass container, and a moist piece of cloth, stained with catechu, acted as cover. Such was the invariable custom then prescribed for the fitting reception of guests. That overflowing bowl of pan has long since been discarded.

2.

Sohrab was a son of the Persian hero, Rustum. Unknown to his father (who had been told that his child was a girl). Sohrab joined the Tartar forces of Afrasiab, and gained great renown for his prowess. The Tartar host was attacking the Persians, and Sohrab challenged the bravest of

the Persian lords to maet him in single combat. Rustum, now an old man, but still their greatest warrior, answered the challenge, but he did not know that Sohrab was his son, nor did Sohrab know that he was fighting with his father until the old man, at a crisis of the struggle, shouted 'Rustum.' His son recoiled at the name, and was struck down. Before dying, he revealed to Rustum that he has killed his son.

[P. U.—1949]

I.

So far as I can recollect, I have already said that I never resorted to untruth in my profession. As a student I had heard that the lawyer's profession was a liar's profession. But this did not influence me, as I had no intention of earning either position or money by lying. My principle was put to the test many a time in South Africa. Often I would know that my opponents had tutored their witnesses, and if I only encouraged my client or his witnesses to lie, we would win the case. But I always resisted the temptation. I warned every new client at the outset that he should not expect me to take up a false case or to coach the witnesses, with the results that I built up such a reputation that no false cases used to come to me.

2.

When Asoka came to the throne, his first impulse was to follow the example of his grandfather and wage wars for the extension of the

empire. He therefore led a mighty army to the invasion of Kalinga, the country on the east coast of India and the campaign was waged with terrible severity. Neither young nor old were spared; one hundred thousand people were put to the sword, and many more than that died of wounds, hardships and starvation. Suddenly Asoka remembered the teaching of the Buddha on the wickedness of inflicting cruelty upon others. He then did a thing which no other conquering king had ever done before or has done since; he renounced war for the rest of his life.

[P. U.—1950]

परिशिष्ट

प्रवेशिका परीक्षा के प्रश्न-पत्र *

१९४६

[क]

1. Write an essay on *one* of the following subjects in *one* of the Modern Indian Languages :—

(a) Village Life in Bihar.

(b) A Public Library.

(c) Your Ambition in Life.

[ख]

२—(क) नीचे दिये हुए शब्दों में किन्हीं पाँच को चुनकर नियम बताते हुए, उनके संधि-विच्छेद कीजिये—

उच्चारण, अत्यधिक, निर्विवाद, संसार, निश्चय, सत्याग्रह, पृष्ठ।

(ख) नीचे दिये हुए सामासिक शब्दों में से किन्हीं पाँच के विग्रह कीजिये तथा समास के नाम बताइये—

अनायास, सीताराम, शान्तिप्रिय, पददलित, महात्मा, शक्तिहीन, दुःखसंतप्त।

३—(क) नीचे दिये हुए शब्दों में किन्हीं पाँच से एक-एक विशेषण बनाकर उन्हें अलग-अलग छोटे-छोटे वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये—

श्रद्धा, इच्छा, भूगोल, मूल, त्याग, पिता, आराधना।

(ख) नीचे लिखे शब्दों में किन्हीं पाँच को अलग-अलग इस प्रकार वाक्य में प्रयुक्त कीजिये कि उनकी जाति (gender) सूचित हो जाय—

घास, देर, पहिया, बुढ़ापा, तलाश, होश, लालच।

[ग]

४—निम्नलिखित मुहावरों को वाक्यों में प्रयोग कर उनके अर्थों के साथ

---

* अनुवाद प्रश्न पहले दिये गये हैं।

वर्णन कीजिये—कान खड़ा होना, नाक कट जाना, पानी-पानी हो जाना, दाँत गड़ाये रहना, टालमटोल करना।

५—प्रयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों के लिङ्ग प्रकट कीजिये—

पीतल, मटर, झुकाव, लू, सुभीता।

६—निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध कर लिखिये—

(क) यह बात कोई को मत कहना ?

(ख) हम ब्राह्मण को एक गाय दिये।

(ग) आजकल स्त्रियाँ एकत्रित होकर सभा करती हैं।

(घ) वह अभी तक सूता ही है।

१६४६ (पूरक)

[क]

1. Write an essay on *one* of the following subjects in *one* of the Modern Indian Languages :—

(a) The chief religious festival of your community.

(b) The career you wish to follow.

(c) Your experiences as a third class passenger over an Indian Railway.

[ख]

७—निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग उनके अर्थ के साथ कीजिये। मुँह लगाना, दम भरना, चुप्पी साधना, दिन-रात एक करना, फूला न समाना।

८—प्रयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों के लिङ्ग प्रकट कीजिये—

चना, मैल, बूँद, बालू, पहिया।

६—निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध कर लिखिये—

(क) तुम्हें लौकता नहीं है क्या ?

(ख) सोना सस्ता हो रहा है लेकिन चाँदी तो महँगा ही है।

(ग) पकड़ तो घोड़वा को।

(घ) अच्छी रोटी, अच्छा दाल—सबों को कहाँ मिलते।

१९४७

[क]

1. Write an essay on *one* of the following subjects in *any* Modern Indian Language:—

(a) Evils of war.

(b) A Village market.

(c) Newspapers.

२—(क) नीचे दिये हुए शब्दों में किन्हीं पाँच को चुनकर नियमपूर्वक संधि-विच्छेद कीजिये—

सर्वोत्तम, प्रतिच्छाया, सद्गुरु, पावक, निस्सन्देह, स्वाधीन, नीरोग।

(ख) नीचे लिखे सामासिक शब्दों में किन्हीं पाँच का विग्रह कीजिये तथा समास के नाम बताइये—

अद्वितीय, बड़े-छोटे, स्वर्णराशि, गगनचुम्बी, सापेक्ष, प्रत्येक, परमेश्वर।

३. (क) नीचे दिये हुए शब्दों में किन्हीं पाँच के विपरीतार्थक (opposite) शब्द लिखकर उन्हें अलग-अलग छोटे-छोटे वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये—

अनुकूल, सूक्ष्म, सौभाग्य, पुरस्कार, विजय, उन्नति, व्यर्थ।

(ख) नीचे लिखे शब्दों में किन्हीं पाँच को अलग-अलग इस प्रकार वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये कि उनकी जाति (gender) सूचित हो जाय।

धारा, कुशल, लड़कपन, बाल, तकिया, पक्षी, मशीन।

[ग]

४. अर्थ बतलाते हुए, निम्नलिखित मुहावरों के वाक्यों में प्रयोग दिखलाइये।

सिर फिरना, सिर पटकना, सिर मारना, सिर चढ़ना, सिर उठाना।

अथवा—नाक में दम होना, कान में तेल डालना, बाल की खाल निकालना, आँख में खून उतरना, मुँह का निवाला छीनना।

५. प्रयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों के लिङ्ग बतलाइये—

झंझट, बुढ़ापा, लूट, रामायण, कपूर।

६. निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध कीजिये—

(क) यौवनावस्था में हम कितनी बुराइयाँ नहीं करते।

(ख) आज के सभी आविष्कार पूँजीपतियों के आधीन हैं।

(ग) वह कहिन कि किताब खो गई।
(घ) हमें नहीं बुझाता कि क्या कहूँ।
(ङ) उसकी पत्नी बड़ी झगड़ालू है।

१९४७ (पूरक)

[क]

1. Write an essay on *one* of the following in *any* Modern Indian Language:—

(a) Choice of a profession.
(b) Women's Education.
(c) Gardens.

[ख]

२. (क) नीचे दिये हुए शब्दों में किन्हीं पाँच को चुनकर नियम बताते हुए, उनके संधि-विच्छेद कीजिये—

ग्रामोद्धार, सद्भावना, निर्भर, संगठन, उन्नति, एकैक, निश्चय।

(ख) नीचे दिये हुए सामासिक शब्दों में किन्हीं पाँच का विग्रह कीजिये तथा समास के नाम बताइये—

हरिद्वार, बेहद, प्रत्यंग, भृगुसंहिता, लाटसाहेब, स्वतन्त्रता-प्रिय, स्वराज्य।

३. (क) नीचे दिये हुए शब्दों में किन्हीं पाँच से एक-एक विशेषण बनाकर उन्हें अलग-अलग छोटे-छोटे वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये—

ग्राम, उपयोग, स्वास्थ्य, उन्नति, जलना, अर्थ, शोषण।

(ख) नीचे लिखे शब्दों में किन्हीं पाँच को अलग-अलग इस प्रकार वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये कि उनकी जाति (gender) सूचित हो जाय—

करण, खटमल, काँख, जूँ, दही, शरबत, शरण।

[ग]

४. अर्थ बतलाते हुए, निम्नलिखित मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग दिखलाइये—

आँख लगाना, आँख मारना, आँख मूँदना, आँख बदलना,

अथवा

नाक का बाल होना, देह में आग लगना, हाथ का तोता उड़ जाना, आँख की किरकिरी होना, सिर की खाज़ होना।

५. प्रयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों के लिङ्ग बतलाइये—
बाँस, खटमल, भात, झुंड, प्यास ।

६. निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध कीजिये—
(क) परमात्मा के रहस्य को वर्णन करना कठिन है ।
(ख) प्रेमचन्द्र ने 'कफन' नामक कहानी लिखा ।
(ग) मैथिलीशरण गुप्त ने आर्य स्त्रियों का गुण-गान किया है ।
(घ) वह ऐसा बात बोला कि जी खुशी हो गई ।
(ङ) तुलसीदास अवधि में रामायण लिखिन हैं ।

१६४८

(क)

1. Write an essay on *one* of the following subjects in *any* Modern Indian Language:—
(a) Our Independence Day.
(b) A Library.
(c) Compulsory Military Training.

[ख]

२. (क) नीचे दिये हुए शब्दों में से किन्हीं पाँच के नियम बताते हुए संधि-विच्छेद कीजिये—साश्चर्य, उद्विग्न, अधीश्वर, निश्चिन्तता, नयन-निरीक्षण, पावक ।

(ख) नीचे लिखे सामासिक शब्दों में से किन्हीं पाँच का विग्रह कीजिये तथा समास के नाम बताइये । श्रमजीवी, सीताराम, महाकाव्य, पददलित, शान्तिप्रिय, निर्विवाद, प्रभुत्व, लिप्सा ।

३. (क) नीचे दिये हुए भिन्न-भिन्न शब्द-समूहों में से किन्हीं पाँच के लिये एक-एक शब्द लिखिये—जिसके बराबर दूसरा न हो; जो देखने लायक हो; वह चीज जो संसार की न हो; जिसका वर्णन किया जा सके; इतिहास को जाननेवाला; जिसका उल्लेख किया जा सके; जिसकी गिनती न हुई हो ।

(ख) नीचे लिखे शब्दों में से किन्हीं पाँच को अलग-अलग इस प्रकार वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये कि उनकी जाति (gender) सूचित हो जाय—लाल, कोकिल, कीचड़, दही, भूत, कुशल, अनुभव ।

[ग]

४. निम्नलिखित मुहावरों के अर्थ बतलाते हुए, वाक्यों में प्रयोग दिखलाइये—

(क) घाट-घाट का पानी पीना; (ख) नौ दो ग्यारह होना;

(ग) कोल्हू का बैल बनना; (घ) जले पर नमक छिड़कना; (ङ) सुबह का चिराग होना।

५. निम्नलिखित शब्दों के सन्धि-विच्छेद कीजिये—

संयोग, उच्चारण, रामायण, अन्वेषण, उद्धार।

६. निम्नलिखित शब्द-समूहों के अर्थ-भेद स्पष्ट कीजिये—

कुल-कूल; शूर-सूर; अवधि-अवधी; दिन-दीन; शर-सर।

१९४८ (पूरक)

[क]

2. Write an essay on *one* of the following subjects in *any* Modern Indian Language:—

(a) Life during the holidays

(b) An Exhibition.

(c) An Indian Village.

(ख)

१. (क) नीचे दिये हुए शब्दों में से किन्हीं पाँच को चुनकर नियम बताते हुए, उनके संधि-विच्छेद कीजिये—

उपर्युक्त, समुच्चय, यथेष्ट, व्यायाम, भावुक, निरीक्षण, विच्छेद।

(ख) नीचे लिखे सामासिक शब्दों में से किन्हीं पाँच के विग्रह कीजिये तथा समास के नाम बताइये—

ग्रामोद्धार, सद्भावना, कृषि-प्रधान, प्रतिशत, वातावरण, आमूल, अनभिज्ञ।

२. (क) नीचे लिखे शब्दों में से किन्हीं पाँच को अलग-अलग इस प्रकार वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये कि उनकी जाति (gender) सूचित हो जाय—बोतल, थकान, कान, गोला, तोप, नींव, बचाव।

(ख) नीचे लिखे मुहावरों में से पाँच को इस प्रकार अलग-अलग छोटे-छोटे वाक्यों में प्रयुक्त कीजिये कि उनके अर्थ और प्रयोग स्पष्ट हो जायँ—

कलेजा काँप जाना, मुख उज्ज्वल करना, चन्द्रमा को चूमना, धराशायी होना, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना, वीर-गति को प्राप्त होना, नसीब होना।

[ग]

३. निम्नलिखित मुहावरों के अर्थ बतलाते हुए वाक्यों में प्रयोग दिखलाइये—घी के दिये जलाना। (ख) टन बोल जाना। (ग) मिट्टी के मोल बिकना। (घ) नाक का बाल होना। (ङ) कपाल-क्रिया करना।

४. निम्नलिखित शब्दों के सन्धि-विच्छेद कीजिये—तल्लीन, निश्चिन्त, प्रमाण, यशोदा, स्वागत।

५. निम्नलिखित वाक्यों में से प्रत्येक के बदले के एक-एक शब्द दीजिये—(क) जो कल्पना के परे हो। (ख) जो देखने में प्रिय लगता हो। (ग) जो कभी हुआ न हो। (घ) जिसके अंग-प्रत्यंग सड़ गये हों। (ङ) जिसके सिर पर चन्द्रमा विराजमान हो।

१९४९

1. Write an essay on *one* of the following subjects:—

(a) Untouchability.

(b) Village Re-organisation in India.

(c) Radio.

२. निम्नलिखित मुहावरों का प्रयोग, अर्थ बतलाते हुए वाक्यों में दिखलाइये—

(क) मुँहकी खाना। (ख) कलेजा मुँह को आना। (ग) आँख दिखाना। (घ) तलवे सहलाना। (ङ) पानी-पानी होना।

३. सन्धि-विच्छेद कीजिये—

नीरोग, संस्कृत, उच्छृङ्खल, प्रोत्साहन, दिग्गज।

४. निम्नलिखित वाक्यांशों में से प्रत्येक के बदले एक-एक शब्द दीजिये—

(क) जिसके बारे में तर्क नहीं किया जा सके।

(ख) जिसका अन्त न हो।

(ग) जिसकी पत्नी मर गई हो।

(घ) जो लोक में पाया जाता हो।

(ङ) जो कठिनता से प्राप्त हो सके।

१९४९ (पूरक)

1. Write an essay on *one* of the following subject:—
   (a) The Pleasure of Reading.
   (b) Vernacular as the medium of Instruction.
   (c) A Hospital.

२. निम्नलिखित मुहावरों का प्रयोग, अर्थ बतलाते हुए वाक्यों में दिखलाइये—
(क) दाल न गलना। (ख) कान पर जूँ न रेंगना। (ग) कलेजे पर साँप लोटना। (घ) आसमान के तारे तोड़ लाना। (ङ) कलई खुलना।

३. नीचे लिखे विशेष्यों में से किन्हीं पाँच से विशेषण बनाइये।
आदि, अन्त, स्वर्ग, उदय, गौरव, दर्शन, विश्वास।

४. निम्नलिखित वाक्यांशों में से किन्हीं पाँच के बदले एक-एक शब्द दीजिये—
(क) पैर से सिर तक। (ख) जो उपकारी का उपकार नहीं मानता। (ग) जिसका शत्रु उत्पन्न नहीं हुआ। (घ) क्या करना चाहिये, यह जो नहीं समझ सके। (ङ) जिसने इन्द्रियों पर विजय पाई है। (च) जो शिव की उपासना करता है। (छ) जो नगर में रहता हो।

१९५०

1. Write an essay on *one* of the following subjects in *any* Modern Indian Language :—
   (a) Travel as a means of education.
   (b) Holidays, and the best way of spending them.
   (c) Your idea of a happy life.

२—(क) नीचे लिखे हुए शब्दों में से किन्हीं पाँच के नियम बताकर संधि-विच्छेद कीजिये—

श्रेयस्कर, उपदेशान्तर्गत, यद्यपि, सज्जन, सन्निहित, उच्छृङ्खल, पराङ्मुख।

(ख) नीचे लिखे किन्हीं पाँच शब्दों से बने विशेषणों का अलग-अलग वाक्यों में प्रयोग कीजिये—

प्रथम, निर्वासन, विपत्ति, तिरस्कार, आश्रय, दिल, मन।

३—(क) निम्नलिखित शब्द-समूहों में से किन्हीं पाँच के लिये एक-एक शब्द दीजिये—

जिसके बराबर दूसरा न हो, वर्णन करने के लायक, जो आगे की बात जान सके, जो जगा हुआ है, जो इन्द्रियों से बाहर है, मानव को छोड़कर जो पसीने से उत्पन्न हो।

(ख) वाक्यों में प्रयोग के द्वारा निम्नलिखित शब्दों में से किन्हीं पाँच का जाति-निर्देश कीजिये—

अपेक्षा, खेल, चमड़ी, रेल, मैदा, तरबूज, चाकू, घास।

१६५० (पूरक)

1 Write an essay on *one* of the following subjects in *any* Modern Indian Language :—

(a) Social Service.
(b) The profession you want to adopt
(c) Your idea of model village

२। निम्नलिखित मुहावरों में से किन्हीं पाँच के अर्थ बतलाते हुए, वाक्यों में प्रयोग दिखलाइये--

(क) अँगूठा दिखाना। (ख) घी के दिये जलाना। (ग) कान पर जूँ न रेंगना। (घ) लोहा मानना। (ङ) जी में जी आना। (च) मैदान मार लेना। (छ) दिल बैठ जाना।

३। निम्नलिखित शब्दों के सन्धि-विच्छेद कीजिये--

स्वागत; जगन्नाथ; नीरस; अतएव, हितोपदेश।

४। निम्नलिखित, वाक्यांशों में से प्रत्येक के बदले एक-एक शब्द दीजिये--

(क) जिसके ऐसा दूसरा न हो। (ख) जो उपकार मानता हो। (ग) जो पूजा करने योग्य हो। (घ) जो क्षमा करने योग्य न हो। (ङ) आशा से भी अधिक।

१९५१

१ किसी एक पर निबन्ध लिखिये—

अवकाश—इसके सदुपयोग तथा दुरुपयोग, खेल-कूद, स्वतन्त्रता दिवस।

२ अर्थ लिखकर वाक्य में प्रयोग कीजिये—

कान खड़े होना, भींगी बिल्ली होना, नाक कटना, लोहे के चने चबाना, हाथ को हाथ न सूझना, हवा होना, पानी-पानी होना।

३ जोड़े शब्दों का भेद बताइये—

सुत, सूत। दिया, दीया। वार, बार। तरणि, तरणी। सर, शर। चार, चारु। टोटा, टोंटा।

४ एक शब्द दीजिये—

जो आगे की बात सोचता है, जिसका आर-पार नहीं देखा जा सके। जो शक्ति का उपासक है, बादल के समान काला, जो कल्पना करने योग्य नहीं है, पत्नी के भाई की पत्नी।

१९५१ (पूरक)

१ एक पर निबन्ध लिखिये—

(क) रेशनिंग, (ख) भ्रमण-यात्रा (Walking Tours), (ग) आत्मशासन (Self Control).

२ अर्थ लिखकर वाक्य में प्रयोग कीजिये—

कलेजा मुँह को आना, मुँह चुराना, हाथ कंगन को आरसी क्या, नाक का बाल होना, पैरों तले की मिट्टी खिसकना, कमर टूट जाना, हाथ खुजलाना।

३ इनके एक शब्द दीजिये—

पति की बहन का पति, जो क्षमा करने योग्य है, आकाश में उड़ने वाला, जो दिखाई न पड़े, जो पीने योग्य न हो, परिश्रम करके जीनेवाला, घुटनों तक लम्बा।

४ जोड़े शब्दों का अन्तर वाक्य-प्रयोग द्वारा बताइये—सकल, शकल। सान, शान।

१९५२

किसी एक पर निबन्ध लिखिये—

१ (क) मौसम, जिसे तुम अत्यधिक पसन्द करते हो। (ख) सच्चा भद्र पुरुष। (ग) तुम्हारे पड़ोसी। (घ) १९५१ में बिहार में अन्नाभाव।

अर्थ लिखकर इन मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिये—

२ (क) काँटों में घसीटना। (ख) खेत आना। (ग) घी के दीये जलाना। (घ) टाँग अड़ाना। (ङ) दाँत खट्टे करना। (च) नाकोदम करना। (छ) मन के लड्डू खाना।

इन जोड़े शब्दों में अन्तर बताइये--

४ अवृत्ति, आवृत्ति। आसन, आसन्न। इतर, इत्र। कृत, क्रीत। चूर, चूर्ण। प्रकृत, प्राकृत। शुक्ति, सूक्ति।

एक शब्द दीजिये--

५ पत्नी के सहित। जो सब में एक-सा पाया जाता हो। विष्णु का उपासक। क्रम के अनुसार। पाने की इच्छा। जो पीने के योग्य हो। जिसका अनुभव इन्द्रियों के द्वारा न हो।

१९५२ (पूरक)

१ किसी एक पर निबन्ध लिखें—

(क) आत्म-निर्भरता, (ख) प्रकृति में अप्रत्याशित घटना, (ग) परिवार के खुशी के दिन, (घ) नम्रता।

२ निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्यों में प्रयोग कीजिये—

(क) एक न चलना, (ख) कलई खुलना, (ग) खोगीर की भरती, (घ) टट्टी की ओट शिकार करना, (ङ) तलवे सहलाना, (च) दुम दबा कर भागना, (छ) लोहा लेना।

३ निम्नांकित युगल शब्दों का अर्थ स्पष्ट कीजिये—

प्रासाद, प्रसाद; कुल, कूल; केसर, केशर; दूत, द्यूत; शाम, सम; शर, सर; और शंकर, संकर।

४ एक शब्द दीजिये—

(क) वह जो कम बोलता है। (ख) वह जिसे विषय का विशेष ज्ञान हो। (ग) वह जिसका तेज चला गया हो। (घ) वह उपकार जो किसी उपकार के बदले किया जाय। (ङ) वह जिसकी प्रतिज्ञा दृढ़ है। (छ) जिसका पहले से अनुमान न हो। (ज) वह जिसकी बाहुएँ बड़ी हों।

१९५३

1. Essay—any one :—

(i) The Bullock-cart (बैलगाड़ी), (ii) The festival you like best (त्योहार जो सबसे अच्छा है), (iii) Social service (सामाजिक सेवा), (iv) The city or village in which you live. (नगर या देहात का वर्णन, जहाँ रहते हो)

(२) नीचे लिखे गये शब्दों में से केवल पाँच को भाववाचक संज्ञा के रूप में परिणत करें—

मित्र, दौड़ना, आदमी, पंडित, अच्छा, लड़का, चलना।

(६) अर्थ लिखकर नीचे लिखे मुहावरों में से किन्हीं पाँच को अपने वाक्य में प्रयोग करें—

(अ) जले पर नमक छिड़कना। (आ) नुक्ता चीनी करना। (इ) चुनौती देना। (ई) बाल की खाल निकालना। (उ) खटाई में पड़ना। (ऊ) श्री गणेश करना। (ए) आकाश-पाताल एक कर देना।

१९५३ (पूरक)

1. Essay:—

(i) A great man of India. (भारत का कोई महापुरुष)

(ii) Indian barbers (भारत का हजाम)

(iii) Your favourite games (मन लगने वाला कोई खेल)

(iv) Good manners. (शिष्टाचार)

(६) अर्थ लिखकर इन मुहावरों मे से केवल पाँच को अपने सरल वाक्य में व्यवहार करें—

नाक रख लेना, फूल उठना, काम तमाम करना, बायें हाथ का खेल, कलम तोड़ देना, आँख बचाना, सिर आँखों पर बिठाना।

(७) इनमें केवल पाँच के विपरीत अर्थ रखनेवाले शब्दों को वाक्य में प्रयोग करें—

अन्त, आदर, यश, सफल, उन्नति, सुचरित्र, सुलभ।

(८) नीचे लिखे शब्दों में से केवल पाँच अपनी इच्छा से चुन लें और विशेषण बनाइये—

श्रद्धा, सूत, दिन, ग्राम, उपज, संसार, विज्ञान।